पंचास्तिकायसंग्रह प्रकाश

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के सन् १९६४ के प्रवचन

भाग २

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

पंचास्तिकायसंग्रह प्रकाश

(भाग - 2)

(**श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव** प्रणीत **श्री पंचास्तिकायसंग्रह** परमागम पर **अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी** के ई.स. 1964 में हुए प्रवचन)

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत	वीर संवत	ई. सन
2078	2548	2022

—: प्रकाशन :—
ज्ञानपर्व श्रुतपंचमी
(ज्येष्ठ शुक्ल 5, दिनांक 04 जून 2022)
के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—
1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250   फोन : 02846–244334
2. श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई–400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय निवेदन

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी,
मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलं।

महावीर भगवान, गौतम गणधर तत्पश्चात् जिनके नाम का उल्लेख किया जाता है ऐसे भरत के समर्थ आचार्य, साक्षात् सदेह विदेह में जाकर सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि का प्रत्यक्ष रसपान करके भरत में पधारे श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव महान योगीश्वर हैं, यह जगतविदित है। अनेक महान आचार्य उनके द्वारा रचित शास्त्रों का आधार देते हैं। इससे ऐसा प्रसिद्ध होता है कि अन्य आचार्य भी उनके वचनों को आधारभूत मानते हैं।

निर्मल पवित्र परिणति के धारक तो थे ही परन्तु पुण्य में भी समर्थ थे कि जिससे सीमन्धर भगवान का साक्षात् योग हुआ। महाविदेह से वापस आने के बाद पोन्नूर तीर्थधाम में साधना करते-करते उन्होंने अनेक शास्त्रों की रचना की। जिसमें श्री समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, अष्टपाहुड़ आदि पाँच परमागम तो प्रसिद्ध है ही परन्तु इसके अतिरिक्त भी अनेक शास्त्रों की रचना उन्होंने की है।

श्री समयसार इस भरतक्षेत्र का सर्वोत्कृष्ट परमागम है। उसमें नव तत्त्व का शुद्धनय की दृष्टि से निरूपण करके जीव का शुद्ध स्वरूप प्रकाशित किया है। श्री प्रवचनसार में नाम अनुसार जिनप्रवचन का सार संग्रहित है और उसे ज्ञानतत्त्व, ज्ञेयतत्त्व और चरणानुयोगसूचक चूलिका नामक तीन अधिकारों में विभाजित किया है। श्री नियमसार में मोक्षमार्ग का सत्यार्थ निरूपण है। श्री पंचास्तिकायसंग्रह में कालसहित पाँच अस्तिकायों का (अर्थात् छह द्रव्यों का) और नौ पदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग का निरूपण है तथा श्री अष्टपाहुड़ एक दार्शनिक ग्रन्थ है, जिसमें सम्यक् रत्नत्रय एक ही मोक्षमार्ग है, उसकी दृढ़तापूर्वक स्थापना की गयी है।

पंचास्तिकायसंग्रह पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा ई.स. 1963-64 में हुए उपलब्ध प्रवचनों को एकत्रित कर शब्दश: ग्रन्थ लिपिबद्ध किया गया है। पंचास्तिकायसंग्रह शास्त्र के प्रारम्भ में ही

आचार्यदेव कहते हैं कि यह शास्त्र सर्वज्ञ महामुनि के मुख से कहे गये पदार्थों का प्रतिपादक, चतुर्गतिनाशक और निर्वाण का कारण है। इस प्रकार चार अनुयोग में कोई भी अनुयोग हो परन्तु चारों ही अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है, ऐसा अन्त में १७२ गाथा में कहकर समस्त अनुयोगों का सार कहा है। निश्चय-व्यवहाररूप मोक्षमार्ग की सन्धि करके अति स्पष्ट विवेचन किया गया है।

वर्तमान श्री सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि में जो कहा जा रहा है, उसे प्रत्यक्ष झेलनेवाले भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव और उनके अनन्य भक्त, कि जिनकी विद्यमानता श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के विदेहगमन के समय साक्षात् थी, ऐसे प्रियवर पूज्य कहान गुरुदेवश्री के अध्यात्मरस भरपूर प्रवचनों का क्या कहना! जो विषय वचनगोचर नहीं, विकल्पगोचर नहीं, उसे कथंचित् वक्तव्य करना यह कहान गुरुदेवश्री की समर्थ प्रचण्ड शक्ति के दर्शन कराता है और भविष्य में ॐकार ध्वनि खिरनेवाली है, इसका सूचक है।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ओडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झवेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ ने इस महान कार्य को अविरत धारा से चालू रखा और सम्हालकर रखा, तदर्थ उसके प्रति भी आभार व्यक्त करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना की सुरक्षा सी.डी., डी.वी.डी. तथा वेबसाईट (www.vitragvani.com) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा की गयी है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की यह भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाया गया तत्त्वज्ञान का भरपूर लाभ सामान्य जन प्राप्त करे कि जिससे यह वाणी शाश्वत् बनी रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरश: ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी भावना के फलस्वरूप पंचास्तिकायसंग्रह ग्रन्थ पर ई.स. १९६४ में हुए उपलब्ध प्रवचन यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं। पंचास्तिकायसंग्रह ग्रन्थ के संकलित प्रवचन भी पूर्व में सद्गुरु प्रवचनप्रसाद (दैनिक पत्रिका) के रूप में श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा प्रकाशित हुए हैं। प्रस्तुत २७ प्रवचन बाद में प्राप्त हुए प्रवचन हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहेनश्री चम्पाबहिन के करकमल में सादर समर्पित करते हैं।

सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में पर्याप्त सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना को पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। प्रस्तुत प्रवचनों को सुनकर गुजराती भाषा में ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य पूजा इम्प्रेशन्स तथा प्रवचनों के प्रूफ संशोधन का कार्य श्री सुधीरभाई शाह, सूरत तथा श्री अतुलभाई जैन, मलाड द्वारा किया गया है। इस प्रवचन ग्रन्थ के हिन्दी रूपान्तरण एवं

सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राजस्थान) द्वारा किया गया है। टाईपसेटिंग का कार्य श्री विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ द्वारा किया गया है। ट्रस्ट सभी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारीपूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक तथा उपयोगपूर्वक किया गया है। तथापि प्रकाशनकार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र के प्रति क्षमायाचना करते हैं। ट्रस्ट मुमुक्षुजनों से निवेदन करता है कि यदि कोई अशुद्धि दृष्टिगोचर हो तो हमारा ध्यान आकृष्ट करें, जिससे आगामी आवृत्ति में यथोचित सुधार किया जा सके।

पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण करे - ऐसी भावना के साथ विराम लेते हैं।

यह प्रवचन www.vitragvani.com पर उपलब्ध हैं।

ट्रस्टीगण,
श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विलेपार्ला, मुम्बई

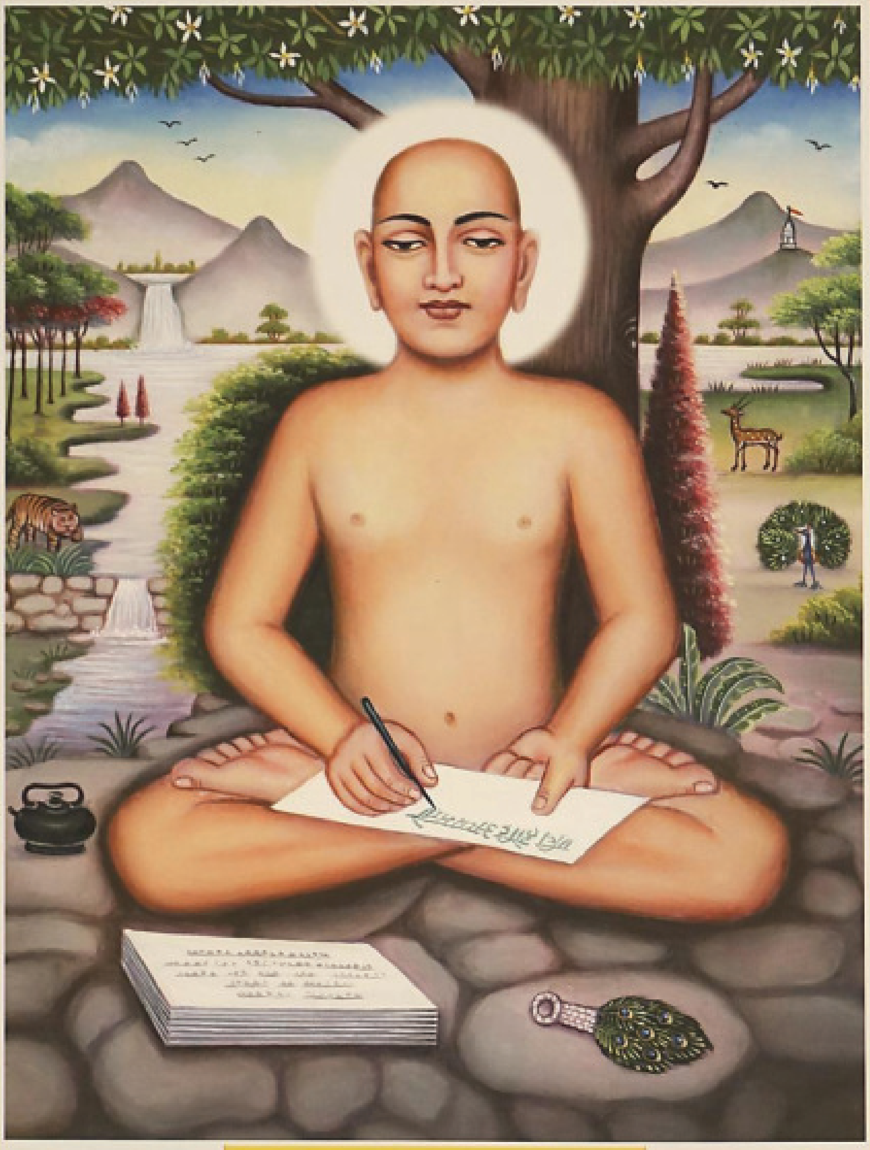

कलिकाल सर्वज्ञ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का**

श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 – फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित

सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन	दिनांक	गाथा	पृष्ठ क्र.
०१	१२.०८.१९६४	१५५	००१
०२	१३.०८.१९६४	१५६ से १५८	०२४
०३	१४.०८.१९६४	१५८ – १५९	०४६
०४	१७.०८.१९६४	१५९	०६७
०५	१८.०८.१९६४	१५९	०८७
०६	१९.०८.१९६४	१६०	१०७
०७	२०.०८.१९६४	१६०	१३०
०८	२१.०८.१९६४	१६०–१६१	१४९
०९	२३.०८.१९६४	१६१	१७१
१०	२४.०८.१९६४	१६१–१६२	१८९
११	२५.०८.१९६४	१६२–१६३	२११
१२	२६.०८.१९६४	१६३–१६४	२३१
१३	२७.०८.१९६४	१६४	२५३
१४	२८.०८.१९६४	१६४–१६५	२७३
१५	३१.०८.१९६४	१६८–१६९	२९६
१६	०१.०९.१९६४	१७०	३२०
१७	०२.०९.१९६४	१७१–१७२	३४४
१८	११.०९.१९६४	१७२	३७५
१९	१२.०९.१९६४	१७२	३९४
२०	१३.०९.१९६४	१७२	४१३
२१	१५.०९.१९६४	१७२	४३२
२२	१६.०९.१९६४	१७२	४५२
२३	१७.०९.१९६४	१७२	४७२
२४	१८.०९.१९६४	१७२	४९२
२५	१९.०९.१९६४	१७२	५१२
२६	२०.०९.१९६४	१७२	५३२
२७	२१.०९.१९६४	१७३, श्लोक ८	५५१

ॐ

परमात्मने नमः

पंचास्तिकायसंग्रह प्रकाश

(भाग-२)

(श्रीमद्‌भगवत्‌कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री पंचास्तिकायसंग्रह परमागम पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के ईस्वी सन् १९६४ में हुए शब्दशः प्रवचन)

गाथा - १५५

जीवो सहावणियदो अणियदगुणपज्जओध परसमओ।
जदि कुणदि सगं समयं पब्भस्सदि कम्मबंधादो।।१५५।।

स्व समय स्वयं से नियत है पर भाव अनियत पर समय।
चेतन रहे जब स्वयं में तब कर्मबंधन पर विजय।।१५५।।

अन्वयार्थ :- [जीवः] जीव, [स्वभावनियतः] (द्रव्य-अपेक्षा से) स्वभाव नियत होने पर भी, [अनियतगुणपर्यायः अथ परसमयः] यदि अनियत गुणपर्यायवाला हो तो परसमय है। [यदि] यदि वह [स्वकं समयं कुरुते] (नियत गुणपर्याय से परिणमित होकर) स्वसमय को करता है तो [कर्मबन्धात्] कर्मबन्ध से [प्रभ्रस्यति] छूटता है।

टीका :- स्वसमय के ग्रहण और परसमय के त्यागपूर्वक कर्मक्षय होता है— ऐसे प्रतिपादन द्वारा यहाँ (इस गाथा में) 'जीवस्वभाव में नियत चारित्र, वह मोक्षमार्ग है' ऐसा दर्शाया है।

संसारी जीव, (द्रव्य-अपेक्षा से) ज्ञानदर्शन में अवस्थित होने के कारण स्वभाव में नियत (-निश्चलरूप से स्थित) होने पर भी, जब अनादि मोहनीय के उदय का अनुसरण करके परिणति करने के कारण [१]उपरक्त उपयोगवाला (-अशुद्ध उपयोगवाला) होता है, तब (स्वयं) भावों का विश्वरूपपना (-अनेकरूपपना) ग्रहण किया होन के कारण, उसे जो [२]अनियतगुणपर्यायपना होता है, वह परसमय अर्थात् परचारित्र है; वही (जीव) जब अनादि मोहनीय के उदय का अनुसरण करनेवाली परिणति करना छोड़कर अत्यन्त शुद्ध उपयोगवाला होता है, तब (स्वयं) भाव का एकरूपपना ग्रहण किया होने के कारण, उसे जो [३]नियतगुणपर्यायपना होता है, वह स्वसमय अर्थात् स्वचारित्र है।

अब, वास्तव में यदि किसी भी प्रकार सम्यग्ज्ञानज्योति प्रगट करके जीव परसमय को छोड़कर स्वसमय को ग्रहण करता है तो कर्मबन्ध से अवश्य छूटता है; इसलिए वास्तव में (ऐसा निश्चित होता है कि) जीवस्वभाव में नियत चारित्र, वह मोक्षमार्ग है॥१५५॥

श्रावण शुक्ल ५, बुधवार, दिनांक - १२-०८-१९६४,
गाथा- १५५, प्रवचन-१

१५५ गाथा चलती है। मोक्षमार्ग प्रपंच अर्थात् विस्तार। मोक्षमार्ग के विस्तार का इसमें वर्णन है। १५५ गाथा कल आ गयी है। अन्वयार्थ थोड़ा बाकी रहा है। यह टीका में से लेते हैं, देखो! इसकी टीका।

स्वसमय के ग्रहण और परसमय के त्यागपूर्वक कर्मक्षय होता है— देखो! इस गाथा में चारित्र को साक्षात् मोक्ष का कारण कहा गया है। तो कहते हैं कि **स्वसमय के**

१. उपरक्त=उपरागयुक्त। [किसी पदार्थ में होनेवाला। अन्य उपाधि के अनुरूप विकार (अर्थात् अन्य उपाधि जिसमें निमित्तभूत होती है, ऐसी औपाधिक विकृति-मलिनता-अशुद्धि), वह उपराग है।]
२. अनियत = अनिश्चित; अनेकरूप; विविध प्रकार के।
३. नियत=निश्चत; एकरूप, अमुक एक ही प्रकार के।

ग्रहण... अपना शुद्ध स्वभाव पवित्र ज्ञायकभाव का अनुभव, उसका अन्तरदर्शन–ज्ञानसहित स्वरूप की चारित्र की रमणता, वह स्वसमय का ग्रहण है। **और परसमय के त्याग...** विकल्प जो है शुभ–अशुभ जो राग है, वह परसमय है। वह परभाव है, विभाव है, उसके त्यागपूर्वक अर्थात् उसके अभावपूर्वक **कर्मक्षय होता है।** यह व्याख्या। स्वसमय का अनुभव और परसमय के त्यागपूर्वक, परसमय के अभावपूर्वक कर्मक्षय होता है।

ऐसे प्रतिपादन द्वारा... ऐसे कथन द्वारा **यहाँ (इस गाथा में) 'जीवस्वभाव में नियत चारित्र, वह मोक्षमार्ग है' ऐसा दर्शाया है।** देखो! यह नियत–अनियत की व्याख्या अभी कोई विपरीत करते हैं कि नियत का अर्थ यहाँ यह कहते हैं, क्रमबद्ध होना और अनियत का अर्थ यहाँ ऐसा करते हैं कि अक्रमबद्ध होना। ऐसा अर्थ अभी अखबार में (जैन पत्रिका में) बहुत बार आ गया है। तो ऐसा है नहीं, यह बात यहाँ है ही नहीं। समझ में आया?

नियत अर्थात् पर्याय का क्रमबद्ध होना और अनियत अर्थात् पर्याय का अक्रमबद्ध होना, यह बात यहाँ है ही नहीं। यहाँ तो जीव स्वभाव में नियत स्वाभाविक चारित्र, वह मोक्षमार्ग है। उसे यहाँ नियत कहा गया है। समझ में आया? आत्मा द्रव्य और गुण से शुद्ध है और पर्याय में अपने शुद्ध अनुभव का अरागी–वीतरागी परिणमन होना, उसका नाम नियत चारित्र कहा गया है। नियत का अर्थ शुद्ध पर्याय क्रमसर चलती है, ऐसा यहाँ अर्थ नहीं है। समझ में आया?

जीवस्वभाव में... अपना स्वभाव... आगे कहेंगे। ज्ञान और दर्शन द्रव्यस्वभाव जो कायम त्रिकाल एकरूप आत्मा में स्वभाव पड़ा है। ज्ञान–दर्शन। दर्शन शब्द से समकित नहीं। दर्शन शब्द से सामान्य और ज्ञान शब्द से विशेष चेतना, ऐसे अपने जीव स्वभाव में नियत चारित्र–स्थिरतारूप चारित्र, अविकारीरूप चारित्र, निश्चयस्वभावरूप परिणति, वह मोक्षमार्ग है। ऐसा यहाँ प्रतिपादन करना है। समझ में आया? **ऐसा दर्शाया है।**

संसारी जीव, (द्रव्य–अपेक्षा से)... वस्तु के स्वभाव की अपेक्षा से **ज्ञानदर्शन में अवस्थित होने के कारण...** भगवान आत्मा दर्शनचेतना और ज्ञानचेतनारूप द्रव्यस्वभाव,

वह शाश्वत् होने के कारण। समझ में आया? भगवान आत्मा में दर्शनचेतना, ज्ञानचेतना है। दर्शन अर्थात् सामान्य, ज्ञान अर्थात् विशेष। दोनों अपने निजस्वभाव-द्रव्यस्वभाव में कायम रहनेवाली चीज़ है। तो **(द्रव्य-अपेक्षा से) ज्ञानदर्शन में अवस्थित होने के कारण स्वभाव में नियत...** स्वभाव में नियत (**-निश्चलरूप से स्थित) होने पर भी,...** ऐसा स्वभाव तो निश्चलरूप है। आत्मा में जानना और देखना स्वभाव नियत-कायम निश्चलरूप है, तथापि.... ऐसा है न? **होने पर भी, जब अनादि मोहनीय के उदय का अनुसरण करके...** मोहनीय का उदय का अनुसरण करके **परिणति करने के कारण....** अब पहले यह बोल लिया। क्या कहा?

आत्मा है, उसका स्वभाव नियत है, ज्ञान और दर्शन अन्तर त्रिकाल। ऐसा होने पर भी जब अनादि काल से अनादि मोहनीय के उदय का अनुसरण—उदय को अनुसरकर। मोहनीय के उदय अनुसार करना (ही पड़े), ऐसा नहीं है। मोहनीय कर्म के उदय का अनुसरण करके। वर्तमान पर्याय ने कर्म के उदय का अनुसरण किया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं, स्वयं हुआ। समझ में आया?

भगवान आत्मा ज्ञान और दर्शनस्वभाव सम्पन्न नियत त्रिकाल होने पर भी, **जब अनादि मोहनीय के उदय का अनुसरण करके...** मोह तो एक जड़कर्म है, उसके उदय का अनुसरण। उसका पाक आया, उसका अनुसरण करनेवाली अपनी विकारी पर्याय। अनुसरण करनेवाली। वह उदय है, ऐसा अनुसरण करना पड़ता है—ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : स्वयं होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं अपने से होता है। कोई कहता है या नहीं? कि कर्म का जितना उदय आवे, उतना डिग्री टू डिग्री स्वयं को विकार करना पड़ता है। डिग्री टू डिग्री। समझ में आया? उतने प्रमाण में। जितने प्रमाण में शरीर में बुखार है, उतने प्रमाण में वह... क्या कहते हैं? थर्मामीटर में उतने प्रमाण में बुखार का माप आता है। इसी प्रकार जितना मोहनीय कर्म का उदय है, उतने प्रमाण में आत्मा में विकार का माप करना पड़ता है—ऐसा नहीं है। समझ में आया? बहुत गड़बड़ करते हैं, इस गाथा में। ओहो!

मुमुक्षु : ऐसी परिणति करके....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो आगे स्वयं कहेंगे अभी कि परिणति उदय का अनुसरण करती थी, वह उदय का अनुसरण करने का छोड़ दे तो स्वभाव में रमणता करे, वह स्वयं के कारण से है। पर के कारण से अनुसरण होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : करना पड़े, इसका अर्थ क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कि जितना विकार किया है, उतना निमित्त पड़ा है। उस निमित्त के पाक काल में उतना ही (विकार) करना पड़े। करना पड़े, स्वतन्त्ररूप से परिणमना पड़े पराधीनपने, ऐसा नहीं है। पर के कारण से करना पड़े, ऐसा नहीं है। तीन काल-तीन लोक में परद्रव्य स्वतन्त्र है। यह तो पहली गाथा आ गयी, ६२ गाथा। ६२ गाथा में आ गया है न? कि निश्चय से पर कारक की अपेक्षा बिना अपना आत्मा ही विकार परिणाम का कर्ता है, विकार परिणाम का कार्य है, विकार परिणाम का करण—साधन है, विकार परिणमन अपने में लिया और दिया है, विकार परिणाम अपने में किया है, विकार परिणाम अपने आधार से हुए हैं। पर निमित्त कारक की अपेक्षा छोड़कर, ऐसा पाठ है। अन्य कारक की अपेक्षा रखे बिना अपने स्वकारक से परिणम रहा है। समझ में आया? यह तो पहले ही ६२ गाथा में आ गया, अपने विस्तार से आ गया है।

यह बात यहाँ विशेष स्पष्ट करते हैं कि आत्मा का स्वभाव ज्ञान-दर्शन-सामान्य-विशेष चेतनास्वरूप अन्तर द्रव्यस्वरूपरूप स्वभावरूप से कायमी है। तथापि... छतां कहते हैं न? होने पर भी, सब हिन्दी नहीं आती, थोड़ी-थोड़ी गड़बड़ हो जाती है। जब अनादि मोहनीय कर्म के उदय से। देखो! यहाँ तक **अनादि मोहनीय के उदय...** इतने शब्द रहे पर, इतना रहा पर। अब **अनुसरकर...** यह अपनी पर्याय है। उदय का अनुसरण जितना अपनी योग्यता से किया, वह करके परिणति करने के लिये, विकारी परिणति—अवस्था करने के कारण, आत्मा की अपनी भूल के कारण। दूसरा कोई कारण नहीं। कर्म का उदय आया, इसलिए अनुसरण करना पड़ा, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

अपने ज्ञान-दर्शनस्वभाव का सावधानरूप से आश्रय नहीं करके, कर्म के उदय

का अनुसरण करनेवाली परिणति अपने में स्वतन्त्ररूप से पर के आधीन होती है। समझ में आया? आहाहा! **मोहनीय के उदय का अनुसरण करके परिणति...** अर्थात् अपनी पर्याय विकारी अवस्था करने के कारण। **उदय का अनुसरण करके परिणति करने के कारण...** यह लिया। इस कारण से **उपरक्त उपयोगवाला...** देखो! इस कारण से उपरक्त अर्थात्... है न नीचे (फुटनोट में)? उपरक्त अर्थात् उपरागयुक्त। नीचे नोट है। **किसी पदार्थ में होनेवाला अन्य उपाधि के अनुरूप...** अन्य उपाधि के अनुरूप। उपाधि निमित्त है और उसके अनुरूप विकार (है)। निमित्त अनुकूल है और अनुरूप नैमित्तिक पर्याय है। अपने उपादान में निमित्त अनुकूल है, उसके अनुरूप अपनी पर्याय में नैमित्तिक विकारी पर्याय का होना, उसका नाम अनुरूप कहा जाता है। उपाधि को अनुरूप अर्थात् कर्म का उदय मोह हो और उसके उदय अनुसार ज्ञानावरणीय का हीनपना हो, ऐसा नहीं है। इतना अनुरूप (लेना), अनुरूप का अर्थ इतना। जो कर्म है, वह निमित्त है, उसे अनुसरण करनेवाली परिणति को अनुरूप कहते हैं। निमित्त को अनुरूप। निमित्त के प्रकार से करनेवाली परिणति, ऐसा नहीं। करती है स्वयं से। परनतु जैसा निमित्त ज्ञानावरणीय उदय है तो ज्ञान की परिणति अपने कारण से अनुसरकर हीन होती है, उसका नाम अनुरूप कहा जाता है। ज्ञानावरणीय के उदय को अनुकूल निमित्त कहा जाता है। मोहनीय के उदय को निमित्त कहा जाता है। वह अनुकूल निमित्त है, उसे अनुसरण करनेवाली अपनी विकारी पर्याय नैमित्तिक, उसे अनुरूप कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! समझ में आता है या नहीं भाई? भाषा थोड़ी-थोड़ी हिन्दी समझ लेना।

उपरक्त उपयोगवाला... देखो! कारण क्या कहा? कारण क्या बतलाया? कि मोहनीय के उदय का अनुसरण करके परिणति करने के कारण **उपरक्त उपयोगवाला...** मलिन उपयोगवाला है। निमित्त के कारण मलिन उपयोगवाला है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, निमित्त के कारण से यहाँ कहा ही नहीं, यहाँ कहा ही नहीं। स्वयं ही, पोते अर्थात् स्वयं। हमारी गुजराती भाषा पोते है। स्वयं निमित्त का अनुसरण करके अपने कारण से। देखो न! **परिणति करने के कारण...** ऐसा कहा है।

मोहनीय के उदय का अनुसरण अपनी जीवपर्याय ने किया है और करके परिणति करने के कारण—विकारी अवस्था करने के कारण उपरक्त उपयोगवाला—मलिन उपयोगवाला (हुआ)। नीचे है देखो! **अन्य उपाधि जिसमें निमित्तभूत होती है, ऐसी औपाधिक विकृति...** औपाधिक विकृति अर्थात् मलिन परिणाम, **मलिनता-अशुद्धि...** उपराग कहा जाता है। उसे उपराग—मलिन उपयोग कहा जाता है। समझ में आया? यह तो सिद्धान्त है, कोई वार्ता नहीं। यह तो एक-एक शब्द में उसके सिद्धान्त तत्त्व जो नियम हैं वस्तु के, उन्हें प्रसिद्ध और जाहिर करते हैं। प्रसिद्ध जाहिर करते हैं। तेरा आत्मा, कर्म के निमित्त का अनुसरण तेरे कारण से तू करता है, तब तेरी विकारी परिणति के कारण से तुझमें मलिनता और अशुद्ध उपयोग होता है। तेरे कारण से अशुद्ध उपयोगरूप मलिन भाव होता है। धन्नालालजी! समझ में आया?

मुमुक्षु : गलती कहाँ की?

पूज्य गुरुदेवश्री : परसन्मुख लक्ष्य, रुचि की, यह गलती की है। अपने ज्ञान-दर्शनस्वभाव सन्मुख ढला नहीं, पर के प्रति ढला है, यह गलती की है। उसका अनुसरण किया न! अपना ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव को अनुसरण नहीं किया और निमित्त का अनुसरण किया, स्वयं के कारण से, पर के कारण से नहीं। समझ में आया?

(-अशुद्ध उपयोगवाला) होता है,... देखो! अशुद्ध उपयोग। फिर उसमें शुभ और अशुभ दोनों आ गये। शुभ और अशुभ। मिथ्यात्व, अशुभ, शुभ—सब अशुद्ध उपरक्त उपयोगवाला कहा गया है। शुभभाव हो, अशुभ हो या मिथ्यात्वभाव हो—सब अशुद्ध उपयोगवाले मलिन परिणाम कहने में आये हैं। आहाहा! समझ में आया? अशुद्धरूप होता है। **तब (स्वयं) भावों का विश्वरूपपना (-अनेकरूपपना) ग्रहण किया होने के कारण,...** ध्यान रखना, अनियत की व्याख्या होती है। कितने ही लोग ऐसा कहते हैं कि यह अनियत अर्थात् अक्रम। अनियत अर्थात् अक्रम (अर्थात्) विकार आगे-पीछे होता है। अनिश्चित विकार है कि इस समय यह होगा, ऐसा निश्चित नहीं, ऐसा यहाँ से कहते हैं, (ऐसा) यहाँ नहीं है। यह बात यहाँ है ही नहीं। क्रमसर पर्याय अब आयेगा, सर्वविशुद्ध अधिकार आयेगा न! प्रतिक्रमण अधिकार

चलता है, फिर सर्वविशुद्ध में आयेगा। शुद्ध हो या अशुद्ध हो, व्यवस्थित पर्याय की धारा चलती है। समझ में आया? सर्वविशुद्ध अधिकार जरा सूक्ष्म है, वह कल आयेगा। शुद्ध हो या अशुद्ध हो, समय-समय में परिणति क्रमसर व्यवस्थित चलती है। परन्तु उसका निर्णय करनेवाला जीव पर का कर्तृत्व छोड़कर, राग का कर्तृत्व छोड़कर, मैं ज्ञाता—ज्ञायक हूँ, ऐसे स्वभाव का अनुभव और दृष्टि की, तब क्रमसर होनेवाली पर्याय का ज्ञाता-दृष्टा रहा। समझ में आया? आहाहा! यह दूसरी बात है, यहाँ दूसरी बात है।

यहाँ अनियत गुणपर्याय को **विश्वरूपपना (-अनेकरूपपना) ग्रहण किया होने के कारण,...** यह लिया है, देखो! विश्व अर्थात् अनेकरूप, अनेकरूप पर्याय में अनेकरूप विकार होता है। **भावों का...** भाव की बात है। क्रमबद्ध है, वह काल की बात है। यह बाद में आयेगा, तब बात चलेगी। यहाँ तो भाव की बात है कि अपनी पर्याय में कर्म के निमित्त का अनुसरण करनेवाली पर्याय अनेकरूप विभावरूप होती है, ऐसा अनेकरूपपना ग्रहण किया होने के कारण, इस कारण से **अनियतगुणपर्यायपना होता है,...** इस कारण से भावों का अनियत गुणपर्यायपना होता है। समझ में आया?

फिर से। आत्मा में विकार अनेकरूप होता है, उसे अनियतपना कहा है। क्यों? कि विश्वरूप, भावों का विश्वरूपपना ग्रहण किया होने के कारण वह अनियत गुणपर्यायवाला होता है। अनियत गुणपर्याय इस कारण से है। दो कारण दिये। पहले यह कारण दिया कि मोहनीय का अनुसरण करके परिणति करने के कारण अशुद्ध उपयोग हुआ है। अब वह अशुद्ध उपयोग भावों का विश्वरूपपना है, उसमें अनेकपना है। विकार में अनेकपना है। विकार दशा एक (सरीखी) नहीं होती। स्वभाव में शुद्धि हो, उसमें एकपना है, और विकार है, उसमें अनेकपने विकार है। विविध प्रकार है। नीचे है, देखो! अनियत का नीचे अर्थ किया है न? **अनियत-अनिश्चित।** अनिश्चित का अर्थ आगे-पीछे, ऐसा यहाँ नहीं। **अनिश्चित, अनेकरूप, विविध प्रकार के।** विश्वरूप प्रकार के विभाव अनेकरूप हैं तो उसे अनियतपना कहने में आया है। ओहो! भाव अपेक्षा से। समझ में आया?

अनियतगुणपर्यायपना होता है,... क्योंकि अनेकपना ग्रहण किया होने के कारण।

कारण तो यह दिया है। अनेकपने का अर्थ ऐसा नहीं कि अनिश्चितपना, आगे-पीछे करने के कारण। यह बात यहाँ है ही नहीं। भाव की प्ररूपणा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य तो भिन्न गिना है न।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनियत गुणपर्याय। पर्याय में अनियत अर्थात् विकार है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य तो पहले कह दिया है। द्रव्य तो पहले कह दिया है। **(द्रव्य-अपेक्षा से) ज्ञानदर्शन में अवस्थित होने के कारण स्वभाव...** यह तो पहले कह दिया। जीव कैसा है ? कि द्रव्य अपेक्षा से ज्ञान-दर्शन नियत सदा है। बस एक। यह नियत है। नियत अर्थात् निश्चय है।

मुमुक्षु : गुणपर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : गुणपर्याय, गुण की जो विकारी पर्याय है, उस विकार को अनियत कहा है। पर्याय को। गुण की पर्याय, गुण की पर्याय। अनियत गुणपर्याय। अर्थात् गुण नहीं। गुण तो त्रिकाल एकरूप है। गुण की बात यहाँ है ही नहीं। यह तो पहले कह दिया है, देखो न! पहले कहा न ? **संसारी जीव...** तीसरी लाईन **(द्रव्य-अपेक्षा से) ज्ञानदर्शन में अवस्थित होने के कारण स्वभाव में नियत (-निश्चलरूप से स्थित) होने पर भी,...** यह द्रव्य-गुण दोनों आ गये, द्रव्य-गुण दोनों आ गये। द्रव्य जीव और उसमें ज्ञान-दर्शन निश्चलपने स्थित होने पर भी। यह दोनों आ गये। अब पर्याय की बात चलती है। **अनादि मोहनीय के उदय का अनुसरण करके परिणति...** अब पर्याय आयी। **करने के कारण उपरक्त उपयोगवाला (-अशुद्ध उपयोगवाला) होता है, तब...** अशुद्ध उपयोगवाला होता है, तब **(स्वयं) भावों का विश्वरूपपना (-अनेकरूपपना) ग्रहण किया होने के कारण,...** विभाव का अनेकपना स्वयं से ग्रहण किया होने के कारण **उसे जो अनियतगुणपर्याय...** गुण शब्द से यहाँ जो त्रिकाल गुण हैं, उनकी विकारपर्याय को। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, विकार तो होता ही नहीं। गुण तो ऐसा का ऐसा रहता है। गुण तो त्रिकाल (शुद्ध रहता है)। पर्याय विकारी होती है। गुण त्रिकाली है और पर्याय वर्तमानमात्र है। विकारी पर्याय होती है, गुण कभी विकारी नहीं होते। गुण का अंश जो पर्याय, वह विकारी होती है। गुण तो त्रिकाल सदृशरूप है, यह तो पहले कहा, 'द्रव्य अपेक्षा से सदा अवस्थित नियत निश्चलरूप स्थित।'

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न नहीं, यह तो पर्यायदृष्टि से भिन्न है, द्रव्यदृष्टि से अभिन्न है। विकार भी त्रिकाल द्रव्य-गुण-पर्याय से अभिन्न है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण विकारी होता ही नहीं। वह तो उपचार से कहने में आता है। गुण विकारी होता ही नहीं। गुण तो अनादि-अनन्त निगोद से लेकर सिद्ध (पर्यन्त), अनादि-अनन्त द्रव्य और गुण तो एकरूप सदृश शुद्ध त्रिकाल पड़े हैं। विकार, संसार, मोक्षमार्ग और मोक्ष, सब पर्याय में होता है। क्या कहा? संसार, वह विकारी पर्याय; मोक्षमार्ग अविकारी पर्याय की अपूर्णता; मोक्ष अविकारी पर्याय की पूर्णता—ये तीनों पर्याय में होते हैं। समझ में आया? धन्नालालजी! यह गाथा विवादी बराबर आयी है। वह अजितकुमार लिखता है, देखो! तुम कहते हो कि क्रमबद्ध है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, अनियत और नियत दोनों है। अनियत का अर्थ अक्रमबद्ध कहते हैं यहाँ से और नियत का अर्थ यहाँ क्रमबद्ध कहते हैं। तुम कुन्दकुन्दाचार्य का कहा हुआ मानते नहीं और तुम कहते हो कि कुन्दकुन्दाचार्य हमारे परमगुरु हैं। ऐसा कहते हैं।

भगवान! यहाँ ऐसा कहा ही नहीं, प्रभु! यहाँ अलग बात है। क्रमबद्ध की बात आयेगी, वहाँ बात चलेगी, यहाँ दूसरी बात है। यहाँ क्रम-अक्रम की बात है ही नहीं। यहाँ भाव की अपेक्षा है। काल की अपेक्षा से क्रमबद्ध है, यह जब सर्वविशुद्ध अधिकार आयेगा, उसमें आयेगा।

मुमुक्षु : यहाँ भाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव की (बात) है। अनेकरूप भाव को अनियत कहते हैं। विकाररूप को अनियत कहते हैं। ४७ नय चले हैं न? प्रवचनसार में ४७ नय चले हैं। वहाँ दो नय चले हैं—नियतनय, अनियतनय। वह यह अधिकार है। नियतनय वहाँ ऐसा नहीं, क्रमबद्ध नियतनय की बात वहाँ है ही नहीं। ४७ नय प्रवचनसार में अन्त में (परिशिष्ट में) चले हैं। अपने नय प्रज्ञापन का ग्रन्थ (प्रकाशित) हो गया है। वहाँ नियत का अर्थ, जैसे पानी का शीतल स्वभाव है, शीतल पर्याय, उसको नियत कहा जाता है। ठण्डी पर्याय को नियत अर्थात् उसका स्वभाव होने के कारण। और उष्ण पर्याय को अनियत कहते हैं, वह विकार है इसलिए (ऐसा कहते हैं)। वहाँ ४७ नय में यह दो लिये हैं, वह बात यहाँ ली है।

नियत अर्थात् होनेवाला है, वैसा ही होगा और अनियत अर्थात् फेरफार होगा, वह बात यहाँ ४७ नय में नहीं है। नियत-अनियत के अर्थ में, और यहाँ भी वह नहीं है। समझ में आया? डालचन्दजी! यह गड़बड़ करते हैं वे। अरे... भगवान! सुन तो सही प्रभु! यह मार्ग मुश्किल से हाथ आया, मनुष्यदेह मिला और सत्य क्या है, उसमें गड़बड़ी करने का प्रभु! अभी अवसर नहीं। यह तो सत्य मार्ग है। समझ में आया?

दो कारण रखे भाई! उसमें कहा न? **परिणति करने के कारण...** अपनी परिणति करने के कारण अशुद्ध पर्याय हुई है, अशुद्ध उपयोग हुआ है। और यहाँ भावों का अनेकरूपपना ग्रहण किया होने के कारण। कारण तो दिया। उसे **अनियतगुणपर्यायपना होता है...** अनियत गुण की पर्याय, विकारी पर्याय को अनियत कहा जाता है। विकारी भाव को अनियत कहा गया है। क्योंकि एकरूप शुद्धता नहीं है। अशुद्धता को ही यहाँ अनियत गुणपर्याय कहा गया है।

वह परसमय अर्थात् परचारित्र है;... लो! इसका नाम परसमय परचारित्र है। अनियत-गुण की विकारी पर्याय को परचारित्र और परसमय कहने में आया है। उस पर्याय को, पर्याय को। समझ में आया? आहाहा! **अनियतगुणपर्यायपना होता है, वह...** देखो! **होता है, वह...** जिसे यहाँ अशुद्ध उपयोग कहा था, उपरक्त उपयोगवाला कहा था, वही भावों का विश्वरूपपना है, वही अनियतगुणपर्यायपना होता है। तीनों

बात उसकी ही है। **वह परसमय...** उसे ही परसमय कहा गया है। उसको परचारित्र है, ऐसा कहा गया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही है।

अपने द्रव्य और गुण तो ज्ञान-दर्शन से... यहाँ चेतना से लेना है, भरपूर अनादि-अनन्त है और पर्याय में जब कर्म को अनुसरण करनेवाली परिणति विकार होने के कारण मलिनता को धारण करती है, उस मलिनता का विश्वरूपपना होने के कारण, अनेकपना होने के कारण उसे अनियतगुणपर्याय कहा गया है। उसे परचारित्र और परसमय कहने में आता है। इतने विशेषण लिये, देखो! ओहो! धन्नालालजी! समझ में आया?

भगवान आत्मा द्रव्य और गुण ज्ञान, द्रव्य जीव। उसका स्वभाव ज्ञान-दर्शन। पाठ में है या नहीं? **'जीवो सहावणियदो'।** पाठ में पहला शब्द है। (गाथा) १५५। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज की(गाथा) **'जीवो सहावणियदो'** बस। जीव स्वभाव नियत, ज्ञान-दर्शन त्रिकाल नियत। नियत का अर्थ त्रिकाल है, त्रिकाल है। **'अणियदगुणपज्जओध परसमओ'।** उसकी व्याख्या चलती है, दूसरे पद की। पहले गाथा की दूसरे पद की। **'अणियदगुणपज्जओध परसमओ'।** इतनी व्याख्या चलती है, अभी तो दो पद की व्याख्या चलती है। समझ में आया? **वह परसमय अर्थात् परचारित्र है;...** यह दुःख, संसार है। यह संसार है, दुःखदायक है, परिभ्रमण है, यही चौरासी लाख अवतार के बीज हैं।

अब सुलटी (बात), अब दूसरे पद की व्याख्या। **'जदि कुणदि सगं समयं'।** देखो! दूसरे पद की पहली,... क्या कहते हैं? लाईन, दूसरी लाईन का पहला पद है, देखो! जब **वही (जीव)...** देखो! **वही (जीव)। वही जीव जब...** निमित्त का अनुसरण करके अपनी पर्याय में विकारी पर्याय ग्रहण करता था तो अनियतपना, उसमें विश्वपना अर्थात् विकार का अनेकपना था, इस अपेक्षा से अनियतगुणपर्यायवाला कहा है, इस अपेक्षा से परसमय कहा है, इस अपेक्षा से परचारित्र कहा है, वही संसारस्वरूप है।

आत्मा का संसार वह है। आत्मा का संसार कर्म, शरीर, स्त्री-पुत्र, परिवार में नहीं रहता। समझ में आया? जीव का संसार अपनी पर्याय को छोड़कर बाहर नहीं रहता बराबर है? जीव का संसार अपनी पर्याय को छोड़कर बाहर नहीं रहता। अपनी विकारी परसमय की पर्याय, वही संसार है। निर्णय करो भाई निर्णय, यहाँ गड़बड़ (नहीं चलती), यहाँ तो बराबर छनावट होनी चाहिए। पण्डितजी! छनावट होनी चाहिए न। कुछ भी इसे भाव में ख्याल में आना चाहिए न, भाव में ख्याल आना चाहिए। ऐसे का ऐसा मान ले, क्या माना?

कहते हैं.... कितना सिद्ध किया! अमृतचन्द्राचार्य की टीका... आहाहा! इस भरतक्षेत्र में कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक और उनकी अमृतचन्द्राचार्य की टीका। समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय न भूतो न भविष्यति! अलौकिक!! अन्दर भगवान का हृदय था, उसे कुन्दकुन्दाचार्य ने खोलकर कहा कि यह बात है, यह बात है (ऐसा कहते हैं)। जैसे भैंस के थन में दूध होता है न? थन समझते हो? भैंस। जोरवाली बाई हो न? ऐसे निकाले न? उसी प्रकार गाथा में भाव भरे हैं, उन्हें तर्क करके खोल दिये हैं। भाव पड़े हैं उसमें, उसे तर्क करके निकाला है ऐसा कहा है, ऐसा कहा है, ऐसा कहा है। ब्रह्मचारीजी! समझ में आया? आहाहा! भगवान! तू तो आत्मा है न, प्रभु! तुझमें तो ज्ञान और दर्शन त्रिकाल भरे हैं। तुझमें कोई विकार नहीं पड़ा। और विकार करने का तुझे कोई द्रव्य-गुण भी नहीं है। द्रव्य-गुण विकार करने के नहीं। पर्याय में विकार करने की योग्यता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पर्याय में। पर्याय का धर्म है। परसन्मुख का अनुसरण करके विकार करना, परन्तु कोई गुण नहीं कि विकार करनेवाला हो। यदि गुण हो तो त्रिकाल विकार हो। समझ में आया? यह तो कहते हैं न? विभाविक शक्ति—गुण है न? लो भाई, इसका तर्क तो कहना पड़े या नहीं? विभाविक शक्ति—गुण है। परन्तु उस गुण का धर्म नहीं विकार होने का। यह गुण की पर्याय में निमित्ताधीन होकर करता है तो पर्याय का धर्म विकार होने का है। गुण और द्रव्य का है ही नहीं। समझ में आया? यह बताया है।

द्रव्य तो जीव है और ज्ञान-दर्शन गुण है, उसमें तो विकार है ही नहीं, विकार करने की योग्यता भी नहीं। परन्तु कर्म के उदय का अनुसरण करके अपनी पर्याय अपने में अशुद्धरूप से उत्पन्न करके मलिन पर्याय विश्वरूपपना धारण करती है। उस अनियतगुणपर्याय को स्वभाव कहने में आया है, परचारित्र कहने में आया, परसमय कहने में आया है। समझ में आया? बात तो यही है।

मुमुक्षु : उसकी भूल निकाली है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, तेरी भूल है। 'अपने को आप भूलकर हैरान हो गया।' क्या दूसरे ने तुझे भुलाया है? कोई परद्रव्य भुलाता है? ताकत है किसी की? ईश्वर दूसरे को करे, उसका जैन निषेध करे और कर्म मुझमें करा दे, तो अनन्त जड़ को ईश्वर ठहराया। वह तो एक चैतन्य को ईश्वर ठहराते हैं। जगत का कर्ता एक ईश्वर है। बाकी सब व्यर्थ है, उनके जैसी बात है। इसी प्रकार यहाँ, जड़ अजीव बेचारे को खबर नहीं कि हम जगत का तत्त्व हैं या नहीं। परमाणु को तो खबर भी नहीं कि हम जगत का तत्त्व हैं या नहीं, जगत के अजीव हैं या नहीं। जाननेवाला आत्मा है कि यह एक जड़ है, यह एक जड़ है। अब यह लगाते हैं कि भाई! कर्म का उदय आता है न, भाई क्या करें? हमारे कर्म करना पड़ता है, विकार करना पड़ता है। अरे.. प्रभु! ऐसा अन्याय कहाँ से लाया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म भ्रमा रहे, (आत्मा) खिलौना है। यह एक बार कहा था। कैसा? कोठिया, दरबारीलाल कोठिया। (संवत्) २००३ के वर्ष में यहाँ विद्वत परिषद भरी थी न। वह कहे, आत्मा कर्म का खिलौना है। लिखा था। फिर आये। कहा, यह क्या लिखा है? आत्मा जड़ का खिलौना है? खिलौना समझे? रमकडा। खिलौना तुम्हारी भाषा है। झूठ है। कर्म का खिलौना कौन कहता है? कर्म का खिलौना कर्म में रहा। क्या कर्म के कारण से आत्मा खिलौना है? बिल्कुल नहीं। भगवान आत्मा अपने स्वभाव का माहात्म्य छोड़कर निमित्त का अनुसरण करनेवाली विकारी परिणति करता है तो दु:खी होकर संसार में भटकता है। समझ में आया? आहाहा! पोपटभाई! कहाँ गये तुम्हारे हिम्मतभाई? बाद में आये होंगे।

अब ऐसा सुलटा, देखो! अब सुलटा आया। उल्टा भी तूने किया है, सुलटा भी तू कर सकता है, सब तेरे आधीन हैं। क्यों? कर्ता की व्याख्या—स्वतन्त्ररूप से करे, वह कर्ता। कर्ता की व्याख्या स्वतन्त्ररूप से विकार भी करे, वह कर्ता। और कर्म की व्याख्या–कर्ता का इष्ट वह कार्य। कार्य अर्थात् कर्म। अज्ञानी कर्ता होकर उसका इष्ट विकार है तो विकारपने करता है, वह कर्ता अज्ञानी का विकार इष्ट है। ज्ञानी कर्ता होकर निर्विकारी पर्याय इष्ट है, वह उसका कार्य है और उसका कर्ता आत्मा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दोनों द्रव्य स्वतन्त्र हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों स्वतन्त्र हैं, समय-समय में स्वतन्त्र हैं। यही चलता है न? स्वतन्त्र है, क्या कोई परतन्त्र है? किसी समय भी परतन्त्र है? तीन काल तीन लोक में नहीं। विकार करता है तो भी स्वतन्त्ररूप से और नाश करता है, वह भी स्वतन्त्ररूप से। तीन काल तीन लोक में किसी पदार्थ की परतन्त्रता है ही नहीं। समझ में आया?

मोक्षमार्गप्रकाशक में बहुत लिया है न? क्या करें? हमको कर्म बाधक है। अरे! जिनाज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भव हो? जिनाज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भव हो? तू तो महन्त रहना चाहता है, महन्त रहना चाहता है। विकार हुआ तो कर्म से हुआ। ऐसी अनीति नहीं सम्भव है, प्रभु! जिनाज्ञा समझे तो ऐसी अनीति नहीं हो सकती। स्वयं से विकार अपनी पर्याय में अपनी भूल से होता है। अब नाश करने में भी आत्मा स्वतन्त्र है। देखो!

वही जीव... वही जीव जब निमित्त का अनुसरण करता था तो विकार अपने में अपने कारण से होता था, यह **अनादि मोहनीय के उदय का अनुसरण करनेवाली परिणति करना छोड़कर...** देखो! निमित्त की ओर जो अनुसरण करता था, वह परिणति छोड़ दी और स्वभाव का अनुसरण किया। आहाहा! समझ में आया? परिणति को छोड़कर, इसका अर्थ छोड़कर, इसका अर्थ? अभी कहीं उत्पन्न हुई थी तो छोड़े? परन्तु यह तो कथन की पद्धति क्या करना? कथन की पद्धति ऐसी है कि वह परपरिणति उत्पन्न हुई है और अब छोड़ दूँ। वह तो उदय प्रगट हुआ, उसे क्या छोड़े? और प्रगट

नहीं हुआ, उसे क्या छोड़े? परन्तु कथन व्यवहारनय की भाषा की पद्धति ऐसी ही चलती है। भाषा जड़ है। चैतन्य भिन्न है उसे कहना यह... यह... है, वह तो जड़ द्वारा कहना है। दुश्मन द्वारा आत्मा की बात करनी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्पन्न नहीं हुई। छूटती है, ऐसा नहीं। वास्तव में तो परसन्मुख का लक्ष्य छोड़कर स्वभाव-सन्मुख की परिणति की, तो परसन्मुख की परिणति की उत्पत्ति नहीं हुई। उत्पन्न नहीं हुई, उसे छोड़ा, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? पूर्व की जो उदयरूप थी, वह तो दूसरे समय में उसके कारण से छूट जाती है, उसे छोड़ना नहीं पड़ता। परन्तु जब अपना आत्मा अन्दर ज्ञान-दर्शन का अनुसरण करता है कि मैं ज्ञान हूँ, दर्शन हूँ। त्रिकाल स्वभाव, हों! वह पर्याय ने अनुसरण किया तो पर का अनुसरण करने की पर्याय उत्पन्न नहीं हुई, उसे छोड़ा, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? भाई! आहाहा! देखो! क्या कहा है? देखो! वह कहे, शब्दार्थ करो। शब्दार्थ तो जैसा हो, वैसा आवे न! शब्द ऐसा आया, लो कि उदय का अनुसरण करनेवाली परिणति को छोड़कर। करो शब्दार्थ। परन्तु इसका अर्थ ही यह है कि जब अपना चिदानन्द आत्मा अपना स्वभाव ज्ञान-दर्शन का त्रिकाल का ध्येय करके परिणति प्रगट निर्मल की। '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' यह तो आया है या नहीं (समयसार) ११वीं गाथा? भगवान एक समय में पूर्ण शुद्ध... शुद्ध ज्ञायक है, उस ओर पर्याय का झुकाव '**भूदत्थमस्सिदो**' भूतार्थ आत्मा का आश्रय पर्याय ने लिया, तब पर का अनुसरण करनेवाली पर्याय उत्पन्न नहीं हुई, उसे 'छोड़कर', ऐसा व्यवहार से कहने में आया है। यह तो दूसरा कथन कहाँ से लावे? क्या उत्पन्न हुई थी? उसी समय में निर्मल पर्याय हुई है? क्या कहा? जिस समय में उदय परिणति है पर को अनुसरण करनेवाली, उसी समय में निर्मल परिणति हुई है? समझ में आया? परन्तु जो निमित्त का अनुसरण करके विकारी पर्याय विश्वरूप अनेकगुणपर्याय (पना) धारण करती थी, परचारित्र परसमय, वह परिणति दूसरे समय में अपनी ओर जब झुकाव किया तो शुद्ध परिणति उत्पन्न हुई तो उसने अशुद्ध परिणति छोड़ दी, ऐसा कहने में आया है। आहाहा!

मुमुक्षु : स्वयं....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उत्पन्न नहीं होती। छूटती भी नहीं यहाँ तो। यहाँ तो भाई! उत्पन्न नहीं होती, उसे छूटती है ऐसा कहने में आया है। पाठ बहुत सूक्ष्म गहरी बात है जरा।

अपना स्वभाव शुद्ध भगवान, उसे जहाँ ध्येय बनाया तो परिणति शुद्ध हुई, स्वसमय हुआ, स्वसमय हुआ, स्वचारित्र हुआ। उस समय परचारित्र और परसमय की पर्याय उत्पन्न नहीं हुई, उसे छोड़ी, ऐसा कहने में आया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पढ़े नहीं... इसका आशय है, अभिप्राय है, वस्तुस्थिति है, ऐसा कहना है या दूसरा कहना है? या वस्तुस्थिति दूसरी बदल जाती है? समझ में आया?

मुमुक्षु : छोड़ा ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ा, छोड़ा। छोड़े क्या? यह छोड़ा लो। यह लकड़ी छोड़ी। जैसे लकड़ी हाथ में थी (और छोड़ी) ऐसे छोड़ा? छोड़ा समझे? छोड्या कहते हैं न? क्या कहते हैं? छोड़ा, छोड़ दिया। भाई! कथन पद्धति की रीति तो जैसी भाषा में योग्यता हो, वैसे चलती है। आशय क्या है? माँगीलालजी! समझ में आया?

भगवान आत्मा... देखो न! '**जदि कुणदि सगं**' ऐसा शब्द है। जब '**कुणदि सगं**' स्वयं स्वतः करता है। पोते अर्थात् स्वयं, स्वयं। देखो! **वही (जीव) जब अनादि मोहनीय के उदय का अनुसरण करनेवाली परिणति करना छोड़कर...** देखो! उसे काललब्धि के सामने देखना है? काललब्धि। मेरी काललब्धि पकी है या नहीं? मुझे क्रमबद्ध में आनेवाली है या नहीं, ऐसा देखना है? समझ में आया? ऐसा नहीं। यह तो अपनी पर्याय पर का अनुसरण करती थी, अपना अनुसरण करने का प्रयत्न—पुरुषार्थ किया, उस काल में पाँचों समवाय आ गये और परपरिणति छूट गयी और निर्मल परिणति उत्पन्न हुई। पुरुषार्थ आया, स्वभाव आया, काल आया, कर्म का अभाव उसमें है, परिणति है। पाँचों एक समय में हो जाते हैं। समझ में आया?

वही (जीव) जब... ऐसा नहीं कहा कि जब उसकी काललब्धि पकी होगी, (तब छूटेगा)। वह तो एक जानने की चीज़ थी। क्रमबद्ध भी आता है, वह जानने की चीज़ थी। तब ज्ञायकभाव की ओर नजर की और सम्यक् परिणति उत्पन्न हुई उस समय में...। क्या कहा? जब भगवान आत्मा (स्वयं) अनादि काल की पर का अनुसरण करती परिणति को छोड़ देता है, अर्थात् स्वभाव सन्मुख परिणति करता है, तब **अत्यन्त शुद्ध उपयोगवाला होता है,...** देखो! अत्यन्त शुद्ध उपयोगवाला होता है। स्वचारित्र कहना है न, स्वसमय कहना है न, मोक्षमार्ग कहना है न, मोक्ष का कारण कहना है न? आहाहा!

मुमुक्षु : स्वभाव के सद्भाव में विभाव का आचरण होता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्पन्न ही नहीं होता। समझ में आया?

वह परसमय अर्थात् परचारित्र है; वही (जीव) जब अनादि मोहनीय के उदय का अनुसरण करनेवाली... कौन? अपनी परिणति। कर्म का उदय यदि अनुसरण करावे, तब तो कर्म का उदय सदा ही है, तो परिणति हुआ ही करेगी। तो अपने को मुक्ति का उपाय करने का तो अवकाश मिलेगा ही नहीं। निगोद में भी ऐसा नहीं है। निगोद में भी भगवान तो कहते हैं कि भावकलंक पहुरा। अपने प्रचुर भाव कलंक से वहाँ टिका है, नहीं कि कर्म के कारण से निगोद में टिका है। ऐसा कभी नहीं है। अपने षट्कारक की मलिन पर्याय करता हुआ वहाँ टिका है। कर्म तो निमित्तमात्र है। क्या कर्म के कारण आत्मा निगोद में रहता है? वह तो जड़ है। जड़ से अपने में क्या होता है? समझ में आया?

कहते हैं कि, **वही (जीव)...** वही अर्थात् जो अनुसरण करता था, वही जीव। भाई! ऐसा लिया न? जो पर का अनुसरण करनेवाली परिणतिवाला जीव, वही अन्दर में अपना अनुसरण करता है कि ओहो! मैं ज्ञायक चैतन्य हूँ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वही छूटकर शुद्ध परिणति के षट्कारक हुए। स्वयं के कारण से हुए हैं। समझ में आया? कहो, समझ में आया? नहीं, कर्म से अपने में कहा है। ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुकता है। कर्म को घातिकर्म कहा है, घाति कहा है। अरे...

भगवान! घनघाति। घनघाति कहा हो तो क्या है? उसमें है कि अपने आत्मा को घनघाति नुकसान करते हैं? कौन कहता है, नुकसान करते हैं? कोई नहीं करता। घनघाति रहे घनघाति में और अघाति रहे अघाति में। उनका अस्तित्व उनमें, अपनी पर्याय में अस्तित्व कहाँ से आया? अपनी पर्याय में उनका अस्तित्व तो किंचित् भी आता नहीं। निमित्त का अनुसरण करके विकारी का अस्तित्व होता है, वह तो अपना दोष—भूल है और वही उसकी भूल को टालने की सामर्थ्य स्वयं से करता है। समझ में आया? पर से नहीं।

वही (जीव) जब अनादि मोहनीय के उदय का अनुसरण करनेवाली परिणति करना छोड़कर अत्यन्त शुद्ध उपयोगवाला होता है,... यहाँ चारित्र साक्षात् मोक्ष का कारण कहना है न? मोक्ष का साक्षात् कारण कहना है न! अत्यन्त शुद्ध उपयोगवाला होता है। **तब (स्वयं) भाव का...** देखो! यहाँ नियत लेना है न! **(स्वयं) भाव का एकरूपपना ग्रहण किया होने के कारण,...** देखो! उसमें ऐसा कहा था कि **परिणति करने के कारण उपरक्त उपयोगवाला...** ऐसा कहा था। यहाँ **अनुसरण करनेवाली परिणति करना छोड़कर अत्यन्त शुद्ध उपयोगवाला होता है, तब (स्वयं) भाव का...** उसमें कहा था भावों का विश्वरूपपना ग्रहण किया था—अनादि अज्ञान में। जब स्वयं अपने स्वभाव सन्मुख हुआ, **तब (स्वयं) भाव का एकरूपपना ग्रहण किया...** अपना स्वभाव शुद्ध सन्मुख का आश्रय करके शुद्ध की पर्याय का एकरूपपना स्वयं से ग्रहण किया होने के कारण **उसे जो नियतगुणपर्यायपना होता है,...** लो, देखो! नियतगुण, नीचे (फुटनोट में) है न?'निश्चित, एकरूप' एकरूप को निश्चित कहते हैं, अनेकरूप को अनिश्चित कहते हैं। अक्रमबद्ध को अनिश्चित कहते हैं और क्रमबद्ध को निश्चित कहते हैं, यह बात यहाँ है ही नहीं। समझ में आया? **उसे जो नियतगुणपर्यायपना होता है,...** देखो! नियतगुणपर्याय। पर्याय नियत, हों! गुण तो गुण है ही। नियत गुण की पर्याय स्वभावरूप परिणति करती है, अपने शुद्ध स्वभाव का अनुसरण करके। निमित्त का अनुसरण करके संसारपर्याय परचारित्र होता था, स्वभाव का अनुसरण करता है, वह मोक्ष के मार्गरूप चारित्रपर्याय है।

नियतगुणपर्यायपना होता है,... देखो! तो उसमें यह लोग क्या कहते हैं?

स्वभाव की शुद्धि की पर्याय तो क्रमसर है, वह नियत है और अशुद्ध है, वह अक्रमबद्ध है। दोनों हैं। दो मानो तो यथार्थ माना कहा जाये। ऐसी बात है ही नहीं, यहाँ यह बात है ही नहीं। समझ में आया? यह तो और सर्वविशुद्ध (ज्ञान अधिकार) थोड़े समय में आयेगा। **उसे जो नियतगुणपर्यायपना होता है, वह स्वसमय अर्थात् स्वचारित्र है।** लो! वह साक्षात् मोक्ष का कारण है। पहले दर्शन-ज्ञान हुए हैं, स्वभाव का अनुसरण करके श्रद्धा-ज्ञान हुए हैं। स्वभाव का उग्र अनुसरण करके स्वचारित्र हुआ, स्वसमय हुआ, वह साक्षात् मोक्ष का कारण है।

मुमुक्षु : स्वसमय की परिभाषा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परिभाषा हो गयी, सब हो गयी। स्वसमय-परसमय, स्वचारित्र-परचारित्र, अनियतगुणपर्याय-नियतगुणपर्याय। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ। साथ में है, अभेद हुई है। निश्चय साक्षात् चारित्र मोक्ष का कारण है। यहाँ तो चारित्र को मोक्ष का कारण कहा है। दर्शन-ज्ञान सम्यग्दर्शन मोक्ष का कारण है, परन्तु वह मोक्षमार्ग का एक अंश है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान चौथे में एक अंश है। चारित्र की अभिन्नता हुए बिना उसे अभेद पूर्ण मोक्षमार्ग नहीं कहा जाता। चौथे गुणस्थान में मोक्षमार्ग कहलाता है परन्तु उपचार से। उपचार से, इसका अर्थ सम्यग्दर्शन-ज्ञान उपचार नहीं है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान उपचार नहीं है परन्तु मोक्षमार्ग उपचार, क्योंकि चारित्र का भाग सम्मिलित नहीं है, इस अपेक्षा से। तीन बोल मिल जाये, तब तो अनुपचार वास्तविक मोक्षमार्ग हो गया। परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुए तो उपचार से मोक्षमार्ग हुआ। उपचार से, इसका अर्थ अभी तो सब ऐसा करते हैं कि चौथे गुणस्थानवाला सम्यग्दर्शन भी व्यवहार सम्यग्दर्शन है। बड़ी चर्चा आयी है अभी रतनचन्दजी की आयी है, कल भी बड़ी आयी है। कोई क्षुल्लक आदिसागर हैं। अरे... भगवान! मोक्षशास्त्र में तत्त्वार्थ श्रद्धान व्यवहार (कहा है)। व्यवहार विकल्प तो पराश्रित भाव है। व्यवहारशास्त्र, वह आस्रवतत्त्व का शास्त्र है? तत्त्वार्थ श्रद्धान कहो, आत्मज्ञान कहो, दोनों एक ही बात है। दूसरी बात नहीं। ज्ञानप्रधान से तत्त्वार्थ श्रद्धान कहा और दृष्टिप्रधान से '**भूदत्थमस्सिदो**

खलु' त्रिकाल द्रव्य का आश्रय करे तो सम्यग्दर्शन होता है, वही तत्त्वार्थ श्रद्धान है। वह अपनी निर्मल निर्विकारी पर्याय है, मोक्षमार्ग है, परन्तु पूर्ण चारित्र हुआ नहीं, इसलिए उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा गया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह चारित्र का भाग आया नहीं न! तीन कषाय का अभाव होकर जो चारित्र होना चाहिए, वह नहीं। बाकी स्वरूपाचरण भी निश्चय है, सम्यग्दर्शन भी निश्चय है, सम्यग्ज्ञान भी निश्चय है। तीनों निश्चय है। तो यह क्या लगाते हैं? देखो भाई! तत्त्वार्थ श्रद्धान व्यवहार है तो वहाँ निश्चयचारित्र कहाँ से आयेगा? इसलिए वहाँ पंच महाव्रत आदि व्यवहारचारित्र से निश्चयचारित्र आगे का आयेगा। व्यवहारचारित्र से (आयेगा)। ऐसा नहीं, भगवान! ऐसा कहाँ से लाया? व्यवहार तो विकल्प है, राग है। क्या राग से आगे जाकर निर्विकल्प होगा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा होता ही नहीं। निमित्त के कथन में आवे। क्यों, समझ में आया?

अब, वास्तव में यदि किसी भी प्रकार... किसी भी प्रकार से अर्थात् स्व का पुरुषार्थ करके, किसी भी प्रकार से अपना स्व का पुरुषार्थ करके **सम्यग्ज्ञानज्योति प्रगट करके.... अब, वास्तव में यदि किसी भी प्रकार सम्यग्ज्ञानज्योति प्रगट करके...** सम्यग्ज्ञान बिना चारित्र कहाँ से आवे? यह सिद्ध करते हैं। यहाँ तो चारित्र साक्षात् होता है। **किसी भी प्रकार सम्यग्ज्ञानज्योति प्रगट करके...** देखो, आया भाई! वह अपने आ गया न धवल में? कि श्रुतज्ञान प्रधान है चारित्र से। ऐसा धवल में आया है। भावश्रुतज्ञान को प्रधान क्यों कहा? कि भावश्रुतज्ञान बिना चारित्र नहीं आता। इस अपेक्षा से चारित्र से भावश्रुतज्ञान को प्रधान कहते हैं। यहाँ मोक्ष में अकेले भावश्रुत से मोक्ष नहीं होता, चारित्र से होता है तो यहाँ चारित्र की प्रधानता ली है। समझ में आया? यह धवल में आया है। आया था न भाई? भावश्रुतज्ञान की प्रधानता किसलिए ली? वीरसेनस्वामी ने ऐसा प्रश्न किया है कि भावश्रुतज्ञान को क्यों प्रधान कहा है? भाई! चारित्र, भावश्रुतज्ञान

बिना नहीं होता। अज्ञान हो और चारित्र आ जाये, ऐसा है? पहले भावश्रुतज्ञान सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है, तब चारित्र होता है। तो वहाँ श्रुतज्ञान की प्रधानता ली है। यहाँ कहते हैं कि सम्यग्ज्ञान होने पर भी चारित्र—स्वरूप की रमणता जब तक न हो, तब तक मुक्ति नहीं होती। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को भी स्वरूप में रमणता करने की भावना होती है चारित्र में। मैं कब स्वरूप में पूर्ण (स्थिर होऊँ)। चारित्र कोई बाहर से नहीं आता। अपने में स्वरूप की सावधानी से लीनता करते-करते स्वभाव सन्मुख लीनता हो जाये, उसका नाम चारित्र है।

कहते हैं, **वास्तव में यदि किसी भी प्रकार सम्यग्ज्ञानज्योति प्रगट करके...** देखो! प्रगट करके, हों! स्वयं से। दर्शनमोह का उदय मन्द हुआ, इसलिए सम्यग्ज्ञान हुआ? नहीं, नहीं, नहीं। ऐसा कहते हैं। किसी भी प्रकार से अपना स्वभाव स्वसंवेदन चिदानन्द भगवान ज्ञानमूर्ति है, उसका वेदन करके **सम्यग्ज्ञानज्योति प्रगट करके जीव परसमय को छोड़कर...** रागादि परिणति को छोड़कर **स्वसमय को ग्रहण करता है...** अर्थात् स्वसमय को ग्रहण करता है, तब परसमय छूट जाता है। चारित्र लेना है न? स्वरूप में रमणता, इतनी रमणता जमे कि सप्तम गुणस्थान योग्य हो जाये। पंच महाव्रत का शुभयोग का प्रमाद भी नहीं रहा। इस प्रकार जम जाये कि साक्षात् मोक्ष का कारण हो। समझ में आया? परन्तु इससे पहले सम्यग्ज्ञानज्योति प्रगट होनी चाहिए। सम्यग्ज्ञान बिना यह चारित्र नहीं होता।

सम्यग्ज्ञानज्योति प्रगट करके जीव परसमय को छोड़कर... विकारी, परसमय अर्थात् विकारी पर्याय। परसमय अर्थात् शुभाशुभ दोनों विकारी पर्याय। वापस परसमय अर्थात् अशुभ परिणाम और शुभ परिणाम स्वसमय, ऐसा नहीं है। दोनों परसमय है, भगवान! निर्णय तो कर। यह शुभ-अशुभ दोनों विकल्प हैं, अशुद्ध भाव हैं। यहाँ तो शुद्ध परिणति में अशुद्ध भाव का निषेध है। कहते हैं कि **स्वसमय को ग्रहण करता है तो कर्मबन्ध से अवश्य छूटता है;...** देखो! भाई! भाई ने लिया है न? टोडरमलजी (ने) जो वीतराग ने कहा हुआ दर्शन, ज्ञान, चारित्र का मार्ग ले, कहा ऐसा करे तो होगा, होगा और होगा ही। देखो! यहाँ से बहुत बात ली है। टोडरमलजी, मोक्षमार्गप्रकाशक में सब

शास्त्र के आधार से लिया है। अपने घर की कोई बात ली नहीं, हों! उसे अब अप्रमाणित ठहराते हैं। टोडरमलजी को अप्रमाणित ठहराते हैं। स्वतन्त्र जीव है। टोडरमलजी ने घर का नहीं कहा। शास्त्र का मंथन करके अन्तर में जो आया, उसकी तुलना करके लिया है। देखो यह, **अवश्य छूटता है...** वहाँ भी लिया है कि भगवान ने कहा वैसे दर्शन, ज्ञान, चारित्र का मार्ग ले तो अवश्य मिथ्यात्व का नाश होकर मोक्षमार्ग प्रगट होता है, ऐसा निर्णय करना। **इसलिए वास्तव में (ऐसा निश्चित होता है कि) जीवस्वभाव में नियत चारित्र,...** जीवस्वभाव वह ज्ञान-दर्शन, उसमें निश्चय शुद्ध परिणति **वह मोक्षमार्ग है।** वह मोक्षमार्ग है। ऐसा भगवान ने कहा है। कहो, समझ में आया? लो, यह गाथा पूरी हुई।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ६, गुरुवार, दिनांक - १३-०८-१९६४, गाथा-१५६ से १५८, प्रवचन-२

पंचास्तिकाय, मोक्षमार्ग विस्तार का वर्णन चलता है। उसमें १५५ गाथा हो गयी। जीवस्वभाव में नियत चारित्र, वह मोक्षमार्ग है, ऐसा कथन अन्तिम पंक्ति में आ गया। अपना जीवस्वभाव जो ज्ञान, दर्शन त्रिकाल स्वभाव है, उसमें एकाग्रता होना, वही स्वसमयरूप स्वचारित्र है और वही मोक्षमार्ग है। पुण्य का विकल्प उठता है, वह मोक्षमार्ग नहीं। समझ में आया?

वह अस्तित्व लिया है न? अस्तित्व नहीं अन्दर उत्पाद-व्यय-ध्रुव? उसका अर्थ टीका में जरा ऐसा किया है थोड़ा। ऐसा कि जैसे दो गुण मुख्य लिये हैं अन्दर ज्ञान और दर्शन, उसी प्रकार चारित्र भी अस्तित्व(रूप से) है और उसका उत्पाद-व्यय निर्मल परिणमन है। ऐसा लिया है। अन्दर अस्तित्व आया न उत्पाद-व्यय-ध्रुव का अस्तित्व। इसलिए चारित्रगुण भी अन्दर अस्तित्वरूप से है। आत्मा में ज्ञान, दर्शन जैसे स्वभाव त्रिकाल एकरूप है, वैसे चारित्रगुण भी तो त्रिकाल है अन्दर। यह जरा अर्थ किया है। मैंने पढ़ा था, उसमें अर्थ किया है। जयसेनाचार्य की टीका में। तीसरा गुण भी लेना, ऐसा। दो गुण हैं। समझ में आया?

आत्मा वस्तु है, उसमें ज्ञान और दर्शन। सामान्य दर्शन उपयोग शक्तिरूप, हों! स्वभाव गुण। और विशेष ज्ञान उपयोग, यह दो जीव के स्वभाव हैं और साथ में चारित्र भी उसमें अनादि स्वभाव है। इन तीनों में एकाकार होकर स्वसमय स्वभाव शुद्धता का प्रगट करना, उसे स्वचारित्र और स्वसमय मोक्षमार्ग कहा जाता है। कहो, समझ में आया या नहीं? यह बात अन्त में आ गयी।

गाथा - १५६

जो परदव्वम्हि सुहं असुहं रागेण कुणदि जदि भावं।
सो सगचरित्तभट्ठो परचरियचरो हवदि जीवो।।१५६।।

जो राग से पर द्रव्य में करते शुभाशुभ भाव हैं।
परचरित में लवलीन वे स्व-चरित्र से परिभ्रष्ट है।।१५६।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो, [रागेण] राग से (-रंजित अर्थात् मलिन उपयोग से), [परद्रव्ये] परद्रव्य में [शुभ अशुभम् भावम्] शुभ या अशुभभाव [यदि करोति] करता है, [सः जीवः] वह जीव [स्वकचरित्रभ्रष्टः] स्वचारित्रभ्रष्ट ऐसा [परचरितचरः भवति] परचारित्र का आचरण करनेवाला है।

टीका :- यह, परचारित्र में प्रवर्तन करनेवाले के स्वरूप का कथन है।

जो (जीव) वास्तव में मोहनीय के उदय का अनुसरण करनेवाली परिणति के वश (अर्थात् मोहनीय के उदय का अनुसरण करके परिणमित होने के कारण) रंजित-उपयोगवाला (उपरक्त-उपयोगवाला) वर्तता हुआ, परद्रव्य में शुभ या अशुभभाव को धारण करता है, वह (जीव) स्वचारित्र से भ्रष्ट ऐसा परचारित्र का आचरण करनेवाला कहा जाता है; क्योंकि वास्तव में स्वद्रव्य में शुद्ध-उपयोगरूप परिणति, वह स्वचारित्र है और परद्रव्य में [1]सोपराग-उपयोगरूप परिणति, वह परचारित्र है॥१५६॥

गाथा - १५६ पर प्रवचन

अब १५६। यह, परचारित्र में प्रवर्तन करनेवाले के स्वरूप का कथन है।

जो परदव्वम्हि सुहं असुहं रागेण कुणदि जदि भावं।
सो सगचरित्तभट्ठो परचरियचरो हवदि जीवो।।१५६।।

१. सोपराग=उपरागयुक्त; उपरक्त; मलिन; विकारी; अशुद्ध। [उपयोग में होनेवाला, कर्मोदयरूप उपाधि के अनुरूप विकार (अर्थात् कर्मोदयरूप उपाधि जिसमें निमित्तभूत होती है, ऐसी औपाधिक विकृति) वह उपराग है।]

टीका, इसकी टीका। **यह, परचारित्र में प्रवर्तन करनेवाले के स्वरूप का कथन है।** देखो! परचारित्र किसे कहते हैं? **जो (जीव) वास्तव...** वास्तव में **मोहनीय के उदय का अनुसरण करनेवाली परिणति के वश...** भगवान आत्मा, अपना ज्ञान, दर्शन और आनन्दादि, चारित्र जो त्रिकाली स्वभाव है, उसका आश्रय छोड़कर, उसका अवलम्बन छोड़कर वास्तव में जो मोहनीयकर्म का जो उदय है, उसका अनुसरण करनेवाली परिणति के कारण से। उसे अनुसरण करनेवाली परिणतिवशात्। वश का अर्थ कारण कोष्ठक में लिखा है। मोहनीय उदय का अनुसरण करके परिणत होने के कारण। देखो! यहाँ शुभ और अशुभभाव परचारित्र है, बन्धमार्ग है; मोक्षमार्ग नहीं—ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य सिद्ध करते हैं। अभी तो बहुत गड़बड़ हो गयी है। देखो! गड़बड़ निकलती जाती है।

यहाँ १५६ में कहेंगे। देखो यहाँ। **रंजित-उपयोगवाला (उपरक्त-उपयोगवाला)...** मलिन उपयोगवाला—मलिन उपयोगवाला वर्तता हुआ। कौन? आत्मा। अपनी पर्याय में शुभ-अशुभभावरूप, मलिन पर्यायरूप उपयोग में वर्तता हुआ। **परद्रव्य में शुभ या अशुभभाव को धारण करता है,...** परद्रव्य के लक्ष्य से परद्रव्य (में), ऐसा कहा गया है। परद्रव्य में देव-गुरु-शास्त्र, दया, दान के (विकल्प), परद्रव्य पर लक्ष्य करके यह दया आदि भाव (होता है, वह), ऐसे परद्रव्य में शुभ और अशुभभाव को धारण करता है। अपनी पर्याय में कर्म का अनुसरण करके अपने पुरुषार्थ से स्वभाव को छोड़कर शुभ-अशुभभाव को धारण करता है, **वह (जीव) स्वचारित्र से भ्रष्ट...** लो, समझ में आया? पाठ में है न? देखो! '**सगचरित्तभट्ठो**' तीसरा पद है। समझ में आया? १५७ गाथा में तो... कहा न अभी? जयसेनाचार्य ने टीका में लिया है कि '**वृद्धमतसंवादेन**' '**वृद्धमत**' जो बड़ों का, सर्वज्ञों, तीर्थंकरों, मुनि इत्यादि महामुनि हो गये, वृद्ध-वृद्ध—बड़े, वे तो पुण्य-पाप को आस्रव और बन्ध कहते हैं, ऐसी बड़ों की पद्धति है। डालचन्दजी!

मुमुक्षु : यह एकान्त है?

पूज्य गुरुदेवश्री : एकान्त है। आहाहा! १५७ में है। जयसेनाचार्य का अभी कहा

था न? '**वृद्धमतसंवादेन**' वृद्धों का। बड़े, सर्वज्ञ, तीर्थंकर, परमात्मा, मुनि परम्परा के वीतरागी सन्त ऐसा कहते हैं कि जो भाव परद्रव्य की ओर का लक्ष्य करके शुभ और अशुभभाव होता है, इतना स्वद्रव्य का लक्ष्य छूटकर (होता है)। स्वद्रव्य का आश्रय हो तो शुभ-अशुभभाव उत्पन्न होते ही नहीं। अपना स्वभाव तो शुद्ध चैतन्य ज्ञायक आनन्द निर्मलानन्द है। उसके लक्ष्य से, आश्रय से, ध्येय से शुभभाव भी उत्पन्न नहीं होते। परद्रव्य का आश्रय, लक्ष्य करने से जो शुभ और अशुभभाव को जो जीव धारण करता है, टिकाता है, वह स्वचारित्र से भ्रष्ट है। निज स्वरूप की लीनता... उसमें भी कहीं कहा है, इसमें भी कहीं (आता है), शुद्ध गुणपर्याय परिणति, इसमें ही होगा। आता है न? शुद्ध गुणपर्याय की परिणति। अर्थात् यह है नहीं, परन्तु पर्याय की परिणति छोड़ता है। समझे न? जैसे आता है न सब शास्त्र में? वैसे यह आता है।

देखो, १५६ में। '**यः कर्ता**' है न? **परचरित्त भट्ठो**'' '**यः कर्ता शुद्धगुणपर्यायपरिणत -निजशुद्धात्मद्रव्यात्परिभ्रष्टो**' यह परिभ्रष्ट, परन्तु यह तो शुद्धगुणपर्यायपरिणत निज शुद्धात्मा, ऐसा लिया है न? तो परिणत का अर्थ परिणत हुआ है, ऐसा नहीं। पाठ ऐसा लिया न? देखो! **शुद्धगुणपर्यायपरिणत-निजशुद्धात्मद्रव्यात्परिभ्रष्टो भूत्वा**' तो कुछ शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय की परिणति है और भ्रष्ट हुआ है, ऐसा नहीं। जैसे बहुत जगह आता है न? अवस्था छोड़कर, अवस्था छोड़कर, यह। ऐसे शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय परिणति ऐसा निज शुद्धात्मा का स्वभाव है। स्वभाव ऐसा होना चाहिए, वस्तु का स्वभाव ऐसा होना चाहिए। '**द्रव्यात्परिभ्रष्टो भूत्वा**' तो कुछ शुद्धात्मपरिणति हुई है, और परिभ्रष्ट है, ऐसा नहीं। हुई नहीं, उसे परिभ्रष्ट कहने में आया है। समझ में आया? यह तो (कर्ताकर्म अधिकार में) आया था न? भाई! नहीं? उदासीन अवस्था को छोड़कर। ६९-७० (गाथा)। यह बहुत जगह आता है। अपनी उदासीन अवस्था को (छोड़कर)। इसका अर्थ उदासीन अवस्था हुई है, उसे छोड़कर (ऐसा नहीं)। ऐसा तो शक्ति में प्रगट करने की योग्यता तो निर्मल ही है। श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति अरागी परिणति होने की उसकी योग्यता है। समझ में आया? देखो! दोनों गाथा में कुछ न कुछ जयसेनाचार्य नया-नया थोड़ा डालते हैं। १५६ में शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय परिणति डाली। १५७ में '**वृद्धमतसंवादेन**' डाला।

कहते हैं कि स्वचारित्र से भ्रष्ट अर्थात् अपना द्रव्य ज्ञान, दर्शन और आनन्द, उसका गुण भी आनन्द, शान्त, उसकी परिणति निर्मल निर्विकारी अरागी-वीतरागी परिणति होना, वही उसकी परिणति है। परन्तु ऐसी परिणति प्रगट नहीं करके, ऐसी परिणति से भ्रष्ट हुआ। है और भ्रष्ट हुआ है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : हल्का भाव हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भ्रष्ट, वह हल्का भाव, ऐसा नहीं। यह तो परिणति है और भ्रष्ट हुआ है, ऐसा नहीं। ऐसा। अभी पकड़ में नहीं आया। यहाँ बहुत ध्यान रखना पड़े, ऐसा है। हो गयी है और भ्रष्ट हुआ है, ऐसा नहीं। परन्तु पाठ में ऐसा लिया है कि अपने द्रव्य, गुण, शुद्ध परिणति द्रव्य-गुण-पर्याय है, उससे परिभ्रष्ट है। इसका अर्थ अपना स्वभाव शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान जो प्रगट किया, उस प्रमाण अपने में अरागी परिणति, वीतरागी पर्याय परिणति होना चाहिए, वैसी परिणति से भ्रष्ट हुआ अर्थात् उत्पन्न की नहीं और शुभ-अशुभभाव धारण किये। धन्नालालजी ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यहाँ तो सम्यग्दृष्टि हो तो भी जो कुछ जितने शुभाशुभ परिणाम हैं, वह स्वचारित्र से भ्रष्ट ही है। आगे अभी अधिक आयेगा। स्वचारित्र, परचारित्र यहाँ से लिया तो ठेठ आगे तक लेंगे। इतना सूक्ष्म परसमय ज्ञानी को भी रहता है और उसे यदि धर्म मान ले तो स्थूल परसमय रहता है। यदि धर्म मान ले तो (स्थूल) परसमय मिथ्यादृष्टि हो जाता है। स्थूल मिथ्यादृष्टि हो जाता है। सूक्ष्म रहे और इतना माने कि राग है, तो सूक्ष्म परसमय राग है इतना जाने। चारित्रदोष है, इतना जाने। परन्तु यदि उसे धर्म मान ले तो स्थूल मिथ्यादृष्टि हो जाता है। समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि स्वचारित्र से भ्रष्ट। पाठ ऐसा है न ? स्वचारित्र से भ्रष्ट शब्द पड़ा है न भाई इसमें ! स्वचारित्र भ्रष्ट अर्थात् यह इसमें लिया। स्वचारित्र है और भ्रष्ट है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? फिर लिया न ? शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय परिणति। यह स्वचारित्र लिया न ? अपना स्वरूप ज्ञान और आनन्द की दृष्टि और ज्ञान करके अपने में स्वचारित्र स्वसमयरूप मोक्षमार्ग निर्मल परिणति निर्विकारी, वही मोक्षमार्ग है। परन्तु

इतनी निर्मल परिणति से भ्रष्ट होता है, (अर्थात्) निर्मल परिणति उत्पन्न नहीं करता। भ्रष्ट होता है, इसका यह अर्थ है। समझ में आया?

अपनी निर्मल निर्विकारी अविकारी परिणति प्रगट नहीं करके स्वचारित्र से भ्रष्ट, ऐसा परचारित्र का आचरण करनेवाला कहा जाता है। यह पुण्य में आचरण करनेवाला, परचारित्र है, स्वचारित्र नहीं। यह बन्धमार्ग है। सम्यग्दृष्टि को भी यह बन्धमार्ग है। ओहोहो! कठिन विवाद भाई! यह नया निकाला यह सब। अकेला व्यवहार शुभभाव से चौथे से सातवाँ गुणस्थान होता है, नहीं तो एकान्त नय हो गया। साथ में निश्चय न हो तो एकान्त व्यवहार, वह तो निश्चय की अपेक्षा तो रही नहीं। तो इस शुभभाव में धर्म मानना और एकान्त व्यवहार में मोक्ष मानना, वह तो मिथ्यादृष्टि है। उसमें तो ऐसा आशय है। अकेला रहा न व्यवहार? शुभपरिणाम से चौथे से सातवें (तक जाये) तो अकेला व्यवहार रहा, एकान्त व्यवहार रहा, निश्चय तो साथ में रहा नहीं। और निश्चय की अपेक्षा बिना का व्यवहार, उसे मानना वह तो मिथ्यात्व, अज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

अपना स्वभाव शुद्ध चैतन्य ज्ञायक है, ऐसी दृष्टि-ज्ञान और थोड़ी लीनता हुई और साथ में जरा राग है, उसे व्यवहार कहा जाता है। परन्तु वह व्यवहार, निश्चय न हो तो व्यवहार किसे कहना? नहीं, निश्चय बारहवें में है। निश्चय बारहवें में है और छठवें में अकेला व्यवहार है। पाँच, छह और सात (गुणस्थान)। ऐसा नहीं होता। समझ में आया? मित्रसेनजी! चौथे, पाँचवें, छठवें में अकेला शुभभाव हो, वह व्यवहार मोक्षमार्ग और बारहवें में निश्चय मोक्षमार्ग, ऐसा नहीं होता। आते हैं, भाई! बहुत लेख आये हैं अभी तो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल नहीं और (फल) आ गया। परन्तु निश्चय बिना का व्यवहार (होता तो) व्यवहार एक नय रहा, दूसरा नय तो साथ में है नहीं। (निश्चयनय) अभी होना चाहिए या बारहवें में होना चाहिए? क्या कहा? निश्चयनय बारहवें में और यहाँ व्यवहारनय। इसका अर्थ क्या? अकेला व्यवहारनय रहा। तो कहते हैं कि बात

ऐसी है ही नहीं। अपने शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और आंशिक लीनता हुई है। साथ में राग है, वह आता है तो इतना स्वरूपस्थिरता से भ्रष्ट हुआ। स्वरूपस्थिरता से भ्रष्ट है, वह परचारित्र है, बन्ध का कारण है। ज्ञानी को भी बन्ध का कारण है। अज्ञानी को तो बन्ध है ही, उसकी बात है ही नहीं। धन्नालालजी! अभी बहुत प्रवाह आया है। जैन गजट में बहुत आता है। नहीं, चौथे, पाँचवें, छठे, सातवें में तो मोक्षमार्ग शुभ व्यवहार ही है। निश्चय तो नीचे होता ही नहीं। निश्चय तो बारहवें में होता है। यह कहाँ से निकाला?

यह तो कहते हैं कि अपने स्वद्रव्य का आश्रय है, उतना दृष्टि और ज्ञान सम्यक् होने पर भी, जितना परद्रव्य का लक्ष्य करके शुभपरिणाम व्यवहारचारित्र आदि अथवा व्यवहाररत्नत्रय, वह सब विकल्प उत्पन्न होते हैं, (उतना) वह स्वचारित्र से भ्रष्ट है। समझ में आया? **ऐसा परचारित्र का आचरण करनेवाला कहा जाता है;...** समझ में आया? **'हवदि जीवो'** ऐसा है न? उसे ऐसा कहा जाता है। क्यों? **क्योंकि वास्तव में स्वद्रव्य में शुद्ध-उपयोगरूप परिणति, वह स्वचारित्र है...** देखो! वास्तव में स्वद्रव्य में—निज द्रव्य में... यह बिछाया हुआ है, वहाँ किसी को नहीं बैठना, हों! ध्यान रखना चाहिए न। बिछाया हुआ है, वहाँ किसी को नहीं बैठना। समझ में आया?

वास्तव में अर्थात् यथार्थरूप से अर्थात् वास्तविक रीति से स्वद्रव्य में अपना शुद्ध चैतन्य आत्मा... तो यहाँ शब्द है, उसका क्या प्रश्न होता है? कि शुद्ध उपयोगरूप परिणति। तब वह ऐसा कहता है कि शुद्ध उपयोगरूप परिणति तो बारहवें में है। नीचे तो है ही नहीं। अरे... भगवान! ऐसा नहीं है। सुन तो सही! शुद्ध उपयोग सातवें में है। परिपूर्ण शुद्ध बारहवें में है, परन्तु सातवें में भी निर्विकल्प ध्यान हो गया, चारित्र में शुद्ध उपयोग है। और चौथे गुणस्थान में, पाँचवें गुणस्थान में भी जब निर्विकल्प ध्यान होता है, तब उसे भी आंशिक शुद्ध उपयोग है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ **स्वद्रव्य में शुद्ध-उपयोगरूप...** परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर स्वद्रव्य का आश्रय करके दृष्टि, ज्ञान तो किये हैं, परन्तु जितना परद्रव्य का लक्ष्य करके परचारित्ररूप राग होता था, वह स्वचारित्र से भ्रष्ट था। जब स्वभाव के आश्रय में शुद्ध उपयोगरूप

परिणति हुई, वह स्वचारित्र है। समझ में आया? चौथे गुणस्थान में भी प्रथम सम्यग्दर्शन उत्पन्न होने के काल में शुद्ध उपयोगरूप रमणता उसे आ जाती है। मित्रसेनजी! समझ में आया? चौथे गुणस्थान में आनन्द का, आंशिक अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव (होता है)। जब प्रथम बार उपयोग निजद्रव्य में जम जाता है, भले बुद्धिपूर्वक राग घट गया, अबुद्धिपूर्वक तीन कषाय का राग है, समझ में आया? तथापि पहले स्वरूप की निर्विकल्प दृष्टि के काल में उपयोग अपने में आंशिक निर्मल उपयोग हो जाता है। फिर बाहर विकल्प में आया तो शुद्ध परिणति रहती है। मिथ्यात्व, रागादि का नाश, अनन्तानुबन्धी का अभाव (हुआ), उतनी शुद्ध परिणति रहती है। परन्तु शुभराग में आया इतना अशुद्ध उपयोग हो गया। समझ में आया? आहाहा! कठिन बात, प्रभु! कहाँ गये पण्डितजी? समझ में आया? आहाहा!

चौथे गुणस्थान से शुद्ध उपयोग का अंश शुरु हो जाता है। परन्तु लम्बे काल में शुद्ध उपयोग आता है। बारम्बार एकदम नहीं आता। और छठे गुणस्थान में जहाँ स्वरूपदृष्टिपूर्वक चारित्र हुआ, उसे तो अन्तर्मुहूर्त में शुद्ध उपयोग आता है। सातवाँ और अन्तर्मुहूर्त में छठवाँ, ऐसा हजारों बार छठवें-सातवें में गमन करते हैं, झूलते हैं, उन्हें मुनिराज कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ शुद्ध उपयोग का प्रकार लेना। पूर्ण शुद्ध उपयोग भले सातवें में हो, इससे विशेष शुद्ध उपयोग बारहवें में हो, परन्तु बारहवें में उपयोग है, तब ही स्वचारित्र है और नीचे स्वचारित्र नहीं है, ऐसा नहीं है। जितना स्वरूप का आश्रय करके सम्यग्दर्शन, ज्ञान स्वसंवेदनपूर्वक स्वरूप में लीनता राग बिना की हुई है, उतना उसे स्वचारित्र है। उतनी तो शुद्ध परिणति, शुद्ध परिणति है। उपयोग भले उसमें जमा न हो। उपयोग चौथे में, पाँचवें में किसी काल में जमता है और छठवेंवाले तो तुरन्त अन्तर्मुहूर्त में जमते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : श्रद्धा में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धा में है, ज्ञान में है, परन्तु उपयोग जमता नहीं। बहुत देर लगती है। पहले थोड़ा आया, परन्तु फिर बहुत अन्तराल काल में शुद्ध उपयोग चौथे,

पाँचवें में आता है। और छठवें में तो तुरन्त आता है, अन्तर्मुहूर्त में। समझ में आया? श्रद्धा में तो समकिती अपना शुद्ध उपयोग, चारित्र को ही मोक्ष का मार्ग मानता है। बीच में राग आया, उसे मोक्षमार्ग मानता नहीं। भक्ति, दया, दान इत्यादि भाग तो है। आता है चौथे गुणस्थान में आते हैं, भक्ति, प्रभावना, मन्दिर, यात्रा आदि सब भाव चौथे गुणस्थानवाले को आते हैं। परन्तु वह शुभभाव परद्रव्य के लक्ष्यवाला है तो उसे बन्ध का कारण जानता है। और पंचम गुणस्थान में ऐसे दया, दान, भक्ति, प्रभावना आदि के भाव आते हैं और बारह व्रत के भाव भी पंचम गुणस्थान में आते हैं। परन्तु जितनी दो कषाय का नाश होकर शुद्ध परिणति हुई, उतनी संवर, निर्जरा है। जितने बारह व्रतादि के विकल्प हैं, वे पुण्यास्रव हैं। समझ में आया? और छठवें गुणस्थान में तीन कषाय का नाश होकर पुरुषार्थ करके जो स्वभाव का आचरण हुआ, शुद्ध परिणति हुई, उतना तो स्वचारित्र है अथवा संवर, निर्जरा है। साथ में पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण के जो विकल्प उठते हैं, वह पुण्यास्रव है, बन्ध का कारण है, भाई! माँगीलालजी! माँगीलालजी ने वहाँ जाकर सब साधुओं को कहा। साधु कहे, यह तो हमने सुना नहीं। किसी को मिला नहीं। कहाँ है? बात ही है नहीं। गड़बड़-गड़बड़। यह तो सनातन सर्वज्ञ परमात्मा, उनका मार्ग सनातन सन्त वृद्ध '**वृद्धमतसंवादेन**'। जयसेनाचार्य १५७ में कहेंगे। '**जिणा परूवेंति**' है न? वृद्ध ऐसा कहते हैं। जवानों! जवान अर्थात् अभी के तुम ऐसा मानो। सेठी! यह सेठी है या नहीं? माणेकचन्दजी आये हैं वे। सेठी हैं? कस्तूरचन्दजी। वे सेठी हैं न? अच्छा। समझ में आया? सेठी!

भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर वृद्ध-वयोवृद्ध—सन्त ऐसा कहते हैं कि शुभभाव बन्ध का कारण है, ऐसा परमात्मा ने कहा है। समझ में आया? आजकल के माननेवाले अपनी कल्पना से माने तो वह वृद्ध का—बड़ों का मत नहीं है। वडेरा कहते हैं न? बड़े, बड़े पुरुष। लो, हमारे वडेरा कहते हैं। बड़ा, बड़ा पुरुष—महापुरुष। देखो! जयसेनाचार्य ने लिया है। महापुरुष '**वृद्धमतसंवादेन**' '**जिणा परूवेंति**' आस्रव है। पुण्यभाव, पापभाव दोनों आस्रव हैं। वह चारित्र नहीं, संवर नहीं, स्वचारित्र नहीं। वह तो वास्तव में तो ज्ञेय है ज्ञान में। सम्यग्दृष्टि को भी राग आता है, मुनि को भी आता है। अपने ज्ञान में स्वपरप्रकाशक ज्ञान खिला है, (उसमें) राग को परज्ञेयरूप से जानते हैं।

स्वज्ञेयरूप से नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह राग बन्ध का कारण है, स्वचारित्र से भ्रष्ट है। उसमें मोक्षमार्ग है नहीं। अभी तो ऐसी झंझट चली है। ओहोहो! नहीं, शुभभाव... ऐसा लिखा है, देखो! लिखा है। प्रवचनसार में लिखा है कि उस भाव से मुक्ति भी होगी और उस भाव से देवेन्द्र की ऋद्धि भी मिलेगी। अरे... भगवान! एक भाव से दो नहीं मिलते। प्रभु! यह कहाँ से आया? उसमें जितना शुभराग रहता है, उसमें देवेन्द्र पदवी मिलेगी। जितनी शुद्ध परिणति है, वह तो संवर, निर्जरा है। उसमें बन्ध है नहीं। एक समय में दोनों साथ में है। आत्मस्वभाव निर्मल मोक्षमार्ग से देवेन्द्र पदवी मिलती है? देवेन्द्र पदवी का कारण तो आस्रव के परिणाम शुभभाव हैं। और क्या शुभभाव जिससे देवेन्द्र पदवी मिली, वह शुभभाव संवर है? बिल्कुल नहीं। वह तो आस्रव है। भारी गड़बड़ करते हैं, भाई! वर्णीजी के पास रहनेवाले रतनचन्दजी ने बहुत गड़बड़ी की है अभी तो। ओहो! कल भी आया, पहले भी आया, प्रश्नोत्तर चले हैं। शिवमार्ग है न? शिवमार्ग कोई पुस्तक है न? मासिक। शिवमार्ग मासिक निकलता है, उसमें भाई ने प्रश्नोत्तरी निकाली है। मासिक है।

यहाँ तो भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमेश्वर का पेट खोलकर कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास आठ दिन गये थे। साक्षात् भावलिंगी मुनि सन्त थे—छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले। भगवान के पास गये थे। परमात्मा वर्तमान विराजते हैं सीमन्धरप्रभु, वे ही उस समय विराजमान थे, वे ही वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में हैं। उन तीर्थंकर भगवान के पास कुन्दकुन्दाचार्य गये थे, आठ दिन रहे थे और वहाँ से आकर यह सब शास्त्र बनाये। पोन्नूरहिल। वन्देवास से तीन-चार मील (दूर) टेकरी है, वहाँ बनाये और वहाँ से भगवान के पास गये थे। वहाँ के पण्डित लोग बात करते हैं। हम अभी पोन्नूरहिल गये थे न। इसलिए गये थे। पहले पोन्नूरहिल (संवत्) २०१५ के वर्ष में गये थे। अभी सब गये थे न, ७० मोटरें थीं, एक हजार लोग थे। वहाँ से भगवान के पास गये थे और वहाँ आसपास लाखों ताड़पत्र हैं, लाखों अभी। उन ताड़पत्र में यहाँ लिखा, ऐसा वहाँ के पण्डित लोग कहते थे। समझ में आया?

और वहाँ नीचे, पोन्नूरहिल के नीचे एक पोन्नूर नाम का गाँव है, मन्दिर है, तो

मन्दिरवाले कहते थे कि भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के समय का यह मन्दिर है। दर्शन करने के लिये आते थे। पुराना दिगम्बर है। पुराना गढ़ है, पुराना, बहुत वर्ष पुराना है। वहाँ पोन्नूरहिल पर ध्यान करते थे। वहाँ से नीचे उतरते थे और आहार-पानी लेने निकलते थे। तीन-चार मील है पोन्नूर टेकरी से। कैसी टेकरी कहलाती है? धवल टेकरी। एक धवल टेकरी है। जिसमें यह धवल लिखा गया है। यह धवल टीका वहाँ लिखी गयी है। इतिहास में सब आता है। यह वहाँ नजदीक में है। सब बताया था सब हजार लोगों को। देखो! यहाँ व्यवहारनय के ग्रन्थ लिखे गये हैं, यहाँ निश्चयनय के लिखे गये हैं। दोनों की सन्धि है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ ध्यान में रहते थे। गुफा है। परन्तु गुफा तो बहुत साधारण है। वहाँ रहते थे। अभी दो बार गये थे न! वहाँ तो अभी एक नया मकान भी बना है। २५०० रुपये डालकर यादगिरि में, यहाँ से संघ गया था न इसलिए। यहाँ से (जाकर) कुन्दकुन्दाचार्य आठ दिन भगवान के पास रहे थे और आकर यहाँ शास्त्र में कहते हैं कि भगवान तो ऐसा कहते थे। महावीर परमात्मा की परम्परा में हम चारित्रवन्त आये और भगवान के पास गये। तो भगवान तो ऐसा कहते हैं कि शुभराग तो परचारित्र है, भ्रष्ट है, स्वचारित्र नहीं। आहा! कहो, सेठी! क्या करना? यह बड़ों का मानना या आजकलवालों का मानना?

और परद्रव्य में सोपराग-उपयोगरूप परिणति, वह परचारित्र है। लो, है न? क्या कहा? परद्रव्य। परद्रव्य की ओर का। परद्रव्य में इसका अर्थ (यह कि) परद्रव्य का लक्ष्य करके जो उत्पन्न हुआ सोपराग... नीचे है—**उपरागयुक्त; उपरक्त; मलिन; विकारी; अशुद्ध।** इतने एक शब्द के अर्थ हैं। सोपराग के इतने अर्थ हैं। यह अशुद्ध उपयोग में होनेवाला, कर्मोदयरूप उपाधि के अनुरूप विकार। उपाधि के अनुरूप विकार। विकार को अनुकूल उपाधि, उपाधि को अनुरूप विकार। **कर्मोदयरूप उपाधि जिसमें निमित्तभूत होती है, ऐसी औपाधिक विकृति वह उपराग है।** भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ ऐसा फरमाते हैं, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि सोपराग—जितना परद्रव्य की ओर झुकाव होकर अपनी पर्याय में...

लो, मोक्षमार्ग में यह कहा है, मोक्ष अधिकार में है न? क्या? मोक्षपाहुड़। मोक्षपाहुड़ है न? अष्टपाहुड़ में। वहाँ (ऐसा कहा) '**परदव्वादो दुग्गइ सदव्वा हु सुग्गइ।**' ऐसा श्लोक

है। समझ में आया? यह गाथा है उसमें। मोक्षप्राभृत। '**परदव्वादो दुग्गइ**' '**परदव्वादो दुग्गइ**' का अर्थ कहीं परद्रव्य दुर्गति का कारण नहीं। परद्रव्य की ओर के झुकाव से उत्पन्न होनेवाला राग, वह दुर्गति है और '**सदव्वा हु सुग्गइ।**' अपना ज्ञायकभाव शुद्ध चैतन्य है, उसके आश्रय से जो परिणाम हुए, उसे सुगति कहा गया है। दूसरा शब्द लिया, '**परदव्वादो रतं**'। परद्रव्य में रत है, वह '**दुग्गइ**' है, स्वद्रव्य में रत है, वह '**सुग्गइ**' है। यह दूसरा शब्द ऐसा लिया है। समझ में आया?

परद्रव्य नुकसानकारक नहीं। परद्रव्य से अपने में नुकसान नहीं होता, परन्तु परद्रव्य का आश्रय करके जितने विकल्प उठाये शुभ-अशुभभाव, वह नुकसानकारक है, बन्ध का कारण है। ऐसा माने कि भगवान के दर्शन करने से शुभभाव होता है और वह बन्ध का कारण है, तो कोई करेगा नहीं। ऐसी झंझट उठाते हैं। अरे! सुन तो सही प्रभु! वह तो शुभभाव आये बिना रहेगा नहीं। जब तक वीतराग न हो, तब तक दर्शन, ज्ञानशुद्धि हुई होने पर भी भक्ति का राग, दया का राग, विनय, पंच परमेष्ठी का राग आये बिना रहता नहीं। न आवे तो वीतराग हो जाये। तो ऐसा कहते हैं कि उसमें बन्ध है, बन्ध है, बन्ध है—ऐसा कहोगे तो कोई करेगा नहीं। लो। कौन करे? सुन तो सही, भगवान! विकल्प नहीं आवे तो निर्विकल्प में स्थिर हो जायेगा। परन्तु ऐसा कहे कि नाश हो जायेगा। अभी मुश्किल-मुश्किल से... नास्तिक लोग हैं, परन्तु यहाँ आचार्य (कहते हैं), आचार्य तो यहाँ पुकार करते हैं। यह बात गुप्त नहीं रखी है कि गुप्त में कहना, यह बात गुप्त रखना। ढिंढोरा पीटकर कहना कि यह भगवान का ऐसा कथन है, जितना परद्रव्य के लक्ष्य से शुभ-अशुभभाव उत्पन्न हुए, वह बन्ध का कारण है। ऐसा सर्वज्ञों ने कहा है। समझ में आया? ओहोहो! अभी स्वीकार करने में हाँ नहीं आवे, उसकी दृष्टि कब स्वभाव के ऊपर होगी? और स्वरूप में स्थिरता कब होगी? **वह परचारित्र है।**

गाथा - १५७

आसवदि जेण पुण्णं पावं वा अप्पणोध भावेण।
सो तेण परचरित्तो हवदि त्ति जिणा परूवेंति।।१५७।।

पुण्य एवं पाप आस्रव आतम करे जिस भाव से।
वह भाव है परचरित ऐसा कहा है जिनदेव ने।।१५७।।

अन्वयार्थ :- [येन भावेन] जिस भाव से, [आत्मनः] आत्मा को [पुण्यं पापं वा] पुण्य अथवा पाप [अथ आस्त्रवति] आस्त्रवित होते हैं, [तेन] उस भाव द्वारा [सः] वह (जीव) [परचरित्रः भवति] परचारित्र है—[इति] ऐसा [जिनाः] जिन [प्ररूपयन्ति] प्ररूपित करते हैं।

टीका :- यहाँ, परचारित्रवृत्ति बन्धहेतुभूत होने से उसे मोक्षमार्गपने का निषेध किया गया है (अर्थात् परचारित्र में प्रवर्तन बन्ध का हेतु होने से वह मोक्षमार्ग नहीं है, ऐसा इस गाथा में दर्शाया गया है)।

यहाँ वास्तव में शुभोपरक्त भाव (-शुभरूप विकारी भाव), वह पुण्यास्त्रव है और अशुभोपरक्त भाव (-अशुभरूप विकारी भाव) पापस्त्रव है। वहाँ, पुण्य अथवा पाप जिस भाव से आस्त्रवित होते हैं, वह भाव जब जिस जीव को हो, तब वह जीव उस भाव द्वारा परचारित्र है—ऐसा (जिनेन्द्रों द्वारा) प्ररूपित किया जाता है। इसलिए (ऐसा निश्चित होता है कि) परचारित्र में प्रवृत्ति, सो बन्धमार्ग ही है; मोक्षमार्ग नहीं है॥१५७॥

गाथा - १५७ पर प्रवचन

(अब) १५७ देखो!

आसवदि जेण पुण्णं पावं वा अप्पणोध भावेण।
सो तेण परचरित्तो हवदि त्ति जिणा परूवेंति।।१५७।।

वीतराग सर्वज्ञ... देखो! कुन्दकुन्दाचार्य को भी जिनका सहारा लेना पड़ा। '**जिणा**

परूवेंति' भाई! सर्वज्ञ परमात्मा ऐसा कहते हैं, जिनेश्वर ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? पोपटभाई! कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं)। परन्तु आप कहो वह जिनेश्वर का ही कथन है। तो भी लोगों को दृढ़ कराने के लिये (ऐसा कहते हैं)। भगवान! जितना शुभ-अशुभ परिणाम हैं, वह परचारित्र है, वे '**जिणा परूवेंति**'— सर्वज्ञ ऐसा कहते हैं, वीतराग ऐसा कहते हैं, जिनमुनि सन्त ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

टीका :- यहाँ, परचारित्रवृत्ति बन्धहेतुभूत... देखो! अब इसमें कथंचित् बन्ध और कथंचित् संवर, निर्जरा कहाँ से लाना? नहीं, चाहे जो शब्द हो, उसमें स्यात् लगा देना। भाई! वे ऐसा कहते हैं। किस प्रकार लगावे? परन्तु वह तो है वह है और दूसरे प्रकार से नहीं, इसका नाम निश्चय है। समझ में आया? **यहाँ...** यहाँ **परचारित्रवृत्ति बन्धहेतुभूत होने से....** देखो! **उसे मोक्षमार्गपने का निषेध किया गया है...** भगवान! उसमें निषेध करने में आया होने से, ऐसा आया न? '**जिणा परूवेंति**' भगवान ने ऐसा कहा है। '**जिणा परूवेंति**' आगे लेंगे।

मुमुक्षु : .... शब्द आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो आता है परन्तु यह तो यहाँ भी कहने में आया, ऐसा। वह तो आता है, फिर आयेगा। '**जिणा परूवंति**' आता है। ऐसा प्ररूपित करने में आता है। दूसरे पद में आयेगा। फिर कोष्ठक में **(जिनेन्द्रों द्वारा)** ऐसा कहा है। दूसरी लाईन। यहाँ तो यहाँ भी कहने में आया, वह शब्द दोनों में है। समझ में आया? ओहोहो!

बात यह है कि यहाँ चैतन्य स्फटिकमणि जैसा (विराजता है)। कल जैन गजट में दृष्टान्त दिया है। परद्रव्य से राग-विकार होता है, ऐसा तुम मानो, मानो। सर्वत्र यह गाथा रखे। देखो! ...कानजीस्वामी कहते हैं कि विकार अपनी योग्यता से होता है, कर्म तो निमित्तमात्र है, उससे नहीं होता। यह लिखा २७८ में। ऐसा लिखा ही नहीं, सुन तो सही, भगवान! तुझे खबर नहीं। यही गाथा रखी है। यह देखो, कुन्दकुन्दाचार्य को मानते हैं या नहीं? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, आयु क्षय से मरण, जीवन। उसके आयु क्षय से उसका मरण होता है। उसका आयुष्य हो तो मरण नहीं होता। देखो! कर्म के कारण होता है, ऐसा तो लिखा है। अरे... भगवान! यह तो नोकर्म दूसरी चीज़ उसे (जीवन-मरण) नहीं कर सकती, यह बतलाने का भाव है। जब इन दो को कहना हो

तब, उसमें आयुष्य है और अपनी रहने की योग्यता अपने में अपने कारण से है। क्या आयुष्य के कारण से रहता है ? वह तो दूसरा जिला सकता नहीं, मार सकता नहीं, इतना सिद्ध करने के लिये उसका आयुष्य उसे जिलाने में निमित्त है और आयुष्य न हो तो जीव नहीं सकता। उसे साता हो तो संयोग मिल सकता है, साता न हो तो संयोग मिल नहीं सकता। दूसरे से उसे प्राप्त कर सकता है, ऐसा नहीं है। ऐसा निषेध करने के लिये यह बात ली है। परन्तु कहीं उसे साता आयी तो साता के कारण से संयोग मिला, ऐसा भी नहीं है। साता के रजकण भिन्न है और प्राप्त होनेवाले संयोग भिन्न चीज़ है। वह तो दूसरी वस्तु आयी, तब निमित्त कौन था, इतना बतलाया। यह साता उसके पास पड़ी थी और चीज़ तो आनेवाली अपने उपादान के कारण से आती है। पण्डितजी! बाहर की चीज़ तो उसके उपादान के कारण से आती है, तब साता को निमित्त कहा जाता है। क्या साता खींचकर लाती है ? ताकत है एक रजकण में दूसरे रजकण को खींचकर लाने की ?

वहाँ तो इतना बताया कि इसके शुभाशुभकर्म बिना इसे सुख-दुःख होते नहीं। सुख-दुःख का अर्थ संयोग नहीं मिलता। उसे (संयोग में) सुख-दुःख होता है तो उसमें मोह का निमित्त है। इसके साता-असाता कर्म बिना सुख-दु.ख के संयोग नहीं मिलते। दूसरे संयोग प्राप्त कराते हैं, इस बात में जरा भी सत्यता नहीं है। समझ में आया ? कितना लिखा है। अब भी कितनी बार सबके जवाब दे दिये गये हैं। अभी कल लिखा है, कर्म से होता है, ऐसा मानो, नहीं तो यह कर्म नहीं रहते। दर्शनमोह के कारण से मिथ्यात्व होता है। चारित्रमोह के कारण से राग होता है। अरे... भगवान! परद्रव्य से तेरे द्रव्य में हो और ईश्वर जगत का कर्ता है, उसमें तो चैतन्य को मनवाया, तूने तो अनन्त जड़ ईश्वर बनाये। जड़ ईश्वर से हमारे में विकार होता है। परिभ्रमण लिखा है। वह कहते हैं, कर्म के कारण नहीं भटकता है। अपनी योग्यता से भटकता है—शास्त्र तो ऐसा कहते हैं कि कर्म के कारण भटकता है। अरे... भगवान! ऐसा नहीं है, प्रभु! तेरी दृष्टि में अन्तर में है। क्या करे ? आहाहा!

भाई! तेरी पर्याय में तेरे अपराध से विकार होता है। निमित्त हो। निमित्त की कौन ना करता है। परन्तु वह है, इसलिए यहाँ (विकार) हुआ है, ऐसा नहीं है। किसी के सत् के अंश से कोई (दूसरे के) सत् का अंश उत्पन्न होता है ? तो उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वयं

अपने पृथक्-पृथक् कहाँ रहे? अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुव अपने में है और पर के उत्पाद-व्यय-ध्रुव पर में है। पर से पृथक् कहाँ रहा (यदि) पर से होता हो तो? समझ में आया? भारी गड़बड़ भाई!

यहाँ, परचारित्रवृत्ति.... समकिती हो, उसे भी **बन्धहेतुभूत होने से...** ज्ञानी को भी राग जितने पुण्य के परिणाम आये, उतना बन्ध हेतुभूत, बन्ध का कारण है। देखो न, हेतुभूत है न? **उसे मोक्षमार्गपने का निषेध किया गया है...** लो। अस्ति-नास्ति दोनों कहा। मोक्षमार्ग तो एक ही है। दो मोक्षमार्ग है ही नहीं। समकित दो है ही नहीं, समकित एक ही है। निज स्वभाव के आश्रय से अन्तर अनुभव में प्रतीति होना, यह एक ही समकित है। समकित दो प्रकार के हैं ही नहीं। ज्ञान भी एक ही प्रकार का है। निज आत्मा का स्वसंवेदनज्ञान, वही एक ज्ञान है। चारित्र एक प्रकार का है—स्वरूप में लीनता एक चारित्र है। दो प्रकार का समकित, दो प्रकार के ज्ञान, दो प्रकार के चारित्र-फारित्र हैं ही नहीं। यह तो दो प्रकार के कथन करने की पद्धति है। दो मार्ग नहीं, मार्ग एक ही है। मित्रसेनजी!

टोडरमलजी ने बहुत अच्छा लिखा है। शास्त्र में से निचोड़ निकालकर लिखा है। यह कहे, नहीं। दो मोक्षमार्ग है, दोनों मोक्षमार्ग है। दो कहाँ से आये? दो मोक्षमार्ग हो तो दोनों एक हो गये। दो रहे किस प्रकार? क्या करे? लोगों को ज्ञान नहीं, क्रियाकाण्ड में घुस गये और प्ररूपणा करनेवाले भी ऐसे मिले तो झुक जाते हैं कि बराबर है, बराबर बात है। तो अपने को इसमें धर्म नहीं? भगवान के दर्शन, पूजन में धर्म नहीं। भाई! पुण्य होता है, भाई! सुन तो सही। परमार्थ धर्म नहीं। जो जन्म-मरण का अन्त करनेवाली पर्याय है, वह नहीं। आहाहा!

कहते हैं, **(अर्थात् परचारित्र में प्रवर्तन बन्ध का हेतु होने से वह मोक्षमार्ग नहीं है...)** वह मोक्षमार्ग नहीं अर्थात् दो मोक्षमार्ग नहीं। अपने स्वभाव में स्वचारित्र की रमणता एक ही मोक्षमार्ग है। पर में जितना राग हुआ, वह मोक्षमार्ग नहीं, बन्धमार्ग है। समझ में आया? ओहो! अपना निर्णय करने में भी जहाँ अभी ठिकाना नहीं... निर्णय करने के पश्चात् स्वरूप में लीनता, दृष्टि, अनुभव करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है और फिर स्वरूप में लीनता करना, वह चारित्र है। समझ में आया? यह मोक्ष का मार्ग है।

उपाय एक ही है। यह तो उसमें लिया है न? साध्य-साधन में। उपाय-उपेय, भाई! समयसार में अन्त में। वही ज्ञान अपूर्णरूप से परिणमा, वह उपाय और परिपूर्णरूप से परिणमा, वह उपेय। विकल्प-फिकल्प को पहले बीच में नहीं लिया। अपना ज्ञानस्वरूप भगवान... अपनी ज्ञान की निर्मल परिणति अपूर्ण है, वह मोक्षमार्ग है। ज्ञान के साथ दर्शन, लीनता आ गयी। ज्ञान पूर्ण हो गया, वह मोक्ष है। एक ही मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग नहीं। कथन के (अनेक) प्रकार आवें, उसमें क्या हुआ?

देखो! **यहाँ वास्तव में शुभोपरक्त भाव....** देखो! शुभोपरक्त भाव **(-शुभरूप विकारी भाव)...** गुजराती में शुभरूप विकारी भाव, ऐसा पहले लिया है न? और फिर शुभ उपरक्त भाव लिया है। शुभ उपरक्त भाव—शुभरूप विकारी भाव। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प। विकल्प, हों! कोई ऐसी भाषा करते हैं कि देखो! देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा करना, उसे मिथ्यात्व कहते हैं। अरे... प्रभु! मिथ्यात्व नहीं। किसने कहा? तू सुन तो सही! देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, वह विकल्प-राग है, शुभराग है। मिथ्यात्व नहीं। उसमें परमार्थ धर्म माने तो मिथ्यात्व है। शुभराग तो मुनि को आता है। छठवें गुणस्थान में आता है। शुभराग मिथ्यात्व (नहीं)। ऐसा लेखों में लगा देते हैं, ऐई! सोनगढ़वाले देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा को मिथ्यात्व कहते हैं। बेचारे लोगों को खबर नहीं। (शुभराग को) परमार्थ धर्म मानना, वह मिथ्यात्व है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा तो राग है, पंच महाव्रत के परिणाम राग हैं। राग मिथ्यात्व नहीं। राग में परमार्थ धर्म मानना, वह मिथ्यात्व है। आहा! मान्यता। वह निश्चय धर्म है, ऐसा माने तो मिथ्यात्व है। राग तो मुनि को आता है। छठवें गुणस्थान में आता है। तीर्थंकर को नहीं आता? जब तक केवलज्ञान नहीं था, छद्मस्थ में चारित्रदशा थी, उन्हें भी (राग) आता था। क्या मिथ्यात्व है? नहीं। परन्तु लगा दे। लोगों को खबर नहीं, हाँ, सोनगढ़वाले ऐसा कहते होंगे। धन्नालालजी! और यहाँ से जवाब किसी को देते नहीं। तुम अपने आप समझो, भाई! यहाँ कौन जवाब देता है? ऐसे तो बहुत आते हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि **वह पुण्यास्रव है...** देखो!

मुमुक्षु : पुण्यास्रव का फल....

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्यास्रव का फल मोक्ष परम्परा (कारण)। पहले यहाँ

(व्यवहार) और फिर उसका फल निश्चय आयेगा। ऐसा नहीं है। पाठ में तो **'आसवदि'** है न। समझे? पहले बन्ध कहा, अब उसे आस्रव कहते हैं। कारण खुल्ला करते हैं। मोक्षमार्ग का निषेध किया, बन्ध हेतुभूत है, अब उसे आस्रव सिद्ध करते हैं। बन्ध, बन्ध का कारण और आस्रव, ऐसा सिद्ध किया है।

वास्तव में तो पुण्यास्रव है। कौन? शुभभाव। समकित का भी। दया का भाव, अहिंसा का, सत्य का, अचौर्य का, ब्रह्मचर्य का भाव, मुनि को अट्ठाईस मूलगुण का शुभ विकल्प आता है, परन्तु वह पुण्यास्रव है, बन्ध का कारण है; वह मोक्ष का कारण नहीं। **और अशुभोपरक्त भाव (-अशुभरूप विकारी भाव) पापास्रव है।** लो। पाठ में दोनों हैं या नहीं? **'आसवदि जेण पुण्णं पावं वा अप्पणोध भावेण।'** लो, समझ में आया? **'अप्पणोध'** इसका क्या किया? **'अथ'। 'अप्पणो अथ' 'आत्मनोऽथ'** संस्कृत है न? **'आत्मनोऽथ'** बराबर है। **वहाँ, पुण्य अथवा पाप जिस भाव से आस्रवित होते हैं,...** पुण्य और पाप के नये रजकण जिस भाव से आस्रवित होते हैं **वह भाव जब जिस जीव को हो... वह भाव...** देखो! **जब जिस जीव को हो...** जब जिसे होता है। उस काल में जिसे होनेवाला है। **तब वह जीव उस भाव द्वारा परचारित्र है**—देखो! भाषा कितनी लिखी है! **वह भाव जब जिस जीव को हो...** इतना तो लिया। **वह भाव जब जिस जीव को...** जिस काल में **जिस जीव को हो, तब वह जीव उस भाव द्वारा परचारित्र है—ऐसा (जिनेन्द्रों द्वारा) प्ररूपित किया जाता है।** लो, यह शब्द है पाठ में।

उसमें जयसेनाचार्य ने लिया है। **'वृद्धमतसंवादेन'।** बड़े ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसमें भाषा आती थी। उन लोगों में भी आता है न, श्वेताम्बर में आता है। बड़े का यह मत है। भगवान माँस खाते वे। टीका में ऐसा शब्द है। भगवती में वहाँ भी ऐसा शब्द है। वृद्ध, वृद्ध का यह मत है, ऐसा भगवती शतक है न श्वेताम्बर का? उसमें (ऐसा है कि) भगवान को भी वृद्ध लोग, आचार्य ऐसा मानते थे कि वे भगवान भी माँस खाते थे। ऐसा टीका में पाठ है। परन्तु पहले... ऐ... मांगीलालजी! यह पाठ है, हों! हम तो (संवत्) १९७२ के वर्ष पहले सब देखा है। सब चिह्न भी किये हैं। एक पण्डित को दिखाया था कि यह क्या है? तो कहा, यह वृद्ध का मत था। अरर! यह वृद्ध का मत? भगवान को आहार नहीं होता। आहार नहीं होता, उसमें माँस का आहार? यह क्या

करते हैं ? नहीं, नहीं। बेचरदास पण्डित है न ? उससे कहा था, हों ! ७२ के वर्ष। कहा, यह क्या लिखा है ? टीका में वृद्ध का मत लिखा है। पूर्वाचार्यों का मत। अरे... ! भगवान को आहार ? आहार का विकल्प तो छठवें (गुणस्थान) तक होता है। फिर अप्रमत्तदशा में तो ध्यान होता है। उसमें केवलज्ञान में अनन्त आनन्द का जहाँ अनुभव है, वहाँ ऐसा विकल्प कहाँ से आया कि मैं आहार लूँ ? उन्हें आहार कहाँ से हो ? पहले पाठ ऐसा लिया, बीजोरा पाक। बीजोरा पाक है न ? बीजोरा आता है न ? बीजोरा नहीं आता ? बीजोरा पाक लाये थे। भगवान को छह महीने दस्त का... छह महीने। तो पहले बीजोरा पाक लाये थे। फिर कहा कि, बीजोरा पाक भी था, परन्तु वृद्ध का मत है कि माँस भी है। आहाहा ! सम्यग्दृष्टि माँस नहीं लेता, सम्यग्दृष्टि को ऐसा भाव (नहीं होता)। माँस का, शराब का, मधु को भाव तो होता नहीं। उसे लगा दिया। क्या करे ? जगत में कोई पूछनेवाला नहीं। जहाँ जिसे ठीक लगा, वहाँ लगा दिया। भगवती टीका में पाठ है, हों ! मांगीलालजी ! भगवती का पन्द्रहवाँ शतक है या नहीं ? तुमने देखा है या नहीं ? भगवती का पन्द्रहवाँ शतक, उस शतक में यह पाठ है। यहाँ वृद्ध कहते हैं... मुझे उस वृद्ध पर (लेना है)। वहाँ भी वृद्ध शब्द पड़ा है, यहाँ भी वृद्ध शब्द पड़ा है। क्योंकि यह जयसेनाचार्य का शब्द है न ! इससे पहले तो श्वेताम्बर निकल गये। समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं, वृद्ध—जिनेन्द्र, सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ (द्वारा) प्ररूपित किया गया है कि वह परचारित्र है, वह अपना स्वचारित्र नहीं। **इसलिए (ऐसा निश्चित होता है कि) परचारित्र में प्रवृत्ति, सो बन्धमार्ग ही है,...** लो ! परचारित्र में प्रवृत्ति, शुभराग में प्रवृत्ति, वह बन्धमार्ग ही है। स्पष्टीकरण कर दिया, (कि वह) मोक्षमार्ग नहीं, वह मोक्षमार्ग है नहीं। मोक्षमार्ग एक ही है। अपने शुद्ध स्वभाव का सम्यग्दर्शन, ज्ञान निर्मल परिणति, निर्विकल्प वीतरागी पर्याय, वह एक ही मोक्षमार्ग है। बीच में राग आता है, उसे निमित्त से उपचार से कहा है। वह है नहीं। समझ में आया ? देखो ! जयसेनाचार्य भी कितनी नम्रता से कहते हैं ! वृद्ध का मत ऐसा है। भगवान के वृद्ध, जो वृद्ध लोग थे, वे तो ऐसा कहते हैं, अपने पूर्व के बड़े—सन्त, मुनि (कहते हैं) कि पुण्य में तो आस्रव होता है, भाई ! बन्ध है। मोक्षमार्ग भगवान ने—बड़ों ने तो कहा नहीं। तू कहाँ से निकालता है ? ओहोहो ! अब १५८। यह परचारित्र प्रवर्तन की बात की, अब स्वचारित्र की बात।

गाथा - १५८

जो सव्वसंगमुक्को णण्णमणो अप्पणं सहावेण।
जाणदि पस्सदि णियदं सो सगचरियं चरदि जीवो।।१५८।।

जो सर्व संगविमुक्त एवं अनन्य आत्मस्वभाव से।
जाने तथा देखे नियत रह उसे चारित्र है कहा।।१५८।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो, [सर्वसङ्गमुक्तः] सर्वसंगमुक्त और [अनन्यमनाः] अनन्यमनवाला वर्तता हुआ [आत्मानं] आत्मा को [स्वभावेन] (ज्ञानदर्शनरूप) स्वभाव द्वारा [नियतं] नियतरूप से (-स्थिरतापूर्वक) [जानाति पश्यति] जानता-देखता है, [सः जीवः] वह जीव [स्वकचरितं] स्वचारित्र [चरति] आचरता है।

टीका :- यह, स्वचारित्र में प्रवर्तन करनेवाले के स्वरूप का कथन है।

जो (जीव) वास्तव में [१]निरुपराग उपयोगवाला होने के कारण सर्वसंगमुक्त वर्तता हुआ, परद्रव्य से [२]व्यावृत्त उपयोगवाला होने के कारण [३]अनन्यमनवाला वर्तता हुआ, आत्मा को ज्ञानदर्शनरूप स्वभाव द्वारा नियतरूप से अर्थात् अवस्थितरूप से जानता-देखता है; वह जीव वास्तव में स्वचारित्र आचरता है; क्योंकि वास्तव में [४]दृशिज्ञप्तिस्वरूप पुरुष में (-आत्मा में) तन्मात्ररूप से वर्तना, सो स्वचारित्र है।

भावार्थ :- जो जीव शुद्धोपयोगी वर्तता हुआ और जिसकी परिणति पर की ओर नहीं जाती, ऐसा वर्तता हुआ, आत्मा को स्वभावभूत ज्ञानदर्शनपरिणाम द्वारा स्थिरतापूर्वक जानता-देखता है, वह जीव स्वचारित्र का आचरण करनेवाला है;

---

१. निरुपराग=उपराग रहित; निर्मल; अविकारी; शुद्ध। [निरुपराग उपयोगवाला जीव समस्त बाह्य-अभ्यन्तर संग से शून्य है तथापि निःसंग परमात्मा की भावना द्वारा उत्पन्न सुन्दर आनन्दस्यन्दी परमानन्दस्वरूप सुखसुधारस के आस्वाद से, पूर्ण कलश की भाँति, सर्व आत्मप्रदेश में भरपूर होता है।]

२. व्यावृत्त=विमुख हुआ; पृथक् हुआ; निवृत्त हुआ; निवृत्त; भिन्न।

३. अनन्यमनवाला=जिसकी परिणति अन्य के प्रति नहीं ऐसा। (मन=चित्त; परिणति; भाव)

४. दृशि=दर्शनक्रिया; सामान्य अवलोकन।

क्योंकि दृशिज्ञप्तिस्वरूप आत्मा में मात्र दृशिज्ञप्तिरूप से परिणमित होकर रहना, वह स्वचारित्र है॥१५८॥

गाथा - १५८ पर प्रवचन

जो सव्वसंगमुक्को णण्णमणो अप्पणं सहावेण।
जाणदि पस्सदि णियदं सो सगचरियं चरदि जीवो।।१५८।।

टीका :- यह, स्वचारित्र में प्रवर्तन करनेवाले के स्वरूप का कथन है। जो (जीव) वास्तव में निरुपराग... पहले सोपराग था, उससे विरुद्ध **उपराग रहित; निर्मल; अविकारी; शुद्ध।** पहले सोपराग की बात थी, यह निरुपराग है। **निरुपराग उपयोगवाला जीव समस्त बाह्य-अभ्यन्तर संग से शून्य है....** देखो! (फुटनोट)। **तथापि निःसंग परमात्मा की भावना द्वारा....** बाह्य-अभ्यन्तर संग से शून्य है। राग भी नहीं और बाहर संग भी नहीं। बाहर में वस्त्र-पात्र भी नहीं, अन्तर में राग नहीं। **बाह्य-अभ्यन्तर संग से शून्य है, तथापि निःसंग परमात्मा की....** संग के सामने। भगवान आत्मा राग के संग बिना परमात्मा अपने निज स्वरूप की भावना द्वारा, भावना द्वारा अर्थात् उसकी एकाग्रता द्वारा। अपने शुद्ध स्वभाव की एकाग्रता द्वारा **उत्पन्न सुन्दर आनन्दस्यन्दी....** सुन्दर आनन्द को उत्पन्न करनेवाला **परमानन्दस्वरूप सुखसुधारस के आस्वाद से,...** भाषा करते थकते नहीं हैं। जयसेनाचार्यदेव टीका करते हैं कि ओहो! आत्मा दर्शन—सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक परसंग से रहित होकर अपने निःसंग स्वरूप में रमण करता है तो क्या होता है? कि **सुन्दर आनन्दस्पंदी...** स्पंदी अर्थात् क्या? झरता। सुन्दर परमानन्द, सुन्दर आनन्द झरता परमानन्दस्वरूप। आत्मा में आनन्द तो नित्य पड़ा है, उसमें जब उपयोग लगाया तो आनन्द झरता है। जैसे पर्वत में से पानी झरता है। बड़े पर्वत में से पानी (झरता है)। भगवान आनन्दस्वरूप पर्वत अतीन्द्रिय आनन्द भगवान अपना निज स्वरूप, उसमें दृष्टि, लीनता करने से परमानन्दस्वरूप आनन्द झरता है। पोपटभाई! यह आनन्द झरता है, वह मोक्षमार्ग है। आहाहा! मोक्षमार्ग में दुःख नहीं। कोई कहता है कि, आहाहा! भाई! बहुत दुःख है। मोक्षमार्ग में तो बहुत सहन करना पड़ता है, कष्ट है।

कहते हैं कि तुझे मोक्षमार्ग की खबर नहीं। मोक्षमार्ग कष्टदायक नहीं, आनन्ददायक है। मोक्षमार्ग तो आनन्ददायक है। उसे तू कष्टदायक मानता है (तो तुझे) वस्तु की खबर नहीं। समझ में आया?

परमात्मा की भावना द्वारा... परमात्मा कौन? अपना (आत्मा), हों! नि:संग परम-आत्मा। परम आत्मा अर्थात् बहिरात्मा नहीं, अन्तरात्मा की पर्याय नहीं, अन्तर परम आत्मा का निज स्वरूप, उसकी भावना द्वारा, उसकी एकाग्रता द्वारा उत्पन्न सुन्दर आनन्द झरता। सुन्दर आनन्द झरता अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन। दु:ख की जहाँ गन्ध नहीं। बाईस परीषह सहन करना पड़े और ऐसा और वैसा। **परमानन्दस्वरूप सुखसुधारस के आस्वाद से,...** वह सुख सुधारस अमृतरस। अपने आनन्द के अमृतरस के आस्वाद से **पूर्ण कलश की भाँति,...** जैसे कलश भरा होता है न? वैसे यह भी एक कलश है, देखो! यह कलश की भाँति है न! अन्दर चैतन्य आनन्द का कलश भरा है। आनन्द से भरपूर है अपना निज कलश। यह मिट्टी का कलश भिन्न है। अपना स्वरूप अरूपी अमूर्त में, इस कलश की भाँति है न? अन्दर चैतन्य आनन्द का कलश भरा है। आनन्द से भरपूर है अपना निज कलश। यह मिट्टी का कलश (शरीर) भिन्न है। अपना स्वरूप अरूपी अमूर्त में आनन्द का कलश भरा है। ऐसे भरपूर भरपूर भरा है। **पूर्ण कलश की भाँति, सर्व आत्मप्रदेश में भरपूर होता है।** असंख्य प्रदेश में आनन्द के झरने (बहते हैं), आनन्द के अंकुर फूटते हैं। राग बिना स्वरूप की चारित्र की दशा सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक जहाँ स्थिरता हुई तो कहते हैं कि आनन्द के झरने फूटते हैं। समझ में आया? लो, इसे मोक्षमार्ग कहते हैं। इसका नाम स्वचारित्र कहते हैं। यह स्वचारित्र की रमणता इसे कहते हैं। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ७, शुक्रवार, दिनांक - १४-०८-१९६४, गाथा-१५८-१५९, प्रवचन-३

.... समझ में आया? छठवें गुणस्थान में अपना शुद्ध स्वरूप अनुभव की दृष्टि हुई है, और अपना स्वसंवेदन निश्चयज्ञान भी हुआ है। तदुपरान्त तीन कषाय का अभाव (रूप) चारित्र की परिणति—पर्याय भी है। परन्तु अभी वहाँ शुभराग पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्परूप शुभ उपयोग वर्तता है, तब तक शुद्ध उपयोगरूपी चारित्र नहीं है। समझ में आया? तो कहते हैं कि **जो (जीव) वास्तव में निरुपराग....** उपरागरहित, शुभ उपयोगरहित, शुद्ध उपयोग से सहित (होने के कारण)। समझ में आया? चौथे, पाँचवें गुणस्थान में ध्यान में निर्विकल्प शुद्ध उपयोग होता है, परन्तु वह अल्प है। वह चारित्र की जो स्वचारित्र की रमणता पूर्ण हो, वह वहाँ चौथे, पाँचवें में नहीं है। समझ में आया? चौथे, पाँचवें गुणस्थानवाला भी जब अपने ध्यान में एकाकार है, तब जरा शुद्ध उपयोग तो प्रगट हुआ है, परन्तु सातवें में जो चारित्र सहित शुद्ध उपयोग है, वह पूर्ण शुद्ध उपयोग नहीं। और पूर्ण शुद्धोपयोग बिना चारित्र की-स्वचारित्र की पूर्णता नहीं होती। गजब मार्ग! देवीलालजी! समझ में आया?

पहले **वास्तव में निरूपराग...** शुद्ध उपयोगवाला **होने के कारण...** यह कारण दिया। **सर्वसंगमुक्त...** है। यह स्त्री, कुटुम्ब, परिवार से तो मुक्त है परन्तु शुभराग से भी मुक्त है। समझ में आया? उसके वस्त्र-पात्र से तो मुक्त है द्रव्य से, परन्तु अन्दर में शुभभाव विकल्प है, उससे भी मुक्त है। सर्वसंगमुक्त। बाह्य में मुक्त और अभ्यन्तर में भी ऐसा शुभराग जो पंच महाव्रत या अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प था, उससे मुक्त है। तब उसे शुद्ध उपयोग होता है, चारित्र का। समझ में आया? जब तक वस्त्र-पात्र रहे, तब तक उसका राग रहे, वहाँ तक चारित्र की प्राप्ति नहीं होती। समझ में आया? और चारित्र की प्राप्ति हुई, वस्त्र पात्र का राग छूट गया, चारित्र की प्राप्ति हुई परन्तु जब तक अट्ठाईस मूलगुण का, पंच महाव्रत का विकल्प उठता है, वहाँ तक स्वचारित्र की एकता अभेदता नहीं है। ओहोहो! समझ में आया?

तो कहते हैं, **सर्वसंगमुक्त...** बाह्य से तो मुक्त है ही। उसका द्रव्यलिंग तो नग्न है

और अन्दर में शुभराग से भी मुक्त है। तब ऐसा **सर्वसंगमुक्त वर्तता हुआ,...** यह उत्कृष्ट मोक्षमार्ग की बात चलती है न! तो इसे समझना तो पड़ेगा या नहीं? धन्नालालजी! लो! यह सब लोग चलाते हैं न? व्यवहार समकित है, व्यवहार समकित है, चौथे, पाँचवें, छठवें में। उसे खबर नहीं कि चौथे गुणस्थान में अनुभव होता है। अनुभव स्वआश्रित होता है, तब चौथा गुणस्थान आता है। ऐसा प्रतीतिमात्र (करे कि) भगवान सच्चे हैं, देव-गुरु सच्चे, तत्त्व सच्चा, ऐसी प्रतीतिमात्र सम्यग्दर्शन नहीं है। समझ में आया?

अपने ज्ञान का—आनन्द का अनुभव एक अंश भी स्वसंवेदनज्ञान और निज स्वरूप की आनन्द के उपयोग में प्रतीति होना, इसका नाम अनुभव में प्रतीति होना, इसका चौथा गुणस्थान है। समझ में आया? ऐसी की ऐसी प्रतीति... प्रतीति (करे कि) भगवान सच्चे, देव-गुरु सच्चे, ऐसा सच्चा (माने) वह सम्यग्दर्शन है ही नहीं। भाई! यह लोग जो यह व्यवहार कहते हैं न, उसे अनुभव की खबर नहीं, इसलिए प्रतीति... प्रतीति (करते हैं)। ऐसा नहीं है। सात प्रकृति का क्षय या क्षयोपशम भले हो, परन्तु वह स्वआश्रय से है। स्व चैतन्यमूर्ति भगवान विकल्प और निमित्त का लक्ष्य छोड़कर निज शुद्ध ज्ञायक के अनुभव में वेदन में शान्ति में आनन्द का अनुभव हुआ, उसमें उसे जो प्रतीति हुई, ऐसी भूमिका को चौथा गुणस्थान कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? अकेली प्रतीति... प्रतीति काम नहीं आती। समझ में आया? स्वस्वभाव का अन्तर में उपयोग जमे बिना या स्वस्वभाव की राग से रहित एकता अनुभव का आनन्द हुए बिना सम्यग्दर्शन तीन काल में कभी नहीं होता। पण्डितजी! अकेली प्रतीति... प्रतीति करता है तो ऐसा नहीं चलता, ऐसा कहते हैं।

परन्तु यह है तो प्रतीति। परन्तु वह निज ज्ञायकस्वरूप के वेदन में प्रतीति होती है, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन का लक्षण तो प्रतीति ही है। परन्तु वह प्रतीति कैसी? कि निज ज्ञानस्वरूप चिदानन्द प्रभु का अन्तर में लक्ष्य करके आनन्द का वेदन आया और अनन्त गुण का अंश शुद्धरूप परिणमा, अनन्त प्रत्येक गुण का शुद्ध परिणमन हुआ,उसमें जो प्रतीति हुई, उसका नाम भगवान सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? ऐसा सम्यग्दर्शन होने पर भी और स्वरूप का स्वसंवेदनज्ञान का

अंश हुआ होने पर भी जब तक स्वरूप की परिणति विशेष जमे नहीं, तब तक चारित्र नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो विकल्पात्मक। यहाँ तो स्वरूप की स्थिरतारूप चारित्र (की बात है)। पहले तो हम कहते थे, छठवें गुणस्थान की स्वरूप की स्थिरतारूप चारित्र। यह चलता है, वह तो शुद्ध उपयोगरूपी चारित्र। सप्तम (गुणस्थान)। समझ में आया? जिस भूमिका में जितनी निर्मलता है और जितनी मलिनता है, उसका इसे ज्ञान तो करना चाहिए या नहीं? या ऐसे का ऐसे चले? सेठ! ज्ञान करना चाहिए, हों! यह सब समझना चाहिए। पैसे-बैसे वहाँ कुछ नहीं चले। लाख, दो लाख रुपये खर्च कर डाले तो धर्म-बर्म होगा या नहीं?

मुमुक्षु : इस देश में नहीं होता होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस देश में (पैसा खर्च करने से) धर्म नहीं होता, वहाँ तुम्हारे बुन्देलखण्ड में होता हो तो कौन जाने! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भूमि तो यही है, भाई! आत्मा भी यही है।

भगवान आत्मा... पहले इसे इसकी श्रद्धा में बात लेनी चाहिए कि भगवान आत्मा जिस समय में निज ज्ञायकभाव को पकड़कर निर्विकल्प शान्ति का वेदन हुआ और उस वेदन में प्रतीति हुई, उसका नाम भगवान चौथा अविरत गुणस्थान कहते हैं— अविरत सम्यग्दृष्टि। सेठी! समझ में आया? और फिर स्वरूप में विशेष स्व-आचरण का अंश विशेष अंश प्रगट हुआ तो पंचम गुणस्थान के योग्य दर्शनप्रतिमा कहा जाता है। दर्शनप्रतिमा वह पंचम गुणस्थान के योग्यता की है। वह चौथे गुणस्थान में नहीं। समझ में आया? पहली प्रतिमा। तो उसमें स्वरूप, स्वरूपाचरण में आंशिक शान्ति बढ़ जाती है। अकषाय का अंश जो चौथे (गुणस्थान) में स्वरूपाचरण प्रगट हुआ है, उससे भी थोड़ा (विशेष) शान्ति का अंश पाँचवें में दर्शनप्रतिमा की भूमिका में विकल्प होने पर भी, स्वरूप की शान्ति का अंश का विशेष वेदन है। उसे पंचम गुणस्थान कहा जाता है।

समझ में आया ? और जितनी दो, तीन, चार, पाँच, छह, ग्यारह प्रतिमा होती है, उतनी-उतनी अन्तर में अविकारी शान्ति का अंश बढ़ता है और उस प्रकार का प्रतिमा का विकल्प भी है। प्रतिमा का विकल्प है, वह पुण्यबन्ध है। जितनी अविकारी शान्ति की परिणति हुई, वह संवर, निर्जरा है। डालचन्दजी ! यह ऐसा है।

मुमुक्षु : अविकारी शान्ति का वेदन बढ़ने का नाम प्रतिमा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसका नाम वास्तव में निश्चय प्रतिमा है। विकल्प आया, वह व्यवहार प्रतिमा है।

पश्चात् (स्थिरता बढ़कर) स्वरूप में स्थिरता पहले सातवाँ गुणस्थान आता है। यहाँ स्वचारित्र सप्तम शुद्धोपयोग, पश्चात् च्युत होकर विकल्प आया, वह छठवाँ गुणस्थान हुआ। शुद्ध परिणति साथ में है और पंच महाव्रतादि का विकल्प है, वहाँ तक शुद्ध उपयोगरूपी स्वचारित्र की पूर्णता नहीं। समझ में आया ? ओहोहो ! यह तो वीतरागमार्ग है। वीतरागता प्रगट हुई हो, उतना ही मार्ग है। जितना राग बाकी रहा, वह वास्तव में मार्ग है नहीं।

तो कहते हैं कि जब आत्मा में शुद्ध उपयोगवाला होने के कारण सर्वसंगमुक्त है। इस कारण से सर्वसंगमुक्त है। शुद्ध उपयोग है, वहाँ सर्वसंग से मुक्त ही वर्तता है। समझ में आया ? वहाँ वस्त्र-पात्र आदि लेने का विकल्प था और सप्तम गुणस्थान आ जाये और छठवाँ आ जाये, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? तो कहते हैं कि जब शुद्धोपयोग वर्तता है, (तब) **सर्वसंगमुक्त वर्तता हुआ, परद्रव्य से व्यावृत्त उपयोगवाला...** अब नास्ति से बात की। परद्रव्य से विमुख हुआ, विकल्प से विमुख हुआ। अट्ठाईस मूलगुण का जो विकल्प है, उससे भी विमुख हुआ। समझ में आया ?

परद्रव्य से व्यावृत्त उपयोगवाला... क्या कहते हैं ? जब निज स्वरूप की दृष्टि और ज्ञान हुआ, पश्चात् जब शुद्ध उपयोग वर्तता है, तो सर्वसंगमुक्त ही है। बाह्य से संगमुक्त न हो और अन्दर से राग से मुक्त न हो और सातवाँ गुणस्थान शुद्ध उपयोग आ जाये, ऐसा नहीं होता। समझ में आया ? परद्रव्य से व्यावृत्त। है न नीचे ? विमुख हुआ। पर शब्द से (आशय) विकल्प से भी विमुख हुआ। निवृत्त हुआ। निवृत्त अथवा भिन्न।

ऐसे उपयोगवाला होने से राग का भी भाव जो है, वह वास्तव में परद्रव्य है। उससे भी विमुख होने के कारण। यह कारण दिया। उसमें एक कारण दिया था कि शुद्ध उपयोगवाला होने के कारण सर्वसंगमुक्त वर्तता हुआ। पश्चात् **परद्रव्य से व्यावृत्त उपयोगवाला होने के कारण अनन्यमनवाला वर्तता हुआ,....** अपने स्वरूप के अतिरिक्त बाह्य विकल्प है नहीं। अनन्य मनवाला का (अर्थ) किया, देखो! **जिसकी परिणति अन्य के प्रति नहीं ऐसा। (मन=चित्त; परिणति; भाव)**। जिसका भाव अनन्य मनवाला (अर्थात्) अपने स्वरूप में ही जिसका उपयोग है, पर के ऊपर विकल्प है नहीं। ऐसा **परद्रव्य से व्यावृत्त उपयोगवाला होने के कारण....** पर में विकल्प (रूप) अन्यपना रहा नहीं, **अनन्यमनवाला वर्तता हुआ,....** बहुत सूक्ष्म बात, यह तो मोक्षमार्ग की बात है, भाई! इस कक्षा में तो यह चला अभी। समझे तो सही, बात क्या है! निश्चय क्या है, व्यवहार क्या है, निमित्त क्या है, यह अन्तर समझे बिना इसकी दृष्टि निर्मल कहाँ से होगी? समझ में आया? ऐसे का ऐसे बिना भान के माने, उससे कहीं दृष्टि निर्मल नहीं होगी।

कहते हैं, **अनन्य मनवाला...** भगवान आत्मा अपने शुद्ध उपयोग में ही अन्य से रहित होकर रमता है। **आत्मा को...** अब कहते हैं **ज्ञानदर्शनरूप स्वभाव द्वारा...** आत्मा में दर्शन जो सामान्य चेतना और विशेष चेतना ज्ञान, ऐसा जो स्वभाव है, उसके द्वारा **नियतरूप से अर्थात् अवस्थितरूप से जानता-देखता है;....** अपने में अपने को ज्ञान-दर्शन से जानता-देखता है। अपने में अपने को जानता-देखता है। **वह जीव वास्तव में स्वचारित्र आचरता है;....** वह जीव वास्तव में स्वचारित्र आचरता है। शुद्ध उपयोग में है, वह स्वचारित्र आचरता है। आहाहा! यहाँ तो लोगों ने अभी नग्नपना और बाह्य क्रिया में चारित्र मान लिया और बहुत तो फिर अन्दर पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प उठें, उनमें चारित्र मान लिया। यह चारित्र-फारित्र नहीं है। अट्ठाईस मूलगुण भी मुनि को होते हैं, वह व्यवहारचारित्र बन्ध का कारण है। समझ में आया?

भगवान आत्मा अपने स्वरूप में स्वचारित्र में शुद्ध उपयोग में निरुपराग अविकारी अराग की परिणति में वर्तता है, तब वह वास्तव में स्वचारित्र आचरता है। स्वरूप के-द्रव्य के आचरण में वर्तता है, तब वास्तव में स्वचारित्र आचरता है। विकल्प में आचरण

है, तब तक स्वचारित्र की पूर्णता है नहीं। समझ में आया? आहाहा! क्यों? **क्योंकि वास्तव में दृशिज्ञप्तिस्वरूप....** दृशि शब्द से दर्शनक्रिया और ज्ञप्तिस्वरूप अर्थात् जानने की क्रियास्वरूप **पुरुष में (—आत्मा में)...** पुरुष अर्थात् आत्मा **तन्मात्ररूप से वर्तना, सो स्वचारित्र है।** भगवान आत्मा में ज्ञान-दर्शनभाव में तन्मयरूप से वर्तना, वह स्वचारित्र शुद्ध उपयोग अनन्यमनवाला—अन्य से रहित-परद्रव्य से व्यावृत्त-शुद्ध उपयोग में रमनेवाला-सर्वसंग से मुक्त है। समझ में आया?

कोई ऐसा कहता है कि हमारे तो वस्त्र और पात्र है और हमको सप्तम गुणस्थान आ जाता है। करणानुयोग की अपेक्षा से तो आ जाये न? चरणानुयोग की अपेक्षा से नहीं आता।—यह बात है ही नहीं। यह बात तो सिद्ध करते हैं। समझ में आया? जब तक वस्त्र का एक तन्तु भी, लंगोटी भी रखने का भाव है, तब तक चारित्र नहीं आता। उससे (बाह्यवस्तु के) कारण से नहीं, उसकी ममता है (उसके कारण से)। समझ में आया? और कोई ऐसा कहते हैं न कि पहले सप्तम गुणस्थान आ जाता है। करणानुयोग की अपेक्षा से सप्तम गुणस्थान आता है, चरणानुयोग की अपेक्षा से पाँचवाँ रहता है। तो ऐसा नहीं है। यह कहते हैं, सर्वसंगमुक्त। ओहोहो!

मुमुक्षु : सर्वसंगमुक्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वसंगमुक्त। आहा! ममत्व के परिणाम से मुक्त और ममत्व के निमित्त से भी मुक्त, ऐसे स्वरूपाचरण को भगवान शुद्ध उपयोगरूपी स्वचारित्र—स्वद्रव्य के आश्रय से आचरना, चारित्र कहते हैं। राग में जितना रहना होता है, उतना अभी परद्रव्यरूपी आचरण है। उतना भी अभी बन्ध का कारण है। भगवान महावीर आदि को जब तक मुनिपने में विकल्प उठता था छठवें गुणस्थान में, तब तक उतना परचारित्र था। आहाहा! समझ में आया? अब यह परचारित्र से आत्मा की मुक्ति होगी? वह तो बन्ध का कारण है। इसलिए तो यहाँ कहा, **(-आत्मा में) तन्मात्ररूप से वर्तना, सो स्वचारित्र है।** यह चारित्र, वह साक्षात् मोक्ष का कारण है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान मोक्ष का कारण है, परन्तु परम्परा कारण है। सीधा कारण तो चारित्र ही है। समझ में आया? साक्षात् चारित्र प्रगट हुए बिना मोक्ष होता नहीं। क्षायिक समकिती हो, तीन ज्ञान के धनी

तीर्थंकर हो, तीर्थंकर भी तीन ज्ञान—मति, श्रुत, अवधि लेकर, क्षायिक समकित लेकर आते हैं, परन्तु जब तक शुद्ध का उपयोग चारित्र नहीं होता, तब तक उन्हें भी मुक्ति नहीं होती। समझ में आया? पोपटभाई! ....

भावार्थ :- जो जीव शुद्धोपयोगी वर्तता हुआ... स्पष्ट भाषा की है। उसमें बहुत अर्थ किये थे न, निरुपरागवाले में? तो अन्त में (फुटनोट में) शुद्ध है न? **उपराग रहित; निर्मल; अविकारी; शुद्ध।** तो शुद्ध अर्थ ले लिया। **जो जीव शुद्धोपयोगी वर्तता हुआ और जिसकी परिणति पर की ओर नहीं जाती ऐसा वर्तता हुआ,...** पर के प्रति जिसका लक्ष्य ही नहीं जाता और अपने द्रव्य में लीन हो गया है। **आत्मा को स्वभावभूत ज्ञानदर्शनपरिणाम द्वारा....** आत्मा के स्वभावभूत ज्ञानदर्शन परिणाम द्वारा **स्थिरतापूर्वक जानता-देखता है,....** देखो! अपने ज्ञान-दर्शन परिणामसहित स्थिरतापूर्वक जानता-देखता है। अपने को अपने में ज्ञान-दर्शन के परिणामसहित स्थिरतापूर्वक जानता-देखता है। **वह जीव...** पर को जानने-देखने की बात यहाँ है ही नहीं। **स्वचारित्र का आचरण करनेवाला है;....** क्या कहा, समझ में आया? ज्ञान-दर्शन परिणाम द्वारा स्थिरतापूर्वक जानता-देखता है। किसे? अपने को। ओहोहो!

वह जीव स्वचारित्र का आचरण करनेवाला है; क्योंकि दृशिज्ञप्तिस्वरूप आत्मा में मात्र दृशिज्ञप्तिरूप से परिणमित होकर रहना, वह स्वचारित्र है। जानने-देखने में परिणत होना और राग रहित परिणति होना, वही स्वचारित्र है। कहो, समझ में आया? अब १५९।

मुमुक्षु : 'अपने को आप भूलकर हौरान हो गया' यही है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यही है। 'अपने को आप भूलकर हैरान हो गया'। पर को जाना, ग्यारह (अंग) को जाना, ग्यारह अंग जाने और बहुत विद्या पढ़ा, राग की मन्दता बहुत की। सब आत्मा के लिये व्यर्थ है। समझ में आया? अपना आत्मा ज्ञान का सूर्य है, ज्ञान का सूर्य है, उसे राग का आश्रय छोड़कर स्वभाव के आश्रय की दृष्टि, ज्ञान करके स्वरूप में लीनता की प्राप्ति होना, वही एक साक्षात् चारित्र मोक्ष का उपाय है। समझ में आया? दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों मोक्ष का मार्ग कहा था। यहाँ चारित्र ही मोक्ष का मार्ग है। यह आ गया, चारित्र में दर्शन-ज्ञान (आ गये)। समझ में आया?

गाथा - १५९

चरियं चरदि सगं सो जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा।
दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो।।१५९।।

पर द्रव्य से जो विरत हो निजभाव में वर्तन करे।
गुणभेद से भी पार जो वह स्व-चरित को आचरे।।१५९।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो, [परद्रव्यात्मभावरहितात्मा] परद्रव्यात्मक भावों से रहित स्वरूपवाला वर्तता हुआ, [दर्शनज्ञानविकल्पम्] (निजस्वभावभूत) दर्शनज्ञानरूप भेद को [आत्मनः अविकल्पं] आत्मा से अभेदरूप [चरति] आचरता है, [सः] वह [स्वकं चरितं चरति] स्वचारित्र को आचरता है।

टीका :- यह, शुद्ध स्वचारित्रप्रवृत्ति के मार्ग का कथन है।

जो योगेन्द्र, समस्त [१]मोहव्यूह से बहिर्भूत होने के कारण परद्रव्य के स्वभावरूप भावों से रहित स्वरूपवाले वर्तते हुए, स्वद्रव्य को एक को ही अभिमुखता से अनुसरते हुए निजस्वभावभूत दर्शनज्ञान भेद को भी आत्मा से अभेदरूप से आचरते हैं, वे वास्तव में स्वचारित्र को आचरते हैं।

इस प्रकार वास्तव में [२]शुद्धद्रव्य के आश्रित, [३]अभिन्नसाध्यसाधनभाववाले

---

१. मोहव्यूह=मोहसमूह [जिन मुनीन्द्र ने समस्त मोहसमूह का नाश किया होने से 'अपना स्वरूप परद्रव्य के स्वभावरूप भावों से रहित है' ऐसी प्रतीति और ज्ञान जिन्हें वर्तता है, तथा तदुपरान्त जो केवल स्वद्रव्य में ही निर्विकल्परूप से अत्यन्त लीन होकर निजस्वभावभूत दर्शनज्ञान भेदों को आत्मा से अभेदरूप आचरते हैं, वे मुनीन्द्र स्वचारित्र का आचरण करनेवाले हैं।]

२. यहाँ निश्चयनय का विषय शुद्धद्रव्य अर्थात् शुद्धपर्यायपरिणत द्रव्य है, अर्थात् अकेले द्रव्य की (-परनिमित्त रहित) शुद्धपर्याय है; जैसे कि, निर्विकल्प शुद्धपर्यायपरिणत मुनि को निश्चयनय से मोक्षमार्ग है।

३. जिस नय में साध्य और साधन अभिन्न (अर्थात् एक प्रकार के) हों, वह यहाँ निश्चयनय है। जैसे कि, निर्विकल्पध्यानपरिणत (-शुद्धात्मश्रद्धानज्ञानचारित्र परिणत) मुनि को

निश्चयनय के आश्रय से मोक्षमार्ग का प्ररूपण किया गया। और जो पहले (१०७वीं गाथा में) दर्शाया गया था, वह [४]स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित, [५]भिन्नसाध्यसाधन-भाववाले व्यवहारनय के आश्रय से (-व्यवहारनय की अपेक्षा से) प्ररूपित किया गया था। इसमें परस्पर विरोध आता है, ऐसा भी नहीं है, क्योंकि सुवर्ण और [६]सुवर्णपाषाण की भाँति निश्चय-व्यवहार को साध्य-साधनपना है; इसलिए पारमेश्वरी (-जिनभगवान की) [७]तीर्थप्रवर्तना [८]दोनों नयों के आधीन है॥१५९॥

निश्चयनय से मोक्षमार्ग है क्योंकि वहाँ (मोक्षरूप) साध्य और (मोक्षमार्गरूप) साधन एक प्रकार के अर्थात् शुद्धात्मरूप (-शुद्धात्मपर्यायरूप) हैं।

४. जिन पर्यायों में स्व तथा पर कारण होते हैं अर्थात् उपादानकारण तथा निमित्तकारण होते हैं, वे पर्यायें स्वपरहेतुक पर्यायें हैं; जैसे कि छठवें गुणस्थान में (द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप के आंशिक अवलम्बन सहित) वर्तते हुए तत्त्वार्थश्रद्धान (नवपदार्थगत श्रद्धान), तत्त्वार्थज्ञान (नवपदार्थगत ज्ञान) और पंचमहाव्रतादिरूप चारित्र—यह सब स्वपरहेतुक पर्यायें हैं। वे यहाँ व्यवहारनय के विषयभूत हैं।

५. जिस नय में साध्य और साधन भिन्न हों (-भिन्न प्ररूपित किए जाऐं), वह यहाँ व्यवहारनय हैं; जैसे कि, छठवें गुणस्थान में (द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप के आंशिक आलम्बन सहित) वर्तते हुए तत्त्वार्थश्रद्धान (नवपदार्थसम्बन्धी श्रद्धान), तत्त्वार्थज्ञान और पंचमहाव्रतादिरूप चारित्र व्यवहारनय से मोक्षमार्ग है क्योंकि (मोक्षरूप) साध्य स्वहेतुक पर्याय है और (तत्त्वार्थश्रद्धानादिमय मोक्षमार्गरूप) साधन स्वपरहेतुक पर्याय है।

६. जिस पाषाण में सुवर्ण हो, उसे सुवर्णपाषाण कहा जाता है। जिस प्रकार व्यवहारनय से सुवर्णपाषाण सुवर्ण का साधन है; उसी प्रकार व्यवहारनय से व्यवहारमोक्षमार्ग निश्चयमोक्षमार्ग का साधन है; अर्थात् व्यवहारनय से भावलिंगी मुनि को सविकल्प दशा में वर्तते हुए तत्त्वार्थश्रद्धान, तत्त्वार्थज्ञान और महाव्रतादिरूप चारित्र निर्विकल्प दशा में वर्तते हुए शुद्धात्म-श्रद्धानज्ञानानुष्ठान के साधन हैं।

७. तीर्थ=मार्ग (अर्थात् मोक्षमार्ग); उपाय (अर्थात् मोक्ष का उपाय); उपदेश; शासन।

८. जिनभगवान के उपदेश में दो नयों द्वारा निरूपण होता है। वहाँ, निश्चयनय द्वारा तो सत्यार्थ निरूपण किया जाता है और व्यवहारनय द्वारा अभूतार्थ उपचरित निरूपण किया जाता है।

प्रश्न :- सत्यार्थ निरूपण ही करना चाहिए; अभूतार्थ उपचरित निरूपण किसलिए किया जाता है ?

गाथा - १५९ पर प्रवचन

अब १५९।

चरियं चरदि सगं सो जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा।
दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो।।१५९।।

ओहोहो! आचार्यों ने जगत की करुणा करके ऐसे श्लोक कहाँ रच गये और

उत्तर :- जिसे सिंह का यथार्थ स्वरूप सीधा समझ में न आता हो, उसे सिंह के स्वरूप के उपचरित निरूपण द्वारा अर्थात् बिल्ली के स्वरूप के निरूपण द्वारा सिंह के यथार्थ स्वरूप की समझ की ओर ले जाते हैं; उसी प्रकार जिसे वस्तु का यथार्थस्वरूप सीधा समझ में न आता हो, उसे वस्तुस्वरूप के उपचरित निरूपण द्वारा वस्तुस्वरूप की यथार्थ समझ की ओर ले जाते हैं और लम्बे कथन के बदले में संक्षिप्त कथन करने के लिये भी व्यवहारनय द्वारा उपचरित निरूपण किया जाता है। यहाँ इतना लक्ष्य में रखनेयोग्य है कि—जो पुरुष बिल्ली के निरूपण को ही सिंह का निरूपण मानकर, बिल्ली को ही सिंह समझ ले, वह तो उपदेश के ही योग्य नहीं है, उसी प्रकार जो पुरुष उपचरित निरूपण को ही सत्यार्थ निरूपण मानकर, वस्तुस्वरूप को मिथ्यारीति से समझ बैठे, वह तो उपदेश के ही योग्य नहीं हैं।

[यहाँ एक उदाहरण लिया जाता है :— साध्य-साधन सम्बन्धी सत्यार्थ निरूपण इस प्रकार है कि 'छठवें गुणस्थान में वर्तती हुई आंशिक शुद्धि सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है। अब, 'छठवें गुणस्थान में कैसी अथवा कितनी शुद्धि होती है'—इस बात को भी साथ ही समझना हो तो विस्तार से ऐसा निरूपण किया जाता है कि 'जिस शुद्धि के सद्भाव में, उसके साथ-साथ महाव्रतादि के शुभविकल्प हठ बिना सहजरूप से प्रवर्तमान हो, वह छठवें गुणस्थानयोग्य शुद्धि सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है।' ऐसे लम्बे कथन के बदले, ऐसा कहा जाये कि 'छठवें गुणस्थान में प्रवर्तमान महाव्रतादि के शुभ विकल्प सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है,' तो वह उपचरित निरूपण है। ऐसे उपचरित निरूपण में से ऐसा अर्थ निकालना चाहिए कि 'महाव्रतादि के शुभ विकल्प नहीं किन्तु उनके द्वारा जिस छठवें गुणस्थानयोग्य शुद्धि को बताना था, वह शुद्धि वास्तव में सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है।']

कैसे हो गये! एक करुणा का विकल्प आया परन्तु जानते हैं कि वह भी बन्ध का कारण है, उन्हें भी। परन्तु हमको इतनी करुणा आयी। जगत के प्राणी सत्य मार्ग का रास्ता किस प्रकार समझे। यह आया तो विकल्प है। है तो पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! ओहोहो! यह निर्जरा का कारण है ही नहीं शास्त्र लिखा इसमें? स्वाध्याय करे, उसमें निर्जरा होती है, ऐसा लिखते हैं। धवल में आता है, धवल में कि स्वाध्याय करते हुए समकिती को निर्जरा होती है। जयधवल में ऐसा आता है कि शुद्ध और शुभ उपयोग से निर्जरा होती है। वह तो शुद्ध उपयोग से निर्जरा होती है अथवा शुद्ध परिणति से निर्जरा होती है, तब राग में निमित्तपने का आरोप करके दोनों से निर्जरा हुई, ऐसा प्रमाण का ज्ञान कराया है। शुभराग से निर्जरा कैसे हो?

मुमुक्षु : शुद्ध परिणति तो है ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध परिणति है, उससे निर्जरा है। स्वाध्याय करने के काल में, शास्त्र स्वाध्याय के काल में जितनी अन्तर शुद्ध स्वभाव की परिणति एकाग्र हुई, उतनी संवर-निर्जरा है। जितना विकल्प आया, वह संवर-निर्जरा नहीं। बहुत कठिन बात। जैन मार्ग को समझने में बहुत गड़बड़ कर डाली। यह तो जैन परमेश्वर तीन लोक के नाथ वीतरागदेव सौ इन्द्र के पूज्य पुरुष परमात्मा। समझ में आया? जिन्हें इन्द्र भी दासानुदासरूप से सेवा करते हैं। इन्द्र दक्षिणार्ध के स्वामी, उत्तरार्ध के स्वामी। दक्षिणार्ध के पूरे (ऊर्ध्व) लोक अर्ध खण्ड के स्वामी इन्द्र शकेन्द्र। उत्तरार्ध के ईशान इन्द्र। प्रभु! जैसे माता के निकट बालक (बैठे), वैसे इन्द्र भगवान के समवसरण में (बैठता है)। महावीर्यवन्त है, तीन ज्ञान है, असंख्य देव तो जिसकी सेवा में है। असंख्य देव का स्वामी है। निर्मान है, प्रभु! हम आपके दासानुदास हैं। ऐसी नम्रता... नम्रता, पामरता... पामरता... पामरता। क्षायिक समकिती, हों! शकेन्द्र एक भवतारी, एक भव में मोक्ष जानेवाला है, सौधर्म इन्द्र और इन्द्राणी दोनों। कितनी निर्मानता... निर्मानता, विनय... विनय... विनय... आहाहा! प्रभु! आपका मार्ग /पंथ अलौकिक है। यह मार्ग कैसा होगा! इन्द्र भी ऐसा कहते हैं, आहा! प्रभु! अद्भुत मार्ग! आपकी दिव्यध्वनि में अलौकिक मार्ग आता है। ऐसी बात तीन काल में दूसरे में नहीं हो सकती। समझ में आया?

कहते हैं कि यह मार्ग क्या है? देखो! अर्थ लिया, टीका। गाथा।

चरियं चरदि सगं सो जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा।
दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो।।१५९।।

'**वियप्पं**' भेद और अभेदरूप से चरता है। आहाहा! यह भेद तो है न, दर्शन-ज्ञान।

टीका :- यह, शुद्ध स्वचारित्रप्रवृत्ति के मार्ग का कथन है। इसे विशेष स्पष्ट करते हैं। **यह, शुद्ध स्वचारित्रप्रवृत्ति....** अपने में शुद्ध स्वभाव की उपयोग-रमणता, वह मार्ग का कथन है।

जो योगीन्द्र... देखो! यहाँ योगीन्द्र लिये। आचार्य महाराज टीका (करते हुए कहते हैं), योगीन्द्र। अहो! जिनका योग स्वरूप में जुड़ गया है, अन्तर एकाकार। योग... योग स्वरूप में एकाकार हुआ है। योग अर्थात् यह कम्पन योग नहीं। ध्यान ऐसे अन्दर ज्ञान-दर्शन में जुड़ा है। चारित्र सहित की बात है न यहाँ। **जो योगेन्द्र, समस्त मोहव्यूह से बहिर्भूत होने के कारण....** मोहव्यूह से बहिर्भूत होने के कारण **परद्रव्य के स्वभावरूप भावों से रहित स्वरूपवाले वर्तते हुए,...** लो। जो कोई योगीन्द्र सन्त मुनि समस्त मोहव्यूह। देखो, नीचे अर्थ है। मोहव्यूह—व्यूह अर्थात् समूह, मोहसमूह व्यूह अर्थात्। नीचे नोट है। **जिन मुनीन्द्र ने समस्त मोहसमूह का नाश किया होने से 'अपना...** समस्त अर्थात् भूमिका प्रमाण में, हों! सर्वथा मोह नाश हो जाये, तब तो वीतराग हो जाये। **'अपना स्वरूप परद्रव्य के स्वभावरूप भावों से रहित है'...** अपना स्वरूप राग के भाव से रहित है **ऐसी प्रतीति और ज्ञान जिन्हें वर्तता है,....** मेरा स्वरूप परद्रव्य के विकल्पादि से मेरा स्वभाव भिन्न है, रहित है, ऐसी जिसे अन्तर प्रतीति और ज्ञान वर्तता है।

तथा तदुपरान्त जो केवल स्वद्रव्य में ही निर्विकल्परूप से... तदुपरान्त स्व चैतन्यद्रव्य में ही निर्विकल्परूप से वीतरागी शुद्ध उपयोग से **अत्यन्त लीन होकर निजस्वभावभूत दर्शनज्ञान भेदों को....** देखो! दर्शन-ज्ञान दो हैं, तथापि **अभेदरूप से आचरता है।** भेद नहीं करके अभेद स्वरूप में लीन होता है। **वे मुनीन्द्र स्वचारित्र का आचरण करनेवाले हैं।** कहो, समझ में आया?

जो योगेन्द्र, समस्त मोहव्यूह से बहिर्भूत होने के कारण.... मोह के समूह से बहिर्भूत अर्थात् बाहर निकलकर **परद्रव्य के स्वभावरूप भावों से रहित स्वरूपवाले वर्तते हुए, स्वद्रव्य को एक को ही....** देखो! भगवान आत्मा एक ही अपना स्वद्रव्य एक को ही अभिमुखरूप से अनुसरते हुए। देखो! एक आत्मा स्वद्रव्य अभिमुख (अर्थात्) उसके सन्मुख होकर। स्वद्रव्य अनन्त गुण का पिण्ड, उसके सन्मुख होकर, अभिमुख होकर, पर से विमुख होकर, स्व से अभिमुख होकर (वर्तता हुआ)। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान में ही स्वद्रव्य की ओर अभिमुख होकर प्रतीति और ज्ञान होता है। परन्तु यहाँ तो तदुपरान्त विशेष लेना है! समस्त मोहव्यूह से बहिर्भूत होना है न? तो स्वद्रव्य को एक को ही। एक स्वद्रव्य ज्ञायकस्वभाव (की ओर) **अभिमुखता से अनुसरते हुए...** स्वद्रव्य के सन्मुखरूप अभिमुख। अभि अर्थात् सामने, सन्मुख। ऐसे अपनी पर्याय में वर्तता हुआ।

निजस्वभावभूत दर्शनज्ञानचेतना... दर्शन-ज्ञान के भेद को भी। निज स्वभाव सामान्य दर्शन और विशेष ज्ञान, ऐसे भेद को भी लक्ष्य में से छोड़कर। भेद नहीं। ज्ञान, दर्शन भेद को भी (छोड़कर) **आत्मा से अभेदरूप से आचरते हैं,...** आत्मा अन्तर निज अभिमुख होकर, अभेद एकरूप होकर निर्विकल्परूप से आचरते हैं। **वे वास्तव में स्वचारित्र को आचरते हैं।** वह वास्तव में स्वचारित्र को आचरते हैं। वह स्वचारित्र ही मुक्ति का कारण है।

अब आये विवादित जैसे शब्द। विवादित जैसे, विवाद तो है ही नहीं। हमारे मीठालालजी तो इनकार ही करते हैं कि विवाद निकाल डालने की बात है। निकाल डालने की बात है। बात तो ऐसी है। **इस प्रकार वास्तव में शुद्धद्रव्य के आश्रित,....** देखो! इसका अर्थ नीचे है। **यहाँ निश्चयनय का विषय शुद्धद्रव्य अर्थात् शुद्धपर्यायपरिणत द्रव्य है,...** यहाँ पर्यायपरिणत द्रव्य लेना है, शुद्ध उपयोग। पर्याय में निश्चयमोक्षमार्ग है न? तो यहाँ... यहाँ, यहाँ हों! **'भूदत्थमस्सिदो खलु'** (कहा है) वहाँ दूसरी बात है। वहाँ तो अकेला ध्रुव निश्चय का विषय है। सम्यग्दर्शन में **'भूदत्थमस्सिदो'** अकेला ध्रुव ज्ञायकभाव स्वभावभाव विषय है। यहाँ मोक्षमार्ग कहना

है या नहीं ? निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहार दोनों पर्याय है। निश्चयमोक्षमार्ग भी निर्मल पर्याय है, व्यवहारमोक्षमार्ग मलिन पर्याय है, शुभराग है। समझ में आया ?

निश्चयनय का विषय शुद्धद्रव्य.... अर्थात् शुद्ध पर्याय परिणत। शुद्ध अवस्थारूप होनेवाली दशा, ऐसा द्रव्य है। अर्थात् **अकेले द्रव्य की (-परनिमित्त रहित) शुद्धपर्याय है;....** उसका नाम यहाँ शुद्ध परिणति निश्चयनय का विषय कहा गया है। निश्चयमोक्षमार्ग कहना है न, मोक्षमार्ग। मोक्षमार्ग प्रगट होता है द्रव्य के आश्रय से। वह तो निश्चयनय का विषय तो द्रव्य ध्रुव ही है। समझ में आया ? परन्तु प्रगट पर्याय और विकार दोनों की साथ में तुलना करते हैं तो निर्मल पर्याय को यहाँ निश्चय का विषय कहा जाता है। समझ में आया ? **जैसे कि, निर्विकल्प शुद्धपर्यायपरिणत मुनि को...** निर्विकल्प शुद्धपर्याय (परिणत) मुनि को **निश्चयनय से मोक्षमार्ग है।** देखो! उन्हें निश्चयनय से मोक्षमार्ग है। शुद्ध परिणति रागरहित श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र है, वह निश्चयनय से मोक्षमार्ग है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : निश्चयनय से अर्थात्... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय अर्थात् स्वआश्रित निर्मल पर्याय। पराश्रित राग व्यवहार हुआ। निश्चय-व्यवहार साथ में है, उसे यहाँ बताना है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी उसका स्वनिश्चय है। वह राग पर है, व्यवहार है तो यह परिणति निर्मल निश्चय है। मोक्षमार्गरूप से कहना है न? नहीं तो वह निश्चय मोक्षमार्ग पर्याय है। त्रिकाल द्रव्य की अपेक्षा से पर्याय भेद है और भेद है तो द्रव्य की अपेक्षा से व्यवहारनय का विषय हुआ। केवलज्ञान भी व्यवहारनय का विषय है। तो यह तो मोक्षमार्ग है। परन्तु किस अपेक्षा से ? त्रिकाल द्रव्य का विषय है, वह निश्चय का विषय। पर्याय भेद हुआ, वह व्यवहार का (विषय है)। परन्तु यहाँ मोक्षमार्ग की बात चलती है कि मोक्षमार्ग जो है, वह तो निर्मल पर्याय है, उसे निश्चय कहा जाता है। जो स्वआश्रय से निर्विकारी शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान प्रगट हुए, उसे यहाँ निश्चयनय कहने में आया है। समझ में आया ? कठिन भाई! इसमें समझना बहुत। मित्रसेनजी! समझना बहुत

पड़ता है। समझे बिना नहीं होगा? समझना पड़ेगा, इसे यथार्थ समझना पड़ेगा। पुरुषार्थ करना पड़ेगा। पुरुषार्थ बिना, समझे बिना हो जाये, ऐसी वस्तु नहीं है।

तो कहते हैं, **वास्तव में शुद्धद्रव्य के आश्रित,....** शुद्ध द्रव्य के आश्रित अर्थात् वह निर्मल पर्याय। **अभिन्नसाध्यसाधनभाववाले निश्चयनय के आश्रय से...** अभिन्नसाध्यसाधनभाववाले निश्चयनय के आश्रय से **मोक्षमार्ग का प्ररूपण किया गया।** ध्यान रखो। क्या कहा? अभिन्नसाध्यसाधन, है नीचे? तीन (३) है। **जिस नय में साध्य और साधन अभिन्न (अर्थात् एक प्रकार के)....** निर्मल हो। एक प्रकार का निर्मल हो। साधन भी निर्विकल्प शुद्ध और साध्य भी निर्विकल्प शुद्ध। उसे यहाँ अभिन्न साध्य-साधन कहा जाता है।

फिर से, देखो! **जिस नय में साध्य...** अर्थात् जो बारहवाँ गुणस्थान या सातवाँ आदि है, उसका साधन अभिन्न। अभिन्न अर्थात्... जो शुद्ध पूर्ण है, वह साध्य और अन्दर नीचे शुद्ध थोड़ा है, शुद्ध थोड़ा, शुद्ध थोड़ा, शुद्ध। पूर्ण शुद्ध साध्य, अपूर्ण शुद्ध साधन। परन्तु अभिन्न हुए, एक ही जाति हुई। शुद्ध साधन, शुद्ध साध्य, यह एक जाति हुई। एक प्रकार के हुए। तो अभिन्न साध्य-साधन कहने में आया। पहली निर्मल शुद्ध पर्याय साधन है, बाद की विशेष शुद्ध पर्याय साध्य है। निर्मल ही निर्मल साध्य-साधन को यहाँ अभिन्न साध्य-साधन कहते हैं। समझ में आया?

यहाँ निश्चयनय है। देखो! **जैसे कि, निर्विकल्पध्यानपरिणत (-शुद्धात्मश्रद्धानज्ञानचारित्र परिणत) मुनि को निश्चयनय से मोक्षमार्ग है क्योंकि वहाँ (मोक्षरूप) साध्य....** यहाँ ऐसा लिया है पहले। **(मोक्षरूप) साध्य और (मोक्षमार्गरूप) साधन एक प्रकार के अर्थात् शुद्धात्मरूप (-शुद्धात्मपर्यायरूप) हैं।** समझ में आया? यहाँ सप्तम गुणस्थान की निर्मल पर्याय साधन है और मोक्ष साध्य है। परन्तु ऐसा नीचे ले लेना। समझ में आया? सातवाँ साध्य है तो छठवें की शुद्ध पर्याय है, वह साधन है। शुद्ध पर्याय साधन है, (सातवाँ) साध्य है। ऐसे सातवें का शुद्ध निर्विकल्प शुद्ध उपयोग साधन है, साध्य केवलज्ञान है। अभिन्न साध्य-साधन हुए (अर्थात्) उसी जाति के। निर्मल परिणति साधन और निर्मल पूर्ण परिणति साध्य एक जाति के हुए, उन्हें अभिन्न साध्य-साधन कहा गया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं, यह फिर भिन्न साध्य-साधन में कहेंगे। यह भिन्न साध्य-साधन में कहेंगे। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो निश्चय परिणति की अपेक्षा से आगे बढ़ती जाती है। साधन-साध्य, साधन-साध्य बहुत चलता है उसमें। अनुभवप्रकाश में बहुत लिया है। पूर्व की शुद्ध पर्याय साधन, बाद की साध्य, शुद्ध पर्याय साधन, धर्मध्यान साधन शुक्लध्यान साध्य, शुक्लध्यान साधन, केवलज्ञान साध्य। निर्मल पर्याय... निर्मल पर्याय, हों! समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो भले हो। यहाँ तो पर्याय-पर्याय को निर्मल साधन और निर्मल साध्य, इतना बतलाना है। नहीं तो साध्य जो प्रगट होता है, वह निर्मल पर्याय नीचे की है, उससे प्रगट नहीं होता। परन्तु वह राग से प्रगट नहीं होता, शुद्ध से प्रगट होता है, अपना अभिन्न शुद्ध और अभिन्न साध्य, अभिन्न शुद्ध साधन और अभिन्न (शुद्ध साध्य की) अपेक्षा से उसे साधन कहा गया है। नहीं तो साध्य जो पूर्ण पर्याय है... सप्तम गुणस्थान साध्य लो और छठवें गुणस्थान की शुद्ध पर्याय साधन लो, तथापि वह सातवें का स्वरूपाचरण द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न होता है। समझ में आया ? परन्तु यहाँ राग को जब भिन्न साधन कहकर साध्य को कहा तो निर्मल पर्याय को अभिन्न साधन कहकर साध्य को कहा। यहाँ द्रव्य लेना नहीं। समझ में आया ? गजब!

देखो! **इस प्रकार वास्तव में शुद्धद्रव्य के आश्रित, अभिन्नसाध्यसाधन-भाववाले....** देखो! **निश्चयनय के आश्रय से मोक्षमार्ग का प्ररूपण किया गया।** यहाँ निश्चयमोक्षमार्ग का प्ररूपण किया गया है **और जो पहले (१०७वीं गाथा में) दर्शाया गया था, वह स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित,....** था। वह स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित था। निश्चय में स्वद्रव्याश्रित था अभिन्न साध्य-साधन। और व्यवहार में स्वपरहेतुक। नीचे है, देखो! **जिन पर्यायों में स्व....** उपादान **तथा पर...** निमित्त **कारण होते हैं अर्थात्**

उपादानकारण तथा निमित्तकारण होते हैं, वे पर्यायें स्वपरहेतुक पर्यायें हैं;.... व्यवहार मोक्षमार्ग का विकल्प स्वपर पर्यायहेतुक है। विकल्प जो व्यवहार का है, वह स्वपरहेतुक है। **जैसे कि छठवें गुणस्थान में (द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप के आंशिक अवलम्बनसहित) वर्तते हुए तत्त्वार्थश्रद्धान...** यह विकल्प **तत्त्वार्थज्ञान...** विकल्प **पंचमहाव्रतादिरूप...** विकल्प **यह सब स्वपरहेतुक पर्यायें हैं। वे यहाँ व्यवहारनय के विषयभूत हैं।**

अब यह १०७वीं गाथा लो जरा। उसमें गड़बड़ है। १०७ है या नहीं? १०७ में हमने व्यवहारमोक्षमार्ग बतलाया है। कहा या नहीं यहाँ? अमृतचन्द्राचार्य ने क्या कहा? **पहले दर्शाया गया था, वह स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित,...** था। १०७ में बताया था, वह स्वपरहेतुक पर्यायवाला मोक्षमार्ग बतलाया था। १०७ में व्यवहार बतलाया था। अपने १०७ चल गयी है। १०७ है या नहीं? १०७ तो चली है न, यहाँ अपने चल गयी है। देखो! १०७। उसमें बहुत गड़बड़ है। वह साथ में ले लो। १०७। यह व्यवहारमोक्षमार्ग साथ में चलता है। जो यहाँ निश्चय कहा १५९ में, उस निश्चय के अभिन्न साध्य-साधन कहे। और यहाँ १०७ में भिन्न साधन की व्यवहार मोक्षमार्ग की बात है। समझ में आया? १०७ की टीका।

टीका - यह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की सूचना है। व्यवहार की, भेदरूप। **काल सहित पंचास्तिकाय के भेदरूप नव पदार्थ...** काल सहित पंचास्तिकाय अर्थात् छह द्रव्य उनके भेदरूप नौ पदार्थ—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। **वे वास्तव में 'भाव' है...** पर्यायरूप नौ भाव है। **उन 'भावों' का मिथ्यादर्शन के उदय से प्राप्त होनेवाला...** उन भावों का। देखो! विशिष्टता यहाँ है, यहाँ बहुत गड़बड़ है। यह मिथ्यादर्शन के उदय के अभाववाले तत्त्वार्थश्रद्धान को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते हैं, ऐसा इस गाथा में से निकालते हैं। देखो! यहाँ क्या कहते हैं? जो नौ भाव कहे, छह द्रव्य के भेदरूप नौ, **उन 'भावों' का मिथ्यादर्शन के उदय से प्राप्त होनेवाला जो अश्रद्धान...** मिथ्याश्रद्धान की प्राप्ति के कारण से होनेवाला अश्रद्धान **उसके अभावस्वभाववाला...** यह मिथ्यादर्शन का जो अश्रद्धान था, वह अश्रद्धान छूट गया और **जो भावान्तर—श्रद्धान...** भावान्तर श्रद्धान है, देखो! 'भावविशेष; खास

भाव'। क्या ? तत्त्वार्थ का अश्रद्धान था, उससे अलग श्रद्धा हुई। किसकी ? नौ तत्त्व की। समझ में आया ? नौ तत्त्व की विरुद्ध श्रद्धा थी, वह मिथ्यादर्शन के नाश से निश्चय सम्यग्दर्शन हुआ, वह तो स्वद्रव्याश्रित हुआ। उस भूमिका में नौ तत्त्व की जो विरुद्ध श्रद्धा थी, वह अविरुद्ध हुई, ऐसे विकल्प को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया ? क्या कहा, देखो !

उन 'भावों' का मिथ्यादर्शन के उदय से प्राप्त होनेवाला जो अश्रद्धान, उसके अभावस्वभाववाला जो भावान्तर—श्रद्धान (अर्थात् नौ पदार्थों का श्रद्धान), वह सम्यग्दर्शन है—यह व्यवहार सम्यग्दर्शन, यह व्यवहार सम्यग्दर्शन है। कौन ? मिथ्यात्व का नाश होकर नौ तत्त्व की श्रद्धा हुई, वह व्यवहार सम्यग्दर्शन। भेदरूप। मिथ्यात्व का नाश होकर जो आत्मा की श्रद्धा हुई है, वह तो निश्चय दूसरी बात है। समझ में आया ? जहाँ मिथ्यात्व का नाश हुआ, वहाँ तो स्वद्रव्याश्रित सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति है, है और है। अनुभव की दृष्टि है, परन्तु उस भूमिका से पहले जो मिथ्यादर्शन की अस्ति में नौ तत्त्व का अश्रद्धान—विपरीत श्रद्धान का विकल्प था, उसके (स्थान में) अविपरीत श्रद्धानवाला विकल्प रहा, उसे व्यवहार समकित कहा गया है। गड़बड़ है, गड़बड़ बहुत।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो है। मिथ्यादर्शन के नाश से निश्चय न हो तो नौ तत्त्व के व्यवहार की श्रद्धा को व्यवहार कहे कौन ? यह बात तो बहुत चली है, दो-तीन दिन चली थी। सझम में आया ? यह समझने की बात है। अकेले नौ तत्त्व की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन नहीं और नौ तत्त्व के विरुद्ध श्रद्धा गयी और अविरुद्ध हुई, वह भी निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं। वह तो व्यवहार सम्यग्दर्शन है। अपने आत्मा में मिथ्यात्व का नाश होकर शुद्ध सम्यग्दर्शन स्व के आश्रय से प्रगट हुआ, उस भूमिका में पहले जो मिथ्यात्व की भूमिका थी, व्यवहार की नौ तत्त्व की विपरीत श्रद्धा थी, वह विपरीत टालकर अविपरीत विकल्परूप श्रद्धा हुई, उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा गया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। यह तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन है, वह तो निश्चय है। वह तो अभेद की बात है। मोक्षशास्त्र में, तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन कहा है, वह तो निश्चय सम्यग्दर्शन है। यहाँ तो वह तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन अभेद में उत्पन्न हुआ है, उसे नौ तत्त्व के विकल्पवाली व्यवहारश्रद्धा पहले खोटी थी, वह विकल्पवाली व्यवहारश्रद्धा सच्ची हुई, उसे व्यवहार समकित (कहते हैं)। तत्त्वार्थश्रद्धान निश्चय से अपने में प्रगट हुआ है, उसे नौ तत्त्व की अविरुद्ध व्यवहारश्रद्धा को सम्यग्दर्शन व्यवहार से कहा गया है। समझ में आया? तो यहाँ लगाते हैं कि देखो! मिथ्यादर्शन के उदय के नाश (अभाव) होने से (होनेवाली व्यवहार) श्रद्धा, वह व्यवहार सम्यग्दर्शन है। वही व्यवहार सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान से कहते हैं। यह व्यवहार सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्दर्शन के साथ में है तो (व्यवहार) कहते हैं। समझ में आया? बहुत मेहनत... समझे नहीं उसे बेचारे को क्या करना? समझना। क्या करना क्या?

मुमुक्षु : केवली भगवान ने कहा वह सत्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं चलता। केवली भगवान ने क्या कहा है? यह सेठिया है न जरा... केवली भगवान कहे वह सत्य है, ऐसा नहीं चलता। क्या कहते हैं केवली और क्या भाव है? भावभासन हुए बिना सच्ची श्रद्धा नहीं होती। भासन अर्थात् ज्ञान में 'भाव यह है' ऐसा ज्ञेय हुए बिना भाव की सच्ची श्रद्धा नहीं होती। समझ में आया?

यह क्या कहा? १५९ में कहा या नहीं? साथ में व्यवहार मोक्षमार्ग की बात की थी। आया न? और जो पहले दर्शाया था १०७ में, वह तो स्वपरहेतुक पर्याय आश्रित। व्यवहार सम्यग्दर्शन विकल्प है। तो स्व-अपना उपादान भी है, कर्म का निमित्त है। ऐसी स्वपरपर्यायहेतुक ऐसा सम्यग्दर्शन, नौ पदार्थ का श्रद्धान, वह सम्यग्दर्शन। स्वपरपर्यायहेतुकवाली श्रद्धा को यहाँ व्यवहार सम्यग्दर्शन कहने में आया है। समझ में आया? यही लोग कहते हैं कि वह स्वपरपर्यायहेतुक सम्यग्दर्शन ही चौथे का सच्चा है। भाई! स्वपरहेतुक जो राग है, वह व्यवहारसम्यग्दर्शन सच्चा कहाँ से हुआ? वह तो विभावभाव है। स्वपरपर्यायहेतुक कहा। समझ में आया? बहुत न समझ में आये तो फिर रात्रि में पूछना कि यह गड़बड़ी का क्या है? परन्तु पकड़ में आये तो पूछे न? न

समझ में आये उसमें क्या पूछे? कुछ न समझे, वह पूछे नहीं और पूरा समझ में आ जाये, वह पूछे नहीं। समझ में आ जाये उसे कुछ पूछना रहता नहीं और कुछ नहीं समझ में आये, उसे पूछना क्या?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ।

यहाँ कहते हैं, १५९ गाथा में तो अभिन्न साध्य-साधन की बात की। अभिन्न साध्य-साधन... शुद्ध उपयोगरूपी साधन और केवलज्ञान साध्य। तो निर्मल साधन, निर्मल साध्य। अब यहाँ भिन्न साध्य-साधनवाले... कहते हैं कि १०७ में हम जो व्यवहार मोक्षमार्ग का कथन कर गये, वह भिन्न साधन और भिन्न साध्य है। राग भिन्न है, स्वपरपर्यायहेतुक। भिन्न साध्य केवलज्ञान या सप्तम गुणस्थान आदि, वह भिन्न साध्य है। राग की जाति से भिन्न है, निर्मल साध्य की जाति भिन्न है। परन्तु १०७ में हम भिन्न साध्य-साधनवाले स्वपरहेतुपर्यायवाला मोक्षमार्ग कह गये हैं। यह सम्यग्दर्शन जो तीसरी लाईन में आया, वह स्वपरपर्यायहेतुक विकारी पर्याय को मोक्षमार्ग कहा है, सम्यग्दर्शन कहा है। यह देवीलालजी और यह इसमें समझते हैं या नहीं? क्या कहा, देखो!

मिथ्यादर्शन के उदय से प्राप्त होनेवाला जो अश्रद्धान... एक। यह व्यवहार की बात चलती है। मिथ्यादर्शन का अभाव नहीं था तो नौ तत्त्व के विकल्प की भी विपरीत श्रद्धा थी। सम्यग्दर्शन तो नहीं था परन्तु नौ तत्त्व के भेदवाली विकल्पश्रद्धा भी विपरीत थी। उस मिथ्यादर्शन के अभाव में स्वद्रव्य की श्रद्धा ज्ञायक की दृष्टि तो हुई। उसमें जो पहले व्यवहारिक विपरीत श्रद्धा थी, वह अविपरीत श्रद्धा हुई, उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा गया है। निश्चय सम्यग्दर्शन की भूमिका के काल में। निश्चय अभेद साध्य-साधन होता है, निश्चय का अभेद साध्य-साधन हो तो वहाँ राग को भिन्न साधन और साध्य निश्चय निर्मल तब कहलाये न! अभिन्न साधन तो हुआ नहीं और अकेला राग साधन और निश्चय साध्य आत्मा का, ऐसा कभी होता नहीं। समझ में आया?

वह सम्यग्दर्शन है। यह कौन सा सम्यग्दर्शन? १५९ में कहा स्वपरपर्याय-हेतुकवाला। है न १५९? **स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित, भिन्नसाध्यसाधनभाववाले**

व्यवहारनय के आश्रय से (-व्यवहारनय की अपेक्षा से) प्ररूपित किया गया था। १०७ में ऐसा प्ररूपित किया गया था कि जो नौ तत्त्व की विपरीत श्रद्धा व्यवहारिक थी, उसकी अविपरीत श्रद्धा व्यवहारिक सच्ची हुई, वह स्वपरपर्याय अर्थात् विकारी पर्याय को वहाँ व्यवहार से सम्यग्दर्शन कहा गया था। निश्चय से तो अभिन्न साध्यसाधन सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र हुए हैं, वे अभिन्न साधन और पूर्ण अभिन्न साध्य। दोनों निर्मल। अभिन्न साधन की यहाँ बात की है। यह सम्यग्दर्शन पर्याय स्वपरहेतुक विकारी पर्याय को सम्यग्दर्शन कहा। दूसरी बात कि शुभउपयोग को यहाँ सम्यग्दर्शन कहा। अब विशेष ज्ञान की बात आयेगी....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १०, सोमवार, दिनांक - १७-०८-१९६४, गाथा-१५९, प्रवचन-४

यह १५९ वीं गाथा मोक्षमार्ग की चलती है। उसमें निश्चय मोक्षमार्ग की बात है। इसमें व्यवहारनय का जो मोक्षमार्ग जो १०७ (गाथा) में कहा था, वह आ गया। फिर से लेते हैं, देखो! १५९ की टीका। इस गाथा में सब अभी बहुत गड़बड़ करते हैं।

यह, शुद्ध स्वचारित्रप्रवृत्ति के मार्ग का कथन है। यह शुद्ध स्वचारित्र। यहाँ पर्याय ली है। द्रव्य तो त्रिकाल ज्ञायकभाव से शुद्ध है और उसका स्वभाव भी शुद्ध है। एकरूप चैतन्यपिण्ड प्रभु अनन्त गुण के धामस्वरूप अपना निज स्वरूप। उसकी अन्तर्मुख में दृष्टि करके और ज्ञान करके स्वरूप में चारित्र अर्थात् चरना, रमना, लीन होना—ऐसा जो शुद्ध स्वचारित्र। शुद्ध स्वचारित्र। शुद्ध क्यों कहा? कि व्यवहारचारित्र है, वह विकल्प है, वह अशुद्ध है। पंच महाव्रतादि के परिणाम शुद्ध नहीं, वह अशुद्ध है। तो यह चारित्र है, वह अपने शुद्ध स्वरूप में रमणतास्वरूप शुद्ध स्वचारित्रप्रवृत्ति है। देखो! उसे भी प्रवृत्ति कहा। अपने आत्मा में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानपूर्वक स्वचारित्र में अपने में प्रवर्तना, स्वरूप में लीन होना, उस चारित्रमार्ग का कथन है। वह स्वचारित्रप्रवृत्ति के मार्ग का कथन है अर्थात् निश्चयमोक्षमार्ग का कथन है।

जो योगेन्द्र, समस्त मोहव्यूह से बहिर्भूत होने के कारण... इन सबकी नीचे की व्याख्या आ गयी है। मोह के समूह से बहिर्भूत होने के कारण। समस्त अर्थात् उसकी भूमिका के योग्य जो रागादि से रहित हुआ है। **परद्रव्य के स्वभावरूप भावों से रहित...** विकल्प जो परद्रव्य के लक्ष्य से विकार था, उससे रहित **स्वरूपवाले वर्तते हुए,...** स्वरूपवाला वर्तता हुआ। अपने स्वरूप में शुद्धता निर्विकल्प समाधि—शान्ति में वर्तता हुआ **स्वद्रव्य को एक को ही अभिमुखता से अनुसरते हुए...** अपनी स्वद्रव्य वस्तु को एक को ही। दूसरे पंच महाव्रतादि विकल्प हैं, वह स्वपरप्रत्ययी—हेतुवाली विकारी पर्याय है। व्यवहारमोक्षमार्ग जो है—व्यवहारसम्यग्दर्शन, व्यवहारज्ञान, व्यवहारचारित्र—वह स्वपरनिमित्तक विकारी पर्याय है। स्वपरनिमित्त का अर्थ थोड़ा स्व का आश्रय और थोड़ा पर का आश्रय, ऐसा नहीं। परन्तु स्व अर्थात् अपना अशुद्ध उपादान निमित्त के

लक्ष्य से जो विकारी पर्याय उत्पन्न होती है, उसे यहाँ व्यवहारमोक्षमार्ग, निश्चयमोक्षमार्ग में निमित्तरूप कहने में आया है। जो कल १०७वीं गाथा में चला। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह स्वचारित्रदशा, वह कैसा हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उलझन निकाल डाले ऐसा। कहाँ गये मोहनभाई? वहाँ कहाँ दूर (बैठो हो)? आज उलझन में आये थे, लो! क्या है परन्तु शरीर में? शरीर को शरीर में धूल में होता है। आत्मा को क्या है उसमें?

मुमुक्षु : आज बहुत दु:खता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर के कारण दु:ख है? कौन कहता है दु:ख ऐसा। शरीर की प्रतिकूलता लक्ष्य में लेता है कि यह प्रतिकूलता है, ऐसी कल्पना दु:ख का कारण है। शरीर-फरीर दु:ख का कारण है ही नहीं। कहो, जयचन्दभाई! सवेरे आये थे। आँख में आँसू बह गये, अब यह असाता... परन्तु कहाँ तक मांडनी है अब? शरीर में...

मुमुक्षु : प्रसिद्ध तो करे न!

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रसिद्ध करे तो... एक श्वेताम्बर साधु थे, उनका दृष्टान्त नहीं दिया था? हमारा जामनगर चौमासा हुआ। (संवत्) १९८८। जामनगर ८८ में चौमासा था। एक मन्दिरमार्गी साधु थे, ६० वर्ष की उम्र, शरीर सुन्दर परन्तु... फिर मैं वहाँ गया था, वहाँ साथ में है। एक साधु था, वह सेवा करता होगा, एक आदमी रखा होगा। वह कहे, महाराज! अब सहन नहीं होता। ऐसा बेचारा बोले, हों! साधु श्वेताम्बर साधु। कहा, क्या करोगे अब तुम? सहन करने का उपाय एक ही है, शान्ति रखना। शरीर में चाहे जो हो। अब तो सहन नहीं होता। लो, उसे ऐसा हुआ था। जयचन्दभाई! तुम्हारी तरह। अब देह छोड़ दूँ, देह छूट जाये। परन्तु किस प्रकार छूटे? देह तो छूटा हुआ ही पड़ा है, देह तो अलग ही पड़ा है। अपने पास देह है ही नहीं। अपने पास नहीं। अभी पास है नहीं। देह अपने को स्पर्शा ही नहीं और आत्मा देह को कभी स्पर्श नहीं करता, तीन काल-तीन लोक में। किस प्रकार समीप कहना? उसके समीप तो राग-द्वेष है, वह उसके समीप है। पर्याय में राग-द्वेष के कारण दु:खी होता है। शरीर के कारण बिल्कुल नहीं। तो उस साधु को फिर आठ वर्ष हुए। क्योंकि सोवे तो भी यह घिस गया और फिर

कीड़े पड़े। ईयळ समझते हो? कीड़े। ईयळ नहीं कहते? बारीक कीड़े। बारीक लट पड़ी। घिसा करे। आठ वर्ष के बाद मर गया। अब यह दु:ख तो नरक के दु:ख के अनन्तवें भाग नहीं। पहले नरक के पहले पासड़े में दस हजार वर्ष की नरक की स्थिति है। उस दु:ख के समक्ष अनन्तवें भाग नहीं। आहाहा! कहाँ दु:ख आया? समझ में आया? उससे सातवें नरक का दु:ख... ओहो! अग्नि में लोहे का बड़ा लाख मण का ठोस गोला डाले, वह जैसे घी पिघल जाता है, पिघल जाता है, वैसे पिघल जाये। इतनी वहाँ पीड़ा है। उसमें सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। अनन्त काल में प्राप्त नहीं किया, ऐसा सम्यग्दर्शन रवरव नरक में पाता है। क्या है? पर के साथ सम्बन्ध क्या है?

मैं... ओहो! मैं तो ज्ञायक चैतन्य हूँ। मेरे स्वभाव से परिपूर्ण भरपूर हूँ। ऐसी अन्तर में राग से हटकर दृष्टि करके स्वद्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। वहाँ कहाँ प्रतिकूलता उसे जरा भी बाधा करती है, ऐसा नहीं है। मान लिया है कि अरे! मुझे ऐसा, मुझे ऐसा। है नहीं और मुझे ऐसा मान लिया है।

मुमुक्षु : नजर से दिखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ नजर से दिखता है? कहाँ नजर से दिखता है? शरीर शरीर में है और आत्मा में दिखता है नजर से। समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं कि अपना जो स्वद्रव्य है, उसकी अन्तर में दृष्टि करके स्वभाव का ज्ञान करके अन्तर में चारित्र अर्थात् चरना, रमना, जमना, स्वरूप की प्रवृत्ति निर्विकल्प शान्ति की प्रवृत्ति करना, यही एक मोक्षमार्ग है। पहले श्रद्धा में तो ले कि यह मोक्षमार्ग है, दूसरा कोई मोक्षमार्ग नहीं। दु:ख से छूटने का दूसरा कोई उपाय है नहीं। समझ में आया? **जो योगेन्द्र, समस्त मोहव्यूह से बहिर्भूत होने के कारण परद्रव्य के...** स्वभाव से रहित **स्वद्रव्य को एक को ही अभिमुखता से...** अपना भगवान आत्मा निज शान्त, आनन्दरस से परिपूर्ण प्रभु निज सामर्थ्य से परमेश्वर है अपना आत्मा। निज अनन्त गुण की परमेश्वरता से भरपूर भगवान के अभिमुख—उसके सन्मुख और विकल्प और निमित्त से विमुख। मार्ग तो ऐसा है। कोई दूसरा मान ले तो कुछ हो सकता नहीं। सत्य तो यह है। पहले इसे अनुभव में सम्यक् निर्णय करना चाहिए कि भगवान निजस्वरूप

शान्त अनाकुल अकषायस्वभावी (परिपूर्ण), स्वभाव जिसका अकषाय समस्वभाव की पूर्णता की क्या मर्यादा? समझ में आया? ओहोहो! स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... ऐसा स्वद्रव्य, उसके अभिमुख। विकल्प से विमुख, स्वभाव के अभिमुख, ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक **अभिमुखता से अनुसरते...** अनुसरते हुए। पहले निर्णय तो करे उसमें।

भगवान परमात्मा अपना निज परमेश्वर अपने स्वभाव को **अनुसरते हुए निजस्वभावभूत दर्शनज्ञान भेद को....** देखो! अपने में दर्शन और ज्ञान... यह दर्शन-ज्ञानचेतना की बात है, हों! दर्शन कायम सामान्य स्वभाव, ज्ञान कायम विशेष स्वभाव, उसके भेद को भी **आत्मा से अभेदरूप से आचरते हैं,...** भेद का लक्ष्य छोड़कर। दो भेद है तो सही। ऐसा लिया। परन्तु उस भेद को भी **आत्मा से अभेदरूप से आचरते हैं,...** अपने में अभेदरूप से लीन होता है। दो को भी पृथक् लक्ष्य में नहीं लेकर। क्या कहा, समझ में आया? भगवान आत्मा दर्शन-ज्ञान सामान्य-विशेष चेतना से भरपूर है। उन दो भेद को लक्ष्य में नहीं लेकर एकरूप चैतन्य की ओर अभेदरूप से आचरता है। अपना स्वरूप एकरूप में अभेदरूप अन्दर लीन होते हैं। **वे वास्तव में स्वचारित्र को आचरते हैं।** कहो, समझ में आया? वह स्वचारित्र, वही एक मोक्ष का मार्ग है तो उसमें दर्शन-ज्ञान तो आ गये। समझ में आया?

मुमुक्षु : अनुसरते हुए....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुसरते हुए। उसके स्वभाव को अनु—उसके अनुकूल होकर वर्तना। अपने स्वभाव को अनुसरण करना। अर्थात् स्वभाव की ओर ढलकर एकाकार होना। विकार का अनुसरण छोड़ना। विकल्प जो राग है, उसे अनुकूल चरता है, उसे छोड़ना। छोड़ना, यह भी नास्ति से बात है। परन्तु अपना ज्ञायकस्वभाव अन्तर्मुख में उसे अनुकूल होकर स्वभाव सन्मुख स्थिर होना, चरना, प्रवर्तना। कहो, समझ में आया? यह अनुसरते हुए, निज स्वभाव को अनुसरकर अर्थात् निज स्वभाव में लीन होकर।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले निर्णय किये बिना (कहाँ से हो)? अभी निर्णय का

ठिकाना नहीं कि यह चारित्र है। विकल्प करे, पंच महाव्रत पाले, ऐसा हो, ऐसा हो तो उससे मेरी मुक्ति होगी, (यह तो) मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? अपने स्वभाव में पहले ऐसा निर्णय होना चाहिए कि अपना प्रभु पूर्ण ज्ञायक आनन्द है। उसमें मैं पूर्ण लीन होऊँ, तब मेरा मोक्ष होगा। इसके अतिरिक्त मोक्ष होगा नहीं। कोई बाह्य क्रियाकाण्ड, विकल्प आदि, महाव्रतादि से भी मोक्ष होता नहीं। समझ में आया?

वह वास्तव में स्वचारित्र को **वास्तव में स्वचारित्र को आचरते हैं।** स्व अर्थात् अपना चारित्र। ऐसा क्यों कहा? कि रागादि जो होते हैं, वह अपना स्वचारित्र नहीं। वह विकारी वर्तन है। जो व्यवहारचारित्र का विकल्प है, वह विकारी वर्तन है, स्वचारित्र नहीं। समझ में आया? निमित्तरूप हो परन्तु वह स्वचारित्र नहीं। स्वचारित्र में रमने से ही मुक्ति होती है, दूसरा कोई उपाय नहीं है, ऐसा पहले इसे निर्णय (होना चाहिए)। निर्णय करना चाहिए कि परक्रिया करने से या रागादि, महाव्रत और दया, दान, भक्ति, व्रत पालने से और ऐसा करने से किसी दिन कभी मुक्ति होगी, ऐसा तीन काल—तीन लोक में नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही करण—साधन है। यह साधन। अनुसरण करना। कर्ता अपना आत्मा। देखो! क्षायिक पर्याय या उपशम, क्षयोपशमरूपी सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय कर्ता आत्मा, कार्य अपना, अपने साधन से—स्व साधन से किया हुआ है। और वह निर्मल पर्याय अपने से प्रगट करके दी है और अपने से प्रगट की है, अपने आधार से की है। विकल्प का आधार नहीं, निमित्त का आधार नहीं। देखो! समझ में आया? निज द्रव्य के ही आचरण से, उसका अर्थ कि अपना ही आश्रय, अपना ही आधार, अपना अवलम्बन, अपना कारण, साधन है। दूसरा कोई साधन है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे तो भले हो, व्यवहार साधन उपचार से कहा जाता है।

मुमुक्षु : व्यवहार चलेगा किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका व्यवहार? क्या चलाना है? व्यवहार विकल्प आता है, इतना व्यवहार, दूसरा क्या चलाना है? चलाना क्या है, आता है।

मुमुक्षु : उसे हेय मानने में आवे....

पूज्य गुरुदेवश्री : हेय माने। आवे उसे हेय जानना, स्वभाव को उपादेय मानना। लक्ष्मीचन्दजी! क्या है? व्यवहार साधन को हेय मानना।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : करता नहीं, आता है। करता नहीं। विकल्प को मैं करूँ, वह तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है। ऐसा है ही नहीं। आता है। निश्चय स्वभाव की दृष्टि, ज्ञान और लीनता की भूमिका में पूर्णता न हो तो ऐसा विकल्प शुभराग उस काल में उसकी योग्यता से आता है। मैं बनाऊँ, करूँ, ऐसी बुद्धि नहीं। व्यवहारनय से कहने में आता है कि पालता है, करता है। यह तो व्यवहारनय का कथन है। आहाहा!

मुमुक्षु : हठ बिना।

पूज्य गुरुदेवश्री : हठ बिना। अभी वहाँ लेंगे न! समझ में आया या नहीं? हठ कैसा? कि मुझे यह करना पड़ेगा, हों! भाई! मुझे यह शुभभाव करना पड़ेगा। करना पड़े, इसका अर्थ क्या? समझ में आया? यह व्रत का विकल्प भी जहर है।

मुमुक्षु : जहर है तो किसलिए करना चाहिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता है? आता है।

मुमुक्षु : छोड़ देंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन छोड़ देगा? कौन छोड़े? स्वरूप में स्थिर होगा तब छूट जायेगा। स्वरूप में स्थिर होगा, तब छूट जायेगा। छोड़े कौन? पहली भूमिका में छूट जाता है? आता अवश्य है। कर्म जिसमें निमित्त होता है... स्वपरहेतुक पर्याय है न? देखो! नीचे आयेगा। वह स्वपरहेतुक पर्याय है। विकार का कर्तृत्व ज्ञानी को है ही नहीं। आ जाता है, वह दूसरी बात है। आहाहा! कठिन बात है, लक्ष्मीचन्दजी! चलता है, उसमें बहुत गड़बड़ है। सबको लगा दे, इसे उसे... ओहोहो! भाई! ऐसे करते-करते तुमको हो जायेगा। और दुकान में बैठकर पाप करे, इसकी अपेक्षा तो अच्छा है न?

क्रम-क्रम से होगा। धूल भी नहीं होगा। क्या होगा? यह आगे कहते हैं न, भाई! नहीं यह? ज्ञानचेतना को स्पर्शता नहीं। नहीं आया? उसमें आता है न उस व्यवहार में? १७२ में नहीं आता? ज्ञानचेतना को तो स्पर्शता नहीं। १७२ है न? देखो! नीचे है, देखो!

सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर से पार उतरी हुई दर्शनज्ञानचारित्र की ऐक्यपरिणतिरूप ज्ञानचेतना को किंचित् भी उत्पन्न नहीं करते हुए... है न? यह व्यवहारालम्बी की बात करते हैं। व्यवहार, अकेला व्यवहार। यहाँ २५९ (पृष्ठ) है। हिन्दी में २५९ है, उसमें २६० में अन्त में है। २६० में अन्तिम दो लाईनें। समझ में आया? **सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर से पार उतरी हुई...** अन्तिम दो लाईनें हैं। हिन्दी है या गुजराती? गुजराती। यह तो हिन्दी है। व्यवहारावलम्बी की अन्तिम सात-आठ लाईनें पहले है। **सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर से पार...** अकेले व्यवहारनय के क्रियाकाण्ड में पड़े हैं, वे **दर्शनज्ञानचारित्र की ऐक्यपरिणतिरूप ज्ञानचेतना को किंचित् भी उत्पन्न नहीं करते हुए...** लो, तीन आये, भाई! दर्शन, ज्ञान, चारित्र की ऐक्यपरिणतिरूप ज्ञान किंचित् भी उत्पन्न नहीं करते। पहले थोड़ी आयी न, कि एकदम सीधे ज्ञानचेतना बारहवें की हो जाती होगी? समझ में आया? देखो!

अकेले व्यवहार क्रियाकाण्ड करनेवाले। है या नहीं धर्मचन्दजी? आया है या नहीं? नहीं दिखता। व्यवहारावलम्बी की बात १७२ गाथा में (की है)। गुजराती में २५८ (पृष्ठ पर) अन्तिम दो लाईनें। है? आया? बोलो, क्या आया? ज्ञानचेतना। क्या कहते हैं? विकल्प की सब क्रिया पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, अपवास कर-करके मर गये व्यवहारवाले। परन्तु निज ज्ञानचेतना ज्ञान में एकाकार होना किंचित् भी उत्पन्न नहीं करते, उसे किंचित् मोक्षमार्ग नहीं है। देखो! उसमें 'किंचित् भी' शब्द पड़ा है। **किंचित् भी उत्पन्न नहीं करते हुए,...** क्रियाकाण्ड से पार होकर अपना निर्विकल्प चैतन्यप्रभु की ज्ञानचेतना। ज्ञान में एकाग्र होना, वह ज्ञानचेतना जरा भी उत्पन्न नहीं करते हुए चार गति में भटकते हैं। समझ में आया?

पुष्कल पुण्य के भार से... देखो न, फिर आया। पुण्य का भार बढ़ गया। पुण्य शुभभाव। **मंथर हुई चित्तवृत्तिवाले वर्तते हुए, देवलोकादि के क्लेश की...** परम्परा से प्राप्ति होती है। देवलोक की प्राप्ति होती है। समझे? क्लेश की प्राप्ति। जाओ! उसे

मुक्ति-बुक्ति होती नहीं। समझ में आया? लो, इतना तो यहाँ स्पष्ट लिखा है। जरा भी ज्ञानचेतना (उत्पन्न नहीं करता)।

मुमुक्षु : व्यवहार करते-करते होगा, ऐसा इसमें लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कहाँ करते-करते.. ? व्यवहार किया, परन्तु यह करता नहीं, इसलिए मुक्ति नहीं है। इतना व्यवहार तो अनन्त बार किया। अवलम्बन लिया क्रियाकाण्ड का, पंच महाव्रत, दया, दान, अपवास, ऊनोदरी, करते-करते बस! मंथर हो गया, राग में मस्त हो गया, परन्तु निज ज्ञानचेतना ज्ञायकमूर्ति प्रभु की ज्ञानचेतना की वेदना—अनुभव चेतना जरा भी करते नहीं। उसे कभी व्यवहार से... यह व्यवहार उसे निश्चय में निमित्त भी हुआ नहीं। ऐसी ज्ञानचेतना का अनुभव किये बिना व्यवहार को निमित्त भी नहीं कहा गया। यह करे तो व्यवहार को निमित्त कहते हैं। अकेला व्यवहार... व्यवहार क्या है? कहो, सेठी! क्या हुआ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह साथ है तो इसे निमित्त कहते हैं। निश्चय ज्ञानचेतना ज्ञायक प्रभु निज स्वस्वभाव की अनुभव—वेदन दृष्टि या ज्ञानचेतना बिना व्यवहार किसे कहना? उसे व्यवहार निमित्तरूप से १०७ गाथा में कहा। बीजरूप निमित्तरूप है, हों! समझ में आया?

इस प्रकार वास्तव में शुद्धद्रव्य के आश्रित,... देखो! अपने परसों आ गया है शुद्ध के आश्रित। शुद्धद्रव्य के आश्रित क्या? पर्याय। नीचे लिखा है। शुद्धपर्यायपरिणत। शुद्ध आत्मा की जो निर्मल पर्याय, उसे यहाँ शुद्ध द्रव्य आश्रित कहा गया है। **अभिन्न-साध्यसाधनभाववाले निश्चयनय के आश्रय से...** क्या कहते हैं? यह सब अपने आ गया है। **अभिन्नसाध्यसाधनभाववाले निश्चयनय के आश्रय से...** क्या कहा? अभिन्न अर्थात् अपना आत्मा... साध्य मोक्ष भी शुद्ध है और निर्मल पर्याय भी शुद्ध है। यह अभिन्न साध्यसाधन हुआ। अपने आत्मा में शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, लीनता की निर्मलता—पवित्रता का अंश वह साधन और पूर्ण पवित्रता साध्य। वह अभिन्नसाध्यसाधन हुए। जिस जाति का साध्य है, उसी जाति का साधन है, तो उसे अभिन्नसाध्यसाधन कहने में आया है। बराबर है? समझ में आया? **अभिन्नसाध्यसाधनभाववाले....** देखो!

अभिन्नसाध्यसाधनभाववाले निश्चयनय.... यह निश्चयनय है। **आश्रय से मोक्षमार्ग का प्ररूपण किया गया।** यहाँ १५९ में निश्चयनय के आश्रय से शुद्ध द्रव्य की निर्मल पर्याय जो साधन निर्मल है, पूर्ण साध्य भी निर्मल है। ऐसे अभिन्नसाध्यसाधन की बात १५९ गाथा में कही गयी है। समझ में आया?

और जो पहले... जो कल चली थी वह। **और जो पहले (१०७वीं गाथा में) दर्शाया गया था,...** दर्शाया गया था, **वह स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित,...** दोनों आयेंगे, देखो! शुद्धद्रव्य के आश्रित निश्चयनय, स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित व्यवहारनय। यह दो सिद्धान्त हुए। अपने त्रिकाली पवित्र स्वस्वभाव के आश्रय से उत्पन्न हुई निर्मल पर्याय, वही स्वद्रव्याश्रित पर्याय को कहा गया है। यह निश्चय मार्ग है। अभिन्नसाध्यसाधन हुआ। और जो स्वपरहेतुक पर्याय व्यवहारनय का विषय। स्व-पर का अर्थ अपना उपादान भी है और उपादान का झुकाव निमित्त में है तो वह विकारी पर्याय हुई। स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित। समझ में आया? दोनों निमित्त हुए न? अपने आत्मा की पर्याय हेतु हुई और निमित्त हेतु हुआ। उससे उत्पन्न हुई विकारी पर्याय। स्वपरहेतुक प्रवचनसार में आता है या नहीं? ज्ञेय अधिकार में नहीं आता? ज्ञेय अधिकार में शुरुआत में स्वपरहेतुक पर्याय आती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिश्र नहीं, अकेली अशुद्ध है। स्वपरहेतुक का अर्थ मिश्र—थोड़ी शुद्ध है और थोड़ी अशुद्ध है, ऐसा नहीं है। इसमें यह गड़बड़ है। स्व-पर पर्याय में थोड़ी शुद्ध है और थोड़ी अशुद्ध है, ऐसा नहीं है। अकेला विकल्प राग है। स्व-अपना अशुद्ध उपादान निमित्त की ओर झुकाव हुआ तो स्वपरहेतुक जो अशुद्ध विकल्प हुआ, उसे स्वपरहेतुक विकारी पर्याय कहा जाता है। विकारी शुभभाव। उसमें जरा भी शुद्ध नहीं। कोई-कोई लगाते हैं। यह आता है न बनारसीदास में? पीछे निमित्त-उपादान की चिट्ठी में नहीं आता? कि शुभभाव में शुद्ध का अंश है या नहीं भाई? है। मानो तो शाबाश, न मानो तो शाबाश नहीं। यह दूसरी बात है। यह तो शुभभाव अनादि का निगोद में भी होता है तो शुभभाव में जरा शुद्ध का अंश (होता है)। वह मोक्षमार्ग है या उससे निर्जरा होती है, यह बात नहीं है। यह यहाँ नहीं। यह नहीं लेना कि यह भी शुभ है तो

वह शुद्ध का अंश आया। परन्तु शुद्ध अंश आया वह संवर, निर्जरा का कारण नहीं। भले स्वपरहेतुक भाई, शुभभाव है। उसमें यह शुद्धभाव जो कहा है, वह है सही, परन्तु वह संवर, निर्जरा का कारण नहीं। आहाहा! समझ में आया? गड़बड़ लगा दे वहाँ। आता है? खबर नहीं? यह निमित्त-उपादान। बनारसीदास का निमित्त-उपादान आता है या नहीं? अन्त में आता है (उपादान-निमित्त की चिट्ठी, मोक्षमार्गप्रकाशक के अन्त में परिशिष्ट) देखो, निमित्त-उपादान। यह कहे कि, ज्ञान की शुद्धता... ऐसा नहीं है।

.... सर्वथा अशुद्धता होती तो अशुद्धता की कितनी शक्ति होती। विशुद्धता में चारित्र का अंश है। **हे भाई! तूने विशुद्धता में शुद्धता मानी या नहीं? यदि तूने मानी तो कुछ अन्य कहने का कार्य नहीं, यदि तूने नहीं मानी तो तेरा द्रव्य उस प्रकार से परिणमा है, वहाँ हम क्या करें?** यह अलग बात है। समझ में आया? गड़बड़ लगा दे।

मुमुक्षु : वहाँ का यहाँ जोड़ दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई यहाँ जोड़ देता है। यह तो आत्मा की, कोई शुभभाव में एक शुद्ध अंश यदि न रहे तो आगे यथाख्यात शुद्ध होता है, तो अशुद्ध में से शुद्ध हो, ऐसी ताकत नहीं है, तो थोड़ी शुद्धता है, अज्ञानी को भी शुद्ध है, मिथ्यादृष्टि को। परन्तु जब राग और स्वभाव की एकता टूटकर ग्रंथिभेद हुआ, तब स्वभाव में शुद्धि प्रगट हुई। तब वह शुभभाव में शुद्धता थी, ऐसी शुद्धता के साथ जुड़ान हो गया। परन्तु यहाँ अकेला शुभभाव है, उसमें शुद्धता का अंश है, इसलिए संवर, निर्जरा है, भाई! यह गड़बड़ लगा देते हैं, परन्तु वह तो उसे माने नहीं, इसलिए दिक्कत नहीं। यह तो बनारसीदास की बात है। वे पण्डित हैं न! मानो, मानो सबका। शुभ में थोड़ा-थोड़ा...

मुमुक्षु : एक चक्र सो...

पूज्य गुरुदेवश्री : 'एक चक्र सो रथ चले, रवि को यही स्वभाव।' बनारसीदास का यह कथन झूठा है (ऐसा अज्ञानी कहते है)।

मुमुक्षु : पहले तो झूठा नहीं था।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले नहीं था।

मुमुक्षु : पहले तो सब पण्डितों की बात सच्ची थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्ची थी, अब खोटी हो गयी।

मुमुक्षु : सोनगढ़ की बात को असत्य ठहराने के लिये सब पण्डितों की बात (असत्य है, ऐसा कहते हैं)।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात है, बात तो ऐसी ही है। क्योंकि वह पण्डित की बात यहाँ के साथ मिलान खाती है। इनके साथ मिलान खाती है, इसलिए पण्डित भी खोटा, जाओ! अरे... भगवान! यह पण्डित ने घर की बात नहीं की है। महा... बनारसीदास आदि तो महा सम्यग्दृष्टि थे। बनारसीदास ने उनके अनुभव में से विचार करते-करते जो निकला है, वे भाव कहे हैं। उसका अज्ञानी को पता नहीं लगता। समझ में आया?

मुमुक्षु : पण्डित टोडरमलजी को समझ में नहीं आया तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! टोडरमलजी को किसलिए नहीं समझ में आया? परन्तु पण्डित हो जाये, फिर क्या करे? टोडरमलजी की क्या बुद्धि, कितना क्षयोपशम... ओहोहो! मेरा सम्यग्ज्ञान... कहा नहीं? पूर्व के किसी कारण से और भविष्य में मुझे लाभ होने के कारण से ... संस्कार, भविष्य में मेरा कल्याण होनेवाला है, इसलिए मुझे किंचित् सम्यग्ज्ञान हुआ है, उससे मैं कहता हूँ। कहते हैं या नहीं उसमें? उनके तो एक-एक शब्द शास्त्र...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी सूत्र मिले नहीं, सूत्र किसे कहना? सूत्र किसे कहना? यह सूत्र भी हमारे इन भाई ने भी पढ़े नहीं? विमलचन्दजी ने बहुत देखा है।

मुमुक्षु : उनका बराबर व्यवस्थित है, यह....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं कि हमारा व्यवस्थित है। हम बराबर (हैं)। उसमें से व्यवस्थित निकालते हैं। अरे... भाई! वह तो निमित्त के कथन हैं। आचार्यों ने जहाँ-तहाँ अन्तरंग उपादान की बात ही कही है। उसमें भी अन्तरंग उपादान से कार्य होता है, बाहर से नहीं, ऐसा उसमें बहुत आया है। एक जगह आया, उसे सब जगह लगा देना। वे आचार्य थे, वे भी मुनि थे। कहीं मुनि की दृष्टि से विपरीत है कुछ? है ही नहीं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि जब (गाथा) १०७ में कहा, स्वपरहेतुक पर्यायाश्रित, वह विकारी पर्याय है। स्वपर का हेतु अपनी पर्याय निमित्त के लक्ष्य में जाती है, तो इस अपेक्षा से स्वपरहेतुक कहा। इसका अर्थ ऐसा नहीं कि जरा थोड़ा शुद्ध द्रव्य का भी आश्रय है और थोड़ा निमित्त का आश्रय है, उस पर्याय को यहाँ स्वपरहेतुक पर्याय कहा है, ऐसा नहीं है। अकेला विकार है। स्वपरहेतुक अकेला विकार है, अकेला बन्ध का कारण है। परन्तु निज द्रव्य के आश्रय से दर्शन, ज्ञान, चारित्र हुए, उसमें निमित्त को व्यवहार से अनुकूल देखकर मोक्षमार्ग का आरोप दे दिया। आरोप दे दिया, है नहीं। 'अेगो मोक्ख पहो' मोक्षपंथ तो एक ही है, दो मोक्षमार्ग नहीं हैं। अभी उसमें आया था कि दो मोक्षमार्ग है न? नहीं। दो मोक्षमार्ग नहीं और एक है, ऐसा कहते हैं न? एक कहते हैं न? नहीं, दो हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कथन की शैली। परन्तु यह कथनशैली नहीं आयी? **स्वपरहेतुक पर्याय को आश्रित भिन्नसाध्यसाधनभाववाले व्यवहारनय के आश्रय से (-व्यवहारनय की अपेक्षा से) प्ररूपित किया गया था।** यह तो वह निश्चय प्ररूपित किया गया था, वह था न? वह तो मात्र कथन है, कथन। उसमें से ही इन्होंने सब निकाला है। दो प्रकार का कथन है। व्यवहार, निश्चय का दो प्रकार का कथन है, प्ररूपणा है। वस्तु दो प्रकार से नहीं, वस्तु तो एक ही प्रकार से है। समझ में आया? यहाँ लिखा नहीं पहले दो लाईन में? **शुद्धद्रव्य के आश्रित, अभिन्नसाध्यसाधनभाववाले निश्चयनय के आश्रय से मोक्षमार्ग का प्ररूपण किया गया है।** बस, यहाँ आया और यहाँ वापस प्ररूपण आया। प्ररूपणा की है, प्ररूपण है। दो प्रकार से प्ररूपण है। यह बात है। उसमें से ही निकाला है। मैंने तो पहले बहुत विचार करते थे, उसमें से प्रयोजन भी आत्मा ही है। समझ में आया?

मुमुक्षु : मोक्षमार्ग का कथन दो प्रकार से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। कथन दो प्रकार से है। प्रयोजन तो दूसरा आता है, पद्मनन्दी में मूल श्लोक में आता है। प्रयोजन यह है, प्रयोजन है, ऐसा मूल श्लोक में आता है। समझे?

यहाँ शुद्ध द्रव्य का, निज आत्मा का जितना आश्रय लिया, उतना तो निर्मल भाव है, वह तो निश्चयमोक्षमार्ग की प्ररूपणा की और साथ में १०७वीं गाथा में कहा, वह **स्वपरहेतुक पर्यायाश्रित भिन्नसाध्यसाधनभाववाले व्यवहारनय के आश्रय से...** लो। कहो, समझ में आया? यह बात नहीं पढ़ी। देखो, नीचे नोट है। यह सब नोट (फुटनोट) तो पहले वाँचन हो गया था। २३३ में पहला नोट।

जिस नय में साध्य और साधन भिन्न हों (-भिन्न प्ररूपित किए जाएें) वह यहाँ व्यवहारनय हैं; जैसे कि,.... दृष्टान्त **छठवें गुणस्थान में (द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप के आंशिक आलम्बन सहित)....** मुनि है, वे छठवें गुणस्थान में हैं तो अपने शुद्ध स्वभाव का आश्रय तो वहाँ है, आंशिक है, पूरा नहीं। पूरा हो, तब तो केवलज्ञान हो जाये। **(द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप के आंशिक आलम्बन सहित) वर्तते हुए...** यह निश्चय, यह निश्चय। **तत्त्वार्थश्रद्धान (नवपदार्थसम्बन्धी श्रद्धान),....** विकल्प। नौ पदार्थ सम्बन्धी विकल्प। **तत्त्वार्थज्ञान...** यह विकल्प। **पंच महाव्रतादिरूप चारित्र...** यह शुभराग। ऐसे **व्यवहारनय से मोक्षमार्ग है क्योंकि (मोक्षरूप) साध्य स्वहेतुक पर्याय....** क्या कहा? मोक्षरूपी अपनी निर्मल पर्याय स्वहेतुक अपने द्रव्य की पर्याय से उत्पन्न हुई है। और तत्त्वार्थश्रद्धान आदि मोक्षमार्गरूप साधन स्वपरहेतुक पर्याय है। मोक्ष अपनी शुद्ध पर्याय है स्वद्रव्याश्रित वह भिन्न साध्य हो गया और विकल्प है वह स्वपरहेतुक विकार है तो साध्य का भिन्न साधन हुआ। भिन्न साधन का अर्थ निमित्त हुआ। समझ में आया?

तत्त्वार्थश्रद्धान, तत्त्वार्थ का ज्ञान और पंच महाव्रत यह विकल्प—राग है, स्वपरहेतुक पर्याय राग है। उसे भिन्न साधन क्यों कहा? पहले जो अभिन्नसाध्यसाधन कहा था, जो शुद्ध निर्मल स्वअंशी निर्मल पर्याय, वह साधन और निर्मल मोक्ष साध्य, वह तो अभिन्नसाधन (साध्य), एक ही द्रव्य की दोनों निर्मल पर्याय हुई। यह अभिन्नसाध्यसाधन हुआ। अब निर्मल साध्य है, उसका निमित्त विकल्प साधन है, यह भिन्नसाधनसाध्य हुआ, भिन्नसाधनसाध्य हुआ। राग वह भिन्न साधन है, निश्चय शुद्ध निर्मल पर्याय है, वह साध्य है, ऐसे व्यवहार के कथन में भिन्नसाध्यसाधन की प्ररूपणा आती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : साधन तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार साधन तो कहा। व्यवहार साधन कहा अर्थात् यथार्थरूप में साधन नहीं है। इसका अर्थ ही ऐसा है। व्यवहार साधन का अर्थ—व्यवहार अन्यथा कहता है। व्यवहार असत्यार्थ। यह अमृतचन्द्राचार्य का ग्यारहवाँ श्लोक। समस्त व्यवहार अभूतार्थत्वात्, असत्यार्थत्वात्, असत्यं अर्थं प्रध्योतयति। समस्त व्यवहार असत्य और पारमार्थिक वस्तु को नहीं कहता, उसके विकल्प आदि को कहता है, वह तो असत्य होने से असत्य अर्थ का ही प्रतिपादन करता है। साधन नहीं, उसे साधन कहने का नाम व्यवहार है। वह साधन असत्यार्थ है।

ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो॥११॥

वहाँ और भूतार्थ का वापस निकालते हैं जयसेनाचार्य का। अब वहाँ तो भूतार्थ का ज्ञान कराया है। व्यवहार भी भूतार्थ है, ऐसा कहा है न? वह 'है' ऐसा बताया है। उसमें आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा कहाँ कहा है? आहाहा! भारी गड़बड़ भाई! अभी तो शास्त्र का अर्थ करने में स्वपक्ष करके दृष्टि निकालनी है। अब अन्तर में स्वआश्रय निकालना, वह तो कहाँ रहा? समझ में आया? अन्तर में राग होने पर भी राग से भिन्न प्रभु चैतन्यस्वभाव ज्ञायक हूँ, ऐसा स्वभाव का अंकुर प्रगट करना, वह तो अन्तर के आश्रय से है। यहाँ तो अभी बाहर के आश्रय की शास्त्र में बात आवे वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। यह आया, यह... आया, देखो! आया। साधन आया या नहीं? साधन नहीं है, उसे साधन कहना, वही व्यवहारनय का लक्षण है। व्यवहारनय का वह लक्षण है। है, ऐसा समझना, कहना, जानना, वह निश्चयनय है। नहीं, है, उसे कहना, जानना, वह व्यवहारनय का लक्षण है। तो साधन जो कहा, वह साधन नहीं।

मुमुक्षु : व्यवहार साध्य.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार साध्य है नहीं, साध्य तो निश्चय है।

मुमुक्षु : कोई-कोई व्यवहार साध्य होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। साध्य-बाध्य होता ही नहीं। साध्य तो निर्मल पर्याय

ही है। अभिन्नसाध्यसाधन में यह साध्य निर्मल पर्याय है। भिन्नसाध्यसाधन में साध्य निर्मल है, परन्तु विकल्प को निमित्तपने व्यवहारनय से साधन कहने में आया है। वास्तव में साधन, साध्य निर्मल पर्याय का साधन निर्मल दशा है। निर्विकल्प आत्मा के अरागी सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र ही साधन और पूर्ण (दशा) साध्य है। परन्तु यह भिन्नसाधनसाध्य में निमित्त में उपचार करके ऐसी प्ररूपणा करके कहा गया है। दो प्रकार के साधन हैं, ऐसी प्ररूपणा की गयी है। साधन दो है नहीं, साधन एक है। परन्तु एक साधन निर्मल साधन के साथ ऐसे राग की मन्दता का सहचर निमित्त देखकर दो प्रकार से कथन चले हैं। साधन एक ही है, साधन दो नहीं। समझ में आया? आहाहा! क्या करे?

मुमुक्षु : मोक्षमार्गप्रकाशक अनुसार तो व्यवहार अन्यथा प्ररूपित करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्यथा कहता है। लिखा है न! परन्तु वह उनके घर का नहीं है। व्यवहार सब ही अभूतार्थ—अभूत अर्थ है वहाँ से निकाला है। घर का नहीं लिखा। समझ में आया? व्यवहार अभूतार्थ है, सत्स्वरूप को निरूपण नहीं करता और किसी अपेक्षा से उपचार से अन्यथा निरूपण करता है। अन्यथा निरूपण करता है। निश्चय शुद्धनय है, भूतार्थ है। क्योंकि उसका स्वरूप जैसा है, वैसा प्ररूपित करता है। ऐसा दोनों का स्वरूप तो विरुद्धता सहित है। दोनों तो विरुद्ध सहित हुए। दोनों विरुद्धता सहित का फल एक है? व्यवहार का फल तो बन्ध ही है। परन्तु यहाँ मोक्षमार्ग की प्ररूपणा में दो प्रकार की प्ररूपणा आयी है। प्ररूपणा आयी है, दो प्रकार नहीं। यह सब पंचास्तिकाय में से निकालते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रयोजनभूत बात यह है। निश्चय, वह प्रयोजन है। व्यवहार तो बीच में आता है। व्यवहार साधन कहा, इसलिए उससे हो जाता है, ऐसा नहीं। उसका अभाव करते-करते पूर्ण शुद्ध हो जाता है। अभाव करते-करते पूर्ण शुद्ध हो जाता है। उसका सद्भाव रखते-रखते पूर्ण शुद्ध होता है, ऐसा नहीं है। भारी गड़बड़। आहाहा! मुश्किल से अनन्त काल में मनुष्यदेह मिला। एक निगोद में कितने... अभी देखते हैं न

काई। लील-फूग कहते हैं? काई। काई देखते हैं। ओहोहो! एक शरीर में अनन्तगुणे जीव, ऐसे काई के तो ढ़ेर पड़े हैं। असाध्य है न! उसमें से मनुष्य कब हो, कब जैनधर्म मिले, कब सत् सुनने को मिले और कब रुचे? आहाहा! परन्तु मनुष्यपना मिला वहाँ... बस! हम कुछ हैं, हम कुछ हैं। अरे... भगवान! हम कुछ हैं, यह हम आत्मा कुछ हैं। राग हम कुछ नहीं, निमित्त हम कुछ नहीं। मैं तो आत्मा हूँ। ज्ञान, दर्शनस्वभाव से मैं कुछ हूँ। मैं कुछ हूँ, यह तो वह है। धन्नालालजी!

मुमुक्षु : आपकी कोई बात नहीं सुनते वे...

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे, वह भी भगवान है। हम तो उसे भी प्रभु कहकर बुलाते हैं। प्रभु पूर्ण लक्षण गुणवाला है, परन्तु अपलक्षण का भी पार नहीं। वह भी प्रभु ही है, भगवान ही है, पर्याय में भूल है। वस्तु तो जैसी है, वैसी है। यह प्रभु है, वह भी प्रभु है। हम तो कहते हैं, प्रभु! ऐसा न करो, ऐसी भूल न करो। यह तो प्रभु है, भगवान है, परमात्मा है। ओहोहो! और परमात्मप्रकाश तो कहता है कि जिसकी पर्यायबुद्धि गयी, वह दूसरे को भी पर्यायबुद्धि से नहीं देखते। ऐसा है। पर्याय है, उसका ज्ञान करते हैं। अपनी पर्याय विकल्परहित हुई, आत्मा ऐसा है तो सबको ऐसा देखते हैं। सब आत्मा निर्विकल्प प्रभु है। पर्याय में भूल करता है, एक समय की भूल है। वह भूल वही टालेगा, दूसरा कोई टालनेवाला नहीं है। कहो, समझ में आया? कैसे?

यहाँ कहते हैं, ख्याल में यह बात बैठ गयी है न, इसलिए (यह) नहीं (बैठता)। खटक... खटक... अन्दर (रहा ही करती है)। आहाहा! तब क्या कोई शुभराग, पंच महाव्रत, ऐसे व्यवहार श्रद्धान से कोई लाभ नहीं? ऐसा बैठ गया है। भगवान! कुछ लाभ नहीं। उसमें लाभ नहीं, अपने स्वभाव के आश्रय से लाभ है, ऐसा माने बिना कल्याण नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आडम्बर कहा यहाँ तो, विकल्प को तो आडम्बर कहा। नियमसार में तो कहा, उपहास किया है। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि (ने कहा है)। पद्मप्रभमलधारिदेव ने तो व्यवहार का तो उपहास किया है। उपहास... उपहास। इसलिए

उनकी टीका मानते नहीं न। वे उनकी टीका नहीं मानते। दो-चार भूलें निकालते हैं। क्योंकि उसमें तो अत्यन्त निरूपचार स्वभाव रत्नत्रय, एक ही मोक्ष का मार्ग है। और आता है न यह? **'णियमेण य जं कज्जं' 'विपरीत के परिहार हेतु सार पद परकथित है।'** निज शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान, लीनता से विपरीत व्यवहाररत्नत्रय है। उसमें कलश में भी उन्होंने दिया है, हों! पद्मप्रभमलधारिदेव ने। व्यवहाररत्नत्रय विपरीत है। बाद में कलश में है, तो वहाँ फिर लिया, हमारे हिम्मतभाई ने वहाँ लिया है। तो कहे, नियमसार नहीं। तो समयसार का अर्थ क्या है? उसका यह अर्थ हुआ। समयसार— भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म रहित, वह समयसार। ऐसा नियमसार... यह पर्याय की बात है, वह द्रव्य की बात है। समझ में आया? नियमसार—अपने शुद्ध परमात्मस्वभाव की सम्यक् निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान, लीनता यथार्थ। उससे (विपरीत) विकार जो विकल्प व्यवहाररत्नत्रय है, वह भावकर्म है, भावकर्म है। भावकर्म से रहित का नाम नियमसार है। समझ में आया? इसकी भी पहले तकरार करते थे कि ऐसा अर्थ नहीं है। अरे! सुन तो सही! **'विपरीत के परिहार हेतु।'** तो कहे नहीं। मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र विपरीत है, ऐसा कहते हैं। अरे.. भाई! वह भी विपरीत तो है ही परन्तु...

मुमुक्षु : यह दूसरी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो दूसरी बात है। वह भी विपरीत तो है ही। परन्तु अपने स्वभाव के आश्रय से अपनी दिशा में दृष्टि करके, जो दशा अन्तर में से प्रगट हुई, वह पर का लक्ष्य करके जो दशा उत्पन्न हुई, वह एक जाति की कैसे हो सकती है? वह विपरीत है। समझ में आया? अष्टपाहुड़ में नहीं कहा? भावपाहुड़ में ८२ गाथा में। जैनमार्ग, कोई ऐसा कहता है कि व्रत, पूजा, भक्ति जैनधर्म है। नहीं। वह तो पुण्य है। ८२ गाथा में है। अपने आत्मधर्म में आ गया है। पुण्य है, जैनधर्म नहीं। व्रत पराश्रय से होते हैं, भक्ति पराश्रय से होती है, देव-गुरु के आश्रय से होती है। वह निश्चयधर्म नहीं, वह जैनधर्म नहीं। पराश्रित भाव है, वह धर्म है? वह वीतरागधर्म है? नहीं। वीतरागधर्म तो मोह—क्षोभरहित अपने वीतरागी स्वभाव की दृष्टि, ज्ञान और लीनता, वही एक जैनधर्म है। जो समयसार में १५वीं गाथा में कहा। **'जो पस्सदि अप्पाणं।'** वहाँ और यह चिल्लाहट मचाते हैं कि देखो! यह आत्मा को कर्मबन्धरहित कहते हैं। कर्मबन्धरहित।

यह शास्त्र में लिखा है। इनका खोटा है। अब सुन तो सही। यह तो व्यवहार से लिखा है। कर्मबन्ध और आत्मा का निमित्त देखकर (लिखा है)। स्वभाव की दृष्टि में आत्मा में कर्मबन्धन है ही नहीं। कर्मबन्धन तो नहीं परन्तु भावकर्म भी नहीं है। सुन तो सही। व्यवहाररत्नत्रय स्वभाव में नहीं, वहाँ और कर्म का सम्बन्ध है, वह दृष्टि के विषय में है ही नहीं। आहाहा! स्वतन्त्र है। वह भी स्वतन्त्र जीव है। जब तक उसे बैठे... जो तीर्थंकर हुए, उन तीर्थंकरों ने भी पूर्व में ऐसा किया था। उनके जीव ने भी ऐसा बहुत विपरीत किया था, तब वह भटका है न? क्यों मित्रसेनजी! तीर्थंकर का जीव भी अनन्त काल क्यों भटका? उसने भी तीर्थंकर का (उपदेश) नहीं माना था। फिर तीर्थंकर हुए। बाद में भविष्य में दूसरे तीर्थंकर होनेवाले होंगे, वे भी तब तक नहीं माने। समझ में आया? जब उनकी योग्यता पकेगी... ओहो! यह चैतन्य निरालम्ब पदार्थ। विकल्प का जिसमें अंश, राग के अंश की गन्ध नहीं। अकेला चैतन्यपुंज का पिण्ड ही, अनन्त गुण का धाम वह है। ऐसी दृष्टि-योग्यता होगी, तब उसे भी प्रगट हो जायेगी और वह फिर तीर्थंकर हो जायेगा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या.. तपस्या? तुम किसे कहते हो... तपस्या? किसे कहते हैं तपस्या? छह महीने नहीं खाया वह? कौन उसे तपस्या कहता है? अपने स्वरूप में उग्ररूप से आनन्द का उफान आया, उसका नाम तपस्या है।

मुमुक्षु : ठीक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, ठीक है, यही ठीक है, दूसरा कोई ठीक है ही नहीं। ऐसा कहना है कि पंच महाव्रत लिये, छह-छह महीने के अपवास किये। लोग बाहर से देखते हैं। परन्तु ऐसा नहीं है। इतना आहार तो आनेवाला नहीं था। जितना आहार आनेवाला नहीं था वह तो जड़ के कारण से। अपने में जरा विकल्प आया, वह पुण्यभाव है। उससे रहित अपने स्वभाव में जितना 'प्रतपन इति तपः', प्र—उग्ररूप से शुद्ध का... जैसे सोना—स्वर्ण को गेरु लगाते हैं न? गेरु। गेरु कहते हैं न? ओपता है, सोना ऐसे ओपता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने दृष्टि-ज्ञान से तो आत्मा को

पकड़ लिया है, फिर स्थिरता इतनी जम गयी कि अन्दर से आनन्द का उग्र उभार—उफान, अतीन्द्रिय आनन्द का उफान आवे, उसे तपस्या कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग—विकल्प आया। विकल्प आया, वह कहीं तपस्या नहीं। फिर विकल्प रहित ध्यान में आये, सप्तम गुणस्थान आया, वह तपस्या है, वह चारित्र है। भारी गड़बड़।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य से मिली। परन्तु देह कहाँ साधन है अपना? देह कहीं साधन नहीं, पैसा-बैसा कुछ तुमको साधन नहीं।

मुमुक्षु : सुनने को मिला।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनने को मिले, वह कुछ साधन है नहीं। भगवान आत्मा अपना निर्णय करने के लिये जब तैयार होता है, तब पर का साधन-फाधन कुछ काम नहीं करता। समझ में आया? क्या करे? सुनना क्या? कान क्या? और जब तक पूर्व का शुभभाव था, वह ठीक था—ऐसी मान्यता है, तब तक निज स्वभाव सन्मुख उसकी वृत्ति जमेगी नहीं। भूतकाल का शुभभाव, वर्तमान का शुभभाव और भविष्य का शुभभाव मुझे लाभदायक हुआ, होगा। हुआ, होगा और है, ऐसा जब तक मानता है, तब तक स्वभाव पर दृष्टि नहीं जाती। क्यों देवानुप्रिया! लॉजिक से है या नहीं यह? या गड़बड़ है। लॉजिक सर्वज्ञ परमात्मा के न्याय से मार्ग है। **'न्यावयम'।** न्याय से। जैसा वस्तु का स्वरूप है, वैसा न्याय से कहते हैं। समझ में आया?

देखो! आया न इसमें? (व्रतादिरूप चारित्र) **व्यवहारनय से मोक्षमार्ग है क्योंकि...** वह **साधन स्वपरहेतुक पर्याय है।** नोट। **प्ररूपित किया गया था। इसमें परस्पर विरोध आता है, ऐसा भी नहीं है,...** देखो, अब दूसरी लाईन। परस्पर विरोध का अर्थ कि ऐसा निश्चय हो, तब ऐसा व्यवहार हो तो उसमें विरोध आया, ऐसा भी नहीं है। होता है। स्वभाव के अवलम्बन से जितनी शान्ति—समाधि की निर्विकल्प परिणति हुई, पूर्ण नहीं तो वहाँ ऐसा व्यवहार, अनुकूल निमित्त व्यवहार से आता है, उसमें परमार्थ से विरोध

नहीं है। विरोध नहीं अर्थात् कि वह है, इसलिए यहाँ चारित्रादि नहीं रहते, वह है तो यहाँ स्वरूप के श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र नहीं रहते, ऐसा नहीं है। स्वयं के कारण से यह रहा है, उसके कारण से वह रहा है। दोनों साथ हों, उसमें परस्पर विरोध है नहीं। शान्ति से विरुद्ध है, वह बात यहाँ नहीं। परन्तु वह है तो यहाँ निर्मल दशा नहीं रह सकती और निर्मल दशा है और विकल्प आया तो उसका तब नाश हो गया, ऐसी बात नहीं है। क्योंकि... परस्पर लिया है, हों! परस्पर। जहाँ व्यवहार है, वहाँ ऐसा निश्चय अपने कारण से होता है। निश्चय अपने कारण से होता है, वहाँ व्यवहार (ऐसा होता है)।

सुवर्ण और सुवर्णपाषाण की भाँति... देखो! स्वर्ण स्वर्णपाषाण में से प्रगट होता है। **निश्चय-व्यवहार को साध्य-साधनपना है; इसलिए पारमेश्वरी (-जिनभगवान की) तीर्थप्रवर्तना दोनों नयों के आधीन है।** नीचे है। **जिस पाषाण में सुवर्ण हो, उसे सुवर्णपाषाण कहा जाता है। जिस प्रकार व्यवहारनय से सुवर्णपाषाण सुवर्ण का साधन है;...** स्वर्ण का पत्थर स्वर्ण का साधन निमित्त से कहने में आता है। वास्तव में तो स्वर्ण अपनी पर्याय से निर्मल होकर प्रगट होता है। यह आगे आयेगा आगे, भाई! आगे है न! स्वयं के कारण से है, पर के कारण से नहीं। अग्नि का निमित्त होकर ऐसा हुआ, वह व्यवहार से कहा। स्वर्ण ही अपनी पर्याय से परिणमकर निर्मल हो जाता है। साथ में भले निमित्त हो, वह तो निमित्त की बात की। स्वर्ण अपने उपादान से शुद्ध होता जाता है। इसी प्रकार आत्मा स्वयं से शुद्ध होता जाता है। विकल्प साथ में हो। वह तो घटता जाता है। समझ में आया? **उसी प्रकार व्यवहारनय से व्यवहारमोक्षमार्ग निश्चयमोक्षमार्ग का साधन है;...** व्यवहारनय से, हों! **व्यवहारनय से व्यवहारमोक्षमार्ग निश्चयमोक्षमार्ग का साधन है; अर्थात् व्यवहारनय से भावलिंगी मुनि को सविकल्प दशा में वर्तते हुए तत्त्वार्थश्रद्धान, तत्त्वार्थज्ञान और महाव्रतादिरूप चारित्र निर्विकल्प दशा में वर्तते हुए शुद्धात्म-श्रद्धानज्ञानानुष्ठान के साधन हैं।** लो, निमित्त है। निमित्त है तो उसकी दशा जाती रहती है, छठवें गुणस्थान के योग्य दशा (चली गयी है) ऐसा नहीं है। ऐसा दोनों स्थान में होता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ११, मंगलवार, दिनांक - १८-०८-१९६४, गाथा-१५९, प्रवचन-५

कहाँ तक आया? सेठी! चौबीस घण्टे हो गये न? तेईस घण्टे। १५९ गाथा चलती है। देखो! यह वर्तमान में बहुत गड़बड़ है तो यह समझने की वस्तु है। कल बहुत आया है। व्यवहार पहले है, व्यवहार पहले है, निश्चय बाद में। चौथे से सातवें तक व्यवहार मोक्षमार्ग है और किसी को बारहवें में भी व्यवहार मोक्षमार्ग है और तेरहवें, चौदहवें में भी किसी को मोक्षमार्ग है और सिद्ध में साध्य है।

मुमुक्षु : सिद्ध को तो व्यवहार नहीं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। सिद्ध साध्य है, सिद्ध साध्य है। यह लिखा है न, ...में लिखा है। तेरह, चौदह तो मोक्षमार्ग है। यहाँ तुम मोक्ष साध्य कैसे लेते हो? जिसे जैसा रुचे। सिर पर कोई स्वामी—मालिक नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा की भी खबर नहीं। आत्मा क्या है।

यहाँ कहते हैं, क्या कहते हैं देखो! यहाँ तक आया है। **इसमें परस्पर विरोध आता है, ऐसा भी नहीं है,...** है? किसमें? जो आत्मा अपना शुद्धस्वरूप पुण्य-पाप के राग से भिन्न होकर निज स्वरूप के श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र ऐसा स्वआश्रय स्वभाव साधता है, वह साधन है, वह निश्चय साधन है। और पूर्ण स्वभाव की प्राप्ति, वह साध्य है। तो साध्य भी निर्मल है और साधन भी निर्मल है, तो उसे अभिन्नसाध्यसाधन कहने में आया है। समझ में आया? मोक्ष—अपनी निर्विकल्प शान्ति, पूर्णानन्द की प्राप्ति भी निर्मल है और अपने द्रव्य के आश्रय से अपनी वर्तमान ज्ञान की पर्याय को स्वज्ञेय में एकाकार करके जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की निर्मल निर्विकारी पर्याय होती है, उसे निश्चय मार्ग कहते हैं। वह निश्चय साधन है और पूर्ण मुक्ति होना, वह (साध्य है)। यह अभिन्नसाध्यसाधन हुआ, एक जाति का। समझ में आया? एक जाति का साधन और एक जाति का साध्य। समझ में आया या नहीं इसमें?

शुद्धता। अपने स्वभाव में पुण्य-पाप के विकल्प से, राग से रहित निज शुद्ध

चिदानन्द स्वरूप के आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की अरागी वीतरागी पर्याय जो है, उसे साधन कहा गया है और साध्य पूर्ण दशा। यह अभिन्नसाध्यसाधन हुआ। तो साधन पहले और साध्य बाद में, यह भी उसमें आ गया। अब अपने पहले और बाद में जरा (लेते हैं)। वे कहते हैं न, पहले और बाद में। तब यह व्यवहार... अपने यहाँ तो अब व्यवहार में लगाना है। निश्चय में तो हुआ।

अब यहाँ कहा, **भिन्नसाध्यसाधन-भाववाले व्यवहारनय के आश्रय से (-व्यवहारनय की अपेक्षा से) प्ररूपित किया गया था।** क्या? १०७ गाथा में। अपने १०७ चली न? वह स्वपर्याय कर्म के निमित्त के लक्ष्य से स्वपरहेतुवाला जो विकल्प अर्थात् राग था, उसे व्यवहारनय से मोक्षमार्ग कहा गया है। समझ में आया? तो कहते हैं कि, वह भिन्नसाध्यसाधनवाले व्यवहारनय से। क्या कहा? कि जो विकल्प है—राग है, वह स्व-पर प्रत्यय हेतु उत्पन्न हुआ है। आत्मा के आश्रय से उत्पन्न हुआ, वह राग नहीं है। जो राग है, वह पंच महाव्रत के परिणाम, बारह व्रत के परिणाम, नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, वह नौ तत्त्व का ज्ञान और राग की मन्दता पंच महाव्रतादि, वह स्व-पर प्रत्यय राग की पर्याय है, वह साधन है और पूर्ण शुद्ध साध्य है कि सप्तम गुणस्थानवाली निर्विकल्प दशा साध्य है तो वहाँ साध्यसाधन भिन्न हो गये। राग साधन हुआ, वह भिन्न है और साध्य जो निर्विकल्पदशा सप्तम गुणस्थान की या ऊपर की, वह निर्मल हुई, तो निर्मल भिन्न है, मलिन भिन्न है। व्यवहारनय से उसे भिन्न साधन, भिन्न साध्य कहने में आया है। समझ में आया? पहले साधन और बाद में साध्य, यह भी उसमें आया।

निश्चय निर्विकल्प अपने स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति पहले और बाद में पूर्ण साध्य। और उसके साथ राग आया, वह पहले और बाद में साध्य, पूर्ण साध्य। उसे यह निमित्त कहने में आता है। पोपटभाई! भिन्न। क्योंकि निर्मल साध्य निर्दोष दशा और राग साधन। तो भिन्नसाध्यसाधन कहने में आया है, वह व्यवहारनय से। निश्चयनय से अभिन्न निर्मलदशा और निर्मल पूर्ण वह अभिन्नसाध्यसाधन कहने में आया। कल बहुत आया है, हों! अभी बहुत चलता है। कल तो तीन-चार पृष्ठ सम्पादक ने भरे हैं। साध्य-साधन, साध्य-साधन। पहले व्यवहार होता है। सप्तम गुणस्थान तक तो निश्चय है ही नहीं। ओ... भगवान! निश्चय बिना (व्यवहार कैसा)?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और अपने कहते हैं। यह तो अभी बारहवाँ कहते हैं। आठवाँ कहते हैं, यह तो अब बारहवाँ कहते हैं। और यह जरा... किसी समय कदाचित् छठवें में राग और सातवें में निर्विकल्प किंचित्मात्र कहा जाता है। और ऐसा थोड़ा लिया है। वास्तविक तो पूर्ण तेरहवें में साध्य और नीचे साधन है। अरे..! कुछ कल्पना... कल्पना... कल्पना।

टोडरमलजी ने तो निश्चय और व्यवहार में सहचर कहते हैं, सहचारी। साथ-साथ में रहनेवाले। समझ में आया? जब अपने स्वभाव की दृष्टि, ज्ञान और निर्विकल्प प्रतीति आदि हुई तो साथ में जितना नौ तत्त्व के भेदवाला राग, व्यवहारश्रद्धा, व्यवहारज्ञान और पंच महाव्रतादि के परिणाम को व्यवहार सहचर—सहचारी कहकर निमित्त देखकर उपचार से उसे व्यवहारनय भिन्नसाध्यसाधनवाले को साधन में व्यवहार का आरोप करके वह मोक्षमार्ग है, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया?

तो कहते हैं, **इसमें परस्पर विरोध आता है, ऐसा भी नहीं है,...** कि यह क्या? अभिन्नसाध्यसाधन भी है और भिन्नसाध्यसाधन भी है, यह क्या? सुन भाई! उसमें विरोध नहीं है। जितना स्व-पर प्रत्यय आश्रय विकल्प अर्थात् राग रहा, छठवें गुणस्थान में, पाँचवें, चौथे आदि में, वह विकल्प रहा पंच महाव्रतादि व्यवहाररत्नत्रय का, उसे निमित्तरूप से, व्यवहाररूप से साधन कहकर साध्य उससे प्राप्त होता है, (ऐसा कहा)। क्योंकि दो मोक्षमार्ग कहे न? दो। तो दो मोक्षमार्ग तो दोनों का फल मोक्ष। समझ में आया? पुरुषार्थसिद्धिउपाय में ऐसा लिया है कि निश्चय-व्यवहारमार्ग से मोक्ष होता है। तो उसमें कहते हैं, मार्ग दो कहे तो दोनों का फल एक मोक्ष कहा। परन्तु किस अपेक्षा से? कि साथ में निमित्त है और यहाँ अभिन्न साधन प्रगट हुआ है तो दोनों से हुआ, (ऐसा कहा)। राग से हुआ, यह उपचार से और शुद्धता से हुआ यथार्थता से। शुद्धता से मुक्ति हुई, यह यथार्थता से और स्व-पर प्रत्ययी मुक्ति हुई, यह उपचार से। क्योंकि यह मार्ग ही उपचार है तो उससे मुक्ति हुई, यह भी उपचार से हुई है। नवरंगभाई! अरे... भगवान! आहाहा!

कहते हैं कि **इसमें परस्पर विरोध....** नहीं आता। ऐसा होता है। जब अपने में

निश्चय शुद्धस्वभाव के श्रद्धा, ज्ञान का साधन होता है और पूर्ण साध्य होता है तो अभिन्न साध्यसाधन है। उसमें व्यवहाररूप निमित्त सहचर—साथ में रहनेवाला है, (इसलिए) आरोप से कहने में आता है। तो उसमें कोई विरोध नहीं है। क्यों? क्यों अर्थात् कारण है न? उसमें ऐसा शब्द है। **कारण कि...** अपने हिन्दी में 'क्योंकि' लिखा है। **क्योंकि स्वर्ण...** देखो, ध्यान रखना। **और स्वर्णपाषाण...** स्वर्ण, वह वास्तव में उपादान है और स्वर्णपाषाण, वह निमित्त है। तो स्वर्ण होने में, प्रगट होने में स्वर्ण वह निश्चय है। अन्दर स्वर्ण की जितनी निर्मल पर्याय अपने से होती है, वह निश्चय है और स्वर्ण का पत्थर निमित्त का जितना हट जाता है, उतना उतना निमित्त को—स्वर्णपाषाण को शुद्ध का साधन कहा, सोलहवान सोने का साधन कहा, वह निमित्त से कहा जाता है। किसे? स्वर्णपाषाण को। स्वर्णपाषाण को स्वर्ण की प्राप्ति में निमित्त कहा और स्वर्णपाषाण को... स्वर्ण प्राप्ति में यथार्थता से शुद्ध उपादान साधन है। स्वर्ण ही अपने शुद्ध उपादान से परिणमित होकर पूर्ण शुद्ध होता है। तो स्वर्णपाषाण स्वर्णशुद्धि में निमित्त से उपचार से शुद्धि का कारण है, ऐसा स्वर्णपाषाण को कहा गया है।

मुमुक्षु : स्वर्णपाषाण में से स्वर्ण मिलता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। उसमें से निकलता है? स्वर्णपाषाण कहा है। अकेला पत्थर नहीं। स्वर्ण के पाषाण में से जो स्वर्ण निकलता है, वह स्वर्ण तो अपनी पर्याय की शुद्धता से स्वयं से प्रगट होकर पूर्ण सोलहवान (होता है)। सोलहवान कहते हैं न? सोलह आना, सौ टंच। पूर्ण होता है। परन्तु उसमें स्वर्णपाषाण का निमित्त था, उसमें सोने का सम्बन्धरूप से सोने का था न! तो इतना निमित्तसम्बन्ध कहकर उससे भी शुद्धि हुई, ऐसा निमित्त से आरोप देकर कहने में आया है। यह आगे कहेंगे, हों! निमित्त से शुद्धि होती है, भाई! इसलिए यहाँ 'शुद्ध' शब्द प्रयोग करते हैं। हाँ, आगे कहेंगे कि व्यवहार की शुद्धि। व्यवहार की शुद्धि अर्थात् यह व्यवहार की शुद्धि। समझ में आया? नवरंगभाई! यह पंचास्तिकाय का गजब! इसमें से ही निकाला है भाई ने तो मोक्षमार्ग (प्रकाशक में) सहचर देखकर कहा है। यथार्थ में मोक्षमार्ग नहीं है। अब यहाँ आयेगा। दो नय का है न, उसमें विवाद है। देखो! यह सब डालते हैं।

स्वर्ण और स्वर्णपाषाण, समझ में आया? स्वर्ण के पत्थर में से स्वर्ण निकलता

है तो स्वर्णपाषाण को निमित्त कहा गया है, इसी प्रकार अपना आत्मा शुद्ध स्वभाव की अन्तर स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान, रमणता करता है, वह स्वर्ण के स्थान में निर्मलता प्रगट करके पूर्ण निर्मलता का कार्य करता है, उसमें उस व्यवहार का विकल्प स्वर्णपाषाण की भाँति निमित्त और सहचारी कहने में आया है। कहो, समझ में आया? स्वर्णपाषाण का उसे कहाँ है, नहीं, उसे तो लोहे का है। यह तो उसको था। वह तो... कैसे? जेठालाल संघवी। उन्हें स्वर्णपाषाण का था। स्वर्णपाषाण के पत्थर वहाँ करते, उन्हें निकालते। कहो, समझ में आया?

स्वर्ण, वह अभिन्नसाध्यसाधन। स्वर्णपाषाण, वह भिन्नसाध्यसाधन। अथवा स्वर्ण, वह निश्चय और स्वर्णपाषाण, वह व्यवहार। आया इसमें? आया देखो। **सुवर्ण और सुवर्णपाषाण की भाँति....** स्वर्ण, वह निश्चय और स्वर्णपाषाण, वह व्यवहार। यह अपने दूसरे में आ गया है। दूसरी बात तो आ गयी थी। तीर्थ तक नहीं आया। दो नोट (फुटनोट) कल आ गये हैं। अब एक यहाँ रह गया है।

निश्चय-व्यवहार को साध्य-साधनपना है;.... क्या? स्वर्णपाषाण व्यवहार से साधन और स्वर्ण निश्चय से निर्मलता होती है, वह निश्चयसाधन। पूर्ण सोलह टंच का सोना होने में। इसी प्रकार अपने आत्मा में शुद्ध स्वभाव वीतरागी परिणति अपने स्वभाव के आश्रय से हुई, वही पूर्ण शुद्ध में निश्चयसाधन है और राग-विकल्प कहा, वह स्वर्णपाषाण के स्थान में उसमें व्यवहारसाधन कहा गया है। ज्ञान कराना है। दूसरा निमित्त कौन है, उसका ज्ञान कराना है। तो यहाँ कहते हैं, देखो!

इसलिए ही पारमेश्वरी... यहाँ सब कहते हैं, देखो भाई! भगवान की आज्ञा, तीर्थप्रवर्तना। तीर्थ अर्थात् मोक्षमार्ग। तीर्थ अर्थात् नीचे (फुटनोट में) है।'तीर्थ (अर्थात्) मोक्षमार्ग', तीर्थ अर्थात् उपाय... तीर्थ अर्थात् भगवान का उपदेश... और तीर्थ अर्थात् भगवान का शासन। नीचे इतने अर्थ किये हैं। है न? **पारमेश्वरी (—जिनभगवान की)...** मार्ग की शैली, जिनभगवान के उपदेश की शैली, जिनभगवान की शासन की शैली, जैनभगवान के उपाय की पद्धति। **तीर्थप्रवर्तना दोनों नयों के आधीन है।** यहाँ कठिन है, देखो! भगवान की तीर्थ प्रवर्तना, शासन प्रवर्तना, उपदेश प्रवर्तना, मार्ग की

प्रवर्तना, उपाय की प्रवर्तना और दोनों नयों के आधीन है। अब इसमें गड़बड़ (करते) हैं। बाबूभाई!

दोनों नयों के आधीन का अर्थ क्या? दोनों नयों से इसमें कथन चलता है। प्ररूपणा दोनों नय से चलती है। दो प्रकार का प्ररूपण आया न? समझ में आया? यह बात है। बहुत गड़बड़ी। परन्तु इतनी सब गड़बड़ होगी, वह तो हमको खबर नहीं, हों! यह तो भारी निकाला, भाई! चौथे से सातवें व्यवहार और बारहवें तक व्यवहार। आहाहा! स्वपरप्रत्ययी व्यवहार संवर, निर्जरा का कारण। आहाहा! यह शब्द क्या है? **स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित,...** व्यवहारनय है भिन्नसाध्यसाधनभाव। तो वह तो विकल्प—राग आया। राग संवर, निर्जरा का कारण है?

मुमुक्षु : कथंचित् है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कथंचित् है? राग तो बन्ध का ही कारण है। परन्तु अबन्ध परिणाम अपने से स्वभाव में शुरु हुए हैं, उसके साथ निमित्त देखकर अबन्ध परिणाम को मोक्षमार्ग कहा और निमित्त को अबन्ध परिणाम व्यवहार से कहा अथवा व्यवहार से मोक्षमार्ग कहा। बन्ध परिणाम है, उसे अबन्ध परिणाम कहना, बन्धमार्ग है, उसे मोक्षमार्ग कहना, यह व्यवहारनय का लक्षण है। आहाहा! समझ में आया? डालचन्दजी! लोगों को यह नय अवरोधक है। दोनों नयों के आधीन है, तुम्हारे तो पहले एक नय व्यवहार है और निश्चय तो बारहवें में (होता है)। कब होगा बारहवाँ? दो भव, पाँच भव बाद। समझ में आया? ऐसा नहीं, भाई!

दोनों नय साथ में है। अभिन्नसाध्यसाधन जब है, उसी समय भिन्नसाध्यसाधन पहले कहो, उसमें कोई बाधा नहीं। समझ में आया? साध्य निर्विकल्पदशा बाद में आती है या बारहवें के बाद तेरहवाँ गुणस्थान साध्य आता है तो यहाँ जितनी निर्मल दशा शुद्ध स्व के आश्रय से अरागी श्रद्धा, ज्ञान, रमणता है, उसी काल में राग का विकल्प है, उन दोनों को साधन कहने में आया है। साधन। साधन दोनों साथ में हैं। साध्य बाद में है। भाई! ऐसा कहते हैं कि साधन पहले, बाद में साध्य। पहले साधन ले, भाई! परन्तु किस अपेक्षा से?

पहले स्वरूप की पूर्ण शुद्धि, वह साध्य। उसकी निर्मल विकाररहित आत्मा के श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र की निर्मल पर्याय निश्चयसाधन। वह निश्चयसाधन पहले और साध्य बाद में। एक बात हुई। और निश्चयसाधन के साथ विकल्प जो है स्वपरप्रत्यय आश्रय नौ तत्त्व की भेदरूप श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान, पंच महाव्रत के परिणाम, वे भी साधन व्यवहार से। यह पहले और फिर साध्य पूर्ण होगा। तब यह साधन वहाँ जाकर पूर्ण होगा, तब निमित्त का अभाव होगा, इस अपेक्षा से उसे साधन कहने में आया है। आहाहा! यह तो क्षण-क्षण में अभाव तो होता जाता है या नहीं? अरे... भगवान! क्या कहते हैं? ऐसा मार्ग सीधा-सीधा सरल है परन्तु ऐसा डाल दिया... चिमनभाई! यह देखो तुम्हारे सब पण्डितों को सब कठिन पड़ेगा मुम्बई में। सामने जवाब देना पड़ेगा। ऐसे सब आते हैं... क्या कहलाता है? पूर। पानी के सामने झेलना कठिन पड़े कि क्या होगा? क्या है? यह तो पहले व्यवहार कहते हैं, बाद में निश्चय। श्रीमद् तो कहते हैं, निश्चय और व्यवहार साथ में है। 'नय निश्चय एकान्त से इसमें नहीं कहा, एकान्त से व्यवहार नहीं दोनों साथ रहे।' दोनों किस प्रकार कहोगे? अगास में यह गाथा चली थी। जब (संवत्) २०१३ के वर्ष में अगास गये थे न! श्रीमद् यह दोनों साथ कहते हैं। पहले व्यवहार और बाद में निश्चय, ऐसा तो उसमें कहते नहीं। क्या है उसमें? तो बेचारा बोला था कि ऐसी सूक्ष्म बात यहाँ चलती नहीं। दोनों तो साथ में है। तो दो धर्म भी साथ में है। नय का विषय भी एक साथ है। समझ में आया? टोडरमलजी ने जो निकाला है, वह तो शास्त्र का रहस्य उसमें से निकाला है। जो यह भिन्नसाध्यसाधन है, वह साथ में विकल्प हो और है, इसलिए कहीं निश्चय की शुद्धि प्रगट हुई है, उसके विरुद्ध नहीं। विरुद्ध का अर्थ उसका ह्रास, वर्तमान में ह्रास नहीं करता। इतनी शुद्धि उत्पन्न नहीं होती, वह अलग बात है, परन्तु जितनी अपने स्वभाव में ज्ञायक द्रव्य के आश्रय से शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, लीनता हुई और उसके साथ विकल्प स्व-पर निमित्तवाला राग है। दोनों साथ में रहने में विरोध नहीं है। समझ में आया?

जैसे सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन को साथ में रहने में विरोध है, ऐसा यह विरोध नहीं। इस अपेक्षा से बात है। समझ में आया? जैसे सम्यग्दर्शन है तो साथ में मिथ्यादर्शन भी है, यह विरोध है। ऐसा नहीं होता। परन्तु निश्चयमोक्षमार्ग निज स्वभाव के आश्रय

से है, तब व्यवहार विकल्प है, उसका विरोध नहीं। विरोध नहीं, दोनों साथ में होते हैं। समझ में आया? सेठी! यह सब समझने की बात है। यह सब प्रमुख तुम्हारे बड़ों को सबको बाधा उठेगी उनको। पण्डित लायेंगे ऐसा... ऐई! कचरा। अरे... भाई! बापू! यह परमेश्वर का घर जानना, वह कोई अलौकिक बात है। वह अपना निज परमेश्वर के घर में जाना और उसका हल करना, वह बहुत अलौकिक गहरी बात है।

भगवान आचार्य कहते हैं कि तीर्थप्रवर्तना अर्थात् निश्चयमोक्षमार्ग का होना अथवा तीर्थ का-तिरने का उपाय का होना। देखो! उपाय, वह तीर्थ है न, भाई! उपाय। नीचे उपाय है। तीर्थ अर्थात् उपाय, तीर्थ अर्थात् मार्ग। तीर्थ अर्थात् भगवान का शासन। भगवान के शासन में दो उपदेश आये हैं। दो नय का उपदेश आया है। कहो, परन्तु इसका अर्थ ऐसा नहीं कि व्यवहारनय का जो मार्ग है, वह भी शुद्धि का मार्ग है। आरोप से कहा है, यथार्थता में नहीं। समझ में आया? कुछ समझ में आया भाई अशोक? क्या नाम है? अमुलखचन्दजी! देखो यह अमुलख की बात है। अमोल है, भगवान के भाव, आत्मा के भाव तो अमोल है। उसके साथ राग को भी अमोल कह देना, वह व्यवहार है। कहो, समझ में आया?

दोनों नयों का... अब दोनों का भाई ने—पण्डितजी ने विशेष स्पष्टीकरण किया है, देखो! चौथा है न, चौथा? चोगडा (फुटनोट में पॉइन्ट ४) **जिनभगवान के उपदेश में दो नयों द्वारा निरूपण होता है।** है नीचे नोट? **वहाँ, निश्चयनय द्वारा तो सत्यार्थ निरूपण....** देखो! निश्चयनय द्वारा सत्यार्थ कथन, सत्यार्थ शासन, सत्यार्थ मोक्षमार्ग, सत्यार्थ उपाय, सत्यार्थ उपदेश। निश्चयनय द्वारा सत्यार्थ उपदेश, सत्यार्थ निरूपण, सत्यार्थ मार्ग, सत्यार्थ उपाय (किया जाता है)। **और व्यवहारनय द्वारा अभूतार्थ उपचरित....** ११वीं गाथा के न्याय से। समझ में आया? (समयसार की) ११वीं गाथा है न? **'ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ'।** भूतार्थ त्रिकाल वस्तु को ही हम शुद्धनय कहते हैं। त्रिकाल भगवान शुद्ध आत्मा, उसे ही शुद्धनय कहते हैं। पर्याय, राग को हम असत्यार्थ कहते हैं। असत्यार्थ का आशय (यह कि) टिकती त्रिकाल चीज़ नहीं कि जिसमें दृष्टि रहने से टिकती चीज़ हो, उसे भूतार्थ कहा जाता है। वह स्वयं

अस्थिर हो और जिसमें दृष्टि लगाने से दृष्टि भी अस्थिर हो, उसे यहाँ भूतार्थ नहीं कहा गया। समझ में आया?

तो यहाँ कहते हैं, **व्यवहारनय द्वारा अभूतार्थ उपचरित निरूपण किया जाता है।** और टोडरमलजी ने भाई, यही लिया है न! कल कहा था। मोक्षमार्ग को ही उन्होंने भूतार्थ, अभूतार्थ ऐसा कहा है। समझे न? दो प्रकार। भूतार्थ-अभूतार्थ मोक्षमार्ग है। यह तो नय के आश्रय है न! वह कहीं घर का नहीं है। देखो! यह कहा, देखो! समयसार में शुद्धात्मा का अनुभव निश्चय कहा है। नीचे कहा, देखो! अनुसार भूतार्थ-अभूतार्थ मोक्षमार्गपने द्वारा। भूतार्थ, वह निश्चय और अभूतार्थ, वह व्यवहार। भूतार्थ-अभूतार्थ मोक्षमार्ग वह घर का नहीं कहा। यह ग्यारहवीं गाथा के न्याय से कहा है। भूतार्थ जो सत्यार्थ, वह निश्चयमोक्षमार्ग है। पर्याय को लगाना। वहाँ लगाया है द्रव्य और पर्याय के साथ में। जो मूल गाथा है (उसमें ऐसा है कि) भूतार्थ, वह शुद्धनय। कायम चीज़ है, वही शुद्धनय है और एक समय की पर्याय, राग अभूतार्थ है। क्योंकि टिकती कायम टिकनेवाली वस्तु नहीं। उसके आश्रय से अपने निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होती। इसलिए उसे अभूतार्थ कहा है। वस्तुरूप से है।

यहाँ तो कहते हैं, इस शैली से मोक्षमार्ग में लगाया। पर्याय में निर्मल पर्याय है, वह भूतार्थ मोक्षमार्ग है। निज द्रव्य के आश्रय ये शुद्ध श्रद्धा और चारित्र निर्मल निर्विकारी निर्विकल्प अरागी जो आत्मा में परिणति / पर्याय हुई, वह भूतार्थ मोक्षमार्ग है, वह सत्यार्थ मोक्षमार्ग है। और साथ में जो विकल्प आया सहचर, वह अभूतार्थ मोक्षमार्ग है। अभूतार्थ का उपदेश है, असत्यार्थ का उपदेश है। समझ में आया? यह तो चल गयी है, बहुत चलेगी, हों! अब लोग नहीं छोड़ेंगे, बहुत पण्डित एकसाथ हैं। इसलिए यह बात तो चलेगी, बहुत झंझट।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्ची बात है। भाई! प्रभु! यह सत्य तो समझ, बापू! यह कहीं किसी के पक्ष का मार्ग नहीं। यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है। ऐसी है, ऐसा भगवान ने कहा है। कहीं भगवान ने स्वयं से नया कुछ नहीं कहा।

देखो! यहाँ क्या कहते हैं? इस प्रकार भूतार्थ, अभूतार्थ मोक्षमार्गपने द्वारा उसे निश्चय-व्यवहारनय ऐसा ही मानना, ऐसा यहाँ टोडरमलजी ने कहा है। यह उन्हें नहीं जँचता। मिथ्या ठहराते हैं। आर्षवाक्य लाओ। यह आर्षवाक्य नहीं है? यह भूतार्थ-अभूतार्थ आर्षवाक्य नहीं? भूतार्थ, वह निश्चय है; अभूतार्थ वह व्यवहार है—यह आर्षवाक्य नहीं है ११वीं गाथा का? समझ में आया? यह भी नहीं है? देखो! जो व्यवहारमार्ग है, वह स्वपरपर्यायहेतुक है। तो स्वपरपर्यायहेतुक में ऐसा नहीं लेना कि थोड़ी शुद्धता है और थोड़ी अशुद्धता है, ऐसा नहीं। यह और वहाँ लगाते हैं। ऐसा नहीं है। यहाँ तो स्वपरहेतुक से उत्पन्न हुई है, उत्पन्न हुई है। आत्मा भी है और निमित्त का लक्ष्य है, उससे उत्पन्न हुआ जो विकल्प-राग, उस राग को व्यवहारसाधन उपचार से साथ में अनुकूल-निमित्त व्यवहार से देखकर, उसे आरोप करके व्यवहारसाधन कहने में आया है। आहाहा!

मुमुक्षु : साथ में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : साथ में है इतना, साथ में है। दो नय का ज्ञान न करे, प्रमाण का ज्ञान सच्चा नहीं होता। दोनों का प्रमाणज्ञान करना पड़े न! निश्चय का भी, व्यवहार का भी। दोनों का प्रमाणज्ञान हो, वह सच्चा ज्ञान है। समझ में आया? वास्तव में तो प्रमाणज्ञान पहले कब उत्पन्न होता है? कि आत्मा ज्ञायकस्वरूप शुद्ध चैतन्य है, उसके आश्रय से जब सम्यग्दर्शन हुआ तो शुद्ध प्रमाणज्ञान साथ में हुआ। समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञायक चैतन्यज्योति पूर्ण ज्ञान का पुंज है, ऐसा अन्तर प्रतीति, अनुभव में, ज्ञान में आया, तब सम्यग्दर्शन के काल में ज्ञान भावश्रुतपने के प्रमाण को प्राप्त हुआ। भावश्रुतपने के प्रमाण को प्राप्त हुआ। समझ में आया? पश्चात् श्रुतप्रमाण है, वह अवयवी है पूरा, उसका नय अवयव है। निश्चय है एक, वह अपने आश्रय से काम करता है, व्यवहार पर के लक्ष्यवाला ज्ञान करता है। ऐसे प्रमाणज्ञान के दो अवयव हुए। तो प्रमाणज्ञान हुए बिना नय कहाँ से आये? अवयवी प्रगट हुए बिना अवयव आया कहाँ से? समझ में आया? शरीर नहीं और हाथ है, इसका अर्थ क्या? इसी प्रकार प्रमाणज्ञान बिना, भावश्रुत प्रमाणज्ञान बिना उसके भेद—निश्चय और व्यवहार दो अवयव कहाँ से आये? राजमलजी!

अत: प्रमाणज्ञान किस प्रकार उत्पन्न होता है ? क्या निमित्त के आश्रय से होता है ? विकल्प के आश्रय से होता है ? अपने स्वभाव के आश्रय से (होता है)। निश्चय का आश्रय हुआ तो उसका भी ज्ञान हुआ और साथ में पर्याय का भंग रहा शुद्ध का, राग का, उसका भी ज्ञान में साथ में श्रुतज्ञान में दोनों साथ में ज्ञात हुए। निश्चय स्व के आश्रय से, व्यवहार भेद के आश्रय से (हुआ ऐसा) ज्ञान किया, इसका नाम प्रमाण है। समझ में आया ? और प्रमाण बिना व्यवहार पहले और निश्चय बाद में, ऐसा आया कहाँ से ? आहाहा! समझ में आया ? पहले व्यवहार। व्यवहार तो एक अंश है। अंशी बिना अंश पहले कहाँ से आ गया ? सूक्ष्म है, हों! पोपटभाई!

मुमुक्षु : समझ में आये ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आये ऐसा है। हाँ। यह तो उत्साही व्यक्ति है न! न समझ में आये ऐसा कुछ नहीं है। आचार्य, न समझ में आये ऐसी बात कहते ही नहीं। आहाहा!

कहते हैं, भगवान! तेरे श्रुतज्ञान का भाव अन्तर्मुख से हुआ तो दो नय पड़ गये। प्रमाण के दो भाग पड़ गये। एक निश्चय और (दूसरा) व्यवहार। तो निश्चय स्वआश्रय से निर्मलता प्रगट है, उसे निश्चयमोक्षमार्ग कहते हैं। जितना विकल्प है, उसे व्यवहार से सहचारी देखकर व्यवहारमोक्षमार्ग का आरोप है। यथार्थ में मोक्षमार्ग नहीं, उसे कहना, इसका नाम व्यवहार है। क्योंकि साथ में है, उसका ज्ञान कराने का प्रयोजन है। व्यवहारनय द्वारा अभूतार्थ उपचरित निरूपण किया गया है। अभूतार्थ कहो, असत्यार्थ कहो; नहीं है उसे कहना, इसका नाम उपचार कहो। समझ में आया ? मित्रसेनजी!

मुमुक्षु : बिल्कुल ऐसा ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल ऐसा ही है ? ऐसे उत्साही थोड़े पाँच, पचास, सौ, दो सौ निकले तो खबर पड़े कि कैसी बात है!

मुमुक्षु : कथनपद्धति....

पूज्य गुरुदेवश्री : कथनपद्धति दो प्रकार की है, वस्तु दो प्रकार की नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : वस्तु को कहने की दो प्रकार की पद्धति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो प्रकार की पद्धति है। न हो तो, निश्चय-व्यवहार न हो तो पूरा पूर्ण ज्ञान किस प्रकार होगा?

अब प्रश्न :- सत्यार्थ निरूपण ही करना चाहिए; देखो! अभूतार्थ उपचरित निरूपण किसलिए किया जाता है? ऐसा प्रश्न है। वापस उत्तर।

उत्तर :- जिसे सिंह का यथार्थ स्वरूप सीधा समझ में न आता हो,... जिसे सिंह का यथार्थ स्वरूप सीधा समझ में न आता हो, **उसे सिंह के स्वरूप के उपचरित निरूपण द्वारा अर्थात् बिल्ली के स्वरूप के निरूपण द्वारा....** उपचरित अर्थात् बिल्ली के (स्वरूप) द्वारा। बिल्ली, सिंह नहीं है। सिंह ऐसा होता है, ऐसा बतलाना है। चटपटा होता है, ऐसे मूँछ होती है। समझ में आया? परन्तु उसे ही सिंह समझ ले तो? इसी प्रकार व्यवहार से कहने में आया हो, उसे ही निश्चय समझ ले तो? यह कहते हैं यहाँ। समझ में आया? **बिल्ली के स्वरूप के निरूपण द्वारा सिंह के यथार्थ स्वरूप की समझ की ओर ले जाते हैं;....** बिल्ली की समझ द्वारा सिंह का स्वरूप कैसा है, उस ओर ले जाया जाता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकार में से तो विकार ही होता है, विकार में से अविकार किस प्रकार होगा?

उसी प्रकार जिसे वस्तु का यथार्थस्वरूप सीधा समझ में न आता हो,... निश्चय स्वरूप अखण्ड आनन्द ज्ञायकमूर्ति है, ऐसा न समझ में आता हो, 'उसे वस्तुस्वरूप के उपचरित आरोपित निरूपण द्वारा वस्तुस्वरूप के यथार्थ समझ की ओर ले जाया जाता है।' एक बात। एक बात ऐसी व्यवहार की। दूसरी, **और लम्बे कथन के बदले में संक्षिप्त कथन करने के लिये भी व्यवहारनय द्वारा उपचरित निरूपण किया जाता है। यहाँ इतना लक्ष्य में रखनेयोग्य है कि—जो पुरुष बिल्ली के निरूपण को ही सिंह का निरूपण मानकर, बिल्ली को ही सिंह समझ ले, वह तो उपदेश के ही योग्य नहीं है,....** लो। व्यवहार से बात करते हैं, वहाँ पकड़ ले कि इससे निश्चय होता है और वह

निश्चय की बात है। यह कड़ा... क्या गाँव कहा? भाई! नहीं अपने? पाँच कोस राजकोट से नहीं? मच्छर, पाठशाला-पाठशाला। कुवाडवा। कुवाडवा, राजकोट से पाँच कोस दूर है। वहाँ हम विद्यालय में उतरे थे। वहाँ एक मच्छर का चित्र था। मच्छर नहीं होते? इतना बड़ा चित्र। चार पैर और ऐसा बतलाया था। बालक को दिखलाया। ओहो! बड़ा मच्छर है। उसमें एक हाथी आया। (बालक कहे), मास्टर साहेब! मच्छर आया। और वह चित्र तो हमने देखा था, हों! विद्यालय में उतरे थे। छोटा शरीर और ऐसे चार पैर बतावे। पैर में ऐसे सूक्ष्म-सूक्ष्म भाग हों नीचे, वह सब बताया था। बारीक, समझ में नहीं आये, इसलिए बड़े-बड़े पैर बताकर मच्छर का चित्र चित्रित किया था। इतना लम्बा चित्र। ऐसे में एक हाथी गाँव में आया। (बालक कहे) मास्टर साहेब! वह मच्छर आया। अरे... भाई! मच्छर को (चित्रित करके) हमें तुझे (मच्छर) बतलाना था। मच्छर को इतना लम्बा बताया, इसलिए वह लम्बा हाथी है, ऐसा नहीं है। वहाँ यह बना था, हों!

इसी प्रकार यहाँ व्यवहार से बिल्ली का स्वरूप बताकर सिंह ऐसा होता है, ऐसा बतलाते हैं। परन्तु बिल्ली को ही सिंह मान ले तो (झूठा है)। तुझे हम क्या कहते हैं, किस अपेक्षा से कहते हैं, यह तुझे खबर नहीं और मान लिया कि निश्चय हो जायेगा। सिंह है, सिंह है। **उसी प्रकार जो पुरुष उपचरित निरूपण को ही सत्य निरूपण मानकर...** यह गाथा पुरुषार्थसिद्धिउपाय की है। पुरुषार्थसिद्धिउपाय अमृतचन्द्राचार्य का। **वस्तुस्वरूप को मिथ्या रीति से समझ बैठे, वह तो उपदेश के ही योग्य नहीं है।** इसमें विशिष्टता क्या ली है? कि व्यवहार से कथन किया गया है, उसे पकड़ ले कि यही सत्य है। तो कथन की पद्धति तो व्यवहार से आये बिना रहती नहीं और तू उसे निश्चय समझ ले, तुझे क्या कहना? तुझे उपदेश देना किस प्रकार? तू उपदेश के योग्य नहीं है। समझ में आया?

एक साधु उपदेश देता था कि मौन रहने से ऐसा लाभ होता है। मौन रहने से ऐसा लाभ होता है। शिष्य ने कहा, साहेब! आप क्यों मौन नहीं रहते? सुन तो सही। हम जो कहते हैं, वह दलील तो समझ। (हमको मौन रहने का कहते हो) तो तुम क्यों मौन नहीं रहते? तू उपदेश सुनने के भी योग्य नहीं है। तुझे क्या कहा जाता है, यह समझता नहीं

और सीधे कहता है, तुम क्यों बोलते हो? कौन बोले? सुन तो सही! यहाँ तो बोलने का विकल्प आता है, उसे टालकर निर्विकल्प रहना, यह समझाना है। समझ में आया? यह समझता नहीं और तू कहता है कि तुम क्यों बोलते हो? अरे..! बोले या न बोले, सुन तो सही।

इसी प्रकार जब व्यवहार का उपदेश करते हैं (तब) व्यवहार से समझाते हैं कि देखो भाई! आत्मा ज्ञान है, दर्शन है, आनन्द है, शान्ति है। देखो! महाराज! तुम नहीं कहते थे कि आत्मा में ज्ञान है? भाई! वह तो भेद पाड़कर अभेद बताया है। भेदस्वरूप वस्तु नहीं है। वस्तु भेदस्वरूप नहीं है। हम भी भेदस्वरूप नहीं मानते और तू भी भेदस्वरूप नहीं मानता। दूसरा कोई उपाय नहीं। जाने, वह आत्मा, भेद वह आत्मा। समझ में आया? परन्तु यह तो निश्चय तो एकरूप है, अभेद है, उसे बतलाने के लिये है। उसे ही पकड़ ले। क्या कहना? तू उपदेश के योग्य नहीं है। समझ में आया? निश्चय समझ ले, निश्चय में से उपदेश के योग्य नहीं, ऐसा यहाँ नहीं लिया, यहाँ तो व्यवहार को निश्चय समझ ले वह उपदेश के योग्य नहीं, ऐसा कहा है। समझ में आया?

यहाँ एक उदाहरण लिया जाता है :- देखो! पण्डितजी ने उदाहरण लिखा है। **साध्य-साधक सम्बन्धी सत्यार्थ निरूपण ऐसा है...** सच्चा निरूपण, कथन, उपेदश, शासन, आज्ञा ऐसी है कि **छठवें गुणस्थान में वर्तती...** छठवें गुणस्थान में **आंशिक शुद्धि...** छठवें गुणस्थान में तीन कषाय के अभाव की शुद्धि। सम्यग्दर्शन, ज्ञान निश्चय से तीन अंश हैं, छठवें में। वे **सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है।** देखो! छठवें गुणस्थान में जो शुद्धि है, जितनी पवित्रता प्रगट हुई है, वही सातवें गुणस्थान का साधन है। यहाँ तो पर्याय को बतलाना है न! मोक्षमार्ग पर्याय है न? मोक्षमार्ग पर्याय है न? निश्चय हो या व्यवहार हो। और कल यह आया है कि एक पर्याय में खण्ड करता है। ... एक पर्याय में खण्ड करता है कि थोड़ा निश्चयमोक्षमार्ग और थोड़ा व्यवहार है? ऐसा तो हमने कहीं देखा नहीं। और ऐसा लिखा है उन्होंने। आहाहा! यह प्रश्न चलता होगा, ऐसा लगता है। तब नहीं? वह सुरेन्द्र। (उसने पूछा था), तुमने, एक समय के दो भाग पड़ते नहीं, यह न? फिर हँसने लगे। एक समय में

दो नहीं, खण्ड-खण्ड नहीं। कहाँ कहा है ऐसा ? पहले व्यवहार मार्ग है, वह पर्याय पूर्ण है, पूरी एक ही है। फिर निश्चय है, वह शुद्ध पूर्ण है, पूर्ण शुद्ध है। परन्तु एक पर्याय। एक पर्याय में विकल्प और उसी पर्याय में थोड़ी शुद्धि, ऐसा पर्याय का खण्ड हमें तो कहीं देखने में आया नहीं। ऐसा उसने लिखा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... कल्पना है। (दो) मोक्षमार्ग साथ में कहा टोडरमलजी ने कि निश्चय अपने शुद्ध स्वरूप का साधन करता है, तब साथ में विकल्प है। तो यह क्या आया ? जितनी शुद्धि है, उतना निर्मल है और अशुद्धि है, वह व्यवहार है। एक पर्याय में दो भाग कह दिये टोडरमलजी ने। है न परन्तु यह।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानधारा और कर्मधारा, लो न! पुण्य-पाप अधिकार में। पुण्य-पाप के अधिकार में (कहा), जितनी शुद्धता है, वह ज्ञानधारा है। ज्ञानधारा का अर्थ श्रद्धा, चारित्र—स्थिरता, वह सब ज्ञानधारा है। आंशिक शुद्ध है, स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान, लीनता वह ज्ञानधारा है। साथ में कर्मधारा रागधारा नहीं ? तो क्या हुआ ? चारित्र की पर्याय भी कुछ खिली है, थोड़ी राग की धारा है। एक पर्याय में दो भाग आ गये। समझ में आया ?

मुमुक्षु : सीधी बात है कि एक....

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, इतनी शुद्धि, और इतनी अशुद्धि है या नहीं साथ में ? परिणति यदि अत्यन्त शुद्ध हो जाये तब तो (बराबर)। अब थोड़ी शुद्धि हुई, साथ में थोड़ी अशुद्धि है या नहीं ? तो एक पर्याय में दो है या नहीं ?

मुमुक्षु : एक पर्याय में दो नहीं, एक पर्याय में....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो चार है। यह तो जरा... यह तो आस्रव है, पुण्य-पाप है, आस्रव भी है, बन्ध भी है और इस ओर संवर, निर्जरा भी है। हे भगवान! आहाहा! जैनदर्शन तत्त्व ऐसी चीज़ है, उसे समझने के लिये... उसने लिखा है कल। पढ़ा तुमने ? पढ़ा ? ले गये थे ? ठीक। उसमें नीचे (लिखा है)। एक पर्याय के दो खण्ड। व्यवहार

का एक अंश मलिन का और निर्मल का, ऐसा तो हमने देखा नहीं। यह कोरी कल्पना है। कुछ भान नहीं होता। परन्तु इतना तो लो कि क्षयोपशम सम्यग्दर्शन हुआ तो साथ में जरा समकित मोहनीय का मैल भी है या नहीं ? तो एक पर्याय में दो भाग है या नहीं ? क्षायिक न हो तो। कहो, समझ में आया ? क्षयोपशम समकित लो। जितनी शुद्धि, अशुद्धि है। यह तो क्षयोपशम ही लिया न, यह समकित मोहनीय का उदय है वह। इसका अर्थ क्षयोपशम हुआ। अब यहाँ क्षयोपशमज्ञान लो, तो अभावरूप भले कहो, परन्तु यह चारित्र लो। जितनी शुद्धि प्रगट हुई, एक कषाय का नाश, दो कषाय का नाश, तीन कषाय का नाश मुनि को (हुआ), तो जितनी शुद्धि एक पर्याय में हुई, वह चारित्र की पर्याय है। उसके साथ अशुद्धि है या नहीं ? या अशुद्धि अन्यत्र रह गयी ? एक पर्याय में क्षयोपशम शुद्धि और उदय अशुद्धि, (ऐसा) एक पर्याय में दो भाग पड़ जाते हैं। साधक किसे कहना ? साधक किसे कहना ? कि किंचित् निर्मल पर्याय है और किंचित् मलिन पर्याय है तो साधक है। सिद्ध हो गया, साध्य पूर्ण हो गया तो कुछ है नहीं, पूर्ण सिद्ध हो गया। समझ में आया ? राजमलजी ! मिश्र पर्याय है। न हो तो साधकपना नहीं रहता। साधक में थोड़ा बाधक है। शुद्धि में थोड़ी अशुद्धि है। एक पर्याय में दोनों हैं। आहाहा !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : साथ में। यहाँ साथ में कहते हैं न। परन्तु विचार नहीं कि क्या वस्तु है। एक पकड़ लेना। नहीं। एक पर्याय में शुद्धि-अशुद्धि दो कहाँ से आये ? हमने तो देखा नहीं। यह क्या कहते हैं ? चार कषाय का अभाव जब तक न हो और नीचे चार कषायें हैं, परन्तु फिर भी जितना राग, रति, अरति रहती है या नहीं ? उतनी भी अशुद्धता है न चारित्र की पर्याय में। अशुद्धता न हो तो क्षायिक चारित्र हो जाये। क्षयोपशम चारित्र गिना है। थोड़ी मलिनता, थोड़ी निर्मलता। एक पर्याय में है या उसमें दूसरी पर्याय होगी ?

यहाँ भी कहते हैं कि, **छठवें गुणस्थान में वर्तती आंशिक शुद्धि...** आंशिक शुद्धि अर्थात् अभी छठवें में पूर्ण शुद्धि नहीं है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शुद्धि (है और) तीन कषाय का अभाव हुआ है, उतनी शुद्धि है। चौथे कषाय का भाव संज्वलन है, उतनी अशुद्धि है। कषाय कषाय में रहा परन्तु अपने में अशुद्धि है या नहीं ? **सातवें गुणस्थानयोग्य**

निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है। देखो! सातवें गुणस्थान में विशेष शुद्धि जो निर्विकल्प हुई उसका, उस शुद्धि का अंश ही साधन है। छठवें गुणस्थान में तीन कषाय के अभाव की जो शुद्धि है, वह सप्तम गुणस्थान की निर्विकल्प शुद्धि का साधन है। शुद्धि, शुद्धि का साधन है। यह अभिन्नसाध्यसाधन हुआ।

'अब, छठवें गुणस्थान में कैसी अथवा कितनी शुद्धि होती है'—इस बात का भी साथ ही साथ ख्याल कराना हो तो... साथ ही साथ, हों! **तो विस्तार से ऐसा निरूपण किया जाता है कि जिस शुद्धि के सद्‌भाव में...** जिस शुद्धि के सद्‌भाव में। छठवें गुणस्थान में जितनी वीतराग परिणति हुई, उस शुद्धि के सद्‌भाव में **उसके साथ-साथ महाव्रतादि के शुभ विकल्प हठ बिना...** महाव्रतादि विकल्प, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प हठ बिना। मैं लाऊँ, मैं लाऊँ, ऐसा नहीं। सहज इस प्रकार के पुरुषार्थ की न्यूनता के कारण पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प आते हैं। धर्मचन्दजी! यह कठिन बात है, हों! ऊपर-ऊपर से पकड़ोगे तो समझ में नहीं आयेगी। अभी बहुत गड़बड़ चली है। व्यवहार पहले, निश्चय बाद में। एक पर्याय व्यवहार, तो व्यवहार स्वपरप्रत्यय हेतु है। पश्चात् स्वआश्रय होगा, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

हठ बिना सहजरूप से वर्तता हो... यह क्यों कहा? जब अपने स्वरूप का अनुभव, सम्यग्दर्शन हुआ, पश्चात् तीन कषाय का अभाव होकर चारित्र हुआ, फिर विकल्प लाना नहीं और हठ से शुभ लाना, ऐसा भी नहीं। सहज उस भूमिका के योग्य ऐसी कषाय की मन्दता का उदय आता है। आहाहा! कहो, माँगीलालजी! बहुत गड़बड़ है, हों! वहाँ तो तुम्हारे कुछ खबर नहीं। **छठवें गुणस्थान के योग्य शुद्धि, सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है।** देखो! समझ में आया? **छठवें गुणस्थान के योग्य शुद्धि, सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है।** ऐसे लम्बे कथन के बदले, ऐसा कहने में आता है कि **छठवें गुणस्थान में वर्तते...** यह विकल्प **महाव्रतादि के शुभ विकल्प सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है।** व्यवहार से कहने में आया है **तो वह उपचरित निरूपण है।** वास्तविक तो जो शुद्धि प्रगट हुई है, वही पूर्ण शुद्धि का कारण है। वह अनुपचरित निश्चय साधन है। यहाँ बतलाना है न। नहीं तो वास्तव में तो मुक्ति की पर्याय द्रव्य के आश्रय से होती

है। यहाँ तो मार्ग की बात करनी है न। दोनों मार्ग पर्याय में है। दोनों मार्ग पर्याय में है। कोई मार्ग द्रव्य-गुण में है नहीं। भले निश्चयमार्ग द्रव्य के आश्रय से होता है परन्तु है तो पर्याय न! निश्चयमोक्षमार्ग भी पर्याय है, व्यवहारमोक्षमार्ग पर्याय का मलिन अंश है, साथ में है। तो निर्मल पर्याय पूर्ण शुद्धि का साधन, वह अनुपचरित निश्चय और मलिन का भाग, वह सातवें की जो अनुपचरित निर्मल पर्याय, उसका साधन व्यवहार, ऐसा व्यवहार से संक्षिप्त कथन करने के लिये उपचार से सातवें का साधन कहने में आया है। संक्षिप्त, छोटा कथन करने के लिये इस कारण से ऐसा कहा। वास्तव में तो छठवें की शुद्धि है, वही निश्चय का साधन है। सातवें का साधन है। समझ में आया? आहाहा! कथन की पद्धति।

और वास्तव में तो छठवें की शुद्ध पर्याय है और अशुद्ध पर्याय से यहाँ भाग लेना है, नहीं तो शुद्ध पर्याय जो बाद में उग्र होती है, उसका वास्तविक साधन द्रव्य है। परन्तु यहाँ पर्याय के दो भाग में साधन बतलाना है, पर्याय के दो भाग में साधन—एक अभिन्न साधन, एक भिन्न साधन। तो निर्मल पर्याय निश्चय का साधन है, ऐसा नहीं बताकर, उसमें विकल्प की भूमिका में कषाय की इतनी मन्दता है, वह महाव्रत साधन निर्विकल्प का है, ऐसा उपचार से कहने में आया है। समझ में आया? कितनी बात याद रखना इसमें? सेठ! इसमें बहुत समझ करनी पड़ेगी, ऐसा का ऐसा नहीं चलेगा। नहीं? बराबर है।

ऐसे लम्बे कथन के बदले छठवें गुणस्थान में वर्तता वर्तमान शुभ विकल्प साधन है, यह **उपचरित निरूपण है। ऐसे उपचरित निरूपण में से ऐसा अर्थ निकालना चाहिए कि 'महाव्रतादि शुभ विकल्प नहीं, परन्तु उनके द्वारा सूचित की जानेवाली छठवें गुणस्थान के योग्य शुद्धि वास्तव में...'** बतलानी है। उसके द्वारा छठवें गुणस्थानयोग्य शुद्धि बतलानी है। वह **शुद्धि वास्तव में सातवें गुणस्थानयोग्य..** क्या? छठवें गुणस्थानयोग्य जो पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प हैं, वे क्या बताते हैं? कि तीन कषाय के अभाव की शुद्धि को बताते हैं। तीन कषाय का अभाव है, ऐसी शुद्धि को बताते हैं। वह शुद्धि आगे का कारण है। यह उसका कारण है, ऐसा व्यवहार से कहा है।

वह **शुद्धि वास्तव में सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है।** लो। कितना लिखना पड़ा।

वे कहते हैं कि... रतनचन्दजी कहते हैं। फुटनोट लिखकर सब अर्थ बदल डाले। बाकी तो संस्कृत प्रमाण बात लिखी है, वह बराबर है। संस्कृत प्रमाण लिखे नहीं तो कहाँ जाये? अरे.. भगवान! क्या करे? परन्तु व्यवहार अभूतार्थ आया, वह सबमें लगाना पड़े या नहीं? पर्याय अभूतार्थ, मोक्षमार्ग अभूतार्थ, व्यवहार एक अभूतार्थ। समझ में आया? साधन अभूतार्थ, कारण अभूतार्थ, गुप्ति अभूतार्थ, समिति अभूतार्थ, भाई! जितने प्रकार सत्य के हैं, उतने प्रकार सामने अभूतार्थ के भी लेना पड़ेंगे। मोक्षमार्ग जैसे एक अभूतार्थ है और एक भूतार्थ है। ऐसा साधन भी एक भूतार्थ है, एक अभूतार्थ है। समिति भी एक भूतार्थ है, एक अभूतार्थ है। सम्यक् प्रवृत्ति शुद्ध जो अपने में हुई, वह भूतार्थ समिति है और जितने विकल्प उठते हैं, वह अभूतार्थ समिति है।

इसी प्रकार कारण भी भूतार्थ, अभूतार्थ है। वास्तव में उपादानकारण यथार्थ कारण है। आरोपित कारण अभूतार्थ कारण है। समझ में आया? नन्दलालजी! यह एक ही गाथा बस है। यह आर्षवाक्य। भूतार्थ-अभूतार्थ तो जैसे द्रव्य और पर्याय में लगाया है। वैसे एक पर्याय में दो लगाये हैं, भूतार्थ-अभूतार्थ। तो ऐसी जहाँ-जहाँ पर्याय जो साधन, जो कारण, जो गुप्ति, समिति, योग, समाधि (आता है, वहाँ लगाना)। समाधि भी दो प्रकार की है। आवश्यक, सामायिक, चउविसंतु, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान यह सब दो-दो प्रकार के हैं। आहाहा! यह तो कथन दो प्रकार के आये बिना दूसरी चीज़ कैसी है, उसका ज्ञान नहीं होता। इसलिए दो प्रकार से बतलाया है। नवरंगभाई! आहाहा! जाने बिना यह चीज़ है (ऐसी खबर कैसे पड़े) ? और ज्ञान का स्वपरप्रकाशक स्वभाव है। ज्ञान शुद्धि को भी जानता है, अशुद्धि को भी जानता है। जानता नहीं? समझ में आया? तो जितने कथन आते हैं, उन सबमें दो प्रकार के कथन—एक उपचारिक और अनुपचारिक अर्थात् एक अभूतार्थ और एक भूतार्थ है। यह ११वीं गाथा से सब न्याय ले लेना। वहाँ आर्षवाक्य है कि यह आर्षवाक्य है। समझ में आया? लो, यह हो गया।

क्या आया? तीर्थ प्रवर्तना दोनों नयों के आधीन है। वहाँ यह ऐसा कहते हैं कि

दोनों नयों से मोक्षमार्ग है, दोनों नयों से मोक्षमार्ग है। दोनों नयों से समिति है, दोनों नयों से शुद्धता है। दोनों नयों से निर्जरा है, दोनों नयों से संवर है। ऐसा नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं है। परन्तु दोनों (निश्चय) हो, तब तो एक जाति हो गयी, दो रही नहीं। निश्चय भी संवर, व्यवहार भी संवर। एक हो तो दो भेद पड़े कैसे? दोनों मार्ग एक ही हो तो दो कहे किसलिए? दो नय में तो विरोध है। समझ में आया? दोनों नयों के आधीन प्रवर्तना—उपदेश—कथन है। दो प्रकार के कथन हैं। एक निश्चय है, एक व्यवहार है। एक वास्तविक है, एक उपचार है। एक अभेद से कथन है, एक भेद की कल्पना विकल्प उठता है, उसका कथन है। ऐसा ज्ञान कराने के लिये है। आदरणीय करने के लिये दो नय के कथन आदरणीय हैं और उनका वाच्य आदरणीय है, ऐसा नहीं। समझ में आया? निश्चय का भाव सत्य है। मोक्षमार्ग, वह उपादेय है। व्यवहार का विकल्प वह उपचार-हेय है। जानकर हेय है। ऐसे दोनों नयों के आधीन भगवान की कथनी है। दोनों नय आदरणीय है या दोनों नय हेय है, ऐसा नहीं है। एक नय का विषय उपादेय है और एक नय का विषय हेय है, ऐसा भगवान का दोनों नयों के आधीन कथन है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १६०

धम्मादीसद्दहणं सम्मत्तं णाणमंगपुव्वगदं।
चेट्ठा तवम्हि चरिया ववहारो मोक्खमग्गो त्ति।।१६०।।

धर्मादि की श्रद्धा सुदृग पूर्वांग बोध-सुबोध है।
तप माँहि चेष्टा चरण मिल व्यवहार मुक्तिमार्ग है।।१६०।।

अन्वयार्थ :- [धर्मादिश्रद्धानं सम्यक्त्वम्] धर्मास्तिकायादि का श्रद्धान सो सम्यक्त्व, [अंगपूर्वगतम् ज्ञानम्] अंगपूर्वसम्बन्धी ज्ञान सो ज्ञान और [तपसि चेष्टा चर्या] तप में चेष्टा (-प्रवृत्ति) सो चारित्र; [इति] इस प्रकार [व्यवहारः मोक्षमार्गः] व्यवहारमोक्षमार्ग है।

टीका :- निश्चयमोक्षमार्ग के साधनरूप से, पूर्वोद्दिष्ट (१०७वीं गाथा में उल्लिखित) व्यवहारमोक्षमार्ग का यह निर्देश है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, सो मोक्षमार्ग है। वहाँ, (छह) द्रव्यरूप और (नव) पदार्थरूप जिनके भेद हैं, ऐसे धर्मादि के तत्त्वार्थश्रद्धानरूप भाव (-धर्मास्तिकायादि की तत्त्वार्थप्रतीतिरूप भाव) जिसका स्वभाव है ऐसा, 'श्रद्धान' नाम का भावविशेष, सो सम्यक्त्व; तत्त्वार्थश्रद्धान के सद्भाव में अंगपूर्वगत पदार्थों का अवबोधन (-जानना), सो ज्ञान; आचारादि सूत्रों द्वारा कहे गए अनेकविध मुनि-आचारों के समस्त समुदायरूप तप में चेष्टा (-प्रवर्तन), सो चारित्र;—ऐसा यह, स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित, भिन्नसाध्यसाधनभाववाले व्यवहारनय के आश्रय से (-व्यवहारनय की अपेक्षा से) अनुसरण किया जानेवाला मोक्षमार्ग, सुवर्णपाषाण को लगायी जानेवाली प्रदीप्त अग्नि की भाँति, [१]समाहित अन्तरंगवाले जीव को (अर्थात् जिसका अन्तरंग एकाग्र—समाधिप्राप्त है, ऐसे जीव को) पद-पद पर परम रम्य ऐसी ऊपर की शुद्ध भूमिकाओं में अभिन्न विश्रान्ति (-अभेदरूप स्थिरता) उत्पन्न करता हुआ—यद्यपि उत्तम सुवर्ण की भाँति शुद्ध जीव कथंचित् भिन्नसाध्यसाधनभाव के अभाव के

१. समाहित=एकाग्र; एकता को प्राप्त। अभेदता को प्राप्त; छिन्नभिन्नता रहित; समाधिप्राप्त; शुद्ध; प्रशान्त।

कारण स्वयं (अपने आप) शुद्ध स्वभाव से परिणमित होता है तथापि— निश्चयमोक्षमार्ग के साधनपने को प्राप्त होता है।

भावार्थ :— जिसे अन्तरंग में शुद्धि का अंश परिणमित हुआ है, उस जीव को तत्त्वार्थश्रद्धान, अंगपूर्वगत ज्ञान और मुनि-आचार में प्रवर्तनरूप [२]व्यवहारमोक्षमार्ग विशेष-विशेष शुद्धि का व्यवहारसाधन बनता हुआ, यद्यपि निर्विकल्पशुद्धभावपरिणत जीव को परमार्थ से तो उत्तम सुवर्ण की भाँति अभिन्नसाध्यसाधनभाव के कारण स्वयमेव शुद्धभावरूप परिणमन होता है तथापि, व्यवहारनय से निश्चयमोक्षमार्ग के साधनपने को प्राप्त होता है।

[अज्ञानी द्रव्यलिंगी मुनि का अन्तरंग लेशमात्र भी समाहित न होने से अर्थात् उसे (द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप के अज्ञान के कारण) शुद्धि का अंश भी परिणमित न होने से उसे व्यवहारमोक्षमार्ग भी नहीं है।]॥१६०॥

श्रावण शुक्ल १२, बुधवार, दिनांक - १९-०८-१९६४, गाथा-१६०, प्रवचन-६

यह मोक्षमार्ग के विस्तार का अधिकार है। १५९ गाथा हो गयी। १६०। यह व्यवहारमोक्षमार्ग का कथन है। देखो! कोई कहता है कि आर्षवाक्य तो यहाँ व्यवहारमोक्षमार्ग कहते हैं। है न शब्द पाठ में? देखो! १६०। आर्षवाक्य तो व्यवहार को मोक्षमार्ग कहता है और कोई विद्वान उसे मोक्षमार्ग न कहे तो वह प्रमाण नहीं है।

---

२. इस गाथा की श्री जयसेनाचार्यदेवकृत टीका में पंचमगुणस्थानवर्ती गृहस्थ को भी व्यवहारमोक्षमार्ग कहा है। वहाँ व्यवहारमोक्षमार्ग के स्वरूप का निम्नानुसार वर्णन किया है :—'वीतरागसर्वज्ञप्रणीत जीवादिपदार्थों सम्बन्धी सम्यक् श्रद्धान तथा ज्ञान दोनों, गृहस्थ को और तपोधन को समान होते हैं; चारित्र, तपोधनों को आचारादि चरणग्रन्थों में विहित किए हुए मार्गानुसार प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानयोग्य पंचमहाव्रत-पंचसमिति-त्रिगुप्ति-षडावश्यकादिरूप होता है और गृहस्थों को उपासकाध्ययनग्रन्थ में विहित हुए मार्ग के अनुसार पंचम गुणस्थानयोग्य दान-शील-पूजा-उपवासादिरूप अथवा दार्शनिक-व्रतिकादि ग्यारह स्थानरूप (ग्यारह प्रतिमारूप) होता है; इस प्रकार व्यवहारमोक्षमार्ग का लक्षण है।'

ऐसा कहते हैं, ऐसा नहीं है। यहाँ व्यवहार से कथन कहा गया है। इसका स्पष्टीकरण इसकी टीका में है।

धम्मादीसद्दहणं सम्मत्तं णाणमंगपुव्वगदं।
चेट्ठा तवम्हि चरिया ववहारो मोक्खमग्गो त्ति।।१६०।।

देखो, इस गाथा में से कहते हैं, हों! ख्याल रखना। आर्षवाक्य तो ऐसा है कि मोक्षमार्ग व्यवहार को कहते हैं और टोडरमलजी और राजमलजी, कितने ही विद्वान निश्चयमोक्षमार्ग एक ही है, व्यवहारमोक्षमार्ग नहीं, ऐसा कहते हैं। तो वह आर्षवाक्य से विरुद्ध है, ऐसा कितने ही कहते हैं। तो ऐसा नहीं है। व्यवहार से कहा, इसका अर्थ यहाँ लेते हैं, देखो! टीका, १६० गाथा की टीका।

टीका - निश्चयमोक्षमार्ग के... निश्चयमोक्षमार्ग क्या? अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्य है। अन्तर में दृष्टि, ज्ञान और लीनता जो सप्तम गुणस्थान के योग्य जो निश्चयमोक्षमार्ग है, उस **निश्चयमोक्षमार्ग के साधनरूप से,...** अपना स्वरूप जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों की एकतारूप निश्चयमोक्षमार्ग है, जो चारित्र साक्षात् मोक्षमार्ग कहा था, उस चारित्र की प्राप्ति निर्विकल्प सप्तम गुणस्थान में होती है। तो वहाँ आगे निश्चयसम्यग्दर्शन है। मैं ज्ञायक पूर्ण हूँ, ऐसी अनुभव में प्रतीति, वह चौथे गुणस्थान से निश्चयसम्यग्दर्शन प्रगट होता है। चौथे गुणस्थान में वह तत्त्वार्थश्रद्धान (होता है)। मोक्षशास्त्र में आता है कि 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं'। तो वहाँ लोग तत्त्वार्थश्रद्धान को व्यवहारदर्शन कहते हैं। ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : वह निश्चयसम्यग्दर्शन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह निश्चयसम्यग्दर्शन है। चौथे गुणस्थान में निश्चय है। तो उसकी भूल कहाँ हुई है? कि वह तत्त्वार्थश्रद्धान व्यवहार से चला... बहुत चला, सबको पूछते थे तो ऐसा ही कहते थे। चाँदमलजी को पूछा, दूसरे को पूछा, बहुतों को पूछा, आत्मानन्दजी को पूछा तो कहे, तत्त्वार्थश्रद्धानं व्यवहारसम्यग्दर्शन है। तो वहाँ से पहली भूल हुई है। क्यों? कि जब तत्त्वार्थश्रद्धान को व्यवहारसम्यग्दर्शन कहे तो उसके साथ निश्चयसम्यक्ज्ञान और निश्चय चारित्र नहीं होता, इसलिए तत्त्वार्थश्रद्धान को जब सम्यग्दर्शन कहा तो साथ में ज्ञान और चारित्र भी व्यवहार से है, तीनों मिलकर मोक्षमार्ग

है, ऐसे अनुकूल कथन उसे लागू पड़ता देखकर व्यवहारमोक्षमार्ग पहले और निश्चयमोक्षमार्ग बाद में—ऐसा कल्पना से हो गया। राजारामजी! समझ में आया? हम बहुतों को पूछते हैं। तो कहे, हाँ, वह तत्त्वार्थश्रद्धान व्यवहार है। परन्तु मोक्षशास्त्र में तत्त्वार्थश्रद्धान तो निश्चयसम्यग्दर्शन का स्वरूप है, (ऐसा कहा है)। वह तो भेद से कथन किया है। समझ में आया? परन्तु यदि उसे निश्चय कहे तो साथ में निश्चयज्ञान और निश्चयचारित्र लेना पड़े। तो वह व्यवहारसम्यग्दर्शन, शास्त्र का व्यवहारिक ज्ञान और व्यवहारिक राग की मन्दता, बारह व्रत और पंच महाव्रत की क्रिया, तीनों मिलकर व्यवहारमोक्षमार्ग है, ऐसा लोगों को बैठ गया है। बराबर है न? ...लालजी! ऐसा हो गया है। ऐसा नहीं है।

निश्चय तत्त्वार्थश्रद्धान है, वह निश्चय आत्मज्ञान है। वह ज्ञानप्रधान से तत्त्वार्थश्रद्धान की बात की है। अपना शुद्ध स्वरूप तत्त्वार्थश्रद्धान में आत्मज्ञान आ गया है। आत्मज्ञान और तत्त्वार्थश्रद्धान में कथन की पद्धति का अन्तर है, वस्तु में अन्तर नहीं है।

यहाँ कहते हैं, देखो! ऐसे **निश्चयमोक्षमार्ग के...** यह इसका अर्थ चलता है। निश्चय मोक्षमार्ग... यहाँ निश्चय सम्यग्दर्शन चौथे में हुआ, सम्यग्ज्ञान भी चौथे में हुआ, परन्तु चारित्र की कमी थी तो चौथे, पाँचवें में मोक्षमार्ग उपचार से कहा गया। क्योंकि वह चारित्र जो स्थिरता होनी चाहिए, वह नहीं है। इस अपेक्षा से दो अवयवों को मोक्षमार्ग उपचार से कहा गया है। और जब सप्तम भूमिका हुई, तब सम्यग्दर्शन भी निश्चय है, सम्यगज्ञान भी निश्चय है और चारित्र—स्वरूप की निर्विकल्पता की स्थिरता भी निश्चय है। तीनों एक हो गये, तो वहाँ निश्चयमोक्षमार्ग कहने में आया। समझ में आया?

देखो! यह गड़बड़ बहुत चलेगी, हों! यह अधिकार सहज यहाँ लिया है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे जो बैठा हो वह कहे। तत्त्वार्थश्रद्धान व्यवहार है न, ऐसा पन्नालाल(जी) ने लिखा है। तत्त्वार्थसूत्र है न, उस टीका में नीचे लिखा है, वह गलत है। ऐसा नहीं है। व्यवहार तो पराश्रित है। यह तो यहाँ कहा, स्वपरप्रत्यय आश्रित व्यवहार है। तो स्वपरप्रत्यय आश्रित व्यवहार में तो राग आया। राग मोक्षमार्ग कहाँ से

हुआ? समझ में आया? राग निश्चय समकित कहाँ से हुआ? वह तो व्यवहार है। समझ में आया? वह व्यवहार क्या? कि निश्चय सम्यग्दर्शन हुआ है, उसके साथ... अब कहेंगे, नौ तत्त्व के भेदरूप धर्मादिश्रद्धान जो विकल्प है, वह व्यवहारश्रद्धा है। तत्त्वार्थश्रद्धान निश्चयसम्यग्दर्शन तो चौथे में हुआ है और उसके साथ चौथे, पाँचवें, छठवें में जितना नौ तत्त्व के भेदरूप विकल्प की श्रद्धा है, धर्मादि द्रव्य की श्रद्धा है, उसे—व्यवहार विकल्प को व्यवहारसम्यग्दर्शन श्रद्धा में कहा गया है। वास्तव में वह सम्यग्दर्शन नहीं है। यह व्यवहारमोक्षमार्ग कहते हैं, वह व्यवहारमोक्षमार्ग वास्तव में है नहीं। समझ में आया? आर्षवाक्य भी ऐसा कहता है। देखो यहाँ!

निश्चयमोक्षमार्ग, इतनी व्याख्या। सप्तम गुणस्थान। जहाँ निश्चयसम्यग्दर्शन, निश्चयज्ञान और निश्चय स्वरूपलीनता निर्विकल्प आनन्द में जहाँ हुई, शुद्ध उपयोग हुआ, शुद्ध उपयोग हुआ। सप्तम गुणस्थान में शुद्ध उपयोग (हुआ)। तो शास्त्र में कहते हैं कि निश्चयरत्नत्रयरूप शुद्ध उपयोग, निश्चयरत्नत्रयरूप शुद्ध उपयोग। समझ में आया? तो निश्चयरत्नत्रय शुद्ध उपयोग, निश्चयरत्नत्रयरूप शुद्ध उपयोग, वह साथ में होता है। वह निश्चयमोक्षमार्ग है, सातवें को योग्य जो है, आगे भले निश्चय है, आगे आठवें, नौवें में, परन्तु इसे सप्तमयोग्य निश्चयमोक्षमार्ग है, ऐसा कहा है। समझ में आया?

निश्चयमोक्षमार्ग के साधनरूप से,... तो उसका साधन तो पहले होना चाहिए। समझ में आया? तो पहले उसके साधनरूप से, चौथे, पाँचवें या छठवें में, यहाँ वास्तव में तो छठवें में लेना है। यहाँ छठवें के चारित्रवन्त मुनि है न, तो निश्चयचारित्र सातवें और निश्चय दर्शन, ज्ञान और तीन कषाय के अभावरूप छठवें गुणस्थान में जो परिणति है, उसके साथ जो पंच महाव्रतादि व्यवहारविकल्प आये हैं, उन्हें व्यवहारचारित्र कहा गया है। मुनि अपनी भूमिका से बात करते हैं। समझ में आया?

जैसे समयसार छठवीं गाथा में (कहा), **'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।'** ऐसा क्यों कहा? ऐसा क्यों नहीं कहा कि **'ण वि होदि असंजत्तो संजत्ता, ण वि होदि सजोगी अजोगी'** समझ में आया? ऐसे दो भेद नहीं लिये। छठवीं गाथा। **'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो'** अपनी भूमिका में रहनेवाले हैं। छठवें-सातवें में, छठवें-सातवें में आते हैं। तो कहते हैं कि वह छह-सात, छह तक प्रमत्त, सातवें से

अप्रमत्त। **'ण वि होदि'** अप्रमत्त-प्रमत्त। आत्मा ज्ञायकरूप भाव है, वह प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं। अपनी भूमिका से बात करते हैं। समझ में आया? ...लालजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बराबर है। परन्तु यहाँ अपनी भूमिका में प्रमत्त-अप्रमत्त है, वहाँ से दो भेद लिये हैं। नहीं तो चौथे गुणस्थानवाला भी ऐसा कहते हैं कि संयत, असंयत दोनों नहीं, मैं तो ज्ञायक हूँ। समझ में आया? चौथे गुणस्थान तक असंयत है, पश्चात् संयत है। तो ऐसे भी दो भाग चौदह में पड़ जाते हैं। असंयत और संयत के दो भाग चौदह में पड़ जाते हैं। ऐसा नहीं लिया। क्योंकि अपनी भूमिका से बात करते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह बात है। प्रमत्त-अप्रमत्त अपनी भूमिका में चलता है। हजारों बार आते हैं एक दिन में। भावलिंगी सन्त हैं। समझ में आया? यह एक बार कहा था, यह छठी के लेख हैं। एक समय में भगवान ज्ञायकभाव, जिसमें पर्याय का स्पर्श नहीं, ऐसा चिदानन्द प्रभु, वही सम्यग्दर्शन का विषय है और उसके आश्रय से ही सम्यग्दर्शन होता है। तो बात की। नहीं तो यह चौथे गुणस्थानवाला बनानेवाला हो... यह तो मुनि बनानेवाले हैं। समझ में आया? और मुनि को ही वास्तव में तो हक है। मुनि अपनी भूमिका से कहते हैं कि यह प्रमत्त भूमिका में आये छठवें में, क्षण में सातवें में, क्षण में छठा, क्षण में सातवाँ। नहीं, यह नहीं। मैं ज्ञायक हूँ। समझ में आया? नहीं तो ऐसा भी कहने में आवे, असंयतो संयतो। **'ण वि होदि असंजतो संजतो ज्ञायकभावो अहं'** एक ओर असंयत में चार गुणस्थान आते हैं या पाँच लो भले, और संयत में बाद के आते हैं। तो ऐसे भी चौदह गुणस्थान में दो भाग पड़ जाते हैं। ऐसा नहीं है। इसी प्रकार सयोग, अयोग लो। कि सयोगी तेरहवें में है और अयोगी बाद में है। ऐसे यहाँ कहाँ नीचे भाग हैं? इसलिए प्रमत्त-अप्रमत्त भूमिका जो पर्याय की चलती है, उतना मैं नहीं, उसमें मैं नहीं, उसमें मैं नहीं; मैं तो ज्ञायक हूँ। समझ में आया? मैं तो ज्ञायकद्रव्य जो कभी प्रमत्त-अप्रमत्त पर्यायरूप होता नहीं। अर्थात् जड़रूप होता नहीं अर्थात् विकल्परूप कभी द्रव्य नहीं होता। समझ में आया? लक्ष्मीचन्दजी!

यह कहते हैं कि अपनी भूमिका से जब प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं, ऐसा लिया तो यहाँ भी अप्रमत्त निश्चयमोक्षमार्ग और प्रमत्त में यह विकल्प आया शुद्ध परिणति के साथ, वह व्यवहार है। दो के बीच बात करते हैं। क्या व्यवहार साधन है छठवें का और सातवें का निश्चय साध्य है? समझ में आया? फिर भले साध्य आगे लो, परन्तु यहाँ भी साध्य एक अंश से पूरा होता है। समझ में आया? तो कहते हैं कि निश्चयमोक्षमार्ग के... सप्तम गुणस्थान के योग्य निश्चयमोक्षमार्ग। योग्य कहने पर निश्चयमोक्षमार्ग बाद में भी है। समझ में आया? तो सप्तम गुणस्थान के योग्य जो निश्चयमोक्षमार्ग है, वहाँ से निश्चय शुरु हुआ है। उसके **साधन रूप से...** उसके साधन रूप से, व्यवहारसाधन रूप से। यह साधन रूप से का अर्थ व्यवहारसाधन रूप से। निश्चयसाधन रूप से, ऐसा नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अन्दर भले छठवें गुणस्थान की शुद्धि है, उसका साधन कहने में आता है। वह शुद्धि है न, वही निश्चय का साधन। यह साधन (अपेक्षा से) उसे व्यवहारसाधन कहने में आया है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : निमित्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त से। परन्तु 'व्यवहार' शब्द पड़ा है न। यहाँ व्यवहार लेना है न।

मुमुक्षु : जयसेनाचार्य ने लिखा है कि बहिरंग....

पूज्य गुरुदेवश्री : बहिरंग पदार्थ है, बहिरंग पदार्थ का साधन है। परन्तु यहाँ पाठ में है न, व्यवहार। तो व्यवहार तो पराश्रित कह दिया, स्वपरपर्यायहेतुक। तो स्वपरपर्याय-हेतुक विकल्प-राग आया। राग को यहाँ साधन कहने में आया है। जो सप्तम गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प दशा है, उसका वास्तविक साधन तो छठवें गुणस्थानयोग्य निर्मलदशा है। वह तो निश्चय अभिन्नसाधन और निश्चय अभिन्नसाध्य (हुआ)। निश्चय अभिन्नसाधन और निश्चय अभिन्नसाध्य। यहाँ यह बात नहीं करना। यहाँ तो विकल्प जो छठवें गुणस्थान में है, चारित्र में स्थिरता नहीं, प्रमत्त में अस्थिरता आ गयी है, ऐसा जो विकल्प

का व्यवहार का भाव वर्तता है, उसे यहाँ व्यवहारसाधन, निश्चय का व्यवहारसाधन कहने में आया है। भिन्न साधन और अभिन्न साध्य। भिन्न साधन और सामने अभिन्न साध्य। उस व्यवहार को यहाँ साधन कहने में आया है। समझ में आया? जरा कठिन है। लक्ष्मीचन्दजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन, ज्ञान की शुरुआत तो चौथे से हो गयी परन्तु चारित्र की पूर्णता बिना निश्चयमोक्षमार्ग सप्तम योग्य जो कहने में आया है, ऐसा निश्चयमोक्षमार्ग नीचे नहीं हो सकता। आहाहा! समझ में आया?

निश्चयमोक्षमार्ग के साधनरूप से,... यह साधन कौन? व्यवहार। **पूर्वोदिष्ट...** अपने १०७ गाथा आ गयी। उसमें भी पूर्वोदिष्ट कहा था, १५९ गाथा में भी। वहाँ भी कहा था, देखो न! **और जो पूर्व में (१०७वीं गाथा में) दर्शाया गया था...** १०७ का १५९ में भी कहा था और यहाँ (भी कहा)। अपने १०७ गाथा इसीलिए ली थी। एक ही गाथा की बात है। **पूर्वोदिष्ट...** १०७ गाथा में **(उल्लिखित) व्यवहारमोक्षमार्ग का यह निर्देश है।** देखो! साधनरूप से। कौन सा धन? कि पूर्वोद्दिष्ट जो १०७ में कहा, वह व्यवहारमोक्षमार्ग यहाँ साधनरूप से कहने में आया है। समझ में आया? समझ में आया या नहीं? धरमचन्दजी! ऐसी की ऐसी हाँ करे, (यह) नहीं (चलता), वहाँ वापस बदल जाये। वे लोग बहुत प्रश्न (पूछे तो) उलझन में आ जाये। अरे! बात तो उन लोगों की सच्ची लगती है। यह क्या है? भाव का यथार्थ निर्णय होना चाहिए। निर्णय पक्का होना चाहिए। पहले ऐसा निर्णय होना चाहिए। ज्ञान में ऐसा अवाय पक्का होना चाहिए और वीर्य के वेग में ऐसा पक्का निर्णय होना चाहिए कि निश्चय जो है... सम्यग्दर्शन, वह चौथे से है, सम्यग्ज्ञान भी चौथे से उत्पन्न होता है। ज्ञानचेतना चौथे से उत्पन्न है और ज्ञानचेतना, वही सम्यक् निश्चयज्ञान है। पूर्ण ज्ञान भले न हो, पूर्ण ज्ञान तेरहवें में है। परन्तु चारित्र का अंश चौथे में जो स्वरूपाचरण जो हुआ है... समझ में आया? इतना स्वरूपाचरण भी साथ में है। परन्तु वह चारित्रविशेष, जिसे चारित्र संज्ञा दी जाती है, ऐसा चारित्र छठवें से होता है और पूर्ण सातवें में होता है। तो वहाँ सातवें गुणस्थान की दशा को निश्चयमोक्षमार्ग गिनकर, उसके योग्य, और साधनरूप से व्यवहार सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र १०७ में जो कहा था, उसे यहाँ साधनरूप से कहा गया है। इसका विशेष

स्पष्टीकरण करते हैं। १०७ में कहा था, उसका ही विशेष स्पष्टीकरण करते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वरूपाचरण, वह चारित्र की संज्ञा नहीं। वास्तव में संयम का चारित्र दो कषाय का अभाव तो थोड़ा चारित्र है, तीन कषाय मिटे तो चारित्र है। यह तो शास्त्र में ऐसा चला है, भाई! कि अनन्तानुबन्धी सम्यग्दर्शन का चोर है, ऐसा शास्त्र में आया है। समझ में आया? यह वहाँ पुरुषार्थसिद्धि उपाय में है। चोर कहा है। अनन्तानुबन्धी को सम्यग्दर्शन का चोर कहा है। फिर भले पंचम गुणस्थान में संयम आता है। परन्तु यहाँ तो सम्यग्दर्शन का चोर है। तत्त्वार्थश्रद्धान के साथ स्वरूपाचरण न हो तो सम्यग्दर्शन का चोर है, ऐसा पुरुषार्थसिद्धि में श्लोक है न! श्लोक है। समझ में आया? तो ऐसा चोरपना तो नष्ट हुआ। किसमें? सम्यग्दर्शन होने पर चौथे गुणस्थान में। निज तत्त्वार्थश्रद्धान अथवा आत्मज्ञान। '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' यह निश्चयसम्यग्दर्शन है। ११वीं गाथा, समयसार। यह व्यवहार-फ्यवहार की बात नहीं है। यह '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' चिदानन्द भगवान एकरूप स्वभाव है, ऐसा अन्तर में ज्ञान करके अनुभव होने पर, उसमें प्रतीति हुई, वह निश्चयसम्यग्दर्शन है। साथ में सम्यक् ज्ञानचेतना भी प्रगट हुई है। उस प्रकार की चेतनावरणीय—जो उस प्रकार के अनुभव के आवरणरूप जो चेतनाआवरण था, उसका नाश हुआ है अनुभवचेतना में। और स्वरूपाचरण हुआ है तो अनन्तानुबन्धी का भी नाश हुआ है। तीन का नाश हुआ है। क्या कहा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए तो यहाँ कहते हैं। इसके लिये तो यह बात चलती है। वह बात झूठ है। चौथे गुणस्थान से निश्चय सम्यग्दर्शन है। वह तो राग का अभाव करके वीतरागचारित्र को निश्चय सम्यग्दर्शन गिनने में आया है, वह सातवें में भी निश्चय इस अपेक्षा से गिनने में आया है। विशेष राग मन्द हो गया और वीतरागी चारित्र हो गया। मुनि को वीतरागी कहा जाता है। भाई! ओहोहो! हमारे तो यह श्लोक स्थानकवासी सम्प्रदाय में चलता था। '...' आता था या नहीं? '...' इन सबको आता था। ये सब उसके भटकिया हैं न। ... क्या आता है? भूल गये भाई, बहुत वर्ष हुए। ...

समझे न ? ... पृथ्वी का पति। एगंत सुखी मुनि वीतरागी, ऐसा एक श्लोक आता है। तो वह वीतरागी मुनि वहाँ छठवें-सातवेंवाले लेते हैं। उन्हें कहाँ छठवाँ-सातवाँ था। श्वेताम्बर में तो यह बात है ही नहीं। गड़बड़... गड़बड़ है। यह तो कहते हैं, छठवाँ गुणस्थान लाखों वर्ष रहता है। ऐसा होता ही नहीं। समझ में आया ? छठवें गुणस्थान की स्थिति ली है भगवती में, करोड़ पूर्व ... करोड़ पूर्व। ऐसा होता ही नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ... व्यवहार की बातें की हैं। परमार्थ की बात उसमें है ही नहीं। परमार्थ सर्वज्ञ सन्तों ने सर्वज्ञ महामुनियों ने और कुन्दकुन्दाचार्य (आदि) महामुनियों ने जो धर्म का स्तम्भ रोपा है, वह अप्रतिहत वस्तु है। समझ में आया ? ऐसी वस्तु की स्थिति चौथे की, पाँचवें की, छठवीं भूमिका के योग्य जो निश्चय-व्यवहार की ऐसी बात अन्यत्र कहीं है ही नहीं। निर्ग्रन्थ मार्ग के अतिरिक्त दिगम्बर पंथ के अतिरिक्त ऐसी चीज़ अन्यत्र कहीं नहीं है। समझ में आया ? यह तो छठवें गुणस्थान में लम्बा काल कहते हैं। अरे ! छठवें गुणस्थान में लम्बा काल रहे तो मिथ्यादृष्टि हो जाये, शास्त्र ऐसा कहते हैं। भगवान तो ऐसा कहते हैं कि छठवें गुणस्थान का जितना काल हमने देखा, उतना काल छठवें में रह जाये तो मिथ्यात्व आ जाये। ऐसा धवल में पाठ है। उससे कम में आने पर सातवें में आते हैं, कम में आकर सातवाँ आता है। क्या कहा ? भगवान ने जितना छठवें गुणस्थान का काल देखा है, उससे कम काल में सातवाँ आ जाता है। और सातवें से छठवें में, छठवें से सातवाँ। जितनी स्थिति है, उतना वहाँ प्रमत्त में रहते ही नहीं। समझ में आया ? अन्तर्मुहूर्त में बदल जाता है।

सच्चे मुनि को निद्रा भी एक घण्टे की कभी नहीं होता। क्योंकि सातवाँ गुणस्थान क्षण में आ जाता है, क्षण में छठवें में आते हैं। निद्रा एक घण्टे की होती ही नहीं। एक घण्टे की निद्रा हो, वहाँ मुनिपना है ही नहीं। आहाहा ! इतनी वस्तु की स्थिति जहाँ चारित्र... ओहोहो ! धन्य अवतार ! चारित्र की दशा जहाँ मोक्षमार्ग निश्चय हो गया। सातवाँ गुणस्थान तो पहले आता है। छठवाँ तो फिर विकल्प—राग आता है। समझ में आया ? मांगीरामजी ! क्या है ? कभी वहाँ सुना ही नहीं। सब गड़बड़ (करते हैं),

चारित्र यह—वस्त्र बदले और महाव्रत पालन करते हैं, अहिंसा करते हैं। धूल में भी महाव्रत नहीं। वहाँ कहाँ महाव्रत था? समझ में आया? वहाँ उसके प्रमुख हैं, हों! सबमें प्रसिद्ध है स्थानकवासी में। साधु में सबमें प्रसिद्ध है। पुराने व्यक्ति हैं न! अरे! तुम सोनगढ़ गये! हाँ, भाई! सोनगढ़ तो गये। चारित्र की क्या व्याख्या है? यह पूछा। चारित्र यह पंच महाव्रत—अहिंसा पालन करे। निश्चय-व्यवहार किसे कहना? महाराज, मांगलिक सुना दो। हम जाते हैं। भाई! ऐसा कहा। अरे... भगवान! निश्चय-व्यवहार किसे कहे, इसकी अभी खबर नहीं।

यहाँ तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की बात अमृतचन्द्राचार्य स्पष्ट करते हैं कि निश्चयमोक्षमार्ग के साधनरूप से यह जो व्यवहार कहते हैं, उस साधन का कथन यहाँ किया जाता है। अब, **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, सो मोक्षमार्ग है।** यह व्यवहार है, हों! भेद है न, भेद से कथन है। **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, सो मोक्षमार्ग है। वहाँ, (छह) द्रव्यरूप और....** द्रव्यरूप पदार्थ शब्द पड़ा है न, द्रव्यरूप, तो उसमें छह द्रव्य ले लेना। समझ में आया? '**धर्मादिनां द्रव्यपदार्थ**' है न पाठ में यह? '**धर्मादिनां द्रव्यपदार्थ-विकल्पवतां**'। इसलिए फिर कितने द्रव्य और कितने (पदार्थ), यह इस कोष्ठक में स्पष्टीकरण किया है कि **(छह) द्रव्यरूप और (नव) पदार्थरूप जिनके भेद हैं,...** देखो, यह व्यवहारसमकित। निश्चय तो निज स्वरूप के सम्यग्दर्शन, ज्ञान हो गया है। समझ में आया? साथ में नौ तत्त्व के भेद हैं न, भेद हैं न! निश्चय का विषय तो अत्यन्त अभेद है। जिसमें गुण-गुणी का भेद भी नहीं है। अकेला ज्ञायकस्वरूप, वह निश्चय का, दृष्टि का विषय है। वह साथ में पूर्ण नहीं तो राग आया तो छह द्रव्य की श्रद्धा और नौ तत्त्व के भेदरूप **ऐसे धर्मादि के तत्त्वार्थश्रद्धानरूप भाव...** व्यवहारभाव, विकल्पभाव, शुभ उपयोगभाव। लो, और यह कहे कि, राग कहाँ से आवे? यह शुभ उपयोग ही है। राग कहाँ से कहते हो? वे कहते हैं। अरे... भगवान! द्रव्यसंग्रह में तो व्यवहाररत्नत्रय को शुभराग, शुभ उपयोग पाठ में-टीका में लिया है। ब्रह्म... कैसी कहलाती है वह टीका? ब्रह्मदेव सूरि। ब्रह्मदेव सूरि ने लिखा है। परन्तु है न विकल्प-शुभराग वह। शुद्ध उपयोग अथवा शुद्ध परिणति इसी ओर है। शुद्ध उपयोग तो सप्तम गुणस्थान में होता है परन्तु शुद्ध परिणति छठवें गुणस्थान में है। शुद्ध उपयोग नहीं। परन्तु अपना शुद्ध

निश्चय सम्यग्दर्शन का भान और सम्यक् चेतना, ज्ञानचेतना का भान और अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानी के अभावरूप चारित्र—ऐसी छठवें गुणस्थान में शुद्ध परिणति है। चौथे गुणस्थान में तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन और उसका अनन्तानुबन्धी का अभाव हुआ, उतना स्वरूपाचरण और ज्ञानचेतना तथा सम्यग्दर्शन—यह तीनों चौथे गुणस्थान में एक साथ है। परन्तु उसमें अभी तीन कषाय का अभाव नहीं हुआ तो वहाँ स्वरूपाचरण कहने में आता है। और पाँचवें में जब स्वरूप का विशेष आश्रय लेकर आगे बढ़ता है, जब पंचम गुणस्थान उत्पन्न हुआ तो वहाँ सम्यग्दर्शन निश्चय है, ज्ञानचेतना भी निश्चय है, परन्तु स्वरूपाचरण में जो अनन्तानुबन्धी एक का चौथे में अभाव था, वह दूसरा अप्रत्याख्यान का अभाव हो गया, तो स्वरूप की स्थिरता बढ़ गयी। उसे देश—आंशिक संयम कहा गया है। देशशान्ति बढ़ गयी है। शान्ति, अविकारी शान्ति का वेदन पंचम गुणस्थान में, चौथे में जो वेदन था, उससे पाँचवें में शान्ति का वेदन बढ़ गया है। वह निश्चय है। ज्ञानचेतना निश्चय, दर्शन निश्चय और दो कषाय के अभाव की स्थिरता, वह निश्चय है। उसे शुद्ध परिणति कहते हैं। उस शुद्ध परिणतिवाले को भी चौथे या पाँचवें में जितने शुद्ध परिणति है, उसमें भी कभी-कभी निर्विकल्प उपयोग जम जाता है। चौथे और पाँचवें में भी कभी-कभी निर्विकल्प उपयोग जम जाता है, परन्तु बहुत थोड़ा काल और बहुत लम्बे काल में (आता है)। टिकने में थोड़ा काल और उत्पन्न होने में लम्बा काल। समझ में आया?

और छठवें गुणस्थान में तो निश्चयसम्यग्दर्शन है, ज्ञानचेतना भी है और तीन कषाय के अभाव की शुद्ध परिणति है। शुद्ध उपयोग नहीं। समझ में आया? परिणति है। उस भूमिका में यह नौ तत्त्व आदि के भेद के विकल्प(रूप) श्रद्धा को व्यवहारसम्यग्दर्शन कहा गया है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रभु! यहाँ निर्ग्रन्थ का क्या अर्थ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभी काम नहीं। ग्रन्थिभेद हो गया, रागादि की विशेष (भिन्नता) वह निर्ग्रन्थ। पहले राग की और स्वभाव की एकता टूट गयी, उतना सम्यग्दर्शन। पश्चात् राग की अस्थिरता विशेष टूट गयी और तीन कषाय का अभाव हो गया तो उसे निर्ग्रन्थ कहा गया है। यह बात आ गयी है, पहले सुनो।

मुमुक्षु : चौथे, पाँचवें में परिणति....

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणति तो सदा है। शुद्ध उपयोग कभी-कभी (होता है)। और छठवें गुणस्थान में शुद्ध परिणति तो है, उसके साथ के तत्त्वार्थश्रद्धान की यह बात चलती है। शुद्ध उपयोग जम जाये तो सातवाँ हो जाये। यह निश्चयचारित्र हो जाये और निश्चयमोक्षमार्ग हो जाये। तीनों की एकता हो जाये। समझ में आया?

ऐसे धर्मादि के तत्त्वार्थश्रद्धानरूप भाव (-धर्मास्तिकायादि की तत्त्वार्थ-प्रतीतिरूप भाव) जिसका स्वभाव है ऐसा, 'श्रद्धान'.... देखो! यह तत्त्वार्थश्रद्धानरूप भाव। उसका जो श्रद्धान, उसका नाम सम्यग्दर्शन व्यवहार से कहा गया है। समझ में आया? तत्त्वार्थश्रद्धानरूप भाव है न? **तत्त्वार्थश्रद्धानरूप भाव (-धर्मास्तिकायादि की तत्त्वार्थप्रतीतिरूप भाव) जिसका स्वभाव है...** वापस ऐसा। उस श्रद्धान में नौ तत्त्व भेदवाले और छह द्रव्य की श्रद्धा हुई है। वह विकल्प है, शुभराग है, स्वपरप्रत्यय-हेतु विकल्प—राग है। अपने अशुद्ध परिणमन में कर्म का निमित्त है तो स्वपरप्रत्यय यह श्रद्धान जो है, स्वपरप्रत्यय राग है। समझ में आया? देखो, नीचे है। यहाँ तो इतना स्पष्टीकरण समझ लेना। देखो, पाँचवीं लाईन में है। **ऐसा यह, स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित,...** है न छठी लाईन? नीचे (फुटनोट में) छठी लाईन। पंक्ति कहते हैं? क्या कहते हैं तुम्हारे? भाई! तुम्हारी हिन्दी बहुत नहीं आती। **स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित,....** कौन? यह श्रद्धान।

मुमुक्षु : श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर एक लिया न? अभी एक साथ लेना है न! शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान की शुद्ध परिणति तो छठवें गुणस्थान में है। पाँचवें में भी उसके प्रमाण में, चौथे में उसके प्रमाण में है। परन्तु साथ में छठवें गुणस्थान में स्वपरप्रत्ययहेतु नौ तत्त्व के श्रद्धानरूप विकल्प को व्यवहार श्रद्धान कहने में आया है। क्योंकि उसमें स्वपरप्रत्ययहेतु राग आया है। राग को सम्यग्दर्शन कहना, वह व्यवहार का लक्षण है। सम्यग्दर्शन है नहीं, उसे सम्यग्दर्शन कहना, इसका नाम व्यवहार है। निश्चयसम्यग्दर्शन हुआ, अनुभव प्रतीति आत्मा की, निश्चय हुआ, उसे निश्चय कहना, वह परमार्थ है। समझ में आया? एक बोल आया।

नाम का भावविशेष सो सम्यक्त्व;... है न? **ऐसा, 'श्रद्धान' नाम का भावविशेष...** विकल्परूपी पर्याय, रागरूप पर्याय, शुभ उपयोगरूप राग, वह सम्यक्त्व है। उस स्वपरपर्याय के आश्रित शुभराग को यहाँ समकित कहा गया है। कहो, समझ में आया या नहीं भाई? थोड़ा-थोड़ा ध्यान रखे तो (समझ में आये ऐसा है)। यह तो बहुत सादी भाषा में आता है। नये को जरा लगे, कठिन लगे। नये हो न नये। चिमनभाई! यह तो सब हमारे पुराने हैं। यह मित्रसेनजी नये आये हैं। इस समय तो नये बहुत आये हैं। जिज्ञासु और उत्साह है। क्या है, उसे पहले समझना तो चाहिए। समझने की भूमिका बिना यथार्थ श्रद्धा का ज्ञान उसे किस प्रकार होगा? समझ में आया?

कहते हैं, किसे सम्यक्त्व कहा? एक जिसका स्वभाव है, ऐसा श्रद्धान। धर्मास्तिकायादि तत्त्वार्थरूप ऐसा भावविशेष। भाव—खास विकल्प—भाव, वह सम्यक्त्व है। स्वपरहेतुक पर्याय को यहाँ समकित कहा गया है। समझ में आया? मणिभाई! यह व्यवहार की बात चलती है, व्यवहार। आहाहा! यह स्वपरहेतुक पर्याय को निश्चय चौथा गुणस्थान कहना... समझ में आया? स्वपरहेतुक पर्याय को चौथा गुणस्थान कहना... चौथा गुणस्थान तो निश्चय स्वआश्रय से निर्विकल्प दृष्टि पर्याय उत्पन्न हुई, वह चौथा गुणस्थान है। और साथ में ऐसी नौ तत्त्व की श्रद्धा का विकल्प स्वपरहेतुक व्यवहारभाव भावविशेष, वह समकित है। स्वपरहेतुक को व्यवहार से समकित कहा गया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : साथ में होने से समकित कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : साथ में है न, निमित्त है न, निमित्त है। ऐसा साथ में है। नहीं होगा? पूर्ण हो न हो। वीतराग हो जाये, फिर (नहीं होता) अथवा सातवें में निर्विकल्प ध्यान हो, फिर बुद्धिपूर्वक कोई राग रहता नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ कहाँ पश्चात् तो ध्यान में-आनन्द में है। मुनि क्षण में सातवें गुणस्थान में आते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करता हूँ, ऐसा विकल्प भी नहीं। सातवीं भूमिका में तो मैं आनन्द का अनुभव करता हूँ, ऐसा विकल्प भी नहीं है।

सातवीं भूमिका में तो मैं आनन्द का अनुभव करता है, ऐसा भी विकल्प नहीं है। मैं और अनुभव करता हूँ—यह तो दो हो गये। ऐसा विकल्प नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तो अकेला सविकल्प रहा। स्वपरपर्याय प्रतीतिवाला विकल्प, वह सम्यग्दर्शन रहा। अरे... भगवान! किस प्रकार लगा दिया? समझ में आया?

मुमुक्षु : अनादि का स्वपरहेतुक....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वपरपर्यायहेतुक तो अनादि का है। वह तो आया नहीं ४१३ गाथा में? वह तो व्यवहारमूढ़ है। उसे व्यवहार कहनेवाले मूढ़ हैं। निश्चय प्रगट होने के बाद स्वपरहेतु व्यवहार आया, वह जाननेयोग्य है। जाना हुआ प्रयोजनवान, (समयसार की) १२वीं गाथा में कहा, वह बात चलती है, लो! १२वीं गाथा में आया न? जाना हुआ प्रयोजनवान है। जानने में आया कि यह है, विकल्प है। चौथी, पाँचवीं, छठवीं भूमिका में ऐसे नौ तत्त्व को विकल्प का भेद सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुए हैं, तो 'है' ऐसा जाननेयोग्य है। आदरणीय नहीं। यह स्वपरपर्यायहेतुक आदरणीय नहीं। व्यवहार से आदरणीय है, ऐसा कहने में आता है। निश्चय से आदरयोग्य नहीं।

मुमुक्षु : छहढाला में जो हेतु नियत का होई

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। वहाँ का अर्थ अभी उल्टा करते हैं। भाई! वह कहीं आया है। नहीं? परद्रव्य से (भिन्न) प्रतीति सम्यग्दर्शन भला है। यह बारहवें गुणस्थान में लगाया है। अरे... भगवान! क्या करता है? अभी लगाया है। उसमें लेख में आया है। समझे? वह 'परद्रव्य तें भिन्न आप में रुचि सम्यक्त्व भला है' यह १२वीं में है। अरे.. प्रभु! यहाँ तो अभी तुम ऐसा लो कि अमुक निश्चय की रुचि है और ध्याता-ध्येय का चारित्र में अधिकार लिया है, छहढाला में। 'ध्यान ध्याता ध्येय को भेद नहीं' यह तो चारित्र की प्रधानता से वहाँ कथन किया है। बाकी चौथे गुणस्थान में भी, मैं ध्याता हूँ, ध्यान हूँ—ऐसा विकल्पभेद नहीं होता, तब निश्चयसम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? यह ज्ञाता है और यह ज्ञेय है और मैं ज्ञेय का ज्ञान करता हूँ, ऐसा भी भेद जहाँ तक है, वहाँ तक विकल्पात्मक राग है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं ? तत्त्व अर्थात् भाव, भाव अर्थात् द्रव्य / वस्तु। द्रव्य, गुण, पर्याय अर्थ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। निर्विकल्प है। यह बात कहते हैं न! यह आत्मा का रूप है। पुरुषार्थसिद्धि... ये आत्मा का रूप है और वही निश्चय तत्त्वार्थश्रद्धान सिद्ध में भी रहता है। भेद नहीं, अभेद दृष्टि। सात तत्त्व के नाम लिये। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, सात तत्त्व। एकवचन लिया है, बहुवचन लिया ही नहीं। एकवचन। एकरूप है। आत्मा का भान हुआ तो उसमें अजीव, आस्रव, बन्ध उसमें नहीं है। और संवर, निर्जरा, मोक्ष है, ऐसा ज्ञान उसमें आ गया, श्रद्धा उसमें आ गयी। आत्मा का भान हुआ, उसमें 'यह आत्मा ज्ञायकमूर्ति है' तो इसके साथ संवर, निर्जरा, मोक्ष की पूर्ण पर्याय आदि अभेदरूप से ख्याल में आ गये। और आस्रव, बन्ध तथा अजीव उसमें नहीं, ऐसा ज्ञान हो गया। सातों तत्त्व की श्रद्धा आत्मज्ञान में आ गयी। भिन्न नहीं रहती।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हो, वह तो साथ में भाव है, वह निश्चय सम्यक्त्व है। यह स्वपरपर्यायहेतुक और व्यवहारसम्यग्दर्शन ? तत्त्वार्थश्रद्धान तो राग हुआ, विकल्प हुआ। चौथे गुणस्थान में अकेला विकल्प है ? विकल्पवाला अकेला सम्यग्दर्शन है ? नहीं। निश्चयसम्यग्दर्शन तत्त्वार्थश्रद्धान का हुआ है आत्मज्ञान का, उसके साथ ऐसा ही नौ पदार्थ का—तत्त्वार्थश्रद्धान का विकल्प-राग आता है। नहीं तो वेदान्त हो जाता है। वेदान्त, एक-एक अकेला कहता है। नहीं, उसकी भूमिका में नौ तत्त्व की और छह द्रव्य की श्रद्धा के विकल्परूपी व्यवहार समकित होता है। कोई एक ही आत्मा कह दे और छह द्रव्य है ही नहीं, नौ तत्त्व के भेद, छह द्रव्य के भेद है ही नहीं, ऐसा नहीं है। वे हैं। अभेददृष्टि होने के पश्चात् ऐसा विकल्प जिस भूमिका में आया, तो कहते हैं, यहाँ पहले कहा न, तुम बाद में क्यों कहते हो ? पहले तो सातवें गुणस्थान की अपेक्षा से पहले साधन कहा। समझ में आया ?

तत्त्वार्थश्रद्धान के सद्भाव में.... देखो! तत्त्वार्थश्रद्धान के सद्भाव में, व्यवहारश्रद्धान के सद्भाव में नौ पदार्थ हैं, छह द्रव्य हैं, ऐसा व्यवहारश्रद्धान विकल्प के सद्भाव में (होता है)। निश्चयदृष्टि, ज्ञान तो है ही। **अंगपूर्वगत पदार्थों का अवबोधन...** अंग और पूर्व के पदार्थ। पूर्वगत—उसमें रहे हुए। अंग और पूर्व में रहे हुए पदार्थों को जानना, **वह ज्ञान...** अंग और पूर्वगत पदार्थों का। देखो! समझ में आया? यह सब पदार्थ अंग-पूर्व में आये हैं। जानना, वह ज्ञान है। वह व्यवहारज्ञान है। वह ज्ञान स्वपरहेतुक पर्याय है। क्या कहा? यह तो एक-एक बोल के साथ वह (व्यवहार) लगाना है न।

अपना स्वरूप शुद्ध है, ऐसी जो ज्ञानचेतना हुई, वह तो निश्चय है। साथ में अंगपूर्वगत का भान करना, वह व्यवहार सम्यग्ज्ञान है। व्यवहार स्वपरपर्यायहेतुक, ऐसा विकल्पात्मक इतना क्षयोपशम दिखता है। परन्तु वह परलक्षीभाव है। स्वपरपर्यायहेतुक ज्ञान है। स्वआश्रय से जो ज्ञानचेतना है, वह निश्चय है। तब इसे व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! कठिन भाई! परन्तु ठीक हुआ, यह सब पढ़ने में आया और सामने यह सब बात आयी। ऐई! देवानुप्रिया! कहाँ गये जमुभाई! सामने बात आवे, तब अधिक स्पष्ट होता है। नहीं तो सामने शंका न पड़े तो स्पष्टता क्या आवे?

मुमुक्षु : अंगपूर्वगत अर्थात् ग्यारह अंग, चौदह पूर्व?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ग्यारह अंग है, दस पूर्व है। नौ पूर्व है। नौ पूर्व का भी ज्ञान होता है और समकिती को बारह अंग का भी ज्ञान होता है। यहाँ तो मुनि की बात है न! बारह अंग का ज्ञान, वह भी व्यवहारज्ञान है। स्वपरपर्यायहेतुक ज्ञान है। आहाहा! होता है। समझ में आया? चौथे गुणस्थानवाले सर्वार्थसिद्धि के देव सम्यग्दर्शन, ज्ञानचेतना है, उस भूमिका में बारह अंग का भी ज्ञान है चौथे गुणस्थानवाले को सर्वार्थसिद्धि में। परन्तु वह स्वपरप्रत्यय हेतु व्यवहारज्ञान है। निश्चय तो अन्दर ज्ञानचेतना हुई है, वह निश्चय है। समझ में आया? क्या लक्ष्मीचन्दजी! देखो!

वह ज्ञान... अंगपूर्वगत पदार्थों का। किसके साथ? तत्त्वार्थश्रद्धान के सद्भाव में। व्यवहारश्रद्धान है उसके साथ। वह श्रद्धासहित ग्यारह अंग, बारह अंग का ज्ञान, चौदह पूर्व का ज्ञान, उसमें कहे हुए पदार्थों का बोध, वह परलक्षी है, इसलिए उसे व्यवहारज्ञान

कहा जाता है। यह उसे नहीं बैठता भाई! उन लोगों को ऐसा कि ऐसा ज्ञान और... अरे! सुन तो सही, प्रभु! यह स्वपरप्रत्ययहेतु नीचे शब्द लिखा है। भगवान! जरा सुन तो सही! यहाँ भी है न? यहाँ कहा है, फिर प्रश्न कहाँ? यहाँ का यहीं तुरन्त याद किया है कि यह जो कहा, वह स्वपरपर्यायहेतुक है, फिर प्रश्न कहाँ है? यहाँ के साथ लिया है। समझ में आया?

यह जो तत्त्वार्थश्रद्धान कहा, उसके साथ यह जो है अंगपूर्वगत पदार्थ का ज्ञान, वह **स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित, भिन्नसाध्यसाधनभाववाले...** देखो! अभिन्नसाधन तो सम्यक् ज्ञानचेतना है। निश्चय सम्यक्दर्शन है अभिन्न है तो यह आगे का साधन निश्चय से कहने में आया है। ज्ञानचेतना है सातवें गुणस्थान के ज्ञान को, उसे निश्चयसाधन कहने में आया है और यह जो तत्त्वार्थश्रद्धान है, वह अभेद जो सप्तम गुणस्थान है, उसका व्यवहारसाधन कहने में आया है। निश्चय जो ज्ञान है, सप्तम गुणस्थानयोग्य, उसका व्यवहार ज्ञान व्यवहारसाधन कहने में आया है। समझ में आया? यह व्यवहार-निश्चय की भारी भांजगढ़। अरे... भगवान! यह समझे बिना तेरा ज्ञान यथार्थ होता ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अब तीसरा बोल। **आचारादि सूत्रों द्वारा कहे गए अनेकविध मुनि-आचारों के समस्त समुदायरूप तप में चेष्टा...** देखो! यहाँ तो मुनि की प्रधानता से बात की है न? आचारांग आदि में **सूत्रों द्वारा कहे गए अनेकविध मुनि-आचारों के....** पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण इत्यादि-इत्यादि उसकी विधि में (आवे वह)। **समस्त समुदायरूप...** समुदायरूप—समूह में **तप में...** अर्थात् मुनिपने की व्यवहारचेष्टा में प्रवर्तन। तप में अर्थात् मुनिपने की व्यवहारचेष्टा में प्रवर्तन, वह चारित्र है। तप में अर्थात् निश्चय मुनिपना तप, वह नहीं। व्यवहार तप अर्थात् जो विकल्प पंचाचार आदि है, ज्ञानाचार, दर्शनाचार, वह व्यवहार विकल्प जो है, वह समस्त समुदायरूप तप में अर्थात् मुनिपने में, व्यवहार मुनिपने में चेष्टा प्रवर्तन, वह व्यवहारचारित्र है। यह व्यवहार विकल्प चारित्र है। **ऐसा यह, स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित,....** देखो, लो! तीनों। समझ में आया? राजमलजी! यह तीनों। यह गाथा साथ में मिलाना, हों! आहाहा! **ऐसा यह...**

यह अर्थात् कौन? यह तीन। तत्त्वार्थश्रद्धान, आचारांग आदि का ज्ञान और आचारांग आदि में कहा हुआ चारित्र। व्यवहार विकल्प पंच महाव्रत (आदि)।

यह स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित,... स्वपरहेतुक पर्याय अर्थात् स्व का थोड़ा शुद्ध है, थोड़ा अशुद्ध है, ऐसा नहीं। स्व अशुद्ध उपादान और निमित्त पर। अकेला अशुद्ध उपादान... निमित्त साथ में लिया। ऐसी पर्याय को विकल्प कहा गया है। राग कहा (गया है)। वह तो विकल्पात्मक है ही, द्रव्यसंग्रह में सबमें है। वह तो इन्होंने डाला है, उसमें भी है। मोक्षमार्ग है चौथे, पाँचवें, छठवें में, परन्तु विकल्पात्मक है। पाठ में विकल्पात्मक, वह भी मोक्षमार्ग है, ऐसा डाला है। परन्तु विकल्पात्मक मोक्षमार्ग तो व्यवहार है। समझ में आया? राग उत्पन्न हुआ, वह स्वद्रव्य के आश्रय से है? वह तो निमित्त के आश्रय से उपादान में विकल्प आया। द्रव्य के आश्रय से जो निर्मलता उत्पन्न होती है, वह निश्चय है। निमित्त के आश्रय से अशुद्ध उपादान में विकल्प उठा है, वह व्यवहार है, व्यवहार है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों मिलकर नहीं। स्व अपना उपादान, निमित्त का लक्ष्य करके, जो अशुद्ध विकल्प उत्पन्न हुआ, उसे स्वपरहेतु कहा गया है। उपादान हेतु और निमित्त हेतु साथ में करके कहा है। एकसाथ। स्व-पर हेतु विकार है न, विकार है न, विकल्प है। समझ में आया? आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य ने पाठ में से कितना निकालकर (स्पष्ट किया है)! '**धम्मादीसद्दहणं सम्मत्तं**' व्यवहार। '**णाणमंगपुव्वगदं**' '**णाणमंगपुव्वगदं**' व्यवहार। वह 'तप' शब्द पड़ा था न, पाठ में है सही न! '**चेट्ठा तवम्हि चरिया**' मुनिपने में भी व्यवहार विकल्प की चेष्टा। पंच महाव्रत (पालन करूँ), अपवास करूँ, ऐसा कोई विकल्पादि है, वह सब व्यवहार स्वपरहेतुक आश्रय विकल्प—राग-विभाव-शुभ उपयोग को व्यवहारमोक्षमार्ग कहा गया है। बन्धमार्ग है, हों! वह पुरुषार्थसिद्धि उपाय में आया न? शुभ उपयोग का यह अपराध है। बन्ध पड़ता है, वह मोक्षमार्ग से बन्ध नहीं पड़ता। निश्चयमोक्षमार्ग तो स्वआश्रय से शुद्ध है, उससे बन्ध नहीं है।

देखो! यहाँ मोक्षमार्ग, बन्ध और मोक्ष का कारण दो शब्द प्रयोग किये हैं। अपने

भी आया न? बन्धमोक्खो... उसमें भी आया। बंधोमोक्खोवा। उसमें स्पष्ट लिखा है। मोक्ष तो स्वद्रव्य के आश्रय से जो पर्याय हुई, वही मोक्षमार्ग है। उससे बन्ध नहीं है। बन्ध तो पराश्रय से जितना शुभराग हुआ, वह शुभराग का अपराध है। वह अपराध है, उसका बन्ध है। व्यवहाररत्नत्रय भी अपराध है। आहाहा! कठिन बात, भाई! स्वपरप्रत्यय राग है या नहीं? अपराध है, गुनाह है। अररर! अरे... भगवान! सुन तो सही! इस व्यवहार को निमित्त देखकर, व्यवहार से अनुकूल देखकर आरोप किया है। वास्तव में तो बन्ध के कारण को मोक्ष का कारण कहना, यह व्यवहारनय का लक्षण है। समझ में आया? यह व्यवहारनय से यहाँ कहा गया है। बहुत गड़बड़ हुई है। ओहोहो! यह अब व्यवहारमोक्षमार्ग चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें में और बारहवें तक (होता है), और एक व्यक्ति (ऐसा कहता है)। और एक व्यक्ति ऐसा कहता है, बारहवें के पूर्व तक (होता है)। लो न! बारहवें के पूर्व तक। पूर्व शब्द प्रयोग किया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय है ही नहीं नीचे, निश्चय तो बारहवें में ही होता है, ऐसा (अज्ञानी) कहता है।

मुमुक्षु : अमुक काल व्यवहार और अमुक काल निश्चय....

पूज्य गुरुदेवश्री : अमुक काल व्यवहार और अमुक काल निश्चय। भेद। यहाँ इस निश्चय के साथ व्यवहार, ऐसा नहीं। ऐसा कभी होता ही नहीं।

एक द्रव्याश्रित स्वनिश्चय दर्शन-ज्ञान हुए, उसमें जितने भेद के भाव उठते हैं, उसे व्यवहार कहा गया है, बस। दोनों साथ में है। परन्तु यहाँ पहले कहा, उसका अर्थ सातवें में जो निश्चय का साध्य लेना है, वह नीचे छठवें गुणस्थान में वर्तता तत्त्वश्रद्धान, व्यवहार ज्ञान, व्यवहार(चारित्र)—उसका साधन व्यवहार से होता है। निश्चय का साधन, छठवें का राग व्यवहार साधन होता है। निश्चय साधन तो छठवें गुणस्थान की निर्मल शुद्ध परिणति है। तीन कषाय के अभावरूप परिणति। सम्यग्दर्शन-ज्ञान और तीन कषाय के (अभावरूप) परिणति—शुद्ध परिणति, वह सातवें गुणस्थान का निश्चय साधन है। तो वह अभेदसाध्यसाधन हुए। दोनों निर्मल अभेदसाध्यसाधन। भेद साधन

और भेद साध्य, वह विकल्पात्मक है। उसे साध्य का व्यवहार साधन कहने में आया है। समझ में आया? भिन्न साध्यसाधन है। व्यवहार साधन कहा न उसे, व्यवहार साधन।

देखो! **ऐसा यह, स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित,...** कौन? तीन। कौन तीन? व्यवहारश्रद्धा, व्यवहारज्ञान, व्यवहारचारित्र। **भिन्नसाध्यसाधनभाववाले...** देखो! इतना तो स्पष्टीकरण किया है। भिन्न साध्य क्या? कि स्वपरपर्याय प्रत्ययी जो छठवें गुणस्थान में राग है, वह भिन्न साधन है और साध्य भिन्न है। क्योंकि विकल्पात्मक है, वह भिन्न साधन हुआ। निर्विकल्प सातवाँ साध्य है। तो निर्दोष साध्य, उसका सदोष साधन, उसे भिन्नसाधनसाध्य कहा गया है। तो **भिन्नसाध्यसाधनभाववाले व्यवहारनय के...** देखो! यह कैसे कहा? कि **व्यवहारनय के आश्रय से...** निश्चय सातवें गुणस्थान के योग्य साध्य जो निश्चय है उसका, छठवें गुणस्थान में जो विकल्प रहा, निर्विकल्प शुद्ध परिणति अन्दर जो है, वह तो अभिन्नसाध्यसाधन में गयी। सेठी! क्या अभिन्नसाध्यसाधन?

मुमुक्षु : शुद्ध....

पूज्य गुरुदेवश्री : संक्षिप्त भाषा बोले। व्यापारी है। निश्चय जो साध्य है वह सातवें में शुद्ध उसका, छठवें में जो शुद्ध है, (वह साधन है), वे दोनों शुद्ध गिनकर अभिन्नसाध्यसाधन कहा। और यह साध्य है सातवाँ और साधन है छठवें (गुणस्थान का) विकल्प, वह भिन्नसाध्यसाधन कहने में आता है। व्यवहारनय के आश्रय से क्यों कहा, इसका स्पष्टीकरण किया है। कि व्यवहारनय के आश्रय से कहा।

मुमुक्षु : एक समय में दोनों परिणति है?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय में दोनों परिणति है—ज्ञानधारा और कर्मधारा। निर्मल परिणति भी है, राग भी है। छठवें गुणस्थान में, पाँचवें में, चौथे में दो धारायें हैं। चौथे गुणस्थान से भी जितना सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और रागरहित स्वरूप की परिणति शुद्ध हुई, वह ज्ञानधारा है। ज्ञान का अर्थ रागधारा नहीं। वह तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का अंश, वह सर्व ज्ञानधारा और साथ में रागादि है, वह कर्मधारा, बन्ध की धारा है। यह चौथे, पाँचवें, छठवें में ज्ञानधारा और कर्मधारा (दोनों हैं)। सातवें में ज्ञानधारा एकाकार हो जाती है। वहाँ बुद्धिपूर्वक के विकल्प नहीं रहते। समझ में आया? अरे! बात इतनी

सब समझना, इसकी अपेक्षा यह कर डाले महाव्रत और दया पाल ले और व्रत ले लिये, जाओ, प्रतिमा ले ली। कुछ है? भाई! परन्तु व्यवहार कौन? निश्चय कौन? उसकी मर्यादा कितनी व्यवहार की सीमा है और निश्चय की कितनी मर्यादा—सीमा है, यह समझे बिना सम्यग्दर्शन का निर्णय नहीं, तो सम्यग्दर्शन कहाँ से आयेगा? समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ से कर ले? धूल में? लीनता कभी होती ही नहीं, वह तो हठ होती है। मान ले भले, ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

भिन्नसाध्यसाधनभाववाले.... लो, देखो! दोनों भाव तो कहे, हों! भिन्नसाध्य-साधनभाव। साधनभाव विकल्प और साध्यभाव निर्विकल्प सातवाँ, ये दोनों भाव। परन्तु दोनों भाव उसको कैसे कहा? कि व्यवहारनय के आश्रय से। व्यवहार अभूतार्थ है। वह अभूतार्थ सत्यार्थ नय से कहने में आया है। बस, एक ही ११वीं गाथा ऐसी है (कि) जैनदर्शन के प्राण, वस्तुदर्शन के प्राण हैं। समझ में आया? **व्यवहारनय के आश्रय से (-व्यवहारनय की अपेक्षा से)....** भाई ने स्पष्टीकरण किया। **अनुसरण किया जानेवाला मोक्षमार्ग,....** देखो! कौन? यह व्यवहार। व्यवहारनय के आश्रय से अनुसरण किया जानेवाला, ऐसा विकल्प आया उसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहा गया है।

सुवर्णपाषाण को लगायी जानेवाली... अब क्या कहते हैं? स्वर्णपाषाण है न? सोने का पत्थर। उसमें अग्नि लगावे, तब सोना और पत्थर भिन्न पड़ते हैं। सुनो! उसमें भी दो न्याय है। **सुवर्णपाषाण को लगायी जानेवाली प्रदीप्त अग्नि....** साधारण अग्नि नहीं। प्रदीप्त अग्नि, उग्र अग्नि उग्र। उसकी **भाँति... प्रदीप्त अग्नि की भाँति, समाहित अन्तरंगवाले जीव को...** देखो! समाहित अन्तरंगवाले जीव को। नीचे (फुटनोट में) समाहित का अर्थ लिखा है। 'एकाग्र, एकता को प्राप्त, अभेदता को प्राप्त।' सातवें गुणस्थानवाला 'छिन्नभिन्नता रहित, समाधि प्राप्त, शुद्ध, प्रशान्त' यह सातवें गुणस्थान की बात है। ऐसे **समाहित अन्तरंगवाले जीव को (अर्थात् जिसका अन्तरंग एकाग्र—समाधिप्राप्त है, ऐसे जीव को)....** अब विशिष्टता तो क्या है? कि सातवें गुणस्थान में समाहित है तो व्यवहार उसे पद-पद में अभिन्न विश्रान्ति कराता है! समझ में आया? क्या कहा? सातवें गुणस्थान में तो ध्यान में है। तो यहाँ कहा, जो व्यवहार है, वह कैसा है?

जैसे स्वर्णपाषाण में अग्नि लगायी, वैसे समाहित अन्तरंगवाला जीव। सातवें गुणस्थानवाला, ध्यानवाले जीव को **पद-पद में...** समय-समय की पर्याय **परम रम्य ऐसी ऊपर की शुद्ध भूमिकाओं में अभिन्न विश्रान्ति (-अभेदरूप स्थिरता) उत्पन्न करता हुआ...** कौन? व्यवहार।

मुमुक्षु : व्यवहार का तो अभाव हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभाव हो जाता है, परन्तु वह यहाँ से व्यवहार साधन अभाव करके आगे गया है तो वहाँ भी निर्मल क्रम-क्रम से शुद्ध परिणति बढ़ती जाती है। सातवें में भी समय-समय में बढ़ती जाती है। उसे व्यवहार साधन ने बढ़ाया। बढ़ती है स्वयं से, अभी कहेंगे। स्वर्ण स्वयं से ही अन्दर बढ़ता है। परन्तु अग्नि से बढ़ा, पृथक् पड़ा, बढ़ा, ऐसा व्यवहार से कहने में आया है। आहाहा! कठिन गाथायें!

मुमुक्षु : बहुत स्पष्ट।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत स्पष्ट बात, बहुत स्पष्ट है। समझ में आया? पद-पद का अर्थ? यहाँ थोड़ा विवाद ले। ऐसा कि पद-पद पर और एक ही गुणस्थान में पद-पद पर (क्या)? अरे...! असंख्य पर्याय है न! उसके असंख्य समय हैं। ऐसी ऊपर की शुद्ध भूमिकाओं में... ऊपर की शुद्ध भूमिका ली है न? ऊपर की। **अभिन्न विश्रान्ति उत्पन्न करता हुआ....** पश्चात् भी भले निर्मल हो, उसे भी पहले व्यवहार से आरोप करके कहा गया है। फिर आठवें, नौवें में पूर्व का साधन... उसमें कुछ विरोध नहीं है। व्यवहारनय से—अभूतार्थनय से कहा जाये तो उससे आगे लीनता बढ़ जाती है, उसमें क्या? उसमें कोई दिक्कत नहीं है। समझ में आया? **ऐसी ऊपर की शुद्ध भूमिकाओं में अभिन्न विश्रान्ति....** क्या? अभेद स्थिरता सातवें आदि में। **उत्पन्न करता हुआ....** कौन? व्यवहाररत्नत्रय। क्या? व्यवहाररत्नत्रय निपजाता हुआ। क्यों निपजाता हुआ (कहा)? कि अपने से निपजता है, उसे निपजाता हुआ, ऐसा कहने में आया है। यह अधिकार चलेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १३, गुरुवार, दिनांक - २०-०८-१९६४, गाथा-१६०, प्रवचन-७

यह पंचास्तिकाय, (इसमें) मोक्षमार्ग का विस्तार चलता है। उसमें १६०वीं गाथा। निश्चयमोक्षमार्ग के साधनरूप जो व्यवहारमोक्षमार्ग है, उसका इसमें निर्देश अर्थात् कथन है। समझ में आया? निश्चयमोक्षमार्ग—अपना शुद्ध आत्मा पवित्र अखण्ड अभेद द्रव्य, उसके आश्रय से जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीनों की एकता से निर्विकल्प समाधि प्राप्त सप्तम गुणस्थानयोग्य जो निश्चयमोक्षमार्ग है, उसे इस व्यवहार को साधन कहा जाता है। व्यवहारमोक्ष, उसका साधन व्यवहारनय से कहा गया है। समझ में आया? यहाँ तक आया है, देखो!

यहाँ से फिर से लेना है न! **मोक्षमार्ग, सुवर्णपाषाण को लगायी जानेवाली प्रदीप्त अग्नि की भाँति,...** यह व्यवहारनय है। है? स्वर्णपाषाण। अकेला स्वर्ण नहीं। स्वर्णपाषाण को लगाई जानेवाली प्रदीप्त अग्नि—उग्र अग्नि की भाँति। व्यवहारमोक्षमार्ग किसे साधन होता है? कि **समाहित अन्तरंगवाले जीव को....** जिसे छठवें गुणस्थान में अन्तरंग शान्ति, समाधि प्राप्त निश्चय से शुद्ध परिणति प्रगट हुई है। समझ में आया? यहाँ मुख्यरूप से छठवें और सातवें की मुख्यरूप से बात है। चौथे, पाँचवें की बात गौणरूप से। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और स्वरूपाचरण चौथे गुणस्थान में होता है। तो वहाँ व्यवहारविकल्प है, उसे व्यवहारसाधन भविष्य की अपेक्षा से, इतनी एकाग्रता या शान्ति है तो उस साधन को निश्चय निर्विकल्प शान्ति में व्यवहारसाधन कहने में आया है। ऐसे पाँचवें, ऐसे छठवें की बात तो यहाँ रखी है।

समाहित अन्तरंगवाले जीव को (अर्थात् जिसका अन्तरंग एकाग्र—समाधिप्राप्त है....) कल ऐसा अर्थ किया था कि समाधिप्राप्त सातवें गुणस्थानवाला। याद है? यहाँ ऐसा नहीं लेना। फिर हमारे पण्डितजी ने इसका अर्थ निकाला। उन्होंने भावार्थ में भी लिखा ही है। जिसका शुद्ध अंश... भावार्थ में है। **जिसे अन्तरंग में शुद्धि का अंश परिणमित हुआ है,....** ऐसा भावार्थ की पहली पंक्ति में भी है। वह यहाँ लेना। छठवें गुणस्थान में शुद्ध सम्यग्दर्शन, शुद्ध सम्यक्ज्ञान और तीन कषाय का अभाव, इतनी

समाहित अभेद एकाग्रता, शुद्धता, प्रशांतता, अभेदता छठवें गुणस्थान में प्रगट हुई है। समझ में आया?

देखो, नीचे अर्थ है, समाहित का अर्थ—एकाग्र। इतना तो एकाग्र है, अधिक स्पष्ट हुआ। यह तो छठवें गुणस्थान में निश्चय तो इतनी एकाग्रता है, उसमें इस व्यवहार विकल्प को भविष्य में निर्विकल्प साधन में व्यवहारसाधन कहने में आया है। निश्चय साधन तो निर्विकल्प जो शान्ति और शुद्धि की परिणति हुई है, वही सातवें का कारण है। परन्तु साथ में विकल्प को व्यवहारसाधनरूप से कहने में आया है। एकाग्र, एकता को प्राप्त, यह सब समाहित की व्याख्या है। अभेदता को प्राप्त। छठवें गुणस्थान में इतनी तो अभेदता है। तीन कषाय का अभाव, दर्शन-ज्ञान तो हुए हैं। क्योंकि यहाँ यह लेना है न! स्वर्णपाषाण को लगाई जानेवाली। अर्थात् व्यवहारनय लेना है। तो व्यवहारनय किसे होता है? कि जिसे छठवें गुणस्थान में अपने योग्य समाधि—शान्ति, स्थिरता हुई है, उसे जो व्यवहारनय है, वह सातवें के लिये व्यवहारसाधन होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : शुद्धि का अंश परिणमित हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धि का अंश परिणमित हुआ है। अकेला शुभभाव है, शुभभाव है—ऐसा नहीं। उसमें से निकालते होंगे कि जिसे शुभभाव है, उसमें थोड़ी समाधि—एकाग्रता है, ऐसा निकालते होंगे। समझ में आया? परन्तु ऐसा है ही नहीं। स्वपरहेतुक पर्याय है... उसमें दूसरा शब्द कुछ किया है। उसमें... जीव को... है न? कितनी है? १६०। पुराना है न, पुराना। व्यवहार का अर्थ कुछ ऐसा किया है। 'जीव-पुद्गल के सम्बन्ध का' ऐसा लिया है। व्यवहारमोक्षमार्ग जीव-पुद्गल के सम्बन्ध का कारण, ऐसा लिया है। हिन्दी। इन्होंने—हेमराजजी ने। व्यवहारमोक्षमार्ग कैसा है? कि जीव-पुद्गल के सम्बन्ध का कारण पाकर जो पर्याय उत्पन्न हुई है, ऐसा लिया है। इसमें अपने स्वपर(हेतुक) पर्याय (लिया है)। स्व अर्थात् जीव, पर अर्थात् पुद्गलकर्म, ऐसा।

स्व-पर.... व्यवहारमोक्षमार्ग जीव अर्थात् स्व, पर अर्थात् पुद्गल के सम्बन्धरूप कारण पाकर जो पर्याय उत्पन्न हुई है (अर्थात्) विकल्प, राग, विभावभाव को साधन व्यवहारमोक्षमार्ग कहने में आया है। आहा! भारी गड़बड़ है भाई अभी तो यह। यह

व्यवहारमोक्षमार्ग, वही सातवाँ गुणस्थान है। व्यवहारमोक्षमार्ग ही चौथा, पाँचवाँ और छठवाँ गुणस्थान है। निश्चय तो जरा भी है ही नहीं, ऐसा (लोग) कहते हैं।

मुमुक्षु : आठवें में....

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई आठवें में और कोई बारहवें में और कोई तेरहवें में (कहते हैं)। और मोक्षमार्ग तो तेरहवें और चौदहवें में कहते हैं वह तो। तेरहवें और चौदहवें में। और मोक्षमार्ग चौदहवें तक मोक्षमार्ग है, बाद में मोक्ष। नीचे मानते नहीं, अकेला व्यवहार मानते हैं। ऐसा कभी होता ही नहीं। निश्चय बिना व्यवहार एकान्त है। दूसरे नय की अपेक्षा बिना दूसरे नय एकान्त को प्राप्त होते हैं। निश्चय जो अपना स्वभाव शुद्ध चैतन्य है, उसकी अन्तर निर्विकल्प अनुभव की प्रतीति बिना विकल्प को व्यवहार नहीं कहा जाता। समझ में आया?

कहते हैं कि यहाँ... जैसे स्वर्णपाषाण में अग्नि लगावे, वैसे समाहित अन्तरंगवाले जीव को। अर्थात्? जिसे अभी व्यवहार राग (आता है)। राग कैसा है? कि जीव और पुद्गल के सम्बन्ध से स्वपरप्रत्यय हेतु से उत्पन्न हुआ ऐसा राग, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहा गया है। किसे? कि समाहित अन्तरंगवाले जीव को। जिसे अन्तर में सम्यग्दर्शन, ज्ञान और तीन कषाय के अभावरूप शुद्ध परिणति प्रगट हुई है। शुद्ध उपयोग छठवें गुणस्थान में नहीं। सातवें गुणस्थान में जो शुद्ध उपयोग होता है, उसमें वास्तव में साधन तो शुद्ध परिणति बढ़कर आगे शुद्ध उपयोग होता है। परन्तु साथ में विकल्प को भी व्यवहारसाधन कहकर उससे शुद्ध उपयोग हुआ, ऐसा व्यवहार से, उपचार से, आरोप से कहा गया है। है तो अपने से हुआ। यह अभी कहेंगे। समझ में आया?

मुमुक्षु : इसे अभी अधिक समझना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से। पूछना है कुछ?

मुमुक्षु : शुद्धाशुद्ध पर्याय मान ले....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह क्रिया की बात यहाँ नहीं, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : असद्‌भूतव्यवहार, असद्‌भूत। उसकी यहाँ बात नहीं। यहाँ तो विकल्प और निर्विकल्प दो के बीच की बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, इतनी बात। पर के साथ अभी कुछ सम्बन्ध नहीं। यहाँ मोक्षमार्ग की बात है न! तो शरीर की क्रिया मोक्षमार्ग में निमित्त भी नहीं। वह बात यहाँ है ही नहीं। जो जड़ की पर्याय है, उसके साथ कुछ सम्बन्ध ही नहीं है।

यहाँ तो अपने में जितनी शुद्धता स्वद्रव्य के आश्रय से अभेद चिदानन्द भगवान निर्मल के आश्रय से पर्याय हुई, वह निश्चय। उसके साथ स्व-पर प्रत्यय-हेतु, स्व अर्थात् आत्मा और पर अर्थात् कर्म, कर्म बस, उसके सम्बन्ध से उत्पन्न हुआ राग उसे व्यवहार साधन, व्यवहार मोक्षमार्ग कहा गया है। शरीर-बरीर की यहाँ बात है ही नहीं। समझ में आया? देखो, आया न?

समाहित अन्तरंगवाले जीव को (अर्थात् जिसका अन्तरंग एकाग्र—समाधिप्राप्त है....) छठवें गुणस्थान में भी समाधि प्राप्त है। शुद्ध उपयोग नहीं। समझ में आया? चौथे गुणस्थान में भी समाधि प्राप्त है। जितनी दर्शन, ज्ञान की निर्मलता हुई और स्वरूपाचरण हुआ, उतनी उसे भी शान्ति है। और पाँचवें गुणस्थान में भी उतनी शान्ति है। सम्यग्दर्शन, अखण्ड स्वभाव के अवलम्बन से हुआ और ज्ञानचेतना प्रगट हुई, दो कषाय के अभाव से पाँचवें में शान्ति भी हुई। उसके साथ बारह व्रतादि के विकल्प उठते हैं, उसे व्यवहारसाधन सातवें गुणस्थान का शुद्ध उपयोग प्राप्त होने में, साध्य भिन्न है और साधन भिन्न है, इस साधन से साध्य होता है, ऐसा आरोप करके कहने में आया है। वास्तव में शुद्धि की वृद्धि होकर ही शुद्धोपयोग होता है। समझ में आया? आहाहा!

जिसका अन्तरंग एकाग्र—समाधिप्राप्त है....) देखो! है न इसमें? छिन्न-भिन्नता रहित की व्याख्या की है। किसकी? जितनी अभेद शान्ति प्रगट हुई है, उसमें छिन्न-भिन्नता नहीं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और जितनी निर्विकल्प स्थिरता प्रगट हुई है, उसमें छिन्न-भिन्नता नहीं है। इतनी तो शुद्धता है। उसके साथ जो विकल्प है... देखो! **ऐसे जीव को...** ऐसे जीव को। **पद-पद में...** पद-पद में, पर्याय-पर्याय में **परम रम्य ऐसी**

ऊपर की शुद्ध भूमिकाओं में.... छठवें में भी शुद्धि बढ़ती है और सातवें में शुद्ध उपयोग होता है। तो आगे भी **ऊपर की शुद्ध भूमिकाओं में अभिन्न विश्रान्ति....** अभिन्न विश्रान्ति सप्तम में शुद्ध उपयोग हो गया। अभिन्न विश्रान्त, अभिन्न विश्रान्त। **(-अभेदरूप स्थिरता) उत्पन्न करता हुआ....** कौन? व्यवहार। व्यवहार करता हुआ क्यों कहा? कि आत्मा... अभी लेंगे, देखो! अपना शुद्ध उपादान निश्चयनय से शुद्ध की परिणति स्वयं बढ़ती है, पर की अपेक्षा बिना। उसे यहाँ राग है, उसे परम्परा के कारण से अभिन्न विश्रान्ति को उत्पन्न करता है, ऐसा व्यवहार से कहा गया है। ओहोहो! मोक्षमार्ग में अभी बड़ी झंझट है।

यहाँ तो (पण्डित ऐसा कहते हैं), चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें (गुणस्थान में) व्यवहार मोक्षमार्ग है। तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन ले लिया तो उसके साथ प्रश्न आया था कि जब तत्त्वार्थश्रद्धान व्यवहार है तो उसके साथ तुम निश्चयज्ञान और निश्चयचारित्र किस प्रकार लोगे? निश्चयचारित्र तो वीतराग होगा, तब होगा। व्यवहार समकित (वाले) को निश्चयचारित्र किस प्रकार होगा? ऐसा प्रश्न आया था। अरे... भगवान! वह व्यवहार नहीं। तत्त्वार्थश्रद्धान, सम्यग्ज्ञान, दर्शन, वह अपना निज स्वरूप है। निश्चय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान है। समझ में आया? तो साथ में ज्ञान भी सम्यक् निश्चय है और साथ में रागरहित, जितनी परिणति उत्पन्न हुई चौथे में स्वरूपाचरण, पाँचवें में दो कषाय का अभाव, छठवें में तीन कषाय का अभाव, इतनी परिणति तो शुद्ध है। समझ में आया? और निश्चय है। अपने से निश्चय है। तब जो रागादि उत्पन्न होते हैं, उसे व्यवहार कहने में आया है। आहाहा! पण्डितजी! यह बहुत गड़बड़ी है, हों! तुम्हारे पण्डित लोगों ने बराबर सामने जवाब देना पड़ेगा। जुड़ना पड़ेगा कि यह क्या है? आहाहा! भगवान! यह तेरा स्वरूप अभेद के आश्रय से प्रगट न हुआ हो, वहाँ तक व्यवहार विकल्प को व्यवहार कहे कौन? समझ में आया? व्यवहारमूढ़ है। यह तो ४१३वीं गाथा (समयसार) में बहुत बार कहा है।

अपना स्वरूप चिदानन्द ज्ञायकमूर्ति निर्विकल्प अनुभव की परिणति सम्यग्दर्शन में हुई, साथ में ज्ञानचेतना हुई, साथ में स्वरूपाचरण हुआ, तब जो विकल्प होता है, देव-गुरु-शास्त्र, नौ तत्त्व (की श्रद्धा), भक्ति का राग—उसे व्यवहार कहा जाता है।

यहाँ आचार्य महाराज मुनि हैं तो मुनि की भूमिका से बात करते हैं कि मुनि को छठवें गुणस्थान में सम्यग्दर्शन, ज्ञान तो निश्चय है ही और तीन कषाय के अभाव की शुद्ध परिणति भी है। शुद्ध परिणति भी है। भले उसे निश्चयचारित्र दर्शन, ज्ञान के साथ मिलकर जो तीन बोल हैं, सातवें गुणस्थान के योग्य, वह दशा नहीं। परन्तु तीन कषाय का नाश होकर शुद्ध परिणति है। उसे यहाँ शुद्ध अन्तरंग समाहितवाला जीव कहा गया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो ठीक है। यह शुद्ध तो कहते हैं, परन्तु है मोक्षमार्ग। व्यवहार है। शुद्ध का अंश है न, पूर्ण शुद्ध है, वह निश्चय है। यह कहते हैं, खबर है, सब कल्पना है। यहाँ तो जितनी शुद्धता प्रगट हुई, वह स्वआश्रय से अभेद से निश्चय ही है। स्वआश्रयो निश्चय, पराश्रयो व्यवहार—यह महासिद्धान्त है। पण्डितजी! महासिद्धान्त। बन्ध अधिकार की २७२ गाथा में अमृतचन्द्राचार्य की टीका में पराश्रितो व्यवहार, स्वाश्रितो निश्चय (कहा है)। तो जितना अपना आत्मा राग, निमित्त, पर्यायभेद का लक्ष्य छोड़कर अकेले अभेद में दृष्टि करके जितनी सम्यग्दर्शन, ज्ञान और स्थिरता स्वद्रव्य के अवलम्बन से प्रगट हुई है, वह तो यथार्थ-वास्तविक-निश्चय-भूतार्थ है। वह मोक्ष की पर्याय भूतार्थ पर्याय है। समझ में आया? त्रिकाल भूतार्थ के आश्रय से प्रगट हुई पर्याय भूतार्थ पर्याय है। मोक्षमार्ग सत्य मार्ग है। और जितना राग स्वपरप्रत्यय हेतुक आया, उसे व्यवहार कहा गया है। अमुलखचन्दजी! आहाहा!

पद-पद पर परम रम्य ऐसी ऊपर की शुद्ध भूमिकाओं में.... यह सातवीं भूमिका की बात है। **शुद्ध भूमिकाओं में अभिन्न विश्रान्ति....** शान्त निर्विकल्प उपयोग में सातवें में ऐसी स्थिरता उत्पन्न करता हुआ। ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। यह व्यवहार का विकल्प, व्यवहारमोक्षमार्ग निश्चयमोक्षमार्ग में अभिन्न विश्रान्ति उत्पन्न करता हुआ, आत्मा अपने से अभिन्न विश्रान्ति उत्पन्न करता हुआ, तब व्यवहार से अभिन्न विश्रान्ति कराता अथवा करता हुआ, ऐसा विकल्प में आरोप किया गया है। समझ में आया? यह तो भारी कठिन परीक्षा है। तुम्हारे एल.एल.बी. में तो पाँच बार फेल हुए, यह तो अनन्त बार फेल हुआ है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

निज स्वरूप एकरूप पूर्ण ब्रह्म आनन्द एकस्वभाव के आश्रय से जो दर्शन, ज्ञान

और चारित्र हुए वह यथार्थ, यथार्थ—सत्य और निश्चय। तथा जितना कर्म का लक्ष्य करके अपने अशुद्ध उपादान में विकल्प उत्पन्न होता है, स्वपरप्रत्ययहेतुक, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग निमित्त देखकर कहा गया है। अपने शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र के साथ सहचारी देखकर, सहचारी... समझ में आया? साथ में देखकर उसे भी व्यवहारमोक्षमार्ग आरोप से कहने में आया है। है नहीं। मोक्षमार्ग है नहीं, उसे (मोक्षमार्ग) कहना, इसका नाम व्यवहारमोक्षमार्ग है। है, उसे समझना और अनुभव करना, इसका नाम निश्चयमोक्षमार्ग है। समझ में आया?

(-अभेदरूप स्थिरता) उत्पन्न करता हुआ.... कौन? व्यवहार। **यद्यपि...** अब आया देखो! **यद्यपि उत्तम सुवर्ण....** देखो! पहले में आया था, स्वर्णपाषाण। व्यवहारनय के दृष्टान्त में स्वर्णपाषाण (आया था)। स्वर्णपाषाण को अग्नि लगाने से भिन्न होता जाता है, ऐसा कहा था। अब यहाँ कहा, **उत्तम स्वर्ण...** निश्चय। उत्तम स्वर्ण स्वयं से ही निर्मलता को प्राप्त होता है। **उत्तम सुवर्ण की भाँति शुद्ध जीव...** शुद्ध जीव। जो छठवें गुणस्थान में दर्शन, ज्ञान की शुद्धपरिणति है, वही जीव **कथंचित् भिन्नसाध्यसाधनभाव के अभाव के कारण....** कथंचित् अर्थात् शुद्ध उपादान से परिणमनेवाला, निश्चयनय से परिणमनेवाला। निमित्त है, वह कथंचित् व्यवहार हुआ और यह कथंचित् निश्चय। वह कथंचित् व्यवहार, तो यह कथंचित् निश्चय। कथंचित् की अपेक्षा अर्थात् उस व्यवहार की अपेक्षा से कथंचित्। है तो निश्चय। निश्चय से **भिन्नसाध्यसाधनभाव के अभाव के कारण....** सप्तम गुणस्थान में जब उपयोग में निर्विकल्प आनन्द में गया तो, कहते हैं, निश्चय से जैसे उत्तम स्वर्ण सोलहवान शुद्धि से प्राप्त होता है। सोलहवान कहते हैं न? उसी प्रकार आत्मा ही अपने से ही स्वआश्रय से निश्चय से शुद्ध उपादान से (शुद्ध स्वभाव से परिणमता है)। वह राग तो अशुद्ध उपादान है। निज शुद्ध चिदानन्द उपादान के पुरुषार्थ से निश्चयनय से अपनी ही शुद्ध परिणति को करके शुद्ध उपयोगरूप हो जाता है। व्यवहार के बिना। समझ में आया?

निश्चय से **भिन्नसाध्यसाधनभाव के अभाव के कारण....** क्या? विकल्प था, वह भिन्न साधन और निश्चय भिन्न साध्य। विकल्प राग था और उपयोग निराग था, उसे जो साध्यसाधन कहा था, उसे निश्चयनय की अपेक्षा से अभाव करके। समझ में

आया? निश्चयनय से... यह भिन्नसाध्यसाधन जो व्यवहार का था, विकल्प राग-विकार जो भिन्न है और राग से भिन्न निर्विकल्प शान्ति है, सप्तम गुणस्थान वह साध्य, (विकल्प) साधन। भिन्नपना है, उसका अभाव करके भिन्नसाध्यसाधनभाव के निश्चयनय से, कथंचित् अर्थात्, **अभाव के कारण...** उसका अभाव करके शुद्ध उपयोग में रम गया, उसे **(अपने आप)...** देखो! **स्वयं...** व्यवहार के अवलम्बन बिना। बाबूभाई! देखो! वाँचनकार को यह ख्याल रखने की बात है। यह बात बाहर में बहुत चलेगी। और इस गाथा में से सब निकालते हैं। व्यवहारमोक्षमार्ग, व्यवहारमोक्षमार्ग। निश्चय तो बिल्कुल है ही नहीं। निश्चय तो बारहवें में होगा या तेरहवें में होगा। अरे.. भगवान! एक ओर कहे कि एक नय दूसरे नय की अपेक्षा न रखे तो मिथ्यात्व है। कहते हैं या नहीं?

मुमुक्षु : पहला व्यवहार आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कहाँ से आया फिर यह?

एक नय दूसरे नय की अपेक्षा न रखे तो वह नय मिथ्या है, ऐसा तो कहते हैं। तो व्यवहारनय के साथ निश्चयनय की अपेक्षा न हो तो व्यवहारनय एकान्त मिथ्यात्व है। समझ में आया? जब तक पूर्ण न हो, तब तक व्यवहार के साथ निश्चय गमनरूप सदा है। भाई! वह भाई का आया न। टोडरमलजी (का)। लो, समझ में आया? चिट्ठी है न चिट्ठी। लो, और यह आया। आते हुए कहाँ का कहाँ आ गया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। व्यवहार की अपेक्षा बिना निश्चय परिणमता है, ऐसा ज्ञान हुआ, तब व्यवहार से राग है, उसका ज्ञान करना तो प्रमाणज्ञान होता है। प्रमाण में अपेक्षा आयी। अकेला निश्चय में तो राग बिना अकेला आत्मा निश्चय से परिणमता है। समझ में आया? परन्तु साथ में राग है, व्यवहार है, उसका ज्ञान करना है तो प्रमाणज्ञान में व्यवहार की अपेक्षा साथ में आती है। समझ में आया? भारी विवाद भाई! देखो, यहाँ निकालना है न? क्या? रहस्यपूर्ण चिट्ठी। सविकल्प द्वारा... निरन्तर गमनरूप है। ...परोक्ष है। तो कहे, नहीं।

मुमुक्षु : प्रत्यक्ष, परोक्ष भेद ही कहाँ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसमें भेद ही कहाँ है? वह तो ज्ञान के भेद हैं। देखो!

परन्तु इतना जानना कि सम्यक्त्वी को व्यवहारसम्यक्त्व में अन्य काल में अन्तरंग निश्चयसम्यक्त्व गर्भित है,... देखो! व्यवहार समकित में... पण्डितजी! यह रहस्यपूर्ण चिट्ठी, टोडरमलजी की। इसके व्याख्यान हो गये हैं। चौबीस व्याख्यान हुए हैं, पुस्तक प्रकाशित होगी। तीन चिट्ठियाँ हैं न—रहस्यपूर्ण चिट्ठी, निमित्त-उपादान चिट्ठी... यह निमित्त-उपादान ठीक हुआ, हों! उपादान-निमित्त का तो हो गया। और यहाँ परमार्थ वचनिका के व्याख्यान हो गये हैं। प्रकाशित होंगे।

यहाँ तो कहते हैं, सम्यक्त्वी को व्यवहारसमकित में निश्चयसमकित गर्भित है। कहो, समझ में आया? वह गमनरूप है, ऐसा भी कहीं आता है न। बहुत बात है। यह तो इतना गर्भित है इतना कहा। वह, गमनरूप है, ऐसा है कहीं। परन्तु वह आ गया इसमें, लो न! गमनरूप है, ऐसा कहीं कहा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो भाषा बदल गयी। इसमें गर्भित है, ऐसा कहा। व्यवहारसमकित के साथ निश्चय गर्भित है। समझ में आया? अकेला व्यवहारसमकित हो और निश्चय न हो, तो उसे व्यवहार कहते नहीं। टोडरमलजी ने तो बहुत स्पष्ट किया है, परन्तु लोग कहते हैं, वह अप्रमाणित है, जाओ!

मुमुक्षु : व्यवहारसम्यक्त्व में निश्चयसम्यक्त्व गर्भित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गर्भित है अन्दर।

मुमुक्षु : निश्चयसमकित में व्यवहार समकित गर्भित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निश्चयसमकित के साथ व्यवहार है, इतना।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : साथ में है। निश्चय के साथ व्यवहार है और व्यवहार के साथ गर्भित अन्दर निश्चयसमकित है। ऐसी बात है। आहाहा! व्यवहार में क्या है? वह तो बहुत जगह डाला है। विकल्प है, राग जहाँ है वहाँ निश्चय अन्दर हो तो उसे व्यवहार कहने में आता है। नहीं तो व्यवहार किसे कहे? वह तो यहाँ का बड़ा प्रश्न है। समझ

में आया? दिगम्बर और (श्वेताम्बर के) दो पंथ निकले तो इस बड़े प्रश्न से ही शुरुआत हुई है। वे कहें, पहले व्यवहार, बाद में निश्चय। यह (दिगम्बर) कहे, पहला निश्चय। पहले का अर्थ यह है, क्या? पहले का अर्थ यह है कि निश्चय हो तो व्यवहार है। पहले का अर्थ यह। पहले, फिर नहीं आता भाई? पंचास्तिकाय में नहीं आता? यह जयेसनाचार्य की टीका में आता है। क्या? सुनो! आत्मा शुद्धस्वरूप पहले है, फिर आठ कर्म का संयोग है, ऐसा पाठ आता है। तो क्या फिर आठ है? ऐसा पाठ है, हों! पंचास्तिकाय में। पहले शुद्ध स्वरूप ज्ञायकमूर्ति अखण्डानन्द है, फिर उसे कर्म का सम्बन्ध अनादि से है। पश्चात्...

मुमुक्षु : अनादि से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु बाद बाद में। भाव तो इस समय में है। परन्तु उनकी गौणता बतलाने... यह शुद्ध बतलाना है न? एक द्रव्यस्वरूप। पश्चात्। पश्चात् अर्थात् वस्तु में नहीं और विकार की पर्याय कर्म के सम्बन्ध में उत्पन्न हुई है, उसे पश्चात् कहते हैं। है साथ में। राजमलजी! देवीलालजी! समझ में आया? राजमलजी! 'पश्चात्' शब्द लिया है, पंचास्तिकाय में। समझ में आया? यहाँ है, लो न! कहीं किया है, चिह्न तो कहीं किया है। पश्चात्। पृष्ठ-१७७। किसका? पंचास्तिकाय। यहाँ लिखा है। एक-दो लिखे हैं। एक ही दृष्टान्त बस है न! लो, देखो! ११३वीं गाथा में है। (जयसेनाचार्यदेव टीका)। '**परमार्थेन स्वाधीनतानंतज्ञानसुखसहितोपि**' '**परमार्थेन स्वाधीन**' भगवान आत्मा। '**परमार्थेन स्वाधीनतानंतज्ञानसुखसहितोपि जीवः पश्चादज्ञानेन पराधीनेन्द्रियसुखासक्तो भूत्वा**' समझ में आया? बहुत जगह है, अन्यत्र है। यह तो एक ही दृष्टान्त बस है न! एक सिद्धान्त होता है। पश्चात् बारम्बार क्या उसे... एक सिद्धान्त बस है। समझ में आया? उसमें नहीं, संस्कृत टीका में है। जयसेनाचार्य की टीका है। ११३ है न। देखो!

भगवान आत्मा... '**अयमत्र भावार्थ**' ऐसा करके लिया है। '**परमार्थेन स्वाधीनतानंतज्ञानसुखसहितोपि**' होने पर भी '**जीवः पश्चादज्ञानेन**' पश्चात् अज्ञान। पश्चात् अर्थात्? है तो साथ का साथ, परन्तु '**पश्चादज्ञानेन पराधीनेन्द्रियसुखासक्तो भूत्वा यत्कर्म बन्धाति**' समझ में आया? '**तेनाडजादिसदृशमेकेन्द्रियजं दुःखितं**' ऐसा। है न, दुःखी है। दृष्टान्त दिया है। कहो, समझ में आया? एक ही दृष्टान्त बस है न यहाँ।

यहाँ तो 'पश्चात्' कहते हैं तो भी साथ में है। यहाँ तो इतना कहना है। ऐसे निश्चय के बाद व्यवहार कहो तो इसका अर्थ निश्चय के साथ व्यवहार है। बस, इतना यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **यद्यपि उत्तम सुवर्ण की भाँति शुद्ध जीव....** निश्चय की अपेक्षा से, स्वआश्रय की अपेक्षा से शुद्ध उपादान के स्वतन्त्र परिणमन में उग्र हुआ। **भिन्नसाध्यसाधनभाव के अभाव के कारण...** विकल्प जो भिन्नसाध्यसाधन का था, उसके अभाव के कारण आगे निश्चय परिणति का शुद्ध उपयोग हुआ। **स्वयं (अपने आप) शुद्ध स्वभाव से परिणमित होता है...** देखो! स्वयं, यह व्यवहार की अपेक्षा बिना शुद्ध स्वभाव से परिणमता है। उपजता है। **तो भी...** अब वापस यह डालना है। है तो अपने स्वरूप के शुद्ध उपादान से निश्चय से शुद्ध की परिणति स्वद्रव्य के आश्रय से बढ़ी है। शुद्ध उपयोग हुआ है। तथापि **तो भी...** देखो! तो भी आया। उसमें आया था न? कि प्रत्येक धर्म अपने में चुम्बन करता है तो भी कोई किसी को (अर्थात्) परद्रव्य को चूमता नहीं। यहाँ तो भी आया। अपने दूसरा तो भी आ गया था। दोपहर में तथापि नहीं आया था? क्रमबद्ध में। क्रमबद्ध में तथापि आया था। पर को उत्पन्न नहीं करता, उसमें तथापि आया था। है या नहीं? याद नहीं? कल दोपहर में कहा था न! (समयसार, गाथा ३०८) **इस प्रकार जीव अपने परिणामों से उत्पन्न होने पर भी उसे अजीव के साथ... क्योंकि सर्व द्रव्यों का...** अब यह फिर बात यह तो। उसमें—हिन्दी में है, ठीक। तथापि, बस यह। ऐसा होने पर भी—तथापि। बस, यह बराबर है। तथापि का अर्थ ही यह है कि ऐसा होने पर भी ऐसा होता नहीं। यह 'तथापि' शब्द वहाँ आया था। उसमें आया था।

ऐसे यहाँ भगवान आत्मा अपने स्वद्रव्य के आश्रय से निश्चय से शुद्ध उपयोग को-परिणति को प्राप्त होता है। **तथापि—निश्चयमोक्षमार्ग के साधनपने को प्राप्त होता है।** कौन? व्यवहार। समझ में आया? यह बहिरंग साधको भवति। यह जयसेनाचार्य में है। बहिरंग साधक। बहिरंग साधक, व्यवहार को बहिरंग साधक कहा। परन्तु अन्तरंग साधक है तो बहिरंग साधक आया या अकेला बहिरंग अध्धर से आया? समझ में आया? अन्तरंग साधन... यह कहा न? अन्तरंग समाधिवाला। तो राग को बहिरंग

साधन कहा। लक्ष्मीचन्दजी! समझ में आया? बड़ा विवाद है इसमें। सोनगढ़वाले निश्चय पहले कहते हैं और व्यवहार बाद में (कहते हैं)। अरे! अनन्त तीर्थंकर कहते हैं। सुन तो सही! निश्चय बिना व्यवहार कैसा? जिसे निश्चय स्वद्रव्य के आश्रय से उत्पन्न हुआ, फिर उसे व्यवहार कहो, साथ में व्यवहार कहो, उसमें कोई दिक्कत नहीं है। समझ में आया? परन्तु अकेला व्यवहार प्रगटे और मोक्षमार्ग सच्चा हो नहीं और उसे व्यवहार कहे, ऐसा त्रिकाल होता नहीं। कहो, समझ में आया?

यहाँ क्यों कहा? कि निश्चय से तो **भिन्नसाध्यसाधनभाव के अभाव के कारण स्वयं (अपने आप)....** स्वयं आत्मा ही अपने स्वआश्रय से निश्चय से **शुद्ध स्वभाव से परिणमित होता है....** निश्चय से तो वस्तु ऐसी है। **तथापि—निश्चयमोक्षमार्ग के....** जो सातवें गुणस्थान में निश्चयमोक्षमार्ग है, उसे छठवें गुणस्थान के योग्य व्यवहार विकल्प आदि है, वह साधनपने को व्यवहार से, निश्चयमोक्षमार्ग के व्यवहार से साधनपने को व्यवहार मोक्षमार्ग प्राप्त होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहावर कहाँ से आया अकेला व्यवहार? निश्चय बिना व्यवहार कहाँ से आया? यह तो बात चलती है। समझ में आया? क्या कहा? ऐसा कहा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : साधन कहा, इसकी बात करते हैं। परन्तु साधन किसका? माल हो, माल हो उसको बारदान (होता है)। माल न हो और बारदान किसका कहना? बारदान समझते हो? बोरी, बोरी। माल नहीं और यह चावल का बारदान, गेहूँ का बारदान। परन्तु गेहूँ—माल है नहीं न! समझ में आया? इसी प्रकार माल है अन्दर में, ज्ञानानन्द द्रव्यस्वभाव शुद्ध चैतन्य की श्रद्धा, ज्ञान, रमणता हुई, वह माल है। तो विकल्प को व्यवहार को बारदान बहिरंग साधन कहा जाता है। तो उसे ऐसा कहा जाता है कि बारदान को चावल रखा है। अन्दर चार मण पड़े हैं न? यह बारदान ने चावल रखे हैं। चावल तो स्वयं से रहे हैं। क्या? चावल हैं, वे स्वयं से रहे हैं अन्दर चार मण, परन्तु बारदान ने चावल रखे हैं, ऐसा आरोप से, व्यवहार से कहने में आता है। ऐसे

अपना स्वभाव शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र माल अपने से है। परन्तु साथ में राग है तो बारदान ने उसे रखा है, ऐसा व्यवहार से कहने में आाय है। अरे... भगवान!

मुमुक्षु : ....आप कहते हो कि यहाँ से चलो तो मामूली जनता ने...

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ से चलो। निर्णय करना पड़ेगा। मामूली नहीं रहना। कोई उसे कहे कि तुम्हारे पिता को हमारे पिता ने पाँच लाख रुपये दिये हैं, परलोक में। मान लिया? तुम्हारे पिता को, अभी परलोक में हैं, उन्हें हमने पाँच लाख दिये हैं, लाओ। वहाँ चक्कर में पड़ेगा? समझ में तो यहाँ भी चक्कर में नहीं पड़ेगा। हमारा, तुम्हारे पिता से पाँच लाख लेना है। हमारे पिता ने तुमको गत भव में दिये थे। जो तुम्हारे पिता होकर आये हैं, उन्हें मेरे पिता ने पूर्व भव में दिये थे।

मुमुक्षु : कौन मानेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन मानेगा? ऐसा कहते हैं कि अपना शुद्ध स्वभाव अपने द्रव्यस्वभाव के आश्रय से निश्चय हुए बिना राग के विकल्प को व्यवहार अनन्त काल में कभी कहने में नहीं आता। वह तो व्यवहारमूढ़ है। किसे कहना व्यवहार? अशुभ परिणाम, शुभ परिणाम का चक्कर तो अनादि से चला आता है। कषाय की मन्दता (करके) नौवें ग्रैवेयक गया अभव्य और भव्य दोनों। अनन्त बार मिथ्यादृष्टिरूप से (गया), तब शुभभाव इतना था कि शरीर के खण्ड-खण्ड करे तो भी क्रोध न करे, इतना शुभभाव था। दूसरे देव (स्वर्ग) की इन्द्राणी डिगाने आये तो चलायमान नहीं हो, इतना शुभभाव था। एक लंगोटी ताना-बाना शरीर के ऊपर नहीं था और दो-दो महीने के संल्लेखना। जैसे वृक्ष की डाल पड़ी हो। ... कहते हैं न? वृक्ष की डाली पड़ी हो, वैसे दो-दो महीने हिलना नहीं, चलना नहीं। परन्तु वह शुभभाव है, वही धर्म है, ऐसा मान रखा है तो मिथ्यादृष्टि अनन्त बार ऐसी क्रिया में आ गया है। कहो, समझ में आया? दो-दो माह। एक-दो घड़ी ऐसे सोना पड़े तो कहे, अरे...! यह करवट... करवट कहते हैं न? क्या कहते हैं? करवट। अरे! यहाँ तप जाता है, यहाँ तप जाता है। पश्चात् पक्षघात हो तो दूसरा पैर फिरावे। फिराया करे नहीं तो... दो माह ऐसा पड़ा रहे मिथ्यादृष्टि। अपने स्वद्रव्य का आश्रय लिये बिना जितनी क्रिया राग की है, सब मिथ्यात्व की बन्ध का कारण है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा असंयम। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' और वहाँ क्या कहते हैं? गजब परन्तु बचाव करनेवाले। यह तो अभव्य के लिये है। अब सुन न! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो', ऐसा आता है या नहीं? 'पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' सुख न पायो का अर्थ आनन्द, सम्यग्दर्शन पाया नहीं। सम्यग्दर्शन में अतीन्द्रिय आनन्द है। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव है। उसे सम्यग्दर्शन और आनन्द का अनुभव कहते हैं। 'पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' सुख अर्थात् आनन्द का अंश जो आत्मा का स्वाद। समझ में आया? निश्चयसम्यग्दर्शन में आत्मा के आनन्द का स्वाद है। उसकी प्रतीति को सम्यग्दर्शन कहते हैं। मैं पूर्ण आनन्दमय हूँ, ऐसा उसका स्वाद (आता है)। मैं पूर्ण आनन्दमय हूँ, नित्यानन्दमय हूँ। नित्यानन्द के आश्रय से मुझे आनन्द प्रगट होता है। राग और विकल्प और निमित्त के आश्रय से नहीं। ऐसी दृष्टि हुए बिना अनन्त बार ऐसी पराश्रित व्यवहारक्रिया (की) क्लेश... क्लेश... क्लेश... भार... भार... बोझा... राग की मन्दता की, परन्तु आत्मा के सहज स्वभाव की दृष्टि नहीं हुई, वहाँ वह भार है, भार—बोझा है, हठ है हठ। हठ से राग की मन्दता की। धर्म नहीं, धर्म नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पात्रता हो तो ऐसा निमित्त मिले बिना रहता ही नहीं। समझ में आया? ओहोहो! देखो!

कहते हैं, **स्वयं (अपने आप) शुद्ध स्वभाव से परिणमित होता है...** देखो! वहाँ व्यवहार की अपेक्षा छोड़ दी। समझे? व्यवहार की अपेक्षा-व्यवहार से कहने में आया है। कथन दो प्रकार के हैं, मार्ग दो प्रकार के—निश्चय और व्यवहार, है—ऐसा नहीं है। (पण्डित) टोडरमलजी ने तो बहुत स्पष्ट किया है, परन्तु वर्तमान अपनी विद्वतता के अभिमान में... बहुत अभिमान। अरे... भगवान! यह वस्तु का स्वरूप है। और उन्होंने तो निश्चय-व्यवहारावलम्बी की बात करके ऐसा कहा, निश्चय-व्यवहार सर्वत्र एवं ज्ञातव्यं। निश्चय और व्यवहार का लक्षण सर्वत्र एवं ज्ञातव्यं। जहाँ-जहाँ अपने स्वभाव से निश्चय होता है, वहाँ-वहाँ निमित्त को सहचारी देखकर व्यवहार कहने में आया है।

इस प्रकार निश्चय-व्यवहार का लक्षण सर्वत्र जानना। ऐसा कहा है। समझ में आया? टोडरमल तो... आचार्यकल्प अभी तक उन्हें कहते थे, उन्हें मिथ्यादृष्टि ठहराना कि नहीं, प्रमाणिक नहीं। आहाहा! काल ही कोई ऐसा है।

यहाँ कहते हैं कि स्वयं शुद्ध स्वभाव से भगवान आत्मा परिणमता है। भेदभाव, भिन्न भाव की अपेक्षा निश्चय से, निश्चय से नहीं। **तो भी...** ऐसा होने पर भी **निश्चयमोक्षमार्ग के...** निर्विकल्प शुद्ध उपयोग शान्ति के सप्तम गुणस्थानयोग्य, उसे छठवें का व्यवहारमोक्षमार्ग **साधनेपने को प्राप्त होता है।** व्यवहार से साधन कहा जाता है।

भावार्थः—जिसे अन्तरंग में शुद्धि का अंश परिणमित हुआ है,... समाहित कहा यह। जिसे अन्तरंग में। अन्तरंग और बहिरंग। बहिरंग विकल्पभाव, अन्तरंग शुद्धि का परिणमन। आहाहा! समझ में आया? जिसे अर्थात् जिसको, **जिसको अन्तरंग में...** अन्तर में द्रव्यस्वभाव अखण्ड आनन्द अभेद के आश्रय से अन्तरंग, अपना जो भाग है, वह शुद्धि का अंश परिणमा है। निर्मल अविकारी परिणति प्रगट हुई है। छठवें के योग्य छठवें की, पाँचवें के योग्य पाँचवें की, चौथे के योग्य चौथे की। **उस जीव को...** उस जीव को, उस जीव को **तत्त्वार्थश्रद्धान...** व्यवहार। नौ तत्त्व का भेदरूप श्रद्धान व्यवहार, **अंगपूर्वगत ज्ञान...** व्यवहार। अंग और पूर्वगत ज्ञान व्यवहार। समझ में आया? उसे व्यवहार कहा है। निश्चय तो अपने ज्ञानानन्द का ज्ञान, उसे ज्ञान कहा है। आहाहा! अनुभूति, उसका ज्ञान, भावश्रुत अनुभव हुआ, वही ज्ञान है। यह लिखा है, बताया था न एक बार? कलशटीका में से। शुद्धात्मानुभूति आयी है न, वहाँ। कितनी गाथा में आया है? १३वाँ कलश? देखो! उन्होंने लिखा है, हों! राजमलजी ने।

ऐसा जानना कि आत्मानुभव मोक्षमार्ग है। १३वें कलश में है, १३वें कलश में। **'आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या'** आत्मा का निर्विकल्प अनुभव, वही शुद्धात्मा का अनुभव, वह शुद्धज्ञान का अनुभव, वही मोक्षमार्ग है। **इस प्रसंग पर दूसरा भी संशय होता है कि...** इस अवसर पर कोई ऐसा भी संशय करेगा कि **कोई जानेगा कि द्वादशांगज्ञान कोई अपूर्व लब्धि है...** बारह अंग का ज्ञान कोई अपूर्व लब्धि है। नहीं, नहीं। बारह अंग का ज्ञान भी व्यवहारज्ञान है। आहाहा! बारह अंग का ज्ञान अपूर्व लब्धि

है। **उसका समाधान ऐसा है कि द्वादशांगज्ञान भी विकल्प है। उसमें भी ऐसा कहा है कि शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है।** बारह अंग का ज्ञान भी मोक्षमार्ग नहीं। पण्डितजी! १३वाँ कलश है। '**आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या। ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेति बुद्धा।**' यह तो प्रकाशित करते हैं। ... कलशटीका, ऐसी टीका बाहर आयेगी..! बहुत सरस! राजमलजी ने ऐसी टीका बनायी है। 'पाण्डे राजमल जिनधर्मी, समयसार नाटक के मर्मी।' बनारसीदासजी ने उसमें से समयसार नाटक बनाया है।

तो कहते हैं कि बारह अंग का ज्ञान विकल्प है, मोक्षमार्ग नहीं। आहाहा! आत्मा की अनुभूति हुई, शुद्ध अनुभव हुआ, वही एक मोक्षमार्ग ज्ञान है। व्यवहार को मोक्षमार्ग का आरोप दिया जाता है, वह वास्तविक मोक्षमार्ग नहीं है। भारी कठिन भाई जगत को। धन्नालालजी! ग्यारह अंग पढ़ डाले, पढ़ डाले। देखो! उसमें कैसा कहा। बारह अंग तो सम्यग्दृष्टि को ही होते हैं, बारह अंग मिथ्यादृष्टि को कभी नहीं होते। ग्यारह अंग और नौ पूर्व (हो सकते हैं)। यहाँ तो बारह अंग का ज्ञान जो सम्यग्दृष्टि को, छठवें गुणस्थानवाले को और चौथेवाले को भी हो। सर्वार्थसिद्धि में है न! समझ में आया? परन्तु वह द्वादशांगज्ञान कोई अपूर्व लब्धि है? नहीं, वह नहीं। आहाहा! अपना निज स्वरूप अनुभव में आया, उसी ज्ञान को निश्चयज्ञान मोक्ष का कारण कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? बोल जाये, समझा दे, लाखों लोग समझ जाये, ऐसा पठन पढ़ गया, इसलिए वह मोक्षमार्ग है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : आत्मानुभव....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। अखण्ड ज्ञानमूर्ति प्रभु '**शुद्धनयात्मिका या**' आत्मानुभूति अथवा ज्ञानानुभूति, दोनों एक ही बात है। द्रव्य से आत्मा का अनुभव कहा, गुण से ज्ञान का अनुभव कहा। राग का अनुभव छोड़कर ज्ञान निर्विकल्पस्वरूप की अनुभूति हुई, वह ज्ञान मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को भी बारह अंग की लब्धि सम्यग्ज्ञान की अनुभूति के समक्ष अपूर्व लब्धि नहीं (लगती)। आहाहा! क्यों, सूरचन्दजी! स्वात्मानुभूति मोक्षमार्ग है। **इसलिए शुद्धात्मानुभूति होने पर शास्त्र पठन की कुछ अटक (बन्धन) नहीं है।** अनुभूति होने के पश्चात् शास्त्र पठन का कोई अटक (बन्धन) नहीं है। हो, विकल्प आया तो पढ़ लिया, समझे, विचार करे। परन्तु अन्तर की अनुभूति

हुई, वही एक सम्यग्ज्ञान और मोक्ष का मार्ग है। देवीलालजी! यह अंग-पूर्व का ज्ञान भी व्यवहारज्ञान है। ऐ... लक्ष्मीचन्दजी! भारी कठिन लोगों को। थोड़ा जहाँ आवे, वहाँ उसे हो जाता है, ओहो! अपने को ज्ञान हो गया। शास्त्र का थोड़ा ज्ञान आया, बातचीत करना आया, अंग-भेद करना आया... अरे! भगवान! सुन तो सही, बापू! ज्ञान अलग वस्तु है।

मुमुक्षु : दूसरे का कल्याण....

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे का कल्याण होता नहीं तीन काल में। अपने कल्याण बिना दूसरे के कल्याण में निमित्त भी नहीं हो सकता। आहाहा!

अंग पूर्व का ज्ञान, पूर्वगत ज्ञान व्यवहार। इन्होंने बारह अंग लिये। बहुत सरस बात। टीकाकार राजमलजी ने ऐसे कलश बनाये, कलश की टीका। एक-एक कलश में भिन्न-भिन्न न्याय दिये हैं। बहुत सरस! देरी लगी। आयेगी तब... उसका काल पाके और पर्याय होने की हो तब आयेगी। आगे-पीछे कौन करे? जब पुस्तक आनी होगी, तब आयेगी। बारह महीने से...

मुनि-आचार में प्रवर्तनरूप... देखो! मुनि को जो छठवें गुणस्थान में समाहित दशा हुई है, उसे यहाँ तत्त्वार्थश्रद्धान व्यवहार है, अंगपूर्वगत का (ज्ञान) व्यवहार है, मुनि आचार में प्रवर्तन पंच महाव्रतादि **व्यवहारमोक्षमार्ग विशेष-विशेष शुद्धि का व्यवहारसाधन बनता हुआ,....** बस, इतना। व्यवहारमोक्षमार्ग व्यवहार से आगे की शुद्धि की भूमिका में, व्यवहार से शुद्धि की भूमि उससे बढ़ती है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? नीचे इसका अर्थ है, देखो! **इस गाथा की श्री जयसेनाचार्यदेवकृत टीका में पंचम गुणस्थानवर्ती गृहस्थ को...** पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक को **व्यवहारमोक्षमार्ग कहा है। वहाँ व्यवहारमोक्षमार्ग का स्वरूप निम्नानुसार वर्णन किया है—वीतराग सर्वज्ञप्रणीत...** सर्वज्ञ परमात्मा ने कहे हुए **जीवादि पदार्थों सम्बन्धी सम्यक् श्रद्धान...** व्यवहार **तथा ज्ञान दोनों, गृहस्थ को और तपोधन को समान होते हैं।** दर्शन-ज्ञान तो दोनों को समान होते हैं। निश्चय तो है परन्तु व्यवहार से समान है। **चारित्र, तपोधन को आचारादि चरणग्रन्थों में विहित किये गये मार्गानुसार...** यहाँ व्यवहार कहना है न! अन्दर निश्चय तो है, वह अलग बात है। **तपोधन को आचारादि चरणग्रन्थों में विहित किये गये मार्गानुसार...** उस मार्ग के अनुसार **प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानयोग्य...**

देखो! सातवें-छठवें की व्याख्या में प्रमत्त-अप्रमत्त लिया है। अप्रमत्त में कहाँ पाँच महाव्रत है। परन्तु उस भूमिका की बात करते हैं।

प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानयोग्य... छठवें में आते हैं तो पंच महाव्रत, वह विकल्प, राग, व्यवहार। **पंचसमिति...** व्यवहार **त्रिगुप्ति, षडावश्यकादिरूप...** व्यवहार। छह आवश्यक, सामायिक, चउविसंत्तो, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान इन आदिरूप व्यवहार होता है। इतना सामने निश्चय है। समझ में आया? जितना द्रव्य के आश्रय से प्रगट हुआ, उतना निश्चय है। जितना विकल्प के आश्रय से प्रगट हुआ, वह व्यवहार है। समझ में आया? बहुत भाई! यह काम तो शुरुआतवाले को जरा कठिन पड़े, परन्तु विचार तो करना पड़ेगा या नहीं उसे? यथार्थ निर्णय किये बिना, उसकी भूमिका आगे बढ़ेगी कहाँ से? समझ में आया?

और गृहस्थों को उपासकाध्ययन ग्रन्थ में विहित... विहित अर्थात् कहे हुए **मार्गानुसार पंचम गुणस्थानयोग्य...** मुनि को दानादि दे गृहस्थाश्रम में, पंचम गुणस्थान में **दान, शील...** ब्रह्मचर्य आदि या ... **पूजा...** भगवान की पूजा, देवदर्शन का शुभभाव पंचम गुणस्थान के योग्य निर्मलता हुई है, तथापि वह भाव आये बिना रहता नहीं। करनेयोग्य है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। कर्तृत्वबुद्धि हो, तब तो मिथ्यात्व है। बहुत सूक्ष्म बात है। व्यवहारनय से ऐसा कहने में आता है कि श्रावक षट्कर्म करे। परन्तु निश्चय में ऐसा नहीं है। ऐसा विकल्प आता है, उसे करे—ऐसा व्यवहारनय में कहने में आता है। बात ऐसी है। **पूजा-उपवासादिरूप...** आठम, पांखी का उपवास भी करते हैं न, विकल्प आता है या नहीं? शुभराग पंचम गुणस्थानयोग्य अष्टमी का, चतुर्दशी आदि का उपवास (करे)। वह निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान है, उस भूमिका में गृहस्थ को इतना व्यवहार आये बिना नहीं रहता। आता है तो प्रसन्नता है, ऐसा नहीं, खुशी नहीं। परन्तु आता है, उसे जानता है, व्यवहार से उपादेय कहने में आया है। समझ में आया?

अथवा दार्शनिक-व्रतिकादि ग्यारह स्थानरूप (ग्यारह प्रतिमारूप)... दर्शनप्रतिमा, व्रतप्रतिमा आता है न? वह भी विकल्प है। निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, ज्ञान हुए हों और पंचम गुणस्थानयोग्य दो कषाय के अभाव की परिणति शुद्ध हुई हो, उसे

ऐसा विकल्प उस भूमिका में आये बिना रहता नहीं। **(ग्यारह प्रतिमारूप) होता है, तद्नुसार व्यवहारमोक्षमार्ग का लक्षण है।** व्यवहारमोक्षमार्ग पंचम, चौथे (गुणस्थान) में आता है। निश्चय तो स्वद्रव्य आश्रय से निर्मल परिणति तो है ही। उसके साथ ऐसा व्यवहार आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, चौथे में जितना निश्चय है, उतना निश्चय है। चारित्र इकट्ठा नहीं इसलिए... जितनी शुद्ध परिणति है, उतनी द्रव्य के आश्रय से तो निश्चय है। भले मोक्षमार्ग उसे निश्चय नहीं हुआ। क्योंकि तीनों मिलकर मोक्षमार्ग है न! तो चारित्रदशा चौथे में नहीं तो वहाँ मोक्षमार्ग उपचार से है, परन्तु जो है दर्शन-ज्ञान, वह तो निश्चय ही है। समझ में आया? कितनी बात याद रखना लोगों को। बहुत विरोध। डालचन्दजी! विरोध बहुत होता है उसके सामने यह हुमलो बहुत। भाई! ऐसी चीज़ है, ऐसा निर्णय करो, निर्णय करो, श्रद्धा करो, विचार करो। अवाय में यह बात निर्णय करके ऐसा लो, इसके बिना मार्ग आगे चलेगा नहीं।

मुनि-आचार में प्रवर्तनरूप... भावार्थ में। **व्यवहारमोक्षमार्ग विशेष-विशेष शुद्धि का व्यवहारसाधन बनता हुआ, यद्यपि निर्विकल्पशुद्धभावपरिणत जीव को परमार्थ से तो उत्तम सुवर्ण की भाँति...** ऊपर आया वह। **अभिन्नसाध्यसाधनभाव के कारण स्वयमेव शुद्धभावरूप परिणमन होता है...** छठवें गुणस्थान की निर्मल शुद्धि सातवें में आगे बढ़कर अभिन्नसाध्यसाधन होती है। छठवें गुणस्थान की निर्मल परिणति शुद्ध और आगे सातवें की निर्मल परिणति साध्य। निर्मल परिणति साधन और सातवें की निर्मल परिणति साध्य। यह अभिन्नसाध्यसाधन स्वयं से परिणमते हैं। **तथापि, व्यवहारनय से निश्चयमोक्षमार्ग के साधनपने को प्राप्त होता है।** तो भी व्यवहारनय से वहाँ राग-विकल्प आता है, ऐसे साधन को प्राप्त होता है, ऐसा कहा गया है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १३, शुक्रवार, दिनांक - २१-०८-१९६४, गाथा-१६०, १६१ प्रवचन-८

१६० गाथा का भावार्थ हो गया। १६० में जो निकाला है... क्या? कि अपने आत्मा में जो अभिन्नसाध्यसाधनभाव से शुद्ध परिणति हुई है, उसका अर्थ क्या? कि आत्मा ज्ञायक शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, पूर्ण आनन्द, उसका आश्रय करके, दृष्टि लगाकर अभिन्नसाध्य अर्थात् साधन निर्मल दशा उत्पन्न हुई, वह पूर्ण सप्तमयोग्य जो निर्मल साध्य है, उसका वह साधन है। तो शुद्ध परिणति जिसे हुई है, उसे विकल्पात्मक जो व्यवहार है, उसे व्यवहार कहा जाता है। शुद्ध परिणति अपने द्रव्य से अभिन्नसाध्यसाधनवाली दशा न प्रगट हुई हो और अकेला व्यवहारमोक्षमार्ग हो, ऐसा नहीं होता। समझ में आया? यह लिया, देखो! अन्तिम है न, इसलिए कोष्ठक में लिया है।

(अज्ञानी)... १६० में। **(अज्ञानी द्रव्यलिंगी मुनि...)** अज्ञानी द्रव्यलिंगी कहा। स्पष्टीकरण कर दिया। और कोई वे चौथे और पाँचवेंवाले द्रव्यलिंगी कहे। उसके लिये स्पष्टीकरण करना पड़ा। हमारे पण्डितजी तो बराबर लगाते हैं। **(अज्ञानी द्रव्यलिंगी मुनि का...)** समझ में आया? **अन्तरंग लेशमात्र भी समाहित न होने से...** अन्तरंग अपना शुद्ध भगवान आत्मा के अवलम्बन से शुद्ध परिणतिरूप समाहित नहीं होने से। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि अज्ञानी द्रव्यलिंगी अर्थात् आत्मा के भान बिना अन्तरंग शुद्ध चैतन्य प्रभु ज्ञायक आनन्द, उसकी आनन्द परिणति का अंश भी जिसे प्रगट नहीं हुआ। ऐसा **समाहित न होने से...** अपने आत्मा में शुद्ध का अवलम्बन लेकर शुद्ध परिणति सम्यग्दर्शन, ज्ञान निश्चयमोक्षमार्ग की परिणति उत्पन्न नहीं होने से अज्ञानी को **उसे (द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत...)** देखो! **शुद्धात्मस्वरूप के अज्ञान के कारण....** समझ में आया?

तुम कहते हो न, पारिणामिकभाव, पारिणामिकभाव। वह यह द्रव्यार्थिकनय का विषय। वह शुद्धात्मस्वरूप वह पारिणामिकभाव। समझ में आया कारण? द्रव्यार्थिक— द्रव्य, द्रव्य जिसका प्रयोजन है, ऐसे ज्ञान का नय। जिस ज्ञान का भाग है उसका, द्रव्य जिसका प्रयोजन है, उसका नाम द्रव्यार्थिकनय कहा जाता है। जिस ज्ञान का भाग द्रव्य त्रिकाल है। कैसा द्रव्य? **द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत....** द्रव्य जिसका प्रयोजन है, ऐसा

ज्ञान करनेवाली दशा का विषय कौन? शुद्धात्मस्वरूप। अकेला द्रव्यस्वभाव सामान्यस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, एक समय की पर्याय जिसके ऊपर चलती है, जिसके ऊपर पर्याय चलती है, उस पर्याय के अन्तरंग में रहनेवाला ज्ञायक ध्रुवस्वभाव के **अज्ञान के कारण...** समझ में आया? ध्रुवस्वभाव एक समय में शुद्ध है, उसका अज्ञान है—उसका जिसे भान नहीं। ऐसे अज्ञानी जीव को द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्मरूप का अज्ञान, शुद्धात्मस्वरूप का अज्ञान (होने के कारण)। वह शुद्धात्मस्वरूप द्रव्यार्थिक का विषय। अर्थात् सम्यग्दृष्टि का ध्येय, ऐसा शुद्धात्म भगवान है, उसका अज्ञान। अज्ञानी को उसका अज्ञान है। समझ में आया?

निमित्त में अपने द्रव्य का अस्तित्व स्वीकार करता है, या एक समय की पर्याय में अपने द्रव्य का अस्तित्व स्वीकार करता है। तो निमित्त में आत्मा नहीं, एक पर्याय में पूर्ण आत्मा नहीं और गुण-गुणी भेद में अभेद चीज़ आती नहीं। समझ में आया? तो ऐसी अभेद चीज़ जो शुद्धात्मस्वभाव, जो द्रव्यार्थिकनय का विषय है, उसका जिसे अज्ञान है, ऐसे मिथ्यादृष्टि को व्यवहारमोक्षमार्ग नहीं होता। क्योंकि शुद्धि का अंश...देखो! **शुद्धि का अंश भी परिणमित न होने से...** कहा न? यह तो कोष्ठक में लिया। परन्तु समाहित नहीं होने से उसे शुद्धि का अंश, शुद्धि का अंश... इसका बाद में स्पष्टीकरण किया। शुद्धि का अंश क्या? कि द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप का आश्रय लेकर जो शुद्धि का अंश प्रगट हुआ है, वह अज्ञानी को नहीं है। समझ में आया? मित्रसेनजी! मित्रसेनजी ध्यान बहुत रखते हैं।

मुमुक्षु : जैन तो कहलाये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम लिखे जैन, शब्द में कहो। भाव जैन नहीं। यह हमारे सेठिया हैं वहाँ। पोरबन्दर के सेठिया है। (कहते हैं), जैन तो हैं या नहीं? कहाँ गये जुगराजजी! यह प्रश्न करते हैं। वे भी स्थानकवासी के प्रमुख थे। कहते हैं, जैन है या नहीं? नाम जैन है। भगवान आत्मा राग और स्वभाव की एकता टूटे बिना वीतरागदृष्टि हुए बिना जैनपना आता नहीं। भावजैनपना आता नहीं। जीतनेवाला जैन। तो किसे जीतनेवाला? कौन जीते?—कि अपना त्रिकाली शुद्धात्मस्वभाव, उसके आश्रय से राग की एकता टाले, नाश करे उसे जैन—जीतनेवाला, अज्ञान को जीता और राग की

एकताबुद्धि का नाश किया, उसे जैन कहते हैं। भावलिंगी जैन कहते हैं। भावलिंगी सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा से। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें से निकालो।

यहाँ तो यह निकालना है कि जहाँ निश्चयमोक्षमार्ग का शुद्ध अंश प्रगट हुआ नहीं, वहाँ उसे व्यवहारमार्ग भी कहने में नहीं आता। किसे? उस विकल्प को। निश्चय जहाँ शुद्ध द्रव्य आत्मा है ज्ञायकप्रभु, पूर्ण शुद्ध, उसका अवलम्बन लिये बिना, अज्ञान के कारण शुद्धि का अंश निश्चय संवर, निर्जरारूप दशा स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुए बिना, साथ में व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, नौ तत्त्व के भेद के राग को व्यवहार भी कहने में नहीं आता। निश्चय बिना व्यवहार कहने में नहीं आता। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह कोष्ठक किसमें से निकाला?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें से निकाला यह। यह क्या कहते हैं? **उत्तम सुवर्ण की भाँति अभिन्नसाध्यसाधनभाव के कारण स्वयमेव शुद्धभावरूप परिणमन होता है तथापि, व्यवहारनय से निश्चयमोक्षमार्ग के साधनपने को प्राप्त होता है।** देखो! निश्चय और व्यवहार दोनों इसमें हैं। इसमें से निकाला। क्या कहा? कांप? कांप कहा न? कोष्ठक निकाला, ठीक। यह कोष्ठक इसमें से निकाला। यह तुम्हारे मित्र ने इसमें से निकाला है। समझ में आया? दोनों मित्र हैं शाम को घूमने में। कहो, समझ में आया?

अभिन्नसाध्यसाधनभाव का जिसे अन्तर दशा में शुद्ध भी निर्मल साध्य है और साधन भी निर्मल हुआ। समझ में आया? साध्य सप्तम गुणस्थानयोग्य निश्चयमोक्षमार्ग साध्य शुद्ध है। और छठवें गुणस्थान में, पाँचवें में, चौथे में गौणरूप से, छठवें गुणस्थान में अपने योग्य जो स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और तीन कषाय के अभावरूप शुद्ध परिणति होती है, उसे साधन कहा और निश्चय शुद्ध साध्य सप्तम गुणस्थान को साध्य कहा। तो ऐसा अभिन्नसाध्यसाधन जिसे प्रगट हुआ है, उसे व्यवहार भिन्नसाध्यसाधन कहा जाता है। उसे व्यवहारश्रद्धा, व्यवहारज्ञान, व्यवहार पंच महाव्रत के परिणाम को

आरोप (देकर कहा जाता है कि) निश्चय का व्यवहार साधन है, ऐसे उसे व्यवहार से लागू पड़ता है। लागू पड़ता है, कहते हैं न? समझ में आया?

मुमुक्षु : यह तो महाराज! सप्तम गुणस्थान का विषय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चौथे गुणस्थान का विषय है। चौथे में... ठीक कहते हैं। चौथे गुणस्थान में अपना शुद्ध आत्मा ज्ञायक प्रभु अभेद स्वरूप एकाकार की दृष्टि हुए बिना अभिन्नसाध्य सप्तम गुणस्थानयोग्य जो अभिन्न साध्य निर्मल है, उसका यह साधन प्रगट हुए बिना, शुद्ध सम्यग्दर्शन प्रगट हुए बिना व्यवहार को व्यवहार नहीं कहा जा सकता। समझ में आया? चिमनभाई! ओहोहो! यह न्याय तो बहुत बार आये हैं यहाँ। यही चलेगा इन सब गाथाओं में।

मुमुक्षु : द्रव्यलिंगी मुनि, भावलिंगी मुनि....

पूज्य गुरुदेवश्री : जैन नहीं, उसे अकेला द्रव्यलिंगी कहते हैं। जिसे सम्यग्दर्शन का, निश्चय का भान नहीं, अकेले व्यवहार विकल्प दया, दान, भक्ति, भगवान का भक्त कहलाये, तो कहते हैं, उसे व्यवहार भी लागू नहीं पड़ता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, व्यवहार लागू नहीं पड़ता। नामनिक्षेप से कहो। समझ में आया? वास्तव में तो शास्त्र तो ऐसा कहते हैं कि जिसे भाव प्रगट हुआ, उसका ही नामनिक्षेप यथार्थ है। भाई! तीनो निक्षेप यथार्थ लागू पड़ते हैं। ऐसा है, निश्चय से तो ऐसा है परन्तु एक नामनिक्षेप से कहो। समझ में आया? तब भेद पड़े न उसके, वास्तविक अभेद हो, उसका भेद पड़कर द्रव्य, स्थापना और नाम उसे यथार्थरूप से लागू पड़ते हैं।

यहाँ कहते हैं कि जिसे अभिन्नसाध्यसाधन प्रगट हुए हैं, अभिन्नसाध्यसाधन, समझ में आया? साध्य जो सप्तम गुणस्थानयोग्य चारित्र की एकता दर्शन-ज्ञान के साथ है, वह साध्य है और साधन चौथे में, पाँचवें में, छठवें में निश्चय स्वभाव के आश्रय से निर्विकल्प शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान का अंश और चारित्र का अंश जो प्रगट हुआ, वह निर्मल है और (साध्य) भी निर्मल है। इस अपेक्षा से दोनों को अभिन्नसाध्यसाधन कहने में आया

है। उसे जो नौ तत्त्व की व्यवहार श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान और पंच महाव्रत, बारह व्रतादि का विकल्प आवे, उसे निश्चयसाध्य का व्यवहारसाधन (कहा जाता है)। भिन्नरूप विकल्प है, परन्तु उसे व्यवहार का आरोप दिया जाता है। समझ में आया? आहाहा! समझ में आया?

शुद्धि का अंश भी परिणमित न होने से.... जिसे अपना द्रव्य शुद्ध ज्ञायकमूर्ति है, ऐसी अन्तर्दृष्टि, ज्ञान और आंशिक स्थिरता की शुद्धि प्रगट नहीं हुई, **उसे व्यवहारमोक्षमार्ग भी नहीं है।** उसे व्यवहारमोक्षमार्ग भी नहीं कहा जाता। बहुत झंझट है। वे कहें, नहीं, निश्चय नहीं। व्यवहार है चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें में व्यवहार है। बलिहारी है न भगवान आत्मा की। इतनी बलिहारी कि आहाहा! अरे! परन्तु जो स्व वस्तु है, उस वस्तु की जहाँ दृष्टि हुई नहीं, वस्तु ख्याल में आयी नहीं, वस्तु का अनुभव प्रतीति में लिया नहीं, इसके बिना व्यवहार को व्यवहार कहनेवाला जगे बिना व्यवहार किसे कहेंगे? व्यवहार तो अन्ध है।

मुमुक्षु : तुम कहो वह विचार ही कहाँ है? है, ऐसा कह दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु क्या है? व्यवहार तो राग है, भेद है। वह तो अन्ध है। अभेद का ज्ञान हुए बिना भेद का ज्ञान नहीं होता। अभेद का ज्ञान हुए बिना राग का ज्ञान नहीं होता। अभेद का ज्ञान हुए बिना निमित्त का यथार्थ ज्ञान नहीं होता। समझ में आया? निश्चय का ज्ञान हुए बिना व्यवहार का ज्ञान नहीं होता। शुद्ध उपादान का ज्ञान हुए बिना अशुद्ध उपादान और निमित्त का ज्ञान नहीं होता। निज उपादान का ज्ञान हुए बिना निमित्त का ज्ञान नहीं होता। समझ में आया? ऐसी (बात) है, तो उसका निर्णय करना चाहिए न! पहले इसका पक्का निर्णय करना कि ऐसा ही मार्ग है। दूसरा मार्ग नहीं है। १६० (गाथा) हो गयी।

गाथा - १६१

णिच्छयणएण भणिदो तिहि तेहिं समाहिदो हु जो अप्पा।
ण कुणदि किंचि वि अण्णं ण मुयदि सो मोक्खमग्गो त्ति।।१६१।।

जो जीव रत्नत्रय सहित आत्म चिन्तन में रमे।
छोड़े ग्रहे नहिं अन्य कुछ शिवमार्ग निश्चय है यही।।१६१।।

अन्वयार्थ :- [यः आत्मा] जो आत्मा, [तैः त्रिभिः खलु समाहितः] इन तीन द्वारा वास्तव में समाहित होता हुआ (अर्थात् सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र द्वारा वास्तव में एकाग्र—अभेद होता हुआ) [अन्यत् किंचित् अपि] अन्य कुछ भी [न करोति न मुंचति] करता नहीं है या छोड़ता नहीं है, [सः] वह [निश्चयनयेन] निश्चयनय से [मोक्षमार्गः इति भणितः] 'मोक्षमार्ग' कहा गया है।

टीका :- व्यवहारमोक्षमार्ग के साध्यरूप से, निश्चयमोक्षमार्ग का यह कथन है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा समाहित हुआ आत्मा ही जीवस्वभाव में नियत चारित्ररूप होने के कारण निश्चय से मोक्षमार्ग है।

अब (विस्तार ऐसा है कि), यह आत्मा वास्तव में कथंचित् (-किसी प्रकार से, निज उद्यम से) अनादि अविद्या के नाश द्वारा व्यवहारमोक्षमार्ग को प्राप्त करता हुआ, धर्मादिसम्बन्धी तत्त्वार्थ-अश्रद्धान के, अंगपूर्वगत पदार्थोंसम्बन्धी अज्ञान के और अतप में चेष्टा के त्याग हेतु से तथा धर्मादिसम्बन्धी तत्त्वार्थश्रद्धान के, अंगपूर्वगत पदार्थोंसम्बन्धी ज्ञान के और तप में चेष्टा के ग्रहण हेतु से (-तीनों के त्याग हेतु तथा तीनों के ग्रहण हेतु से) [१]विविक्त भावरूप व्यापार करता हुआ, और किसी कारण से

---

१. विविक्त= विवेक से पृथक् किये हुए (अर्थात् हेय और उपादेय का विवेक करके व्यवहार से उपादेयरूप जाने हुए)। [जिसने अनादि अज्ञान का नाश करके शुद्धि का अंश प्रगट किया है, ऐसे व्यवहारमोक्षमार्ग (सविकल्प) जीव को निःशंकता-निःकांक्षा-निर्विचिकित्सादि भावरूप, स्वाध्यायविनयादि भावरूप और निरतिचार व्रतादि भावरूप व्यापार भूमिकानुसार होते हैं तथा किसी कारण उपोदय भावों का (-व्यवहार से ग्राह्य भावों का) त्याग हो जाने पर और त्याज्य भावों का उपादान अर्थात् ग्रहण हो जाने पर उसके प्रतिकाररूप से प्रायश्चित्तादि विधान भी होता है।]

ग्राह्य का त्याग हो जाने पर तथा त्याज्य का ग्रहण हो जाने पर उसके [२]प्रतिविधान का अभिप्राय करता हुआ, जिस काल और जितने काल तक [३]विशिष्ट भावनासौष्ठव के कारण स्वभावभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के साथ [४]अंग-अंगीभाव से परिणति द्वारा [५]उनसे [६]समाहित होकर, त्यागग्रहण के विकल्प से शून्यपने के कारण (भेदात्मक) भावरूप व्यापार को विराम को प्राप्त होने से (अर्थात् भेदभावरूप-खण्डभावरूप व्यापार रुक जाने से) सुनिष्कम्परूप से रहता है, उस काल और उतने काल तक यही आत्मा जीवस्वभाव में नियत चारित्ररूप होने के कारण निश्चय से 'मोक्षमार्ग' कहलाता है। इसलिए, निश्चयमोक्षमार्ग और [७]व्यवहारमोक्षमार्ग को साध्य-साधनपना अत्यन्त घटित होता है।

भावार्थ :- निश्चयमोक्षमार्ग निज शुद्धात्मा की रुचि, ज्ञप्ति और निश्चल

---

२. प्रतिविधान=प्रतिकार करने की विधि; प्रतिकार का उपाय; इलाज।
३. विशिष्ट भावनासौष्ठव=विशेष अच्छी भावना (अर्थात् विशिष्ट शुद्ध भावना); विशिष्ट प्रकार की उत्तम भावना।
४. आत्मा, वह अंगी और स्वभावभूत सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र, वह अंग।
५. उनसे = स्वभावभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से।
६. समाहित= सातवाँ गुणस्थान में।
७. यहाँ यह ध्यान में रखने योग्य है कि जीव व्यवहारमोक्षमार्ग को भी अनादि अविद्या का नाश करके ही प्राप्त कर सकता है; अनादि अविद्या का नाश होने से पूर्व तो (अर्थात् निश्चयनय के—द्रव्यार्थिकनय के—विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप का भान करने से पूर्व तो) व्यवहारमोक्षमार्ग भी नहीं होता।

पुनश्च, 'निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग को साध्य-साधनपना अत्यन्त घटित होता है' ऐसा जो कहा गया है, वह व्यवहारनय द्वारा किया गया उपचरित निरूपण है। उसमें से ऐसा अर्थ निकालना चाहिए कि 'छठवें गुणस्थान में वर्तनेवाले शुभ विकल्पों को नहीं, किन्तु छठवें गुणस्थान में वर्तनेवाले शुद्धि के अंश को और सातवें गुणस्थानयोग्य निश्चयमोक्षमार्ग को वास्त्व में साधन-साध्यपना है।' छठवें गुणस्थान में वर्तनेवाले शुद्धि का अंश बढ़कर जब और जितने काल तक उग्र शुद्धि के कारण शुभ विकल्पों का अभाव वर्तता है, तब और उतने काल तक सातवें गुणस्थानयोग्य निश्चयमोक्षमार्ग होता है।

अनुभूतिरूप है। उसका साधक (अर्थात् निश्चयमोक्षमार्ग का व्यवहारसाधन) ऐसा जो भेदरत्नत्रायत्मक व्यवहारमोक्षमार्ग, उसे जीव कथंचित् (-किसी प्रकार, निज उद्यम से) अपने संवेदन में आनेवाली अविद्या की वासना के विलय द्वारा प्राप्त होता हुआ, जब गुणस्थानरूप सोपान के क्रमानुसार निजशुद्धात्मद्रव्य को भावना से उत्पन्न नित्यानन्दलक्षणवाले सुखामृत के रसास्वाद की तृप्तिरूप परम कला के अनुभव के कारण निजशुद्धात्माश्रित निश्चयदर्शनज्ञानचारित्ररूप से अभेदरूप परिणमित होता है, तब निश्चयनय से भिन्न साध्य-साधन के अभाव के कारण यह आत्मा ही मोक्षमार्ग है। इसलिए ऐसा सिद्ध हुआ कि सुवर्ण और सुवर्णपाषाण की भाँति निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग को साध्य-साधकपना (व्यवहारनय से) अत्यन्त घटित होता है॥१६१॥

गाथा - १६१ पर प्रवचन

१६१। अब निश्चय आया देखो! सन्धि करते हैं न? पहले व्यवहार था १६० में। परन्तु वह व्यवहार अर्थात् पहले व्यवहार था और फिर निश्चय था, ऐसा नहीं। उसमें से सब यह निकालते हैं। १६० में से निकालते हैं। '**धम्मादीसद्दहणं**' देखो! '**ववहारो मोक्खमग्गो**' ऐसे शब्द पड़े हैं। पड़े हैं या नहीं? देखो! पड़े हैं या नहीं? '**मोक्खमग्गो त्ति**' देखो! ऐसा मोक्षमार्ग पड़ा है, परन्तु मोक्षमार्ग व्यवहार है या परमार्थ है? परमार्थ मोक्षमार्ग प्रगट हुए बिना व्यवहार को व्यवहार का आरोप देनेवाला (निश्चय) जगे बिना व्यवहार है ही नहीं। ओहोहो! व्यवहार बतलाकर, यह तो सबमें ऐसी कथनपद्धति है। यह व्यवहार न भले... परन्तु '**ववहारोऽभूदत्थो**' कहा वहाँ भी। पहले कहा, व्यवहार अभूतार्थ है। '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' कहने में ऐसा ही होता है पहला। परन्तु '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' भूतार्थ भगवान ज्ञायक चैतन्यबिम्ब एकरूप को हम शुद्धनय कहते हैं। तब व्यवहार अभूतार्थ है, इसका उसे ज्ञान होता है। समझ में आया? यहाँ तो निश्चय... साथ में है, परन्तु यहाँ तो व्यवहार लेकर निश्चय कहते हैं। परन्तु यहाँ तो समझाने में पहले व्यवहार लिया है, परन्तु उसमें निश्चय साथ में है तो व्यवहार कहा जाता है। यहाँ से लोग शुरु करते हैं। १६१।

णिच्छयणएण भणिदो तिहि तेहिं समाहिदो हु जो अप्पा।
ण कुणदि किंचि वि अण्णं ण मुयदि सो मोक्खमग्गो त्ति।।१६१।।

इसकी टीका, १६१ की टीका। **व्यवहारमोक्षमार्ग के साध्यरूप से,....** देखो! व्यवहारमोक्षमार्ग साधन है और उसके साध्यरूप से **निश्चयमोक्षमार्ग का यह कथन है।** क्या कहा? व्यवहारमोक्षमार्ग साधन, उसका साध्य कौन? निश्चयमोक्षमार्ग। साध्य निश्चयमोक्षमार्ग, साधन व्यवहारमोक्षमार्ग। उसका यहाँ निश्चय का कथन कहते हैं। समझ में आया? बड़ी गड़बड़ है। कक्षा चले तब यह गाथा लेना। निश्चय-व्यवहार का बड़ा झगड़ा है, अनादि का है। व्यवहारमोक्षमार्ग के... मोक्षमार्ग के अर्थात् व्यवहारमोक्षमार्ग साधन को जो साध्यरूप हुआ है, ऐसे निश्चयमोक्षमार्ग का यहाँ कथन किया जाता है। आरोपित मोक्षमार्ग के साधन से अनारोपित साध्य जो यथार्थ निश्चयमोक्षमार्ग है, उसका कथन किया जाता है। अब आया।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा समाहित हुआ आत्मा... अपनी सम्यक् निश्चय शुद्ध श्रद्धा, निश्चय सम्यक् आत्मा की रुचि, शुद्ध उपादान निज शुद्ध स्वभाव की रुचि, वह निश्चयसम्यग्दर्शन है। अपने ज्ञान में स्वसंवेदनज्ञान, ज्ञान का ज्ञान (होना), वह सम्यक् निश्चयज्ञान है और स्वरूप में लीनता वह चारित्र है। उसके द्वारा **समाहित हुआ...** स्थिर हुआ, स्थिर हुआ। यह अंग है, आत्मा अंगी है। आगे अन्दर आयेगा। यह अंग है, तीनों अवयव है और आत्मा, समाहित हुआ आत्मा अंगी है। यह आयेगा इसी और इसी में, १६१ में। समझ में आया? कठिन बात परन्तु भाई! अभी तो निश्चय है नहीं अब, व्यवहार करो... व्यवहार करो। इसलिए यह निकाला। उसकी बात बैठी रह गयी है। यह बात उसे बैठ गयी कि यह व्यवहार ऐसा लगता है साधकपने, ऐसा नहीं है। अध्यात्मदृष्टि हुए बिना, निर्विकल्प अनुभव बिना निश्चयसमकित नहीं होता। अकेली प्रतीति, प्रतीति—श्रद्धा ऐसा वस्तु में नहीं चलता। समझ में आया?

अन्तर ज्ञायकपना चिदानन्द निर्विकल्पस्वरूप के अनुभव में यह आत्मा ही पूर्ण आनन्द है और पूर्ण शुद्ध है, ऐसा भान हुआ, उसमें प्रतीति हो, उसे निश्चयसम्यक्त्व कहते हैं। दूसरे को निश्चयसम्यक्त्व नहीं कहते। इस निश्चयसम्यग्दर्शन के साथ देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, छह द्रव्य की श्रद्धा को व्यवहारसमकित कहा जाता है, वह

मिथ्यात्व नहीं है परन्तु वे लोग ऐसा लगाते हैं कि देव-गुरु... तुम्हारे गाँव में लगाया था, उदयपुर में पुस्तक प्रकाशित की थी। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा को मिथ्यात्व कहते हैं। लो, तब ऐसा (कहा था)। (संवत्) २०१५ के वर्ष। अरे... भगवान! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा तो राग है। उसे परमार्थ धर्म (माने तो मिथ्यात्व है)। व्यवहारधर्म माने, निश्चयधर्मसहित को व्यवहारधर्म माने तो यथार्थ है। व्यवहारधर्म का अर्थ धर्म नहीं। यह चला था न तब उदयपुर में। यह तो उसे क्या हो?

यह अन्तर में आत्मा... कहते हैं कि भगवान आत्मा **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा समाहित हुआ....** तब निश्चयमोक्षमार्ग कहा जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो विकल्प मिथ्यात्व, वह तो यहाँ कहा था। और बहुत लगा कि यह लोग बहुत उसको... तो कहा, विकल्प मिथ्यात्व है। अरे! विकल्प मिथ्यात्व नहीं। विकल्प तो मुनि छठवें गुणस्थान में कुन्दकुन्दाचार्य को भी आया, यह लिखूँ, ऐसा। विकल्प मिथ्यात्व है? विकल्प में अपना निश्चय परमार्थ धर्म मानना, वह मिथ्यात्व है। समझ में आया? विकल्प आता है, उसे ज्ञानी ज्ञान में जानता है। जानना मिथ्यात्व नहीं। राग मिथ्यात्व नहीं, जानना मिथ्यात्व नहीं, व्यवहार मिथ्यात्व नहीं। व्यवहार के राग को परमार्थ धर्म मान लेना, इसका नाम मिथ्यात्व है। समझ में आया? ओहोहो!

तो कहते हैं, **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा समाहित हुआ आत्मा ही...** निश्चय सिद्ध करना है न! तीन बोल-अंग हैं। अब **आत्मा ही जीवस्वभाव में नियत....** अपना जीवस्वभाव ज्ञान, दर्शन जो त्रिकाली, उसमें नियत निश्चय **चारित्ररूप होने के कारण निश्चय से मोक्षमार्ग है।** देखो! समझ में आया? भगवान आत्मा अपना ज्ञान-दर्शन जो शाश्वत् स्वभाव... यह पहले १५४ गाथा में आया था, नियत ज्ञान-दर्शन। ज्ञान-दर्शन शब्द से समकित नहीं लेना। चेतना। ज्ञान विशेषचेतना, दर्शन सामान्यचेतना स्वभाव से भरपूर आत्मा, उसमें एकाकार होकर लीनता प्रगट हो, वह नियत चारित्र है। वही चारित्र मोक्ष का कारण है। समझ में आया? कहाँ गये पण्डितजी? ताराचन्दजी। यह बैठे। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा.... अर्थात् तीन अंग द्वारा। यहाँ तीन अंग निश्चय है, हों! तीन अंग जो अपने हैं—पर्याय, सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र जो निर्विकल्प पर्याय है, उसमें समाहित हुआ, अभेद हुआ। आत्मा, अंग में अंगी एकाकार हो गया। ऐसा **आत्मा ही जीवस्वभाव में....** शब्द तो एक 'ही' शब्द पड़ा है, कोई व्यर्थ शब्द नहीं है। यह तो सिद्धान्त है, मुनियों के महासिद्धान्त। मुनि के मुख में से अकेला आगम झरा है आगम। आगम निकला है, झरा है अकेला। पद्मप्रभमलधारिदेव नियमसार में दो जगह कहते हैं, मेरे मुख में से आगम झरता है। अब यह लोग कहते हैं कि नहीं, पद्मप्रभमलधारिदेव की टीका सच्ची नहीं है। भगवान! तुझे क्या करना है? तेरी दृष्टि के साथ मिलान न खाये तो, ऐसे महामुनि पंच महाव्रतधारी कहते हैं कि हमारे मुख में से आगम झरता है, वे खोटे। अच्छा भाई! समझ में आया? क्योंकि यह सब विषय निरपेक्ष निश्चयरत्नत्रय की बहुत बात करते हैं। स्वभावरत्नत्रय, निश्चयरत्नत्रय, निरुपचार रत्नत्रय, अभ्यन्तर रत्नत्रय, अभेद रत्नत्रय अन्तर में वही एक सच्चा मोक्षमार्ग है। क्योंकि मोक्षमार्ग का अधिकार है न, भाई! नियमसार तो मोक्षमार्ग का अधिकार है न! इतने बोल लिये हैं। सब निकाला है, हों! सब लिखा है। इतनी-इतनी जगह (ऐसा कहा है)। निरुपचार रत्नत्रय, उपचार व्यवहारनय। अभेद रत्नत्रय यह जो कहते हैं। वह यह कहते हैं। अभ्यन्तर रत्नत्रय। समझ में आया? स्वभाव रत्नत्रय, स्वभाव रत्नत्रय। अपना शुद्ध स्वभाव त्रिकाल की श्रद्धा, ज्ञान और लीनता... एकाकार आत्मा अभेद हुआ।

नियत चारित्ररूप होने के कारण.... स्वरूप में निश्चयचारित्र हुआ। **निश्चय से मोक्षमार्ग है।** यह सप्तम गुणस्थान की बात है। बात करते हैं छठवें गुणस्थान में करनेवाले मुनि तो। छठवें गुणस्थान में विकल्प से बात करते हैं, परन्तु यह सप्तम गुणस्थान की बात है।

अब (विस्तार ऐसा है कि), यह आत्मा.... अब विस्तार करते हैं। **वास्तव में कथंचित् (-किसी प्रकार से, निज उद्यम से)....** किसी प्रकार से अर्थात् अपने प्रयत्न से। अनादि से जो निमित्त पर और एक समय की प्रवर्तित पर्याय पर दृष्टि थी और भेदबुद्धि में दृष्टि थी, वह दृष्टि प्रयत्न से अपने द्रव्यस्वभाव में लगायी। उस दृष्टि को

अपने द्रव्यस्वभाव ज्ञायकभाव में लगायी। समझ में आया? **(-किसी प्रकार से, निज उद्यम से)....** निज प्रयत्न से **अनादि अविद्या के नाश द्वारा....** देखो! अपने प्रयत्न द्वारा अनादि अज्ञान का नाश होता है। ऐसे का ऐसे नाश नहीं हो जाता कि दर्शनमोह का नाश हो जाये तो अविद्या का नाश हो जाये, ऐसा नहीं है। यह तो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का ज्ञान कराया है।

भगवान आत्मा वास्तव में किसी प्रकार से अर्थात् शुद्ध द्रव्यस्वभाव-सन्मुख किसी भी प्रकार के प्रयत्न से अभेद का लक्ष्य हुआ। द्रव्य का लक्ष्य कहो, शुद्ध का लक्ष्य कहो, सामान्य का लक्ष्य कहो, ज्ञायक का लक्ष्य कहो, एकरूप का लक्ष्य कहो, अकेला शुद्ध है, उसका लक्ष्य कहो, किसी भी प्रकार से प्रयत्न को उसमें लगाया। समझ में आया? राजमलजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अविद्या—अज्ञान। अविद्या, अज्ञान, मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, विपरीत मान्यता, विपरीत श्रद्धा इत्यादि-इत्यादि। समझ में आया? अविद्या—विद्यमान कायम न टिके, ऐसे अज्ञानभाव को अविद्या कहते हैं। अविद्या बहुत जगह आता है, प्रवचनसार में नहीं? ज्ञेय अधिकार में। ९४ (गाथा) में समझ में आया?

यह आत्मा वास्तव में कथंचित् (-किसी प्रकार से, निज उद्यम से) अनादि अविद्या.... देखो! यह अनादि अज्ञान है। विकल्प, निमित्त में अपना स्वरूप है, यह मान्यता अनादि अज्ञान है। एक विकल्प शुभाशुभ विकल्प उठता है, उसमें अपना अस्तित्व (मानना), वह अज्ञान है। भेदबुद्धि में अनादि अज्ञान पड़ा है, वह अनादि अविद्या, मिथ्यात्व है। अविद्या कहो, मिथ्यात्व कहो। यहाँ अज्ञान से लिया है। अविद्या—अज्ञान के नाश द्वारा अर्थात् मिथ्यात्व के नाश द्वारा अर्थात् विपरीत अभिप्राय के नाश द्वारा अर्थात् स्वरूप का अज्ञान था, स्वस्वभाव शुद्ध आत्मद्रव्य का अज्ञान था, उस अज्ञान के नाश द्वारा, उसे अविद्या के नाश द्वारा कहा जाता है। समझ में आया?

भाई! यह तो आत्मा का निज काम करना हो, उसकी बात है। भूख लगी हो। हमारे पण्डितजी सवेरे कहते थे, पण्डितजी यह राजमलजी लो न! दुःख से थकान लगी

हो, दु:ख से। चार गति की थकान... क्या कहते थे तुम? थकान, थकान लगी हो। आहाहा! अब यह चार गति का दु:ख आकुलता का थकान लगी हो तो स्वरूप की ओर दृष्टि करने का प्रयत्न होता है, नहीं तो नहीं होता। यह कहते हैं योगसार में, नहीं? 'चार गति दु:ख से डरे।' नहीं? पहला श्लोक आता है या नहीं? योगसार। चार गति दु:ख से डरे। सब कहीं याद है अपने को? 'तो तज सब परभाव', चार गति दु:ख से डरे तो तज सब परभाव। देखो! इसमें आया। यह तो ख्याल था। समझ में आया? चार गति के दु:ख। चार गति में स्वर्ग का भी दु:ख। मणिभाई! यह सेठाई का सुख-बुख नहीं, स्वर्ग का भी सुख नहीं, ऐसा वहाँ कहते हैं। कहो, समझ में आया? जेठमलजी! चार गति के दु:ख। नौवें ग्रैवेयक में जाना, वहाँ रहना, वह भी दु:ख है। आहाहा! सातवें नरक में रहना, जाना, वह दु:ख। नौवें ग्रैवेयक में जाना, वह दु:ख। समकिती तो फिर सर्वार्थसिद्धि में जाता है। यहाँ तक तो मिथ्यादृष्टि जाता है। ऊपर जाये तो सम्यग्दृष्टि जाता है। जो दु:ख से भयभीत होकर दृष्टि में से परभाव का त्याग किया, वही वहाँ सर्वार्थसिद्धि में जा सकता है, दूसरे मिथ्यादृष्टि नहीं जा सकते। कहते हैं कि 'चार गति दु:ख से डरे तो तज सब परभाव।' आहाहा! कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : चार गति के दु:ख से डरा....

पूज्य गुरुदेवश्री : दु:ख से डरा, इसका अर्थ क्या? कि यह दु:ख मुझे नहीं चाहिए, बस। आनन्द चाहिए मेरे आत्मा का, यह डर। वहाँ दु:ख है तो यहाँ आनन्द है। समझ में आया? आता है, 'कहै विचच्छन पुरुष सदा मैं ऐक हौं' है न समयसार नाटक मैं? 'अपने रससौं भर्यो अनादि टेक हौं, मोहकर्म मम नांहि नांहि भ्रमकूप है, सुद्ध चेतना सिंधु हमारौ रूप है।'

'कहै विचच्छन पुरुष सदा मैं ऐक हौं
अपने रससौं भर्यो अनादि टेक हौं,
मोहकर्म मम नांहि नांहि भ्रमकूप है,
सुद्ध चेतना सिंधु हमारौ रूप है।'

समझ में आया? विचिक्षण कहो, सम्यग्दृष्टि कहो, सम्यग्ज्ञानी कहो—सब एक

अर्थ में है। तो ऐसा जिसे चार गति के भव से डरकर, ओहो! अपना स्वभाव... प्रभु की भक्ति करते हुए नहीं कहते ? हे नाथ! अब यह दु:ख सहे नहीं जाते। चार गति के दु:ख, हों! ऐसा नहीं कि नरक और पशु में दु:ख है और स्वर्ग में सुख है। धूल में भी नहीं। वहाँ भी दु:खी है आकुलता से। भगवान! यह आकुलता का दु:ख अब सहा नहीं जाता। प्रभु! प्रार्थना करनेवाले भक्त तो ऐसा ही कहे न! कौन दे, कौन ले ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी सुख नहीं। थोड़ा दु:ख होगा न ? जरा भी नहीं, अकेला दु:ख है। अतीन्द्रिय आनन्द अपना निज स्वभाव, उससे विपरीत आकुलताभाव, वह चारों गति में आकुलता ही है। सातवें नरक में हो, नौवें ग्रैवेयक में हो, भगवान के समवसरण में बैठा हो परन्तु अपना त्रिकाली अतीन्द्रिय आनन्द—उससे उल्टी विकल्पदशा, वह सब आकुलता... आकुलता... आकुलता है। समझ में आया ?

तो कहते हैं, **अनादि अविद्या के नाश द्वारा...** देखो! **व्यवहारमोक्षमार्ग को प्राप्त करता हुआ,...** यहाँ से निकालते हैं वे।

मुमुक्षु : अनादि अविद्या के नाश होने से निश्चयसम्यग्दर्शन तो हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। अविद्या के नाश द्वारा व्यवहार पहले प्रगट हुआ, ऐसा कहते हैं। वह तो पण्डित और निकालते हैं, कौन जाने कहाँ से आड़ा-टेढ़ा कहते हैं।

मुमुक्षु : अविद्या का नाश अर्थात् विद्या की उत्पत्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, विद्या की उत्पत्ति। विद्या की उत्पत्ति अर्थात् व्यवहारमोक्षमार्ग की उत्पत्ति।

मुमुक्षु : नहीं, विद्या की उत्पत्ति द्वारा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले व्यवहारमोक्षमार्ग अज्ञान का नाश होने पर... सातवीं गाथा में आया या नहीं ? १०७। मिथ्यात्व का नाश होने पर सात तत्त्व की श्रद्धा व्यवहार है। यह वहाँ आया, वह लगा दे यहाँ। वहाँ ऐसा है नहीं। मिथ्यात्व के नाश में सम्यग्दर्शन जो होता है, वह तो निश्चयसम्यग्दर्शन है। समझ में आया ? अविद्या के नाश

द्वारा सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति, सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति, निश्चय की उत्पत्ति। परन्तु यहाँ तो ऐसा कहा न, द्वारा—नाश द्वारा। परन्तु इसका अर्थ यह है कि अविद्या का नाश हुआ है, सम्यग्ज्ञान चिदानन्द का प्रगट हुआ है, सम्यक् प्रतीति अनुभव की प्रतीति हुई है, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग को प्राप्त करता हुआ। उसे जो विकल्प आया व्यवहार नौ तत्त्व की श्रद्धा का, पंच महाव्रत के परिणाम का, मुनि के योग्य जो है, वह **व्यवहारमोक्षमार्ग को प्राप्त करता हुआ,....** निश्चयवन्त व्यवहारमोक्षमार्ग को पाता हुआ। सेठी! अकेले निश्चय बिना व्यवहार आता है, और अज्ञान का नाश हुआ, वे ऐसा कहते हैं, हों! यह बराबर समझना। इसमें से दो-तीन जगह आया है। समझ में आया? देखो! पृष्ठ-२२१ में पहले आ गया है न? लिखा है। अनादि काल से अनन्त चैतन्य... मूढ़ हुआ था। है न? **अनादि काल से चैतन्य और (अनन्त) वीर्य मुँद गया है, ऐसा वह ज्ञानी (क्षीणमोह गुणस्थान में) शुद्ध...** आया न? तुम्हारे हिन्दी है वह? १५०-१५१ गाथा की टीका। **अनादि काल से चैतन्य और (अनन्त) वीर्य मुँद गया है,...** था। बीच में है। **वह ज्ञानी (क्षीणमोह गुणस्थान में) शुद्ध ज्ञप्तिक्रियारूप से अन्तर्मुहूर्त व्यतीत करके...** वहाँ लगा देते हैं, समझे न? व्यवहारमोक्षमार्ग यहाँ तक है, ऐसा यहाँ लगाते हैं वहाँ। है न यहाँ? क्षीणमोह गुणस्थान। पण्डित ने किया है। समझ में आया? और दूसरी जगह एक है। २२७, २२७ में है कहीं। देखो! (१५५ गाथा)। **अनादि मोहनीय के उदय को अनुसरण कर परिणति करने के कारण...** अपने आ गया है १५५। **अनादि मोहनीय के उदय को अनुसरण कर परिणति करने के कारण उपरक्त उपयोगवाला (अशुद्ध उपयोगवाला) होता है...** अनादि कर्म के निमित्त का अनुसरण करनेवाला... १५५ में आ गया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : वह तो मिथ्यादृष्टि जीव की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि की बात है वहाँ। और २५६ में आ गया। २५६, २५६। २५६ (गाथा १७२) आता है न? उसमें भी आयेगा देखो! **अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण...** है न दूसरा पेरेग्राफ? **अनादि काल से भेदवासित...** इन सब बोलों में विवाद सूझा और विशेष स्पष्टता यहाँ से माँगते हैं, समझो! यहाँ भी **अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण प्राथमिक जीव व्यवहारनय से**

भिन्नसाध्यसाधनभाव को अवलम्बकर... वहाँ भी यह कहते हैं कि अज्ञान तो नाश हुआ, पहले व्यवहारमोक्षमार्ग होता है। देखो! यहाँ आया। **अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण...** इसका अर्थ कि पूर्ण अभेद हुआ नहीं। भेदवासित थोड़ा बाकी है, अनादि से है। ऐसा, ऐसा। भेदवासित (बुद्धि) कोई नयी है, ऐसा नहीं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान हुए, निश्चय हुआ होने पर भी अभी भेदवासित बुद्धि रही है। वह अनादि की है। भेदवासित बुद्धि अनादि की है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान होने पर भी। समझ में आया? भेदवासित बुद्धि को अनादि की कही, क्यों? कि छठे गुणस्थानवाले की भी अभी भेदवासित बुद्धि स्थिरता की है। है या नहीं? उसमें क्या है?

अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण प्राथमिक जीव... देखो! **व्यवहारनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव को अवलम्बकर...** पहले तो चौथे, पाँचवें, छठवें में तो भेदसाधन ही उत्पन्न होता है, ऐसा (वे) कहते हैं। समझ में आया? ऐसा नहीं। अभी तो हिन्दी वाँचन होता है न। गुजराती पड़ा रहा अभी। कहो, समझ में आया? इतनी-इतनी जगह अनादि अनादि है तो अनादि का नाश हुआ तो पहला व्यवहार है, ऐसा इसका अर्थ नहीं लेना। अनादि का अज्ञान नाश हुआ तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान तो है, परन्तु निश्चय सप्तम गुणस्थान है नहीं तो छठवें के योग्य व्यवहार का विकल्प है, उसे यहाँ अनादि भेदवासित बुद्धि का नाश होने के बाद ऐसा व्यवहार होता है, ऐसी बात कही जाती है। राजमलजी! बहुत समझने की बात है, हों! नहीं तो बहुत पढ़े-गुने है, वे भी सामने पड़ेंगे। अपने तो स्पष्ट होता है, किसी व्यक्ति का कुछ काम नहीं। किस अपेक्षा से यहाँ चलता है (यह समझना)। समझ में आया?

तो कहते हैं, १६१, **अनादि अविद्या के नाश द्वारा व्यवहारमोक्षमार्ग को प्राप्त करता हुआ,....** यहाँ यह निकालते हैं कि अनादि मिथ्यात्व का नाश होता है, तब चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें (गुणस्थान में) व्यवहारमोक्षमार्ग पहले आता है। फिर व्यवहार का अभाव होकर बारहवें में निश्चय आता है, ऐसा (वे) कहते हैं। ऐसा नहीं है। सब जगह अनादिवासित है न, अनादिवासित। तो कहते हैं, अनादिवासित बुद्धि का नाश नहीं हुआ तो उसे भी बारहवें में लेना, बारहवें में लेना। पहले व्यवहारमोक्षमार्ग चौथे से

बारहवें में। बारहवें में पूरा हो, ऐसा नहीं। निश्चय तो प्रगट हुआ है परन्तु अनादिभेदबुद्धि यदि सर्वथा नाश पा जाये तब तो केवलज्ञान हो जाये। भेदबुद्धि का अर्थ पर की पर्याय... भेद आदि बुद्धि का नाश होकर अभेद दृष्टि तो हुई है, स्थिरता में अभी भेदवासित बुद्धि रही गयी है, चारित्रमोह की। इतना यदि सर्वथा अभेद हो जाये (तो) पूरा हो गया। बारहवें गुणस्थान से तेरहवें में केवलज्ञान हो जाये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए जरा... करके कहते हैं, चक्कर में पड़े ऐसी बात लोग करते हैं। यहाँ से निकाला है। बड़े पढ़े हुए-गुने हुए कहलाते हैं। उन्हें इस प्रकार की बैठी है न! और यह शैली भी उन्हें इस प्रकार की लगती है। परन्तु ऐसा नहीं है। पहला सिद्धान्त यह, व्यवहार अभूतार्थ। क्या अभूतार्थ मार्ग पहले से शुरु होता है?

मुमुक्षु : लाभ होने के बाद अभूतार्थ आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह व्यवहार भी अभूतार्थ है। अभूतार्थ का अर्थ मोक्षमार्ग है, सच्चा नहीं, वह असत्यार्थ मोक्षमार्ग है। सत्यार्थ प्रगट हुआ है, उसके साथ व्यवहार असत्यार्थ प्रगट हुआ है। असत्यार्थ कहो, झूठा कहो, असत्य कहो या झूठा कहो। समझ में आया? बस, असत्यार्थ मोक्षमार्ग चौथे, पाँचवें, छठवें में शुरु हुआ? झूठा। समझ में आया? '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' त्रिकाल ज्ञायक है, उसे अविद्या का नाश हुआ—उसके आश्रय से अविद्या का नाश हुआ है।

मुमुक्षु : आत्मा के आश्रय बिना अनादि का नाश हो किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : किस प्रकार हो? पर्याय के आश्रय से पर्याय के विकार का नाश होता है? व्यवहारमोक्षमार्ग का लक्षण क्या है? स्वपरप्रत्ययहेतु। तो स्व और पर का हेतु तो विकार हुआ, विकल्प हुआ, शुभराग हुआ। तो क्या शुभराग संवर, निर्जरा का कारण है? समझ में आया? है ही नहीं। यह अविद्या के नाश का कारण वह है? देखो! इस श्लोक में से निकालते हैं। समझ में आया? अनादि अविद्या यहाँ आया, पहले आया, १५६ में आया। देखो, भाई! आचार्य तो ऐसा कहते हैं कि अज्ञान के नाश से तो पहले व्यवहारमोक्षमार्ग आता है, पहला निश्चय कहाँ से आया? परन्तु यह

अविद्या का नाश हुआ, उसमें सम्यग्दर्शन—ज्ञान स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुए, वही निश्चय है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। साथ-साथ में व्यवहार होता है, जब तक निश्चय पूर्ण न हो, सप्तम गुणस्थान के योग्य निश्चय न हो, तब तक निश्चय दर्शन, ज्ञान, चारित्र के साथ ऐसा व्यवहार साथ में होता है। साथी। सथवारो कहते हैं ? मार्ग में चलता है तो साथ में होता है न ? संगाती। परन्तु वह संगाती भिन्न है, हों ! यह चलने की क्रिया भिन्न है, उसकी क्रिया भिन्न है। संगाती संगाती से चलता है, वह स्वयं से चलता है। इसी प्रकार निश्चय अपने स्वभाव से चलता है और व्यवहार विकल्प से, पर के लक्ष्य से चलता है। दोनों एक साथ रहते हैं। समझ में आया ?

इस शब्द में से, मिथ्यात्व का नाश होने के बाद पहले तो व्यवहारमोक्षमार्ग ही होता है। बस। निश्चय नहीं। ऐसा नहीं है। निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान और स्वरूपाचरण आदि तो हुए हैं और भूमिकायोग्य चौथे, पाँचवें, छठवें में स्थिरता भी हुई है। उसके (—अविद्या के) **नाश द्वारा व्यवहारमोक्षमार्ग को प्राप्त करता हुआ, धर्मादिसम्बन्धी तत्त्वार्थ-अश्रद्धान के,...** देखो ! क्या (कहा) ? त्याग। अतत्त्व का त्याग। अर्थात् धर्मादिसम्बन्धित अतत्त्वार्थ श्रद्धान के और **अंगपूर्वगत पदार्थोंसम्बन्धी अज्ञान के और अतप में....** अर्थात् मुनिपने से विरुद्ध जो व्यवहारतप, उसकी **चेष्टा के त्याग...** व्यवहार के त्याग के लिये। व्यवहार जो विरुद्ध था, तत्त्वार्थश्रद्धान से जो विरुद्ध था, सच्चा व्यवहार तत्त्वार्थश्रद्धान से विरुद्ध का त्याग। अंगपूर्वगत व्यवहारज्ञान से विरुद्ध का त्याग और मुनि(पने के) व्यवहार से विरुद्ध जो भाव था, उसका त्याग। समझ में आया ? क्या कहा ?

धर्मादिसम्बन्धी तत्त्वार्थ-अश्रद्धान के,... अश्रद्धान लिया न। और **अंगपूर्वगत पदार्थोंसम्बन्धी अज्ञान....** और अतप में मुनिपने की चेष्टा से विरुद्ध, जो मुनिपने का व्यवहार, उससे विरुद्ध (व्यवहार) था, उसके त्याग के लिये, **तथा धर्मादिसम्बन्धी तत्त्वार्थश्रद्धान के,...** देखो, सुलटा लिया। ग्रहण, पहले का त्याग। अश्रद्धान का त्याग, अज्ञान का त्याग, अतप के व्यवहार का त्याग। और व्यवहार तत्त्वार्थश्रद्धान का ग्रहण,

अंगपूर्वगत पदार्थोंसम्बन्धी व्यवहारज्ञान का ग्रहण और मुनि की व्यवहारचेष्टा विकल्प का ग्रहण, व्यवहारविकल्प का ग्रहण। समझ में आया? अभी तो व्यवहार में त्याग-ग्रहण लिया। तत्त्वार्थ अश्रद्धान का त्याग, उस सम्बन्धी के अज्ञान का त्याग और व्यवहारचारित्र है, उससे विरुद्ध का त्याग। व्यवहारचारित्र से विरुद्ध भाव का त्याग। और व्यवहारश्रद्धा का ग्रहण, व्यवहारज्ञान का ग्रहण, पंच महाव्रतादि व्यवहारचारित्र का ग्रहण। यह त्याग-ग्रहण, त्याग-ग्रहण विकल्पात्मक है या नहीं? समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ यह बात नहीं। दृष्टि तो है ही।

मुमुक्षु : अज्ञान में से ज्ञान में आया....

पूज्य गुरुदेवश्री : आया, यहाँ तो अभी अज्ञान के त्याग में व्यवहारज्ञान के ग्रहण में आया। यहाँ यह बात है। यहाँ तत्त्वार्थ अश्रद्धान के त्याग में व्यवहार तत्त्वार्थश्रद्धान के ग्रहण में आया। भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इससे विरुद्ध का त्याग और इस जाति के विकल्प का व्यवहार का ग्रहण। व्यवहार से विरुद्ध का त्याग और व्यवहार के भाव का ग्रहण। यहाँ तो त्याग-ग्रहण व्यवहार की बात में चलता है। निश्चय में तो त्याग-ग्रहण है ही नहीं। स्वरूप की जितनी दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता हुई, उसमें त्याग-ग्रहण है ही नहीं। सप्तम गुणस्थान में स्थिर हो गया, उसमें त्याग-ग्रहण है ही नहीं। छठवें गुणस्थान में निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तो निर्मल हुए, वह तो निश्चय है। भले नीचे मोक्षमार्ग न कहो, मोक्षमार्ग सातवें में कहो। नीचे तो शुद्ध परिणति शुरु हो गयी है, परन्तु उसके साथ तत्त्वार्थ अश्रद्धान का त्याग—व्यवहार तत्त्वार्थ अश्रद्धान का त्याग। व्यवहार अंगपूर्वगत पदार्थों सम्बन्धी अज्ञान का त्याग और व्यवहार विकल्प जो मुनियोग्य जो व्यवहारचारित्र का है, उससे विरुद्ध जो अतप, उसका त्याग, ऐसे **त्याग हेतु से तथा धर्मादिसम्बन्धी तत्त्वार्थश्रद्धान के, अंगपूर्वगत पदार्थोंसम्बन्धी ज्ञान के और तप में चेष्टा के...** व्यवहार हों यहाँ। **चेष्टा के ग्रहण हेतु से (-तीनों के त्याग हेतु तथा तीनों के ग्रहण हेतु से)....**

तीनों में त्याग और तीनों में ग्रहण ऐसा विकल्प आता है, उसे व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया? जरा यह सूक्ष्म बात है व्यवहार की।

व्यवहार में भी त्याग-ग्रहण का विकल्प है। व्यवहार से विरुद्ध का त्याग और व्यवहार के विकल्प का ग्रहण, ऐसा कहने में आया है। क्या? निश्चय दृष्टि, ज्ञान, स्थिरता है और उसमें जब तक व्यवहार आता है तो विरुद्ध व्यवहार का त्याग और जो व्यवहार के योग्य विकल्प है, उसका ग्रहण। इसका विवेक बताते हैं। हेय-उपादेय व्यवहार में। विरुद्ध व्यवहार हेय। अविरुद्ध के योग्य जो व्यवहार है, वह उपादेय। यहाँ व्यवहार की बात चलती है। समझ में आया? साधन व्यवहार है, उसमें ग्रहण-त्याग का विकल्प है। साध्य निश्चय पूर्ण हो, वहाँ तो है नहीं, परन्तु यहाँ निश्चयपरिणति जितनी प्रगट हुई है, उसमें भी त्याग-ग्रहण का विकल्प है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विपरीत का अभाव, व्यवहार से विपरीत का त्याग और व्यवहार का वास्तविकता का ग्रहण। व्यवहार के विपरीत का त्याग और व्यवहार की वास्तविकता का ग्रहण। यहाँ व्यवहार की बात चलती है। समझ में आया? धन्नालालजी! यह तो अभी व्यवहार की बात चलती है। निश्चयपूर्वक का व्यवहार कैसा है, (उसकी बात चलती है)। समझ में आया? यह तो सप्तम गुणस्थान अपने १०७ गाथा में आया न। तत्त्वार्थ अश्रद्धान का अभाव होकर तत्त्वार्थश्रद्धान (होना)। आया था न मिथ्यात्व का नाश होकर। परन्तु वहाँ तो व्यवहार की बात है। यहाँ व्यवहार की बात स्पष्ट करते हैं। इसमें अधिक स्पष्टीकरण है। समझ में आया?

भगवान आत्मा अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्य की अभेद दृष्टि हुई और ज्ञान स्वसंवेदन हुआ और स्वरूप में स्थिरता अभेद चारित्र का अंश हुआ। निश्चययोग्य जो मोक्षमार्ग है वह निश्चयमोक्षमार्ग नहीं। तो ऐसी भूमिका में जो निश्चय शुद्ध परिणति है, वह तो संवर, निर्जरा है। साथ में ऐसा विकल्प उठता है कि व्यवहारश्रद्धा के विपरीत भाव का त्याग और अविपरीत का ग्रहण, वह विकल्प। व्यवहार अज्ञान का त्याग और व्यवहारज्ञान का ग्रहण। व्यवहार तीव्र राग का त्याग और व्यवहार शुभराग का ग्रहण। समझ में

आया? यह व्यवहार विकल्प, निश्चय हो वहाँ अभी ऐसे त्याग-ग्रहण का विकल्प आता है। जिसे भिन्नसाध्यसाधन कहा था, उसे छोड़कर स्वरूप में स्थिरता होती है, ऐसा कहने में आता है। देखो! समझ में आया?

(-तीनों के त्याग हेतु तथा तीनों के ग्रहण हेतु से).... कौन तीन? तत्त्वश्रद्धान, तत्त्वज्ञान और महाव्रत के परिणाम, इन तीनों का ग्रहण। इनसे विरुद्ध का त्याग, इनसे विरुद्ध का त्याग। समझ में आया? तीव्र अशुभराग का त्याग, अज्ञान का—जो पदार्थ का बोध व्यवहार सम्यग्ज्ञान है, उससे विरुद्ध अज्ञान का त्याग और तत्त्वश्रद्धान जो विपरीत है व्यवहार, वह सुलटे तत्त्वश्रद्धान का ग्रहण, उल्टे का त्याग, इसका नाम विकल्परूप व्यवहार कहा जाता है।

मुमुक्षु : व्यवहार तो स्वयं दोषस्वरूप ही है, और उसमें....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें परन्तु दोषस्वरूप में भी है। यह आयेगा अभी, उसमें भी प्रायश्चित्त लेंगे और उसमें भी सब विधि है। व्यवहार पंच महाव्रत के परिणाम में भी जो अतिचार लगते हैं, उसमें दोष नहीं लगता? उस भूमिका के योग्य शुभभाव हो, उसमें भी... लेंगे, देखो! यहाँ आता है न? सब बात है। देखो!

विविक्त भावरूप व्यापार करता हुआ,... देखो, है न नीचे नोट। 'विवेक से पृथक् किये हुए (अर्थात् हेय और उपादेय का विवेक करके...)' यह व्यवहार के हेय उपादेय, हों! क्या? निश्चय उपादेय और व्यवहार हेय, ऐसा नहीं। व्यवहार में क्या ग्रहण करनेयोग्य है और क्या छोड़नेयोग्य है, ऐसा हेय-उपादेय का विवेक करके '(व्यवहार से उपादेयरूप जाने हुए)...' देखो! व्यवहार से उपादेय। विकल्प आया नौ तत्त्व की श्रद्धा का, नौ तत्त्व के ज्ञान का, पंच महाव्रत के परिणाम का। '(जिसने अनादि अज्ञान का नाश करके शुद्धि का अंश प्रगट किया है, ऐसे व्यवहारमोक्षमार्गी / सविकल्प जीव को...' देखो! 'निःशंकता-निःकांक्षा-निर्विचिकित्सादि भावरूप...' विकल्प... विकल्प आठ व्यवहार। 'स्वाध्याय-विनयादि भावरूप...' विकल्प स्वाध्याय आदि, गुरु का विनय आदि। 'और निरतिचार व्रतादि भावरूप...' यह शुभविकल्प की बात है। उसमें 'निरतिचार व्रतादि भावरूप व्यापार भूमिकानुसार होता है तथा किसी कारण से

उपादेय भावों का (—व्यवहार से ग्राह्य भावों का) त्याग हो जाने पर...' अतिचार लगने से। व्यवहार में अतिचार लगने से, व्यवहार में दोष लगने से 'और त्याग भावों का उपादान अर्थात् ग्रहण हो जाने पर...' शुभ का त्याग और अशुभभाव आ जाने पर 'उनके प्रतिकाररूप प्रायश्चित्तादि विधान भी होता है।' व्यवहार में।

मुमुक्षु : इसका अर्थ तो ऐसा हुआ कि व्यवहार निःशंकादि....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु होता ही है। उसमें व्यवहार विवेक न हो तो व्यवहार भी सच्चा नहीं है। समझ में आया? निश्चय में तो विकल्प का त्याग ही है, परन्तु व्यवहार में उस भूमिका के योग्य नौ तत्त्व की श्रद्धा (हो), विपरीत श्रद्धा नहीं। एक द्रव्य है और अमुक द्रव्य है और एकान्त वेदान्त कहता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? एक ही आत्मा है, ऐसा नहीं। नौ तत्त्व है। नौ तत्त्व से विरुद्ध का त्याग, अविरुद्ध का ग्रहण। नौ तत्त्व के यथार्थ ज्ञान का आदर, विपरीत ज्ञान का त्याग, पंच महाव्रत का ग्रहण, उससे (विरुद्ध) अशुद्धभाव का त्याग। उसमें भी दोष लग जाये—शुभभाव में, त्याग का ग्रहण हो जाये और ग्रहण का त्याग हो जाये शुभ में, तो प्रायश्चित्त लेने का विकल्प व्यवहार में आता है। यह सब विकल्प व्यवहार में आते हैं। समझ में आया? लो,

किसी कारण से ग्राह्य का त्याग हो जाने पर तथा त्याज्य का ग्रहण हो जाने पर उसके प्रतिविधान का अभिप्राय करता हुआ,... बस, उसका प्रायश्चित्त लेता हुआ। वहाँ तक व्यवहार आया। अब फिर निश्चय कहते हैं, अब आयेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १५, रविवार, दिनांक - २३-०८-१९६४, गाथा-१६१ प्रवचन-९

आज का दिन श्रावण शुक्ल-१५ (पूर्णिमा) है न! अकम्पनाचार्य को उपसर्ग हुआ था। उसमें किसी का प्रश्न था कि यह विष्णुकुमार ने किस प्रकार ऐसा किया? विष्णुकुमार तो मुनि थे तो ऐसा कैसे किया? वेश बदला, ब्राह्मण का वेश लिया और कपट किया कि ऐसी मेरी जमीन मुझे दो। तो उस समय मुनि का ऐसा उपसर्ग देखकर अपनी पर्याय की योग्यता से ऐसा विकल्प आया। मुनिपना नहीं रहा। समझ में आया? ७०० मुनियों का बहुत दुःख देखकर उनको विकल्प आया कि अहो! इन मुनि को इतना उपसर्ग है, मेरे पास विद्या है तो मैं इनको मुक्त करूँ, ऐसा विकल्प छठवीं भूमिका में मुनि को नहीं आ सकता। मुनिपना तो उनसे छूट गया। सम्यग्दर्शन रह गया। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, स्वरूपाचरण रहने में कोई बाधा नहीं। परन्तु मुनिपने में ऐसा (नहीं हो सकता)। परन्तु ऐसा उपसर्ग देखकर... शास्त्रकार भी उनकी प्रशंसा-अनुमोदना करते हैं परन्तु यह छल देखकर दूसरे मुनियों को ऐसा करना उचित नहीं, उचित नहीं। समझ में आया? और ऐसा बन जाता है। वह कहीं विकल्प आया, इसलिए बना, यह तो जरा समझाने की बात है। वहाँ ऐसा उपसर्ग मिटने का स्वकाल ही परमाणुओं में था, ऐसी योग्यता थी तो यह विष्णुकुमार मुनि उसमें निमित्त हो गये। उनसे वहाँ हुआ, ऐसा कहना वह व्यवहारनय का कथन है। शास्त्र की बहुत बातें समझना लोगों में ऐसी अटपटी हो गयी है कि लो, उनसे ऐसा हुआ। ऐसा नहीं है। मुनि है। मुनिपना रहा नहीं। मुनि तो वीतरागी मुनि होते हैं। किसी को दुःख देना या ऐसा कपट करके वामनरूप धारण करना, ऐसा मुनि को नहीं होता।

वीतरागी महामुनि, तीन कषाय का अभाव है। ओहो! अनन्त शान्ति में झूलते हैं। महान सन्त पदवी चारित्र पदवी है तो अनन्त आनन्द में ऐसे झूलते हैं। शान्त... शान्त... शान्त... अकषाय स्वभाव में इतने लीन हो गये, वीतरागदशा प्रगट हुई है। संज्वलन का जरा थोड़ा विकल्प-दोष है, प्रमत्त का, परन्तु अन्दर में तीन कषाय के अभाव में आत्मरस में लवलीन स्थित हैं। तरबोळ समझते हो? तरबोळ अर्थात् क्या? जैसे पूरणपोली बनाते हैं न, घी में डालकर ऐसे उठावे। इसी प्रकार मुनि को तो वीतरागरस

में, दुनिया में क्या होता है और क्या होगा, इसकी कुछ पड़ी नहीं है। अन्तर में अपनी अकषायी शान्ति वेदते हैं—अनुभव करते हैं। उसमें ऐसा कोई प्रकार आ गया तो मुनिपना वहाँ से हट गया। परन्तु व्यवहार में प्रशंसा की जाती है कि ओहो! विष्णुकुमार ने ऐसा किया और बच गये। यह तो उनके साता का उदय था और ऐसा निमित्त आ गया। तो निमित्त से हुआ है, ऐसी बात नहीं है। ऐसी बात कथा तो सब जानते हैं। आज के दिन अकम्पनाचार्य को दुःख हुआ और मुनि को कह दिया कि किसी से (वाद-विवाद) नहीं करना। यह भी एक व्यवहार का शैली है। समझ में आया? किसी से विवाद नहीं करना। नहीं तो संघ पर आज बड़ा उपद्रव है। यह तो उन्हें खबर नहीं थी? कि उपद्रव आनेवाला है। परन्तु जब ऐसा विकल्प आता है तो मुनि को कहा कि किसी से वाद-विवाद नहीं करना। आज संघ पर विरोध है, उपद्रव का कारण है। ऐसे विकल्प की स्थिति है। बन गया, जानते हैं विकल्प को। आया और बाहर में जैसा बनने का होगा वैसा होगा। हमारे कर्तव्य से बाहर में कुछ होता है, (ऐसा नहीं है)। बाहर के कारण से हमको विकल्प आया, ऐसा भी नहीं है। इस प्रकार बनने का था तो हमको विकल्प आया तो वह कर्ता और यह विकल्प कार्य है, ऐसा नहीं है। अपनी निर्बलता से ऐसा विकल्प आया, मुनि को शुभभाव आया। परन्तु उस दशा में मुनि की ऐसी योग्यता नहीं। फिर प्रायश्चित्त लेकर मुनि हो गये। बाद में तो आराधकमरण हो गया।

मुनि जब तक प्रमत्त अवस्था में हैं, तब तक की दशा यहाँ चलती है। पश्चात् अप्रमत्तदशा आती है। देखो! अपने परसों प्रमत्त तक की बात आयी। देखो! एक सौ और... गाथा कौन सी है? १६१। मुनि हैं, उन्हें आत्मज्ञान तो अन्तर से हुआ है। २३८ पृष्ठ। अन्तर में शुद्ध निर्विकल्प अनुभव (तो हुआ है)। पहले अनादि से मिथ्यात्व का नाश होकर अपने निर्विकल्प आनन्द के रस की मिठास का स्वाद आ गया है। वह तो सम्यग्दर्शन की भूमिका में होता है। समझ में आया? चौथे गुणस्थान में अपना आनन्दस्वरूप नित्यानन्द प्रभु, बुद्धिपूर्वक राग से हटकर शुद्ध चैतन्य की सत्ता का ज्ञानचेतना का भान, ज्ञान में ज्ञान की वेदन की दशा चौथे गुणस्थान से शुरु हो जाती है। पश्चात् आगे बढ़कर मुनि हुए तो तीन कषाय का अभाव है और छठवें गुणस्थान की दशा में क्या है, वह बात यहाँ चलती है।

इसमें व्यवहार से जो ग्रहण करनेयोग्य व्यवहारश्रद्धा, आचारांग आदि का व्यवहारज्ञान और राग की मन्दता के पंच महाव्रतादि परिणाम, उन्हें ग्रहण किया, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। व्यवहार को ग्रहण किया और उससे विरुद्ध का त्याग किया। उसका विरुद्ध (अर्थात्) कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की श्रद्धा, ज्ञान और तीव्र राग का त्याग, शुभराग का ग्रहण,—ऐसा छठवें गुणस्थान में प्रमत्तदशा की भूमिका में ऐसे शुभ विकल्प का ग्रहण किया, ऐसा कहा, व्यवहार को ग्रहण किया, व्यवहाररत्नत्रय को। ग्राह्य। राग तो ग्राह्य है नहीं न! आया या नहीं उसमें? समझ में आया? ग्रहण हेतु से और **विविक्त भावरूप व्यापार करता हुआ,...** परसों आ गया है। त्याग हेतु से और ग्रहण हेतु से, दो शब्द आये थे अन्दर। २३७ पृष्ठ पर।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तो अपनी दशा में है। तदुपरान्त... २३७ में आ गया था। तत्त्वार्थ अश्रद्धान का, अंगपूर्वगत अज्ञान का और अतप चेष्टा का त्याग। उनके त्याग हेतु और धर्मादि आदि श्रद्धान, अंगपूर्व ज्ञान और तप में चेष्टा के ग्रहण के लिये। त्याग-ग्रहण हो गया। ऐसा छठवें गुणस्थान में विकल्प में शुभ का ग्रहण और अशुभ का त्याग, ऐसी भूमिका प्रमत्तदशा में वर्तती है। कथनशैली क्या कहे? ग्राह्य अर्थात् शुभराग आया, उसे यहाँ ग्राह्य कहा और अशुभराग छूट गया, उसे यहाँ त्याग कहा। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहारमोक्षमार्ग को साध्यरूप से....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह साधन निमित्तरूप से, निमित्तरूप से। साधनरूप से। व्यवहारमोक्ष का साध्य है निश्चय और निश्चयमोक्ष का साधन है व्यवहारमोक्षमार्ग। व्यवहारनय से साधन है। निश्चय से साधन नहीं। यह आगे आयेगा। कर्ता, कर्म, करण यह आगे गाथा में आयेगा। १६२ में आयेगा। १६२ में कर्ता, कर्म, करण के अभेद के कारण से अपना आत्मा... है? २४० पृष्ठ, अन्तिम लाईन, अन्तिम लाईन। अपना ही आत्मा अपने स्वभाव का कर्ता होकर अपने स्वभाव का ही साधन होकर और अपने स्वभाव का ही कार्य करता हुआ अभेद से अपने अनुभव में आत्मा करता है। समझ में आया? परन्तु जब तक सातवीं भूमिका हुई नहीं, निर्विकल्प सप्तम गुणस्थान के योग्य

निश्चयमोक्षमार्ग नहीं हुआ तो छठवें गुणस्थान में ऐसा व्यवहार का ग्राह्य और अव्यवहार अर्थात् उससे विरुद्ध का त्याग। ऐसा विकल्प आता है, उसमें भी त्याग का ग्रहण हो जाने पर... है न? और ग्राह्य का त्याग हो जाने पर। २३८ पृष्ठ पर पहली लाईन।

ग्राह्य का त्याग हो जाने पर... जो पंच महाव्रत व्यवहारश्रद्धा से विरुद्ध का त्याग किया है। **ग्राह्य का त्याग हो जाने पर...** व्यवहार जो ग्रहण किया है, इससे राग जरा मन्द हुआ था, वह तीव्र हो गया और **त्याज्य का ग्रहण...** अशुभ त्याज्य है, उसका—अशुभ का जरा ग्रहण हो गया। कठिन। समझ में आया? व्यवहाररत्नत्रय में व्यवहाररत्नत्रय को ग्रहण किया, उससे विरुद्ध का त्याग किया। अब ग्राह्य में जरा दोष लगा तो ग्राह्य का थोड़ा त्याग हुआ और अग्राह्य जो अशुभ अग्राह्य है—त्याज्य है, उसका थोड़ा ग्रहण हो गया। ऐसा रागभाव आया। कहते हैं कि क्रमबद्ध में ऐसा कैसा? भाई! सुन तो सही। आता है, उसकी बात है यहाँ। नवरंगभाई! एक ओर फिर क्रमबद्ध तो अभी आ गया। और यह कहाँ से आया?

ग्राह्य का त्याग हो जाने पर तथा त्याज्य का ग्रहण हो जाने पर उसके प्रतिविधान का अभिप्राय करता हुआ,.... देखो! उसका छेद करने का विकल्प करता हुआ कि ऐसा अशुभभाव आ गया। ऐसा न हो। शुभभाव मन्द हो गया, छूट गया, ऐसा न हो ऐसा प्रतिविधान—प्रायश्चित्त का विकल्प उस भूमिका में छठवें गुणस्थान में आता है। व्यवहार की कथनी ऐसी है। निश्चय समझे बिना उसमें घुस जाये कि विकल्प व्यवहार से ग्राह्य है, व्यवहार से ग्राह्य है। निश्चय से तो व्यवहार की हेयबुद्धि है। व्यवहाररत्नत्रय की भी सम्यग्दृष्टि को अन्दर हेयबुद्धि है, परन्तु व्यवहार में विवेक कराया है। व्यवहारश्रद्धान, व्यवहारज्ञान और व्यवहार पंच महाव्रत के परिणाम ग्रहण किये, उससे विरुद्ध का त्याग किया। समझ में आया?

प्रतिविधान का अभिप्राय... अभिप्राय शब्द से विकल्प **करता हुआ...** करता हुआ। भाषा देखो न! एक ओर कहे कि ज्ञानी राग को करता नहीं। समझ में आया? यहाँ कहे कि ऐसा विकल्प करता हुआ, दोष लगा, उसका प्रायश्चित्त करता हुआ। भाई! व्यवहार से क्या कहे? परिणमन में ऐसा आता है न? तो परिणमता है तो कर्ता

हुआ, ऐसा कहने में आया है। विकल्प का ऐसा परिणमन है या नहीं? ओहोहो! समझ में आया? मित्रसेनजी! व्यवहार-निश्चय में बहुत झगड़े हैं। व्यवहार-निश्चय का झगड़ा निकल गया। यहाँ ऐसी सब बात है, लो। समझ में आया? और जब इतने विकल्प में वर्तता था, वहाँ तक उस विकल्प को व्यवहारसाधन कहा और सप्तम गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प मोक्षमार्ग को साध्य कहा। भिन्नसाध्यसाधन, भिन्नसाध्यसाधन। साध्य भी निर्मल है, साधन राग है तो वह भिन्नसाध्यसाधन हो गया। समझ में आया?

अब, देखो! यह शब्द बहुत महत्त्व का है। यह लोग अभी कहते हैं न, सातवें में निश्चय नहीं होता, निश्चय तो बारहवें में होता है या पूर्व में होगा, लो न! यहाँ तो क्षपकश्रेणी से आगे बारहवें में जाये तो वापस न गिरे। और यहाँ तो कहते हैं कि गिर जाता है, ऐसा कहेंगे। छठे गुणस्थान में जो आत्मशान्ति सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक वेदन में आती है, उसमें जो विकल्प के त्याग-ग्रहण का भाव आया, वह छूट गया। अन्तर अनुभव में जब गया, निर्विकल्प शुद्ध उपयोग सप्तम गुणस्थान निश्चयमोक्षमार्ग की भूमिका के योग्य जो आया तो **जिस काल में...** जिस समय में **और जितने काल...** जिस समय में और जितना काल। जितना काल वहाँ सप्तम गुणस्थान में रहने का काल है, वह काल, उस काल में। उतने **काल तक विशिष्ट भावनासौष्ठव के कारण....** खास / विशिष्ट श्रेष्ठ निर्मल शुद्धभावना। भावना शब्द से (आशय है) एकाग्रता। सप्तम गुणस्थानयोग्य एकाग्रता हो गयी। छठवें गुणस्थान में जब यह भिन्नसाध्यसाधन में वर्तता था, तब तो उसकी भूमिका की बात की। (उसे) उल्लंघकर, उल्लंघकर, कषाय के कण को उल्लंघकर। यह प्रवचनसार में आता है। समझ में आया? व्यवहाररत्नत्रय कषाय का कण है। पण्डितजी! कषाय का कण। ग्यारहवीं गाथा में प्रवचनसार में (आता है)। उस कण को उल्लंघकर शुद्ध साम्य शुद्ध उपयोग चारित्र को मैं अंगीकार करता हूँ, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य ने वहाँ पहले प्रवचनसार में कहा है। वह बात यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

जिस काल में... जिस समय में। जिस काल में अर्थात् जिस समय में। **जितना काल...** उस समय में जितना काल है, उतना (काल)। देखो, जिस काल में, ऐसा आया

है। सप्तम होनेयोग्य काल में जितना काल उसमें रहा, **विशिष्ट भावनासौष्ठव के...** सौष्ठव अर्थात् विशेष श्रेष्ठ भावना, विशेष शुद्ध भावना, विशेष प्रकार की उत्तम भावना। एकाग्र, हों! भावना शब्द से विकल्प नहीं। भावना शब्द से विकल्प नहीं, स्वरूप में स्थिरता हो गयी, जमावट हो गयी। पूरा चैतन्य गोला मुनि को क्षण में छठवाँ, क्षण में सातवाँ आता है तो सातवें में पूरा गोला भिन्न हो गया। मैं अनुभव करता हूँ, ऐसा विकल्प भी वहाँ नहीं है। मैं मुनि हूँ, ऐसा भी विकल्प नहीं है। समझ में आया? जैसे चौथे गुणस्थान में प्रथम अनुभव के काल में मैं अनुभव करता हूँ, मैं आनन्द लेता हूँ, ऐसा भी विकल्प नहीं है।

मुमुक्षु : उसे उल्लंघ गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बुद्धिपूर्वक का चौथे में उल्लंघ गये। यहाँ भी बुद्धिपूर्वक छठवें में जो संज्वलन का था, संज्वलन का था, उसे उल्लंघ गये और अन्दर में भावना शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... चैतन्य की दीवार पकड़कर इतना एकाकार लीन हो गये।

स्वभावभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र.... देखो, भाषा!

मुमुक्षु : वह विभावभूत था।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह विभावभूत। व्यवहाररत्नत्रय, वह स्वपरप्रत्यय विकल्प है। आहाहा! इतनी तो स्पष्ट बात है। अब स्वपरप्रत्यय को मोक्षमार्ग चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें में लेना... क्या है? क्या हो गया पंचम काल में? पण्डितजी! स्वपरप्रत्यय है न व्यवहाररत्नत्रय, स्वपरप्रत्यय। यह आ गया और अभी आयेगा। स्वपरप्रत्यय विकल्प है। अपने अशुद्ध उपादान में निमित्त के लक्ष्य से विकल्प-शुभराग उत्पन्न होता है, उसे व्यवहाररत्नत्रय कहा जाता है और निश्चयरत्नत्रय, वह वास्तविक मोक्षमार्ग है। व्यवहाररत्नत्रय निमित्त को उपचार से व्यवहारमोक्षमार्ग कहा गया है। है नहीं, उसे कहा गया है। यह देखो यह **स्वभावभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र....** स्वभावरत्नत्रय आया। छठवें में सम्यग्दर्शन-ज्ञान था और स्वरूप की स्थिरता भी उस भूमिका के योग्य थी और विशेष बढ़कर **स्वभावभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र....** जैसा अपना स्वभाव निर्मल शुद्ध है, ऐसी स्वभावभूत पर्याय निर्विकल्प वेदन, आनन्द के वेदन की प्रतीति, ज्ञान और रमणता आ गयी। ऐसी स्वभावभूत—जैसा द्रव्य-गुण में स्वभाव था, वैसी पर्याय में

वीतरागी पर्याय स्वभावभूत दर्शन, ज्ञान, चारित्र की हुई तो **स्वभावभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के साथ....** समझ में आया?

अंग-अंगीभाव से परिणति द्वारा... अंग-अंगीभाव से परिणति द्वारा। अंगी आत्मा... देखो, नीचे है। आत्मा अंगी है और स्वभावभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह अंग—अवयव है। आत्मा अवयवी—अंगी और निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उसके अंग अर्थात् अवयव हैं। समझ में आया? यह और अवयव होंगे मोक्षमार्ग में? शरीर में तो अवयव होते हैं, यह हाथ और ऐसे... समझ में आया? कल समझाते थे। कल... अवयव-अवयवी धर्मचन्दभाई लड़कों को (समझाते थे)। उसमें बड़े भी थे। है न? वे लेते थे। आत्मा द्रव्य है, उसका ज्ञान एक अंग है, अंग है, अंश है। और ज्ञान जब अंशी है, तब पाँच पर्याय उसके अंश हैं। पाँच पर्याय में जब केवलज्ञान अंशी है तो मतिज्ञान उसका अंश है। समझ में आया? तीसरी कक्षा है न? कौन सी कक्षा है धर्मचन्दभाई की? प्रथम, प्रथम। वह अच्छा समझाते थे। कौन है उसमें? सभा में है या नहीं उसमें बैठनेवाले? विद्यार्थी। उन्होंने क्या कहा? ठीक कहते थे। आत्मा, वह अंगी है—अवयवी है और उसका एक ज्ञानगुण भिन्न करके लो तो उसका अवयव है, अंग है।

इसी प्रकार आत्मा अंगी है, और श्रद्धागुण उसका एक अंग अर्थात् अवयव है। इसी प्रकार भगवान आत्मा अंगी है तो चारित्रगुण उसका एक अवयव—अंग है। गुणरूप से, हों! फिर जब-जब पर्याय प्रगट हुई तो वह गुण श्रद्धागुण की जो पर्याय प्रगट हुई, वह एक गुण का अवयव—अंश है। समझ में आया या नहीं? लो, एल.एल.बी. वालों को जरा विचार करना पड़े। यहाँ तीन बोल लिये न? उन तीनों को अंग कहा और आत्मा को अंगी कहा। समझ में आया? क्योंकि एक सम्यग्दर्शन की पर्याय वह गुण का एक अंश है, सम्यग्ज्ञान की पर्याय वह अपने गुण का एक अंश है। सम्यक्चारित्र की पर्याय गुण का एक अंश है। तीनों अंश मिलकर एक मोक्षमार्ग होता है। वह मोक्षमार्ग तीनों अंग है, आत्मा अंगी है, कठिन बात, भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : उत्तमवाले को तो आवे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हमारे भाईसाहब ने कहा कि उत्तमवाले को तो आता होगा। समझ में आया? धर्मचन्दजी!

भगवान आत्मा वस्तु है न, वस्तु, तो एक-एक गुण उसका अंग कहो, अवयव कहो, अंश कहो। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा एक पदार्थ—अंगी—वस्तु—अवयवी है तो उसमें अनन्त गुण हैं, वे उसके अवयव हैं। शरीर अंगी तो यह उसके अवयव हैं। हाथ, पैर, अँगुली अवयव हैं। परन्तु यह अवयव की अलग बात है, हों! भिन्न-भिन्न रहते हैं। यह तो दृष्टान्त देना है। आत्मा एक समय में अनन्त गुण का पिण्ड वस्तु, वह अंगी है, अवयवी है और उसके अनन्त गुण उसके अवयव हैं, अंश हैं, भाग हैं। तीन शब्द एकार्थ में है। समझ में आया? वस्तु की अपेक्षा से श्रद्धागुण जो अवयव कहा, उसकी सम्यग्दर्शन पर्याय प्रगट हुई, गुण का एक अवयव है। गुण का एक अंश है। समझ में आया?

इसी प्रकार ज्ञान जो प्रगट सम्यक् वेदन हुआ, स्वभावभूत सम्यग्ज्ञान, वह भी ज्ञानगुण का एक अवयव है, अंश है। गुण तो त्रिकाली है। और चारित्रगुण जो आत्मा में त्रिकाली है, उसे अंशी कहो तो उसकी निर्मल पर्याय निर्विकार वह स्वभावभूत चारित्र हुआ, वह उस गुण का एक अवयव—अंश है। समझ में आया? आहाहा! लो। और पूर्ण केवलज्ञानपर्याय जब प्रगट हुई तो वह तो अवयवी प्रगट हुआ, अंश की अपेक्षा से अवयवी। और उसका मतिज्ञान और श्रुतज्ञान अवयवी के अवयव हैं। पूर्ण का वह अवयव एक भाग है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा अपने स्वभाव में से सम्यग्दर्शन और ज्ञान तो पहले प्रगट किये हैं और छठवें गुणस्थान के योग्य भी चारित्र की शुद्धपरिणति है। परन्तु वह प्रमत्त का विकल्प, ग्राह्य-त्याग का विकल्प जो उठता था, उसे उल्लंघकर स्वभाव में यह तीनों अंग जो हैं, वह अंगी आत्मा के साथ अभेद हो गये। समझ में आया? देवीलालजी!

भावनासौष्ठव के कारण... हों, वापस। क्या कहा? विशिष्टता क्या कही है? संज्वलन का मन्द उदय हो गया तो वहाँ सप्तम गुणस्थान आया। भाई! यह लिया। क्या कहते हैं? कि छठवें गुणस्थान के योग्य प्रमत्तभाव विकल्प था, वहाँ संज्वलन की तीव्रता थी। तो मन्द हो गया वहाँ सप्तम गुणस्थान आया, ऐसा नहीं। चारित्रमोह मन्द

पड़ा, इसलिए आया—ऐसा नहीं। इसलिए कहा, **विशिष्ट भावनासौष्ठव के कारण...** यह कारण दिया है। समझ में आया? छठवें गुणस्थान में जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र की परिणति है, उसमें जो विकल्प गहण-त्याग का था, वह भावना करके छूट गया। अपनी शुद्ध भावना का प्रयत्न करने से वह छूट गया। और स्वयं अंग-अंगीरूप से परिणम गया। अपनी शुद्ध भावना एकाकार के पुरुषार्थ के कारण से हुआ है। वहाँ संज्वलन मन्द था, इसलिए सप्तम आया, तीव था, इसलिए छठवाँ आया, ऐसी यहाँ निमित्त की बात नहीं है। समझ में आया?

तो कहते हैं कि विशिष्ट अर्थात् खास भावनासौष्ठव। शुद्ध, शुद्ध खास भावना शुद्ध के कारण स्वभावभूत सम्यग्दर्शन, चारित्र। यह सातवें का चारित्र आया, वह अपनी शुद्ध भावना की एकाकारता से आया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यय हो गयी। वह व्यय हो गयी। यह तो ठीक, परन्तु कर्म मन्द हुआ, इसलिए यहाँ सातवाँ आया, ऐसा नहीं है। अपनी सौष्ठवभावना—विशिष्ट—खास भावना। छठवें गुणस्थान में जो चारित्र की पर्याय थी, उससे खास विशिष्ट शुद्ध पर्याय की भावना हो गयी। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....मन्दता से नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्दता से नहीं। अपने पुरुषार्थ की उग्रता से सातवें गुणस्थान के योग्य जब विशिष्ट सौष्ठवभावना हुई तो अंग-अंगी एक हो गये। जो तीनों पर्याय में भेदरूप विकल्प पहले था, वह छूट गया और स्वभावभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के साथ में। देखो! अंग-अंगी भाव से, अंग अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान निर्विकल्प तीनों पर्याय और अंगी अर्थात् भगवान शुद्ध परमात्मा अपना स्वभाव, उसके अंग-अंगी भाव से **परिणति द्वारा...** परिणमित हो गया। निर्विकल्प अनुभव चारित्र की भूमिका के योग्य हो गया। चौथे, पाँचवें में तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि में अमुक समय निर्विकल्प उपयोग होता था, यह तो उसकी भूमिका में चारित्र के योग्य **परिणति द्वारा...** अपनी शुद्ध परिणति बढ़ गयी। सप्तम गुणस्थान में अपनी एकाग्रता में स्वभाव-सन्मुख के उग्र पुरुषार्थ से। समझ में आया? आहाहा!

अंग-अंगीभाव से परिणति द्वारा.... देखो! परिणति द्वारा। वापस **अंग-अंगीभाव से परिणति द्वारा उनसे समाहित होकर,....** स्वभावभूत सम्यग्दर्शन-चारित्र से समाहित होकर। समझ में आया? एक बार ऐसी क्रीड़ा करनी पड़ेगी, तब मुक्ति होगी, नहीं तो मुक्ति नहीं होगी। किसी को ऐसा लगे कि यह बात कैसी है? यह बात कैसी है? सम्यग्दर्शन, ज्ञान होने के पश्चात् चारित्र आने के बाद भी ऐसी भूमिका की जमावट हुए बिना उसकी श्रेणी मंडती है और केवलज्ञान होता है, ऐसा कभी नहीं होता। समझ में आया? **उनसे समाहित होकर,....** यह तीनों एक हुए, उनसे समाहित होकर। समझ में आया? पर्याय की जरा अस्थिरता वह विकल्प में थी, वह पर्याय अन्दर ऐसी जम गयी, उससे समाहित (होकर)। यह समाहित सप्तम गुणस्थान का है। समझ में आया? और पहले जो आया था, वह छठवें का था। कहाँ आया था? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा समाहित हुआ। पहले आया था न? अन्तरंगवाला। १६० गाथा। **समाहित अन्तरंगवाले जीव को...** हिन्दी में २३५ (पृष्ठ पर) अन्तिम लाईन। **समाहित अन्तरंगवाले जीव को...** यह छठवें गुणस्थान की बात थी।

मुमुक्षु : शुद्ध परिणति।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध परिणति। और देखो, उसमें आया यह। **स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित,...** है न चौथी लाईन ऊपर? स्वपरहेतुक पर्याय व्यवहार। स्वपरहेतुक विकल्प राग व्यवहार चौथे, पाँचवें, छठवें में। और यह अकेला स्वभावभूत। समझ में आया? है या नहीं धर्मचन्दजी? कहाँ है स्वपरप्रत्यय। १६० में नीचे से ऊपर चौथी लाईन। हाथ नहीं आवे हाथ झट। चौथी लाईन नहीं मिली? **ऐसा यह, स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित, भिन्नसाध्यसाधनभाववाले व्यवहारनय के आश्रय से...** १६० गाथा में। है? स्वपरप्रत्यय तो कितनी जगह लिया है? यह विकल्प जब छठवें गुणस्थान में स्वपरप्रत्यय का था, वह केवल स्व की भावना करके छूट गया। स्वआश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की परिणति तो थी, विशेष स्वआश्रय से परिणति शुद्ध सप्तम गुणस्थान के योग्य शुद्ध उपयोग जम गया। समझ में आया?

उनसे समाहित होकर, त्यागग्रहण के विकल्प से शून्यपने के कारण.... देखो!

कहते हैं कि सप्तम गुणस्थान के योग्य समाधि जम गयी, तब त्यागग्रहण के विकल्प से शून्य (होता हुआ)। यह पहले आया था न? तीव्र राग व्यवहार अश्रद्धान का त्याग, व्यवहार अज्ञान का त्याग, व्यवहार अतप का त्याग, व्यवहार तप का ग्रहण, व्यवहार श्रद्धा का ग्रहण, व्यवहारज्ञान का ग्रहण, ऐसा जो विकल्प छठवें में था, वह त्यागग्रहण के विकल्प से शून्य हो गया। **शून्यपने के कारण (भेदात्मक) भावरूप व्यापार विराम को प्राप्त होने से...** यहाँ भी कारण दिया। उसमें सौष्ठव कारण से चढ़ा तो यहाँ क्या हुआ? कि त्यागग्रहण के विकल्प से शून्यपने के कारण। विकल्प के त्याग-ग्रहण से शून्य। भावरूप व्यापार—भेदरूप व्यापार। व्यवहार का भेद था न! पंच महाव्रत के व्यवहारश्रद्धा, ज्ञान आदि। भेदरूप व्यापार से विराम प्राप्त करने से। विराम... विराम... विराम। विराम कहते हैं न? यह शून्य को क्या कहते हैं तुम्हारे? पूर्णविराम, पूर्णविराम, पूर्णविराम। पूर्णविराम हो गया। इतना (उसके) योग्य, उसके योग्य पूर्णविराम हो गया। समझ में आया? सप्तम गुणस्थान के योग्य अतीन्द्रिय आनन्द में लवलीन शुद्ध उपयोग हो गया। फिर अतीन्द्रिय आनन्द और शुद्ध उपयोग दोनों भिन्न नहीं है। एकसाथ अतीन्द्रिय आनन्द और शुद्ध उपयोग एकाकार हो गया। समझ में आया?

(अर्थात् भेदभावरूप-खण्डभावरूप व्यापार रुक जाने से).... रुक जाने से अर्थात् उत्पन्न नहीं हुआ। जो छठवें में उत्पन्न था, वह रुक गया, ऐसा नहीं। उत्पन्न नहीं हुआ। सप्तम के योग्य सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के स्वभाव में जहाँ समाहित हुआ... देखो! यह सप्तम गुणस्थान। आहाहा! मुनियों को ऐसा सप्तम होता।

मुमुक्षु : सुनने से आनन्द आता है तो करने से क्यों नहीं आयेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा सप्तम गुणस्थान और विकल्प आवे तो छठवाँ गुणस्थान। ओहोहो! यह मुनिपद, यह चारित्रपद, परमेश्वरपद। यह परमेश्वर पंच परमेष्ठी में साधु सम्मिलित हो गये हैं। समझ में आया? साधुपद चारित्रपद, ओहो! पंचम गुणस्थानवाले सर्वार्थसिद्धि के देव से भी बढ़ गये हैं। स्वरूप के अनुभव की दृष्टि उपरान्त शान्ति का अंश भी विशेष हुआ। पंचम गुणस्थानयोग्य शान्ति। चौथे गुणस्थान सर्वार्थसिद्धि के देव से भी गुणस्थान बढ़ गया। उनकी उतनी ऋद्धि। ऋद्धि क्या उसमें? शान्ति का कारण तो

स्वभाव था। जितनी स्वरूपाचरण शान्ति प्रगट हो गयी है, चौथे गुणस्थान में सर्वार्थसिद्धि को, उससे पंचम गुणस्थान में श्रावक को दर्शनप्रतिमावाले को... दर्शनप्रतिमा पंचम गुणस्थान में होती है, सम्यग्दर्शन चौथे में होता है। परन्तु दर्शनप्रतिमा पाँचवें में होती है। तो चौथे गुणस्थान से शान्ति बढ़ गयी है। पंचम गुणस्थान की महिमा कितनी है! समझ में आया? और उसमें सातवाँ आया, छठवें के बाद सातवाँ आया, बाद में आता है न? यहाँ तो व्यवहार बतलाना है न? पहले छठवें का व्यवहार बताकर फिर सातवें का निश्चय बताते हैं। नहीं तो आता है तो पहले सातवाँ। पहले की बात नहीं ली। छठवाँ ऐसे होता है, फिर सातवाँ आता है, ऐसी बात ली है। समझ में आया? बहुत काल जिसमें रहने का है, वह बात कहते हैं। पहले जब पंचम में से, चौथे में से सातवें में आ गया, वह बात कहने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। तुरन्त और तुरन्त श्रेणी चढ़ जाये तो पूरा हो जाये, परन्तु जब व्यवहार रहता है, उसे भी छठवाँ-सातवाँ हजारों बार आता है। परन्तु तो भी यहाँ लम्बा काल मुनि स्वयं यहाँ है न, पंचम काल के मुनि हैं और श्रेणी तो है नहीं। समझ में आया? तो कहते हैं कि जहाँ सातवाँ आता है वहाँ समाहित हो जाता है। आहाहा!

भिक्षा के लिये गये हों। ऐसे (निर्विकल्प) हो जाये। थोड़े काल ऐसा रह जाये तो दूसरे को खबर नहीं पड़ती। उसमें सातवाँ आ जाये। समझ में आया? ऐसा लेते हैं न, ऐसा। स्थिर हो जाये। एक क्षण ऐसे स्थिर हो जाये कि सातवीं भूमिका आ जाती है बीच में। उसे मुनिपना कहते हैं। आहाहा! चलते-चलते ऐसे कदम रखते-रखते, एक कोस, दो कोस ऐसे चलते-चलते सप्तम गुणस्थान आ जाता है। समाहित... समाहित... समाहित... आहाहा! समझ में आया? और छठवें में विकल्प आता है। विकल्प आया। चलते हों और ऐसा होता है, ऐसा होता है। आहार की क्रिया चलती है। छठवें में ऐसा विकल्प आया और सातवें में समाहित हो गये। समझ में आया? ओहोहो! धन्य जिनका अवतार! जन्म सफल! जिन्होंने अवतार लेकर चारित्र की प्राप्ति की और ऐसी भूमिका... ओहोहो! इन्द्रों को पूज्य है! अरे! गणधरों को पूज्य है!! गणधर भी उन्हें पंच नमस्कार में से उनको निकालते नहीं। निकालते हैं? दो घड़ी पहले भी सप्तम गुणस्थान में, छठवें गुणस्थान में मुनि आये हों और गणधर तो करोड़ों वर्ष, अरबों वर्ष से वर्तमान महाविदेहक्षेत्र

में गणधर विराजते हैं। चार ज्ञान चौदह पूर्व की रचना तो अन्तर्मुहूर्त में की है। करोड़ों वर्ष से है। परन्तु अभी महाविदेहक्षेत्र में कोई मुनि सातवें गुणस्थान में आये हों... समझ में आया? जब यहाँ थे पहले... णमो लोए सव्व साहूणं। विकल्प आता है कि णमो लोए सव्व साहूणं। मेरा नमस्कार सन्तों के चरणों में है। आहाहा! जिन्हें गणधर का नमस्कार पहुँच, वह पद कितनी महत्तावाला है! पण्डितजी! गणधर। पंचम काल के भावलिंगी सन्त छठवें-सातवें (गुणस्थान) में हों तो भी वहाँ जब शास्त्र रचते हैं तो णमो लोए सव्व साहूणं (का उच्चार करते हैं)। छठवें गुणस्थान में विकल्प आया। परन्तु दो घड़ी पहले मुनि होते हैं न? अरे! मुनि दो घड़ी पहले हुए हों, कोई सिद्ध अभी हुए हों, कोई अनन्त काल पहले हुए, तो क्या अनन्त काल पहले हुए हों, वे सिद्ध बड़े हो गये? अनन्त काल पहले हुए सिद्ध बड़े हो गये? अभी हुए वे सिद्ध थोड़े छोटे हैं? क्यों? सम्पदा पूर्ण हो गयी है। ऐसे कोई छठे-सातवें में बहुत बार आते हों, एक क्षण पहले ध्यान करके आनन्द में मग्न हो गये,... ओहो! धन्य है मुनि तुझे!

यहाँ कहते हैं, भावरूप व्यापार रुक जाने से **सुनिष्कम्पस्वरूप से...** लो, अकम्पनाचार्य के दिन में सुनिष्कम्प आया। यह तो विचार ऐसा आया, भाई! परीषह में अकम्प रहे न, इसलिए अकम्प नाम भी हो गया हो, नाम भी अकम्प हो। समझ में आया? नाम भी ऐसा हो, सुमेल खा जाये। नाम ऐसा हो और यहाँ स्थिर हो जाये। अकम्प हो जाये। यह तो सवेरे ऐसा विचार आ गया। यहाँ आया, देखो! **सुनिष्कम्पस्वरूप से रहते हैं...** सप्तम गुणस्थान में... आहाहा! सुनिष्कम्प। विकल्प नहीं। ऊपर आया था न सब? निःशंकतादि, निःकांक्ष आदि के भावरूप विकल्प, स्वाध्याय आदि, विनयादि का विकल्प और निरतिचार व्रतादि का विकल्प वहाँ है नहीं। सब छूट गया। समझ में आया? माँगीरामजी! देखो, यह मुनिपना! आहाहा!

मुमुक्षु : आज मुनि महिमा का दिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि की महिमा का दिन है न आज! अकम्पनाचार्य का परीषह। यह आ गया, यह तो सहज आ गया, वहाँ कौन खेंचकर लाये। समझ में आया?

सुनिष्कम्पस्वरूप से रहता है, उस काल और उतने काल तक.... पहले कहा था

न? **उस काल और उतने काल तक....** पहले आया था, यह उस काल में और उतना काल। बस, इतना काल रहता है फिर बाद में (छठी) भूमिका आती है। कहो, यह समाहित और निश्चय अभेद वह व्यवहारमोक्षमार्ग है सातवें का? अरे... भगवान! क्या करते हैं यह? क्या करते हैं? मुनि की कैसी दशा! जहाँ सम्यग्दर्शन है, वहाँ अलौकिक वस्तु हो गयी! समझ में आया? आत्मा के आनन्द का कपाट खुल गया, जो बन्द था। राग और स्वभाव की एकत्वबुद्धि में कपाट बन्द था, वह कपाट खुल गया। समझ में आया? अब कितना निकालना कपाट भरा है उसमें से। दरवाजा खोल दिया। पण्डितजी! चौथे गुणस्थान में राग जो विकल्प है, वह त्रिकाल भगवान आनन्दस्वभाव नित्यानन्द प्रभु, दोनों की एक बुद्धि में आनन्द को ताला लगाया था। अकेले जहर का वेदन था। ताला खोल दिया। ओहो! अकेला ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप पूर्ण शुद्ध, उसमें जब एकाकार हुआ तो आनन्द की धारा छूटी। जैसे फब्बारे में छूटती है न। फब्बारा नहीं? फब्बारा कहते हैं या क्या? जितना दवाब दे, उतना फब्बारा छूटता है। क्या कहलाता है? चांप।

मुमुक्षु : .... गणधरदेव भी नमस्कार करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : गणधर नमस्कार करते हैं। मुनि को तो गणधर नमस्कार करते हैं। पंचम काल के सच्चे भावलिंगी मुनि हों, गणधर महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। साक्षात् भगवान विराजते हैं, उनके पास गणधर विराजते हैं समवसरण में, अभी समवसरण में विराजते हैं। ऐसा मुनिपने का पद है, उसका उसे यथार्थ निर्णय करना चाहिए। सात तत्त्व में संवर, निर्जरा की योग्यतावाले ऐसे मुनि हैं। संवर, निर्जरा की योग्यतावाले ऐसे मुनि हैं। यह नौ तत्त्व की श्रद्धा करने में भी यह बात आ जाती है। सातवें गुणस्थानयोग्य ऐसी संवर, निर्जरा होती है, उसके इस प्रकार की पहिचान करके मानना चाहिए। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सत्यस्वरूप है। परमेश्वर का सत्य स्वरूप है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... आहाहा!

सुनिष्कम्परूप से रहता है, उस काल और उतने काल... यह तो इतना कह दिया है कि बारहवीं भूमिका की पूर्व भाषा की है, वहाँ तक लिया है। क्षपकश्रेणी चढ़ने के पश्चात् गिरते नहीं। उपशमश्रेणी की बात है ? यह तो सप्तम गुणस्थान के योग्य काल में उतना समय रह गये, फिर वापस गिर गये। इतना अपना पुरुषार्थ कम हो गया तो व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प उठा। विनय करूँ, नमस्कार करूँ, वाँचन करूँ, वाँचन दूँ—ऐसा विकल्प उठा। वह विकल्प उठा, वह छठवाँ गुणस्थान हो गया। समझ में आया ? लोगों ने मुनिपना क्या चीज़ है, यह समझे नहीं और साधारण मान लिया। बापू! परमेश्वर पद है! पंचम काल के चारित्रवन्त तो परमेश्वर पद! ओहोहो! पंचम गुणस्थान जहाँ सर्वार्थसिद्धि से बढ़ जाता है तो छठवें और सातवें की तो क्या बात! और उसकी पहिचान न हो, ऐसा भी नहीं है। पहिचान नहीं होती ? क्या अन्धा है ? समझ में आया ? संशय, विमोह, अनध्यवसाय छूटकर ज्ञान, दर्शन निर्मल निःशंक होता है, उसे छठवें गुणस्थान, सातवें गुणस्थान के मुनि कैसे होते हैं, उनका भी पता लग जाता है। स्वयं को भी लग जाता है और दूसरे को भी लगता है, ऐसा धवल में पाठ है। धवल में ऐसा पाठ है कि महाराज! मतिज्ञान का जो अवयव है—अवाय, मतिज्ञान में अवाय होता है। अवग्रह, ईहा। तो वह प्राणी भव्य है या अभव्य, उसका निर्णय किस प्रकार करना ? कि मतिज्ञान के अवाय से निर्णय कर सकता है। यह प्राणी भव्य है। क्यों ? इसके साथ उसके, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्मल निश्चय कैसे वे परिणम गये हैं, ऐसा भास सम्यग्दृष्टि को मतिज्ञान का अवयव अवाय में आता है। और निर्णय कर लेता है कि वह भव्य जीव है। वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पहिचान भी हो गयी और उसके साथ भव्यपने की भी पहिचान हो गयी। ऐसा धवल में पाठ है। समझ में आया ?

निर्मल ज्ञान क्या काम न करे ? ओहो! मति-श्रुतज्ञान तो केवलज्ञान का एक अंश है। यह और लोगों को अवरोधक है। अंश है! वह तो सर्वघाति का नाश हो, तब (प्रगट होता है)। अब सुन तो सही, क्या अपेक्षा है! वह केवलज्ञान का एक अवयव है। कौन ? मतिज्ञान केवलज्ञान का एक अवयव है। समझ में आया ? यह जयधवल में लिया है कि अवयव, अवयवी को देखे बिना अवयव का निश्चय कैसे हुआ ? एक स्तम्भ है, बड़ा स्तम्भ। भाग है भाग। ऐसे देखा तो इतना भाग ही दिखाई दिया। परन्तु

इस स्तम्भ का यह भाग, ऐसा उसका निर्णय इसने किस प्रकार किया? इस स्तम्भ का यह अवयव है, ऐसे निर्णय बिना अवयव का निर्णय नहीं होता। जयधवल में है। समझ में आया? ऐसे मतिज्ञान केवलज्ञानस्तम्भ का एक अंश है। मतिज्ञानी भी केवलज्ञान का निर्णय मतिज्ञान में कर लेता है। समझ में आया? अरे..! नहीं, नहीं, नहीं। कौन जाने..? यह समझ में नहीं आता, ऐसा होता ही नहीं, ऐसा होता ही नहीं। होता नहीं, होता नहीं। परन्तु होता है, होता है—ऐसा तो ला।

यहाँ कहते हैं कि सप्तम गुणस्थानवाला समाहित हो गया। उस काल और उतने काल, उतने काल। **यही आत्मा जीवस्वभाव में....** देखो! अब यह चारित्र की बात करते हैं न, मोक्ष का साक्षात् कारण। **जीवस्वभाव में नियत चारित्ररूप....** इसका अर्थ हुआ कि व्यवहारचारित्र जीवस्वभाव नहीं है। पंच महाव्रत आदि का विकल्प छठवें में होता है, पाँचवें गुणस्थान में बारह व्रत का विकल्प होता है, वह जीवस्वभाव नहीं। समझ में आया? **जीवस्वभाव में नियत...** निश्चय **चारित्ररूप होने के कारण...** देखो, कारण। जहाँ-तहाँ कारण डाला है। क्या कहा? **यही आत्मा जीवस्वभाव....** यही आत्मा **जीवस्वभाव में नियत चारित्ररूप....** सब आत्मा... आत्मा कहते हैं न! अंग-अंगीभाव से परिणति द्वारा आत्मा, उससे समाहित होकर आत्मा, त्याग-ग्रहण के विकल्प से शून्य हुआ आत्मा। अन्त में सर्वत्र आत्मा लिया है। उस काल में उतने काल **यही आत्मा जीवस्वभाव में नियत चारित्ररूप....** समझ में आया? **होने के कारण....** स्वभाव में स्थिर हो गया। स्वभाव में स्थिर हो चारित्र की पर्याय चिपट गई, स्थिर हो गयी।

निश्चय से 'मोक्षमार्ग' कहलाता है। देखो लो। यह स्वभाव, नियत चारित्ररूप स्वभाव में होने के कारण उसे निश्चय से मोक्षमार्ग कहा जाता है। सातवें गुणस्थान के योग्य निश्चयमोक्षमार्ग यहाँ कहा है। समझ में आया? निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान तो चौथे से शुरु है। निश्चयसम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान चौथे गुणस्थान से शुरु है। पाँचवें में थोड़ा चारित्र का अंश बढ़ा, छठवें में विशेष, सातवें में अकेला एकाकार हो गया, इसलिए निश्चय से मोक्षमार्ग कहलाता है। उसे भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा और उनके कहनेवाले सन्त, इसे मोक्षमार्ग कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पिच्छी, कमण्डल क्या करे? शरीर नहीं, राग नहीं, उसका कमण्डल नहीं, मोरपिच्छी उसमें नहीं। उसकी पहिचान, यह माता-पिता के यहाँ जन्मे, यह भी उसकी पहिचान नहीं। उसकी पहिचान अन्दर सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का जन्म हुआ, उससे पहिचान है। जन्म कहो, सृष्टि कहो, उत्पत्ति कहो। समझ में आया?

मुमुक्षु : अट्ठाईस मूलगुण भी पहिचान नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी पहिचान नहीं। अट्ठाईस मूलगुण विभाव, उदय है। उदयभाव से आत्मा से पहिचान होती है?

मुमुक्षु : उदयभाव है या क्षयोपशमभाव है?

पूज्य गुरुदेवश्री : उदयभाव है। क्षयोपशम (भाव) कहाँ से आया? वह तो मिथ्यादृष्टि को व्यवहार पुरुषार्थ है तो द्रव्यनिक्षेप से क्षयोपशम कहा है। यथार्थ में क्षयोपशम नहीं। समझ में आया? यह नियमसार में आया है। यह तो हमारे बहुत समय पहले चर्चा हुई है। (संवत्) १९७९-८० के वर्ष। ८० न? तुम्हारे नहीं लींबड़ी चातुर्मास... ? ८०। ८० के मगसिर में। अनादि मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी अनन्त बार जाता है, और उसे भी चारित्र का क्षयोपशम है, ऐसा वे कहते थे। ८० की बात है। चालीस वर्ष हुए। कहा, नहीं। वह क्षयोपशमभाव नहीं है। उदयभाव है। पंच महाव्रत आदि का पालन मिथ्यादृष्टि को अनादि के उदयभाव का पालन है। क्षयोपशम-फयोपशम नहीं। हमारे भाई थे न, मूलचन्दजी और रामजीभाई के... दो। दो के बीच चर्चा चलती थी नीचे और मैं ऊपर था। मैं नीचे उतरा, कहे, यह क्या? यह सब क्षयोपशम कहते हैं। मैंने कहा, क्षयोपशम नहीं। अनादि से आत्मा के भान बिना जितनी राग की मन्दता की, वह तो उदयभाव है, क्षयोपशम नहीं। समझ में आया? व्यवहार से क्षयोपशम कहो। पुण्यबन्ध हो जाता है, इसलिए कषाय जरा मन्द हुई। पुरुषार्थ से हुआ न, इस अपेक्षा से द्रव्यनिक्षेप से, द्रव्यनिक्षेप से। शुद्ध उपयोग हुआ नहीं तो द्रव्यनिक्षेप से शुभ उपयोग को क्षयोपशमभाव कहने में आया है। नियमसार की टीका में है। समझ में आया? वास्तव में तो उदयभाव ही है। हाँ, परन्तु कोई ले, वह आता है न? प्रत्याख्यान... प्रत्याख्यान

नहीं आता? .... सुख से प्रत्याख्यान, ऐसा शब्द पड़ा है न, इसलिए टीकाकार ने जरा सुख से प्रत्याख्यान, इसके अतिरिक्त का भी ऐसा व्यवहार प्रत्याख्यान है, उसका अर्थ निकाला है, पद्मप्रभमलधारिदेव ने नियमसार में।

यहाँ कहते हैं कि आत्मस्वरूप के दर्शन और ज्ञान बिना चारित्र का यथार्थ क्षयोपशम नहीं होता और चारित्र का क्षयोपशम हुआ, अन्दर में बढ़ गया तो साक्षात् मोक्षमार्ग है। प्रवचनसार में तो ऐसा ही कहते हैं कि उसे हम मोक्षतत्त्व कहते हैं। सम्पूर्ण श्रामण्यरूप से परिणम गये, उन्हें हम मोक्षतत्त्व कहते हैं। प्रवचनसार की अन्तिम पाँच गाथा है न? उसमें उसे मोक्षतत्त्व कहा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे उदय? राग तो विकल्प है। पंच महाव्रत हो या मुनि को हो या मिथ्यादृष्टि को हो, सबको उदयभाव है।

अपने शुद्ध चैतन्य भगवान का अवलम्बन लिये बिना बिल्कुल शुद्धि का अंश क्षयोपशम प्रगट नहीं होता। ज्ञान का क्षयोपशम जो अनादि का है, वह स्वभावज्ञान नहीं। वह तो अनादि का क्षयोपशमज्ञान है। वह तो एकेन्द्रिय को भी है। अपना ज्ञान चिदानन्द प्रभु के अवलम्बन से जो ज्ञान होता है, उसे ही निश्चय सम्यग्ज्ञान क्षयोपशम कहते हैं। दूसरे क्षयोपशम को यथार्थ क्षयोपशम नहीं कहते।

वही **'मोक्षमार्ग' कहलाता है। इसलिए, निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग को साध्य-साधनपना अत्यन्त घटित होता है।** ऐसा निश्चयमोक्षमार्ग साध्य था, उसे व्यवहारविकल्प जो निमित्त था, उसे व्यवहार से साधन कहा गया है। व्यवहार से अत्यन्त घटित होता है, ऐसा कहा गया है। समझ में आया? विशेष भावार्थ लेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १, सोमवार, दिनांक - २४-०८-१९६४, गाथा-१६१, १६२ प्रवचन-१०

१६१। देखो, क्या चलता है? निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग। भावार्थ तक चला। नीचे नोट (फुटनोट) वाँचन हो गया है, नहीं? वाँचन नहीं हुआ? यह इसमें आ गया है, आ गया है। यहाँ आयेगा, देखो!

भावार्थ :- निश्चयमोक्षमार्ग निज शुद्धात्मा की रुचि,... देखो! यहाँ परमार्थ। वर्तमान में तो बहुत गड़बड़ी चलती है न कि निश्चयमोक्षमार्ग तो बारहवें में होता है। कोई ऐसा कहते हैं। बारहवाँ और केवलज्ञान प्राप्ति (के बीच) तो अन्तर्मुहूर्त ही काल है, विशेष काल नहीं। तो यहाँ तो निश्चयमोक्षमार्ग निज शुद्धात्मा की रुचि। क्या? मैं ज्ञायक शुद्ध आनन्द पवित्र पूर्ण धाम हूँ—ऐसा अन्तर्मुख होकर स्वभाव के अवलम्बन से जो रुचि हुई, वह निश्चयसम्यग्दर्शन है। समझ में आया? **निश्चयमोक्षमार्ग निज शुद्धात्मा की रुचि,...** एक। देखो! नौ तत्त्व के भेदवाली रुचि, वह तो व्यवहार है। वह परमार्थ समकित नहीं है और यह परमार्थ समकित चौथे गुणस्थान से उत्पन्न होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : चौथे और बारहवें में....

पूज्य गुरुदेवश्री : बारहवें में इतना अधिक अन्तर। यह जरा ऐको... नहीं तो है न? एक मोखोपंथो। भाई! उसमें टीका में ही किया है, इसलिए यहाँ जरा... शुभचन्द्राचार्य। निश्चयमार्ग यह है और एक का अर्थ दूसरी जगह ऐसा अर्थ किया है—निर्विकल्प। शुद्ध आता है न? निर्विकल्प शुद्ध निश्चयमोक्षमार्ग। कोई एक भव में, कोई तृतीय भव में इत्यादि मोक्ष जाता है, ऐसा टीका में पाठ है। तब यदि निश्चयमोक्षमार्ग बारहवें में हो तो उसे तीसरा भव हो नहीं सकता। इसलिए यह जरा .... अन्दर इसमें है। समझे? इसलिए देखो! और यह है गाथा निश्चयमोक्षमार्ग की। ऐको मोक्ख... लो, यह आया? पृष्ठ मोटे निकलने पर यह आया। मैंने कहा, कहाँ होगा? एक न तो अनेकधा। ऐसा टीका में है, हों! एक मोक्षपंथ निश्चयमोक्षमार्ग एक ही पंथ है। व्यवहारमोक्षमार्ग तो एक आरोप से कथन किया जाता है। पण्डितजी! यह बराबर लेना। सर्वविशुद्धज्ञान

अधिकार का २४०वाँ श्लोक है। **'एको मोक्षपथो य एष नियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मक'** देखो! शब्द यहाँ लेते हैं। दृग-ज्ञप्ति है न? अपने चलता है। **'दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मक', 'स्तत्रैव स्थितिमेति यस्तमनिशं ध्यायेच्च तं चेतति'** यह ४१२ है, समयसार की ४१२वीं गाथा है न! वह ध्या अनुभव उसको... यह उसका कलश है। ४१२वीं गाथा का कलश है। ४१२ गाथा। **'तस्मिन्ने निरन्तरं विहरति द्रव्यान्तराण्यस्पृशन्, सोऽवश्यं समयस्य सारमचिरान्नित्योदयं विन्दति।'** अर्थात् यह सिद्धान्त। पश्चात् **'अचिरात्'** की व्याख्या मैं तो देखता था पहले। **'अचिरात्'** शीघ्र। शीघ्र तो कदाचित् कोई बारहवें में से तेरहवें में भी कहे। **'तद्भवे तृतीयभवादौ वा'** ऐसा है। (परमाध्यात्म तरंगिणी)। या इस भव में होगा और कोई तीसरे भव में भी होगा। इसलिए (मात्र) बारहवें गुणस्थान में निश्चयमोक्षमार्ग नहीं रहा। पण्डितजी! बारहवें में (ही) यदि हो तो तीसरा भव नहीं हो सकता। वह तो अन्तर्मुहूर्त में ही केवलज्ञान होता है। बारहवें गुणस्थान में यदि निश्चयमोक्षमार्ग हो तो उसे अन्तर्मुहूर्त में ही केवलज्ञान होता है। यहाँ तो कहते हैं, निश्चयमोक्षमार्गी जीव को कोई शीघ्र तद्भव में और कोई तृतीय भव में (पाता है)। तीसरा भव आदि। आदि शब्द है भले। यहाँ तो ऐसा कहना है कि वह निश्चयमोक्षमार्ग बारहवें में ही है, ऐसा नहीं। सातवें में (भी) है। तो कोई एक भव में मोक्ष में जाता है, कोई तीसरे भव में मोक्ष जाता है। आदि लिया है। शुभचन्द्राचार्य ने टीका में लिया है। समझ में आया? एक का अर्थ एक जगह निर्विकल्प होता है, शुद्ध भी होता है। परन्तु वह कुछ नहीं। वह तो 'एक' का अर्थ किया न इसमें तो। **'न त्वनेकधा'।** अर्थात् बनारसीदास ने ऐसा किया है श्लोक। मोक्षमार्ग एक ही है, यह इसमें। इसका पद लिखा है न!

एक ही मोक्षमार्ग निश्चय है, दूसरा मोक्षमार्ग है नहीं और वह मोक्षमार्ग प्राप्त करनेवाला कोई इस भव से भी मोक्ष जाता है और कोई तृतीय आदि भव से भी मोक्ष जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि निश्चयमोक्षमार्ग बारहवें में है, यह बात खोटी है। पहले होना चाहिए ही। (बारहवें में ही निश्चयमोक्षमार्ग हो तो) उस भव में मोक्ष जाये, तीसरा भव हो नहीं। यह लेना है। शुभचन्द्राचार्य ने (लिया), **'तृतीयभवादौ'** ऐसा पाठ है। इसलिए यह निश्चयमोक्षमार्ग सातवें में शुरु होता है।

निश्चयमोक्षमार्ग निज शुद्धात्मा की रुचि,.... यह तो चौथे गुणस्थान में होती है। आत्मा के निर्विकल्प अनुभव में प्रतीति। समझ में आया? ज्ञायकभाव की निर्विकल्प अनुभव में प्रतीति। बुद्धिपूर्वक राग छूटकर, निमित्त, पर्याय के भेद का लक्ष्य छोड़कर अकेले सामान्य की ओर एकाकार होने पर, मैं एकाकार होऊँ, ऐसा विकल्प भी नहीं। चैतन्य सामान्य ज्ञायकभाव ध्रुव एकरूप का अन्तर्मुख होकर निर्विकल्प अनुभव होता है और निर्विकल्प में आनन्द का स्वाद आता है, उसमें प्रतीति होती है। उसकी रुचि का नाम निश्चयसम्यग्दर्शन कहा गया है। समझ में आया? और वह एक ही सम्यग्दर्शन है। दूसरे किसी को व्यवहार आरोप करके कहा गया है। यहाँ निमित्त से बात है न!

निश्चयमोक्षमार्ग निज शुद्धात्मा की रुचि,.... और निज शुद्धात्मा की **ज्ञप्ति...** ऐसा लेना। क्या (कहा)? शास्त्र का ज्ञान या बारह अंग का ज्ञान, यह नहीं। अपने निज शुद्धात्मा की ज्ञप्ति। ज्ञायक चैतन्यप्रभु पूर्ण शान्त अविकारी का अन्तर ज्ञान में स्वसंवेदन, ज्ञान का ज्ञान में वेदन, ज्ञान का ज्ञान में भान, इसका नाम शुद्धात्मा की ज्ञप्ति, इसका नाम निश्चयज्ञान, इसका नाम मोक्षमार्ग का एक अवयव निश्चयज्ञप्ति कहा गया है। समझ में आया? इतना विवाद करते हैं। ओहो! बाहर में कहीं लगा देते हैं। यह '**अचिरात्**' शब्द में लिखा है। '**अचिरात्**' अर्थात् अल्प काल। और कोई कहे कि, अल्प काल अर्थात् अन्तर्मुहूर्त भी होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह तो क्षपक में तो अन्तर्मुहूर्त में होता है। यह तो और कहे कि उपशम हो न फिर... ऐसी बात करते हैं। कहो, आठवें में क्षपक एक अन्तर्मुहूर्त में चढ़े तो अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान होता है। यदि आठवें में मोक्षमार्ग कहे तो भी अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष होता है। ऐसा नहीं है। किसी को (उस भव में) हो और किसी को दूसरा भव, तीसरा भव आदि करता है।

निश्चयमोक्षमार्ग शुद्धात्मा की **ज्ञप्ति...** पहले रुचि कहा। यह ज्ञप्ति अर्थात् ज्ञान का ज्ञान। यह समयसार में आता है कि ज्ञान का समकित। राग की प्रतीति और राग का (समकित) नहीं। अपने ज्ञायकस्वभाव का समकित। ज्ञान का समकित, आत्मा का

समकित। ज्ञान शब्द से आत्मा। आत्मा शुद्ध चिदानन्द की अन्तर्दृष्टि निर्विकल्प, वह सम्यक्। और ज्ञान का ज्ञान, आत्मा का ज्ञान, आत्मा की ज्ञप्ति, आत्मा में ज्ञान की एकाग्रता, वही आत्मा का ज्ञान। वह आत्मज्ञान ही मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? यह दूसरा बोल (हुआ)।

और निज शुद्धात्मा की... 'निज' शब्द क्यों प्रयोग किया? कि दूसरे तो शुद्धात्मा हैं—सिद्ध, अरिहन्त, वे नहीं। अपने निज शुद्धात्मा की रुचि, अपने निज शुद्धात्मा की ज्ञप्ति, अपने शुद्धात्मा की **निश्चल अनुभूतिरूप है।** समझ में आया? अन्तर में लीन हो जाना। स्वरूप में निर्विकल्प चारित्र हो जाना। निश्चल—चलित न हो ऐसा। पंच महाव्रत का विकल्प भी जिसमें उठता नहीं। ऐसी अनुभूतिरूप है, वह निश्चयमोक्षमार्ग है। एक ही सच्चा मार्ग है। परन्तु **उसका साधक...** व्यवहारसाधक, व्यवहारमोक्षमार्ग व्यवहारसाधक। व्यवहारमोक्षमार्ग व्यवहारसाधक। वह **(निश्चयमोक्षमार्ग का व्यवहार-साधन) ऐसा जो भेदरत्नत्रायत्मक....** भेदरत्नत्रयात्मक। विकल्प में जो भेद पड़ता है, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नौ तत्त्व की श्रद्धा, वह व्यवहारसम्यग्दर्शन है। शास्त्र का ज्ञान व्यवहारज्ञान, राग की मन्दता पंच महाव्रत की व्यवहारचारित्र। ऐसा **भेदरत्नत्रायत्मक व्यवहारमोक्षमार्ग उसे जीव कथंचित् (-किसी प्रकार, निज उद्यम से) अपने संवेदन में आनेवाली....** क्या कहते हैं, देखो! अनादि से। **अपने संवेदन में आनेवाली अविद्या....** अज्ञान का वेदन है अनादि काल से तो। शुभ विकल्प हो, अशुभ हो, वह विकल्प का वेदन, वह अज्ञान, अविद्या का वेदन है। अनुभव, राग का अनुभव अविद्या का अनुभव है। शुभराग हो, दया, दान, विकल्प आदि, उसका अनुभव अविद्या का अनुभव है। चैतन्य में ऐसा स्वभाव नहीं है।

ऐसी **अविद्या के वासना के...** संवेदन में आती अविद्या की गन्ध। वासना शब्द से गन्ध (उसके) **विलय द्वारा...** उस गन्ध का नाश होता है। स्वरूप स्वभाव की अनुभूति से, अन्तर्दृष्टि से अविद्या की वासना के **विलय द्वारा प्राप्त होता हुआ,...** निश्चयपूर्वक यह व्यवहार प्राप्त होता हुआ, ऐसा लिया है। निश्चयपूर्वक ऐसा व्यवहार... निश्चय भले पूर्ण सातवें में हो, परन्तु छठवीं भूमिका के योग्य जो निश्चय है, उस पूर्वक उसमें जो व्यवहार आया, उसके द्वारा पाता हुआ। **जब गुणस्थानरूप सोपान के**

क्रमानुसार.... गुणस्थानरूपी सोपान—सीढ़ी। पगथियुं कहते हैं? क्या कहते हैं? सीढ़ी, सीढ़ी। सोपान के क्रमानुसार, क्रम अनुसार (अर्थात्) चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें में... **निजशुद्धात्मद्रव्य को भावना से उत्पन्न....** देखो! सातवें से पूर्ण चलता है। निजशुद्धात्मद्रव्य। निज—अपना शुद्ध प्रभु पूर्णानन्द, अकेला आनन्द का रस, उसकी भावना। भावना शब्द से एकाग्रता। भावना शब्द से एकाग्रता से उत्पन्न **नित्यानन्दलक्षणवाले...** समझ में आया? नित्यानन्द, जिसमें नित्य आनन्दपना है, ऐसे लक्षणवाले **सुखामृत के रसास्वाद की तृप्तिरूप....** भाषा देखो! जयसेनाचार्य की टीका है, जयसेनाचार्य की।

नित्यानन्दलक्षणवाले सुखामृत के रसास्वाद की तृप्तिरूप परम कला के अनुभव के कारण.... ऐसी परम कला के अनुभव—अन्तर वेदन के कारण **निजशुद्धात्माश्रित...** निज शुद्ध आत्मा आश्रित। व्यवहार है, वह स्वपरप्रत्यय आश्रित है। निश्चय सत्यमार्ग है, वह निजशुद्धात्माश्रित है। समझ में आया? यहाँ बहुत गड़बड़ है अभी। बड़े पढ़े-लिखे हुए भी ऐसी गड़बड़ करते हैं। साधारणजन को खबर नहीं होता तो कहे, होगा भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : .... इसमें तो लिखा है, परम कला...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परम कला (अर्थात्) अनुभव कला। और निजकला आनन्द की कला, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करना, वही मोक्षमार्ग की कला है। समझ में आया? आहाहा!

परम कला के अनुभव के कारण.... परम शान्त आनन्द का अंश स्वसंवेदन में प्रगट हुआ। **निजशुद्धात्माश्रित...** देखो! यह सब निज शुद्धात्म-आश्रित प्रगट हुआ है। विकल्प या पर के आश्रित नहीं। **निश्चयदर्शनज्ञानचारित्ररूप से अभेदरूप परिणमित होता है,....** देखो! तब निश्चय स्वआश्रित सम्यग्दर्शन, निश्चय स्वआश्रित ज्ञान, निश्चय स्वरूप की लीनतारूप चारित्र। वह अभेदरूप से परिणमता है। अन्तर में एकरूप चैतन्य में समाहित निर्विकल्प समाधि हुई, **तब निश्चयनय से भिन्न साध्य-साधन के अभाव के कारण....** तब निश्चयनय से, इतना। **भिन्न साध्य-साधन के अभाव के कारण....** तब निश्चयनय से... इतना, **यह आत्मा ही मोक्षमार्ग है।** ऐसा लेना। समझ में आया?

क्या ? तब निश्चयनय से **भिन्न साध्य-साधन के अभाव के कारण....** छठवें गुणस्थान में विकल्प था, उसका अभाव हुआ। वह भिन्न साधन था। निर्विकल्प सप्तम गुणस्थान में जो शान्ति (थी), उसका छठवें गुणस्थान में भिन्न (साधन) था, वह भिन्न साध्य-साधन का अभाव।

निश्चयनय से भिन्न साध्य-साधन के अभाव के कारण.... यह भगवान निश्चयनय से **यह आत्मा ही मोक्षमार्ग है।** यह आत्मा ही मोक्षमार्ग है। आहाहा! समझ में आया? यह सातवें गुणस्थान से अपना निश्चयमोक्षमार्ग। वास्तव में छठवें गुणस्थान से भी चारित्र की परिणति होती है, वह भी मोक्षमार्ग है और चौथे से भी उपचार से मोक्षमार्ग ही निश्चय से है। परन्तु उपचार, वे तीन बोल नहीं इस अपेक्षा से... बाकी चौथे से अपना शुद्धात्मा समाधि... समाधि... समाधि वीतरागस्वभाव की समाधि की प्रतीति और समाधि की शान्ति का वेदन वहाँ से शुरु हुआ तो छठवें में चारित्रसहित हुआ, सातवें में निर्विकल्प शुद्ध उपयोग हुआ। समझ में आया? ओहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ज्ञान हुआ, स्वरूपाचरण हुआ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञप्ति। दोनों होते हैं। रुचि, ज्ञप्ति और स्वरूपाचरण। अनन्तानुबन्धी का अभाव हुआ, उतना स्वरूपाचरण (हुआ है)। परन्तु उसे संयमयोग्य जो पंचम गुणस्थान में शान्ति का अंश है, उतना नहीं। तो वहाँ आगे संयम का अंश गिनने में आया है और छठवें में तो चारित्र गिनने में आया है।

मुमुक्षु : निश्चल अनुभूति।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, निश्चल अनुभूति अन्दर। समझ में आया? आहाहा! चौथे में तो निश्चल अनुभूति निश्चय से हुई है, परन्तु चारित्र की नहीं। स्थिरता—लीनता जो है, वह सातवें में होती है अथवा तीन कषाय के अभाव की स्थिरता छठवें गुणस्थान में होती है। समझ में आया? अनुभूति ज्ञानचेतना तो चौथे से शुरु होती है।

मुमुक्षु : शुद्धात्माश्रित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धात्माश्रित सम्यक् वेदन शुरु हुआ ज्ञान का, वह चौथे गुणस्थान से ज्ञानचेतना है। वह ज्ञान की अनुभूति है। उसे ही ज्ञान कहा जाता है।

यहाँ कहते हैं, निश्चयनय से जहाँ सातवें में एकाकार हो गया, वहाँ **भिन्न साध्य-साधन के अभाव के कारण यह आत्मा ही मोक्षमार्ग है।** देखो! आत्मा ही मोक्षमार्ग है। अभेद हो गया। **इसलिए ऐसा सिद्ध हुआ कि सुवर्ण और सुवर्णपाषाण की भाँति....** स्वर्ण शुद्ध और स्वर्णपाषाण भिन्न साधन। **निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग को....** निश्चयमोक्षमार्ग साध्य है, स्वर्ण की भाँति और स्वर्णपाषाण व्यवहारमोक्षमार्ग की भाँति साधन है। **(व्यवहारनय से)...** देखो वापस। **व्यवहारमोक्षमार्ग को साध्य-साधकपना (व्यवहारनय से) अत्यन्त घटित होता है।** व्यवहारनय से अत्यन्त घटित होता है। यह तो पाठ में लिया था न! साध्य-साधकपना अत्यन्त घटित होता है। बहुत गड़बड़, पंचास्तिकाय में से बहुत गड़बड़ उठी है। पंचास्तिकाय में से उठती होगी या कल्पना में से? पंचास्तिकाय क्या करे? वह तो शब्द है। उसमें वाच्य क्या है, (यह समझे नहीं)। वह तो बराबर लिखा है। यथार्थ जितना जिस प्रमाण है, (उतना ही लिखा है)। पण्डितजी ने नीचे लिखा है न! पण्डितजी ने नीचे स्पष्ट लिखा तो कहे, कागज लगा दो कि यह नहीं। कागज लगा दो इसमें, बन्द कर दो। बन्द करा दे न, पुस्तक भी बन्द कर दे न! आत्मा बन्द कर देने के पश्चात् पुस्तक बन्द करना क्या है तुझे? आत्मा निर्विकल्प, विकल्प को छोड़कर निर्विकल्प दृष्टि हो, उसका नाम निश्चय है। तो वहाँ तो कहा कि विकल्पात्मक वह मोक्षमार्ग है। अन्दर ताला लगा दिया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो उसका अभिप्राय छोड़ने की बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : सोने के पाषाण में से सोना निकलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोने के पाषाण में से सोना नहीं निकलता। ऐसा नहीं कहा। सोने को प्राप्त करने में सोने का पत्थर निमित्तरूप से साधन व्यवहार से कहा जाता है। इतने शब्द। सोना निकलने में सोना तो स्वयं से निकलता है, परन्तु स्वर्ण के पत्थर को निमित्त देखकर व्यवहार से उसमें से वह स्वर्ण का साधन है, ऐसा आरोप देकर कथन

किया गया है। कहो, समझ में आया? देवीलालजी! बहुत गड़बड़ है, हों! बराबर इस बार तुम आये हो। बहुत गड़बड़ हुई और यहाँ आये और यहाँ निश्चयमोक्षमार्ग आया। समझ में आया?

मुमुक्षु : तोड़ मरोड़कर....

पूज्य गुरुदेवश्री : तोड़ मरोड़कर... वस्तुस्थिति ऐसी है। स्वचैतन्यमूर्ति स्वद्रव्य का आलम्बन जब नहीं हुआ, तब तक ज्ञान, दर्शन, चारित्र की निर्मलता कहाँ से होती है? क्या पर के लक्ष्य से होती है? समझ में आया? स्व चिदानन्द सत्य ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव। मध्यबिन्दु में... जैसे समुद्र पड़ा है न! समुद्र के मध्यबिन्दु में से ज्वार आता है या नहीं? यह समुद्र कहते हैं न, समुद्र। मध्यबिन्दु में से ज्वार आता है। क्या ऊपर से पानी आने से ज्वार आता है? चौबीस घण्टे चौबीस इंच वर्षा हो तो वहाँ ओट... ओट... ओट को क्या कहते हैं? भाटा। वापस पड़े तब ज्वार आता है? वर्षा की नदियों से ज्वार आता है? इतनी वर्षा आवे तो ज्वार आता है? ज्वार तो मध्यबिन्दु में से समुद्र उछलकर ज्वार आता है। बाहर का इतना पानी हो, चौबीस-चौबीस इंच एक दिन में इतनी नदियाँ गिरें, परन्तु जब भाटाा हो ज्वार के बाद, वह ज्वार ला दे, ऐसी नदी के पानी में ताकत नहीं है। वह तो मध्यबिन्दु अन्दर से उछलता है तो ज्वार आता है। फिर भले बाहर में १०८ डिग्री की धूप हो। ११८ डिग्री, १०८ क्या ११८ डिग्री की धूप हो। मध्यबिन्दु जब उछले तो उसका ज्वार, ज्वार अर्थात् पूर, पूर को रोकने में कोई समर्थ नहीं है।

इसी प्रकार मध्यबिन्दु में दृष्टि देने से—चैतन्य मध्य ध्रुव में दृष्टि देने से जो पर्याय में सम्यग्दर्शन का पूर आया, उसे रोकने में कोई बाह्य के प्राणी समर्थ नहीं हैं। समझ में आया? फिर विशेष पठन न हो, समझ न हो, विशेष क्षयोपशम न हो, इन्द्रियाँ भी शिथिल हो गयी हों। नारकी के जीव को कितनी है, देखो! सातवें नारकी के जीव को नया समकित होता है। अनादि काल से नहीं हुआ था, ऐसा निश्चयसम्यग्दर्शन होता है। कितनी असुविधा। जयचन्दभाई!

मुमुक्षु : आज ढीले हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ढीले हैं? यह क्या (कहा)? यह सातवें नरक के नारकी को

कितनी प्रतिकूलता, उसमें सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। विघ्न करने में बिल्कुल कोई समर्थ नहीं है। मध्यबिन्दु में दृष्टि लगाकर, ध्रुव... ध्रुव... भगवान चिदानन्द में लगायी (तो) पर्याय में ज्वार आया। ज्ञप्ति—ज्ञान की पर्याय और सम्यग्दर्शन की पर्याय, स्वरूपाचरण हुआ। इन्द्रियाँ शिथिल हों, इन्द्रियाँ सुलगती हों। वहाँ तो सर्दी बहुत है न, सर्दी, हो। उसमें मुझे क्या है ? निज आत्मा के आश्रय से जो निश्चयसम्यग्दर्शन हुआ, उस ज्वार— पूर को रोकनेवाला जगत में कोई नहीं और वह पर से नहीं होता। व्यवहारसम्यग्दर्शन के विकल्प से वह निर्विकल्प नहीं होता। यह तो निमित्त से कथन किया गया है। समझ में आया ?

फुटनोट। '**यहाँ यह ख्याल में रखनेयोग्य है कि जीव व्यवहारमोक्षमार्ग को...**' देखो! इसमें बड़ा विवाद है। पाठ में आया था न ? कि अनादि काल से... आया था। **अनादि अविद्या के नाश द्वारा व्यवहारमोक्षमार्ग को प्राप्त करता हुआ...** ऐसा १६१ गाथा में दूसरी लाईन में आया था। उसमें से सब बहुत निकालते हैं, देखो! अज्ञान का नाश होकर पहले तो व्यवहारसम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग होता है। ऐसा यहाँ से निकालते हैं। ऐसा है ही नहीं। देखो, यहाँ नोट—'व्यवहारमोक्षमार्ग को भी अनादि अविद्या का नाश करके...' अज्ञान का, मिथ्यात्व का नाश करके ही 'प्राप्त कर सकता है;...' वह तो मिथ्यात्व का नाश यह भी कहे। वह तो कहे कि मिथ्यात्व के नाश से व्यवहारमोक्षमार्ग होता है। वह तो ऐसा कहे। परन्तु वह मोक्षमार्ग व्यवहार है, ऐसा कहते हैं। मिथ्यात्व के नाश में स्वपरप्रत्यय आश्रय से मोक्षमार्ग व्यवहार है, वह मिथ्यात्व के नाश से होता है। यह तो अभी कहते हैं। ऐसा नहीं है।

मिथ्यात्व, अज्ञान और अनन्तानुबन्धी का नाश हुआ तो निश्चयसम्यग्दर्शन, निश्चयज्ञप्ति आत्मा की और स्वरूपाचरण दशा प्रथम चौथे गुणस्थान में अपूर्व अनुभव में उत्पन्न होते हैं। समझमें आया ? बहुत चर्चा होगी। ईश्वरलालजी! तुम्हारे यहाँ बहुत चर्चा होगी। सनावद में और हिन्दुस्तान में से बहुत बात आयेगी। ऐसा है और वैसा है और ऐसा है। क्या कहते हैं, देखो! **अनादि अविद्या का नाश होने से पूर्व तो (अर्थात् निश्चयनय के—द्रव्यार्थिकनय के—विषयभूत...)** निश्चयनय कहो, द्रव्यार्थिक कहो। द्रव्यार्थिक—द्रव्य जिसका प्रयोजन है, ऐसा ज्ञान। ज्ञान का जिसे द्रव्य प्रयोजन है, वस्तु

प्रयोजन है—ऐसे ज्ञान को द्रव्यार्थिकनय कहते हैं। द्रव्यार्थिकनय का विषय अखण्ड द्रव्य है। वह निश्चयनय के अर्थात् द्रव्यार्थिकनय के 'विषयभूत...' ध्येयभूत 'शुद्धात्मस्वरूप का भान करने से पहले तो... व्यवहारमोक्षमार्ग भी होता नहीं।' यह तो भी पण्डित लिखते हैं न। हिम्मतभाई लिखते हैं, पाठ में कहाँ आया है? ऐसा (वे) कहते हैं। यह पाठ में ही आया, सुन तो सही। समझ में आया? यह तो स्पष्ट किया है।

व्यवहारमोक्षमार्ग भी निश्चय अनुभूति बिना अपने स्वद्रव्य के आश्रय से निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, स्वरूपाचरण बिना व्यवहारमोक्षमार्ग होता नहीं... नहीं... नहीं। पहले व्यवहारमोक्षमार्ग हो, फिर निश्चयमोक्षमार्ग हो, ऐसा तीन काल में कभी नहीं है। समझ में आया? व्यवहारमोक्षमार्ग तो एक आरोप से निमित्त से कथन किया गया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसके साथ? (श्वेताम्बर के साथ)। किसी के साथ समन्वय हुआ नहीं। कौन कहता है समन्वय? निश्चय हो तो व्यवहार होता है, ऐसा कहा। उसके साथ में हुआ। बात सच्ची। वे कहते हैं, पहले व्यवहार, बाद में निश्चय। उसके साथ सम्बन्ध हुआ, श्वेताम्बर के साथ। श्वेताम्बर ऐसा ही कहते हैं, पहले व्यवहार बाद में निश्चय। दिगम्बर ऐसा नहीं कहते। अनादि की दिगम्बर,... दिगम्बर अर्थात् जैनधर्म की प्रणालिका। सनातन का नाम दिगम्बर। दिगम्बर कोई पक्ष नहीं है। समझ में आया? वह तो मुनि के नाम से दिगम्बर कहने में आया है। बाकी मार्ग अनादि सनातन जैनदर्शन का वस्तुस्वरूप विश्वदर्शन ऐसा दिगम्बर धर्म जो अनादि सनातन, उसमें ऐसा चला आया था। निश्चय हो तो व्यवहार कहने में आता है, निश्चय बिना व्यवहार होता नहीं।

इसीलिए तो ३५० वर्ष पहले यशोविजय श्वेताम्बर में हुए। बड़े विद्वान् हुए, उपाध्याय। महमहो उपाध्याय यशोविजय। उन्होंने निकाला कि दिगम्बर तो ऐसा कहते हैं कि पहले निश्चय होता है, पश्चात् व्यवहार। बात ऐसी ही है। समझ में आया? ३५० वर्ष पहले यशोविजय ने हजारों नये ग्रन्थ बनाये हैं। वे कहते हैं। यह पहले बताया था पुस्तक में से। 'निश्चयनय पहला कहे' ८४ बोल निकाले हैं। दिग्पट। दिग्पट ८४ बोल। दिगम्बर के ८४ बोल विपरीत हैं, उसमें एक बोल ऐसा निकाला है कि वे पहले

ऐसा कहते हैं पहले निश्चय, बाद में व्यवहार। तो ऐसा ही है। निश्चय हो तो ही व्यवहार है। बाद में कहो या साथ में कहो। वह तो पहले एक बार कहा था। समझ में आया? साथ में हो तो भी फिर कहने में आता है। पहले पंचास्तिकाय में कहा था न! अनादि का शुद्धात्मा है, पश्चात् कर्म का सम्बन्ध होकर अशुद्ध हुआ। ऐसा पाठ है। तो पश्चात् बाद में नहीं, है तो साथ में। परन्तु मुख्य को पहला कहा, गौण को बाद में कहा। असाधारण चीज़ मुख्य चिदानन्द अनादि कन्द प्रभु वह है तो ऐसा शुद्ध, परन्तु पीछे- पश्चात् अनादि कर्म के साथ जुड़ान से मलिनता उत्पन्न हुई। पश्चात् काल है तो उसी समय, परन्तु ऐसा कहने में आया। तो वे कहते हैं, 'निश्चयनय पहला। दिगम्बर लोग ऐसा कहते हैं।' ऐसा ही है। दिगम्बर क्या, जैनदर्शन क्या, वस्तुदर्शन ऐसा ही है। स्वद्रव्य के आश्रय लिये बिना व्यवहार के भेदरूप विकल्प को व्यवहार कहनेवाला जगे बिना व्यवहार होता नहीं। यह तो तुम्हारे में कहते हैं अब।

मुमुक्षु : .... कहनेवाला जगे बिना...

पूज्य गुरुदेवश्री : जगे बिना व्यवहार किसे कहे? समझ में आया? यह भेद है, अभेद को जाने बिना भेद किसको कहे?

मुमुक्षु : अपने को भूल गया, और कहाँ से लाई।

पूज्य गुरुदेवश्री : और कहाँ से लाई। 'आप आपको भूल गया, अवर कहाँ से लाई।' तुझे भूल गया और बाहर से मोक्षमार्ग आ गया, ऐसा कभी नहीं होता। इसी प्रकार प्रथम निश्चयमोक्षमार्ग क्या, व्यवहार क्या, इसका पक्का निर्णय करना (चाहिए)। पक्की समझ करना चाहिए। यदि समझ में विपरीतता हो तो अन्तर में पुरुषार्थ करने का उसे अवसर मिलेगा नहीं। समझ में आया? देखो, आया न नीचे? पुनश्च, नीचे दूसरा।

'और निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग को साध्य-साधनपना अत्यन्त घटित होता है।' ऐसा जो 'टीका में' कहा गया है, वह व्यवहारनय द्वारा किया गया उपचरित निरूपण है।' वह तो उपचरित कथन है। व्यवहार कहो या उपचरित कहो। 'उसमें से ऐसा अर्थ निकालना चाहिए...' व्यवहारनय के कथन ही ऐसे हैं, हों! उसमें भाई ने लिया है, नहीं? फूलचन्दजी ने। तत्त्वज्ञान मीमांसा है न? यहाँ नहीं होगी। जैनतत्त्व

मीमांसा है न? उसमें लिया है पीछे कि व्यवहारनय का लक्षण ही ऐसा है। थोड़ा लिया है। अपने निश्चयमोक्षमार्ग चलता है न!

देखो, यहाँ। तत्त्वविवेचन की पद्धति है। पहले ले लिया है। परन्तु व्यवहारनय की तत्त्व विवेचन की पद्धति इससे भिन्न प्रकार की है। यह गुणभेद और पर्यायभेदरूप तो आत्मा को... करता ही है। व्यवहार। साथ में जो विभावभाव संयुक्त अवस्था है, उसरूप भी आत्मा को मानता है। इस नय का बल निमित्तों पर अधिक है। अन्तिम पृष्ठ है। २९१, २९२। २९३ पृष्ठ पर पूरा हो जाता है अधिकार। इसलिए इस नय की अपेक्षा से यह कार्य निमित्तों से हुआ, ऐसा कहने में आता है। यह कथन इसी नय में शोभते हैं। यदि निमित्त न हो तो कार्य भी नहीं होगा, ऐसा व्यवहारनय में शोभा पाता है, निश्चयनय में नहीं। यह कथनपद्धति ऐसी है। समझ में आया? यह निश्चय-व्यवहार चलता है न दोपहर में? अन्तिम पृष्ठ पर है। व्यवहारनय की पद्धति ऐसी है। गुणभेद करके बात करे, पर्याय से बात करे, राग से बात करे, स्व-पर पर्याय को-विकल्प को मोक्षमार्ग कहे, ऐसे व्यवहार के कथन निश्चयनय में शोभा नहीं देते। समझ में आया? इसमें लिखा है।

कहते हैं, 'ऐसा जो कहा गया है, वह व्यवहारनय द्वारा किया गया उपचरित निरूपण है। उसमें ऐसा अर्थ निकालना चाहिए कि 'छठवें गुणस्थान में वर्तते हुए शुभ विकल्पों को नहीं...' विकल्प को जो साधन कहा है, सप्तम गुणस्थान के योग्य व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प को निश्चय का साधन कहा है, उसमें से ऐसा निकालना कि 'शुभ विकल्पों को नहीं परन्तु छठवें गुणस्थान में वर्तते शुद्धि के अंश को और सातवें गुणस्थानयोग्य निश्चयमोक्षमार्ग को वास्तव में साधन-साध्यपना है।' साध्य सप्तम गुणस्थान, साधन छठवें गुणस्थान की शुद्ध निर्मल परिणति। तीन कषाय के अभाववाली शुद्ध दशा, वह साधन और सातवाँ साध्य। निश्चय से साध्य-साधन तो यही है।

'छठवें गुणस्थान में वर्तता शुद्धि का अंश बढ़कर जब और जितने काल तक...' देखो! जब और जितने काल तक, यह अपने आया था न? **जिस काल में और जितने काल तक...** उसमें से यह लिया। उग्र शुद्धि के कारण से। पुरुषार्थ की उग्रता। छठवें गुणस्थान में जो निर्मलता है, उग्र पुरुषार्थ से स्वद्रव्य का आश्रय लिया, 'शुभ विकल्पों का अभाव वर्तता है...' सातवें गुणस्थान में शुभ विकल्प का अभाव (वर्तता है), 'तब

और उतने काल तक...' यह उसमें से—टीका में से लिया। 'सातवें गुणस्थानयोग्य निश्चयमोक्षमार्ग होता है।' देखो! बाद में भले आठवें में हो, नौवें में हो। भाई! ऐसा कहा। सातवें में-सातवें गुणस्थान के योग्य निश्चयमोक्षमार्ग है। फिर भले आठवें, नौवें, दसवें में सबमें कहो। परन्तु सप्तमयोग्य निश्चयमोक्षमार्ग वहाँ हो गया है। समझ में आया? अरे... भाई! कौन जाने उसे स्वघर में आने में उकताहट आती है, क्या है? बाहर घर में घूमना और मोक्षमार्ग कहना। बाहर घूमना और छूटने का मार्ग कहना। मोक्षमार्ग का अर्थ क्या? छूटने का मार्ग। विकल्पात्मक रहना, बन्ध में रहना और छूटने का मार्ग कहना।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कष्टदान माने। यह छहढाला में आता है न—'आतमहित हेतु ज्ञान और वैराग्य को कष्टदायक मानता है।' उसकी श्रद्धा में अन्तर है, व्यवहारश्रद्धा में अन्तर है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ताले में बन्द रखना। विकल्प में रहना, ऐसा।

भगवान आत्मा ज्ञायक चैतन्य की अनुभूति, उसकी ज्ञप्ति और रुचि तो पहले चौथे (गुणस्थान में) हो गयी है। पश्चात् शान्ति की वृद्धि होकर पाँचवाँ हुआ और सप्तम पहले हुआ तो है, सातवें में से हटकर छठवें में आया, उसकी बात यहाँ की है। समझ में आया? तो छठवें में जितनी स्थिरता, शुद्धि है, वही शुद्धि सातवें में साध्य का साधन है। परन्तु व्यवहार जो निमित्त है, उसे व्यवहारसाधन कहा गया है। समझ में आया? ओहोहो! कहो, माँगीरामजी! यह छठवें और सातवें की बात। अब यहाँ परमेश्वर के घर की बात (चलती है)। उसे निश्चय-व्यवहार कैसे हैं, उसकी समझण, निर्णय, श्रद्धा, वीर्य में हाँ आवे, इस प्रकार से निर्णय तो करना पड़ेगा या नहीं? समझ में आया? कि ऐसा का ऐसा चलेगा कि वह भी सच्चा, वह भी सच्चा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किस अपेक्षा? यह भी सच्चा, वह भी सच्चा। अपेक्षा लगेगी मिथ्यात्व में। अमुलखचन्दजी! कैसे है, देखो! उसमें नहीं लगेगी।

गाथा - १६२

जो चरदि णादि पेच्छदि अप्पाणं अप्पणा अणण्णमयं।
सो चारित्तं णाणं दंसणमिदि णिच्छिदो होदि।।१६२।।

देखे जाने आचरे जो अनन्यमय निज आत्म को।
वे जीव दर्शन-ज्ञान अर चारित्र हैं निश्चयपने।।१६२।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो (आत्मा), [अनन्यमयम् आत्मानम्] अनन्यमय आत्मा को [आत्मना] आत्मा से [चरित] आचरता है, [जानाति] जानता है, [पश्यति] देखता है, [सः] वह (आत्मा ही) [चारित्रं] चारित्र है, [ज्ञानं] ज्ञान है, [दर्शनम्] दर्शन है—[इति] ऐसा [निश्चितः भवति] निश्चित है।

टीका :- यह, आत्मा के चारित्र-ज्ञान-दर्शनपने का प्रकाशन है (अर्थात् आत्मा ही चारित्र, ज्ञान और दर्शन है, ऐसा यहाँ समझाया है।)।

जो (आत्मा) वास्तव में आत्मा को—जो कि आत्ममय होने से अनन्यमय है उसे—आत्मा से आचरता है अर्थात् [1]स्वभावनियत अस्तित्व द्वारा अनुवर्तता है। (-स्वभावनियत अस्तित्वरूप से परिणमित होकर अनुसरता है), (अनन्मय आत्मा को ही) आत्मा से जानता है अर्थात् स्वपरप्रकाशकरूप चेतता है, (अनन्यमय आत्मा को ही) आत्मा से देखता है अर्थात् यथातथरूप से अवलोकता है, वह आत्मा ही वास्तव में चारित्र है, ज्ञान है, दर्शन है— ऐसा [2]कर्ता-कर्म-करण के अभेद के कारण निश्चित है। इससे (ऐसा निश्चित हुआ कि) चारित्र-ज्ञान-दर्शनरूप होने के कारण आत्मा को जीवस्वभावनियत चारित्र जिसका लक्षण है, ऐसा निश्चयमोक्षमार्ग अत्यन्त घटित होता है (अर्थात् आत्मा ही चारित्र-ज्ञान-दर्शन होने के कारण आत्मा ही

---

१. स्वभावनियत=स्वभाव में अवस्थित; (ज्ञानदर्शनरूप) स्वभाव में दृढ़रूप से स्थित। ['स्वभावनियत अस्तित्व की' विशेष स्पष्टता के लिए १४४वीं गाथा की टीका देखो।]

२. जब आत्मा, आत्मा को, आत्मा से आचरता है-जानता है-देखता है, तब कर्ता भी आत्मा, कर्म भी आत्मा और करण भी आत्मा है; इस प्रकार वहाँ कर्ता-कर्म-करण की अभिन्नता है।

ज्ञानदर्शनरूप जीवस्वभाव में दृढ़रूप से स्थित चारित्र जिसका स्वरूप है, ऐसा निश्चयमोक्षमार्ग है।)॥१६२॥

गाथा - १६२ पर प्रवचन

अब १६२। देखो, विशेष स्पष्टीकरण करते हैं। १६२ गाथा है।

जो चरदि णादि पेच्छदि अप्पाणं अप्पणा अणण्णमयं।
सो चारित्तं णाणं दंसणमिदि णिच्छिदो होदि।।१६२।।

टीका। उसमें यहाँ नहीं, हरिगीत नहीं। **यह, आत्मा के चारित्र-ज्ञान-दर्शनपने का प्रकाशन है....** देखो! यह भगवान आत्मा... देखो! चारित्र से लिया। समझ में आया? पहले चारित्र लिया। '**चारित्तं णाणं दंसण**' है न पाठ में? पाठ में पहला चारित्र है। तो ऐसा लिया। प्रधानता बतलानी है, मुख्यता बतलानी है, इसलिए वहाँ से लिया। यह भगवान आत्मा को **चारित्र-ज्ञान-दर्शनपने का प्रकाशन है....** स्वरूप की स्थिरता का प्रकाशन है, स्वरूप के दर्शन का प्रकाशन है, स्वरूप के ज्ञान का प्रकाशन है। **(अर्थात् आत्मा ही चारित्र, ज्ञान और दर्शन है, ऐसा यहाँ समझाया है)**। देखो! आत्मा के चारित्र, ज्ञान, दर्शनपने का प्रकाशन है। ऐसा अभेद लिया। **आत्मा के चारित्र-ज्ञान-दर्शनपने का प्रकाशन है (अर्थात् आत्मा ही चारित्र, ज्ञान और दर्शन है, ऐसा यहाँ समझाया है)**। भगवान आत्मा अपने अनुभव की प्रतीति, अनुभव का ज्ञान और स्वरूप की स्थिरता, ये तीनों आत्मा ही हैं। आत्मा ही मोक्षमार्ग है। आहाहा!

जो (आत्मा) वास्तव में आत्मा को.... देखो! **जो (आत्मा) वास्तव में आत्मा को....** देखो! वे विकल्प, व्यवहार-ब्यवहार यहाँ नहीं लेना। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, वह आत्मा नहीं। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, वह अनात्मा है, वह आस्त्रव है। समझ में आया? निश्चयसम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की भूमिका में जितने व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प उठते हैं, वे अनात्मा हैं, आत्मा नहीं। अनात्मा अर्थात् आस्त्रव।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार... है ही नहीं। आत्मा निश्चय से यह है। व्यवहार है, पर्याय को आत्मा कहना, वह व्यवहार है। संवर, निर्जरा, मोक्ष की पर्याय को भी आत्मा कहना, वह व्यवहार है। त्रिकाल ज्ञायकभाव एकाकार को आत्मा को कहना, वह निश्चय है। समझ में आया?

तो यहाँ कहते हैं, **(आत्मा) वास्तव में आत्मा को....** देखो! आत्मा, आत्मा को **जो कि आत्ममय होने से...** तीसरा बोल। **आत्ममय होने से...** देखो! निश्चयमोक्षमार्ग। **अनन्यमय है...** समझ में आया? **उसे—आत्मा से आचरता है....** उसे आत्मा से आचरता है। यह कितने शब्द लिये! आत्मा ज्ञायकभाव अकेला शुद्ध और उस आत्मा को—निज स्वभाव को आत्मामय होने से—स्वभावमय होने से अनन्यमय है, उसे आत्मा से आचरता है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आत्मा से आचरता है।

अर्थात् स्वभावनियत अस्तित्व द्वारा अनुवर्तता है। नीचे नोट है। 'स्वभाव में अवस्थित'। स्वभाव ज्ञान और दर्शन। यह १५४ गाथा में आ गया है। 'स्वभाव में दृढ़रूप से रहा हुआ।' अपना ज्ञान विशेषचेतना, दर्शन सामान्यचेतना ऐसा जो नियत निज स्वभाव, नियत निज स्वभाव, उसमें लीन होता है, वह निश्चय स्वआश्रित चारित्र है। यह चारित्र की व्याख्या। यह आत्मा अपना स्वभाव सामान्य दर्शनमय है। दर्शन उपयोग, हों! विशेष ज्ञानमय है, ऐसा नियत निज स्वभाव, उसमें लीन होता है, वह अपने स्वभाव में लीन होता है, इसलिए उसे चारित्र कहा गया है। समझ में आया? पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण चारित्र नहीं है। वह तो विकल्प है, आस्रव है, वह अनात्मा है। व्यवहाररत्नत्रय में पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण के (विकल्प) अनात्मा, आस्रव है।

मुमुक्षु : उसमें....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह उदयभाव कहो या आस्रव कहो, एक ही बात है। उदयभाव कहो, आस्रव कहो, बन्धभाव कहो, मलिन कहो, भेदरूप भाव कहो, अनात्मा कहो।

मुमुक्षु : सामान्य और विशेष दोनों....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों है न। सामान्य-विशेषचेतना, हों! चेतना। दर्शन-ज्ञान। यह १५४ में आया है, १५४ में। विशेष लिया न! 'स्वभाव नियत अस्तित्व की विशेष

स्पष्टता के लिये १५४वीं गाथा की टीका देखो।' १५४ में अपने आ गया है। १५४

यह, मोक्षमार्ग के स्वरूप का कथन है। १५४। **जीवस्वभाव में नियत चारित्र वह मोक्षमार्ग है।** यहाँ से शुरु हुआ है। यहाँ से अपने शुरु किया है पहले से। **जीवस्वभाव में नियत चारित्र...** जीवस्वभाव। अब स्वभाव क्या? **जीवस्वभाव वास्तव में ज्ञानदर्शन है।** देखो! यह ज्ञान-दर्शन समकित नहीं। **क्योंकि वे (जीव से) अनन्यमय है।** अनादि से अनन्यमय है। ज्ञान-दर्शनभाव स्वभावभाव अनन्यमय है। जानना-देखना स्वभावभाव आत्मा से अनन्यमय है। **ज्ञानदर्शन का (जीव से) अनन्यमयपना होने का कारण यह है...** कहते हैं, ज्ञान-दर्शन का जीव के साथ अभेदपना अनेकरूपपना है, अन्यपना नहीं। अनन्यमयपना होने का कारण यह है कि **विशेष चैतन्य और सामान्यचैतन्य...** विशेष चैतन्य वह ज्ञान, सामान्यचैतन्य वह दर्शन। **जिसका स्वभाव है, ऐसे जीव से वे निष्पन्न हैं...** निष्पन्न अर्थात् जीव से जीव में हैं। जीव से सामान्य और विशेषचेतना है। दर्शन, सामान्यचेतना; ज्ञान, विशेषचेतना। वह आत्मा से अनन्यमय एक ही है। समझ में आया? **(अर्थात् जीव से ज्ञानदर्शन रचित हैं)।** रचित हैं अर्थात् हैं।

अब जीव के स्वरूपभूत ऐसे... स्वरूपभूत कौन? ज्ञान-दर्शन। उसमें **नियत-अवस्थित ऐसा जो उत्पादव्ययध्रौव्यरूप वृत्तिमय अस्तित्व...** देखो! चारित्रगुण कायम रखकर उसमें चारित्र की पर्याय का उत्पाद-व्यय होना, ऐसा अस्तित्व। **रागादि परिणाम के अभाव के कारण अनिन्दित है—वह चारित्र है; वही मोक्षमार्ग है।** यहाँ से शुरु किया था अपने। १५४ से शुरु किया था पहले। समझ में आया?

यहाँ कहा, **आत्मा से आचरता है...** आत्मा से, यह आचरण आया। आचरण क्या? जड़ का आचरण, वह तो जड़ की पर्याय है। राग का आचरण, वह विभाव आचरण है। विकल्प देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नौ तत्त्व की भेदरूप श्रद्धा, ग्यारह अंग का ज्ञान और पंच महाव्रत के परिणाम, वह विकल्प आचरण है, राग आचरण है, विभाव आचरण है। जड़ आचरण नहीं, विभाव आचरण नहीं, (परन्तु) आत्मा से आचरता है। ओहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्बन्ध तो सही न। अन्यपने। उसमें अत्यन्त... उसे कभी स्पर्शा ही नहीं। भगवान आत्मा कर्म को, शरीर को तीन काल में कभी स्पर्शा नहीं। राग को स्पर्शा है पर्यायदृष्टि में, पर्याय के काल में। स्वभाव की दृष्टि से भगवान राग को कभी स्पर्शा ही नहीं। पर्याय के अंश में संसार को एक समय में स्पर्शा है, स्पर्शा है। पर को तो कभी स्पर्शा ही नहीं। उदयभाव को एक समय की पर्याय में स्पर्शा है। स्वभावदृष्टि से तो उदयभाव को कभी स्पर्शा ही नहीं। समझ में आया? ऐसी दृष्टि, निश्चय किये बिना उसका वीर्य स्वद्रव्य आश्रित गति नहीं करेगा। यह आता है न? जिसकी आवश्यकता जाने, जिसकी आवश्यकता जाने, उसका वीर्य स्फुरित हुए बिना रहता नहीं। हमारी गुजराती में-भाषा में ऐसा है, जिसकी आवश्यकता जाने, उसका पुरुषार्थ किये बिना रहता नहीं।

मुमुक्षु : पंचम काल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल उसके घर में रहा। पंचम काल कहाँ आत्मा में घुस गया है? पंचम काल कहाँ आत्मा में घुस गया है? बनारसीदास कहते हैं, दिन, रात, घड़ी, पहोर, वर्ष और दिन तो काल में हैं, आत्मा में कहाँ हैं? यह पद लिया है बनारसीदास ने, समयसार नाटक में (लिया है)। समझ में आया?

मुमुक्षु : सोनगढ़ के वीरपुरुष का सिद्धान्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव का सिद्धान्त है। यह सोनगढ़ के घर का क्या है? यह तो अन्तर स्वभाव सबका ऐसा स्वभाव है। सबका ऐसा ही स्वभाव है। भगवान ऐसा ही है। पूर्णानन्द प्रभु दर्शन-ज्ञानचेतना से भरपूर है। निगोद का आत्मा भी दर्शन-ज्ञान से भरपूर है, और अभव्य आत्मा भी दर्शन-ज्ञान से भरपूर है। वह पर्याय में नालायक, पुरुषार्थ स्वभावसन्मुख करता नहीं। बाकी स्वभाव तो वह भी भगवान ही है।

मुमुक्षु : अज्ञानी का स्वरूप....

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी तो पर्याय है, वस्तु में कहाँ अज्ञान है। समझ में आया? अभव्य का आत्मा भी निश्चय ज्ञान-दर्शनचेतना से भरपूर है। मात्र वह ज्ञान-दर्शनचेतना भगवान आत्मा की है। उस ओर का झुकाव करता नहीं, अनादि का अज्ञान है, इसलिए भटकता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। कर्म निमित्त नहीं। अपनी पर्याय की योग्यता से विकार और मिथ्यात्वरूप परिणमता है, कर्म-फर्म से नहीं। कर्म की अपेक्षा बिना अभव्य भी अपने में मिथ्यात्व, अज्ञान, अव्रत (रूप से परिणमता है)। वह पंचास्तिकाय की ६२ गाथा आ गयी है, ६२ गाथा। अभिन्न कारक। सर्व जीव के अपने से ही मिथ्यात्व, अज्ञान, राग-द्वेष के परिणाम (परिणमते हैं)। पर की अपेक्षा रखता नहीं। निश्चय परिणमन परकारक की अपेक्षा रखता नहीं। ऐसा ६२ गाथा में आ गया है।

मुमुक्षु : यह आपने शिक्षणवर्ग में .... कर दिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर दिया है, सबमें लिखा है। प्रश्नोत्तर आदि में सबमें आ गया है। अब बात बहुत बाकी नहीं रही। समझ में आया? प्रश्नोत्तर में, उसमें सबमें आ गया है। बहुत ग्रन्थ हुए। कितने हुए हैं? तपसी! वहाँ तपसी सोते होंगे। कितने नम्बर के हुए? ९५? ९२? ठीक। समझ में आया? पुस्तक में बहुत स्पष्ट आया है।

मुमुक्षु : अनन्तानुबन्धी....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो कहते हैं, आत्मा **स्वभावनियत अस्तित्व द्वारा...** आहाहा! देखो! स्वभाव—ज्ञान, दर्शन। नियत—निश्चय। उसका अस्तित्व—मौजूदरूप से। **अनुवर्तता है...** स्वभाव को अनुसरकर वर्तता है, अन्तर में आचरण में उसका नाम निश्चयचारित्र और मोक्ष का मार्ग भगवान कहते हैं। **(-स्वभावनियत अस्तित्वरूप से परिणमित होकर...)** देखो! वर्तता है न (अर्थात्) अनुसरण करता है।

(अनन्यमय आत्मा को ही)... अनन्यमय आत्मा को ही **आत्मा से जानता है...** अनन्यमय आत्मा को ही आत्मा से आत्मा को ही, **आत्मा से जानता है अर्थात् स्वपरप्रकाशकरूप चेतता है,...** अपने को ही स्वपरचेतना से चेतता है, अपने आचरण में, यही निश्चय स्वरूप का आचरण है पर्याय में। **(अनन्यमय आत्मा को ही) आत्मा से देखता है...** देखो! अनन्य आत्मा को ही, एक तो आचरता है, ऐसा कहा, अनुवर्तता है, जानता है कहा और आत्मा से देखता है। समझ में आया? **यथातथरूप से अवलोकता है,....** अपने को ही दर्शन से अवलोकता है। ज्ञान से जानता है, दर्शन से देखता है। **वह**

आत्मा ही वास्तव में चारित्र है, ज्ञान है, दर्शन है... लो! यह ही भगवान आत्मा वास्तव में चारित्र है। यह पंचम काल के मुनि पंचम काल के प्राणियों को कहते हैं या चौथे काल के लिये यह कहा है? ऐ... पंचम काल! अभी ९०० वर्ष पहले तो हुए हैं अमृतचन्द्राचार्य। वे तो कहते हैं कि पंचम काल के सन्त पंचम काल के जीवों को कहते हैं। कहो, समझ में आया? अरे... आत्मा! ज्ञान-दर्शनमय तेरा (स्वभाव) उसका आचरण, उसे जानना, और देखना, वही तेरी शक्ति है। समझ में आया?

चारित्र, **आत्मा ही वास्तव में चारित्र है,....** आत्मा ही वास्तव में **ज्ञान है,...** ऐसा लेना। आत्मा ही वास्तव में **दर्शन है...** तीनों बोल लेना है न। चारित्र पहले लिया था न! अर्थ में पहले लिया था, यहाँ भी पहले लिया है। पाठ में पहले (लिया है) और यहाँ भी पहले लिया है। **ऐसा कर्ता-कर्म-करण के अभेद के कारण निश्चित है।** लो, आया तुम्हारा। समझ में आया? ऐसा कर्ता। जब आत्मा आत्मा को आत्मा से आचरता है। जब आत्मा आत्मा को आत्मा से आचरता है, जानता है, देखता है, तब कर्ता भी आत्मा। आत्मा। कर्म भी आत्मा को आत्मा से और करण। तीनों आ गये देखो! आत्मा वह कर्ता, आत्मा को, वह कार्य, आत्मा से, यह करण। आचरता है, जानता है, देखता है। आत्मा आत्मा को आचरता है, आत्मा आत्मा को आत्मा से आचरता है। आत्मा आत्मा को आत्मा से देखता है, आत्मा आत्मा को आत्मा से जानता है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प से नहीं, निमित्त से नहीं, इन्द्रिय-फिन्द्रिय से नहीं। लो, वे कहते हैं, इन्द्रिय बिना कहीं जान सकते हैं? अब सुन तो सही। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इन्द्रियों से तो बाहर रहता है। इन्द्रियों से क्या होता है? यह तो पहले कहा था न? नहीं? जयधवल में आता है। इन्द्रियों से तुझमें ज्ञान हुआ तो सामान्यज्ञान विशेष बिना रहा? सामान्य ज्ञानगुण जो है, उसका विशेष कहाँ रहा? सामान्य का विशेष है या इन्द्रियों का विशेष है? सामान्य का विशेष है। त्रिकाल ज्ञानगुण जो आत्मा का है, उसकी विशेष पर्याय हुई है। क्या इन्द्रिय से हुई है? इन्द्रियों से हुई हो

तो सामान्य ने क्या किया? समझ में आया? सामान्य कौन? गुण। त्रिकाल रहनेवाला ज्ञानगुण। वह विशेष अर्थात् पर्याय बिना रहा? उस सामान्य का विशेष वर्तमान पर्याय में है या नहीं? उसी काल में सामान्य का विशेष है या नहीं? वह विषय इन्द्रियों ने किया तो सामान्य ने क्या किया? समझ में आया? यह जयधवला में लिया है। यह आया था।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... पहले (संवत्) २००० के वर्ष में ग्रन्थ आया था न। बींछिया। तब से यह बोल बाहर रखा था। और यह तो तब १९ बोल आये थे। बंसीधरजी थे। मगसर शुक्ल-१२ का व्याख्यान है। वस्तुविज्ञानसार। १९ बोल हैं न? एक घण्टे का वह व्याख्यान है। मगसर शुक्ल-१२। २००२ के वर्ष। उसमें इन्द्रियों ने तुझे क्या किया? इन्द्रियाँ तो जड़ हैं, मिट्टी हैं। उनका विशेष तो उनके पास रहा। परमाणु है उसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श है। और उस विशेष ने तेरा विशेष किया? ज्ञान की पर्याय उस विशेष ने की? और उसके विशेष की पर्याय तेरे विशेष से हुई? समझ में आया? वह परमाणु जो है वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श सामान्य त्रिकाल, उसकी वर्तमान विशेष पर्याय। तो सामान्य ने विशेष पर्याय बनायी कि तेरे विशेष से हुई? ऐसा ... चलता है। देखो! इसका विशेष है। यह सामान्य का विशेष है, वह तेरा विशेष है? और आत्मा में जो वर्तमान में ज्ञान होता है, वह सामान्य ज्ञानगुण त्रिकाल का विशेष है। क्या इन्द्रियों का विशेष है? इन्द्रियों का विशेष उसमें रहा, अपना विशेष अपने में रहा। समझ में आया?

तो कहते हैं, आत्मा कर्ता। स्वतन्त्ररूप से करे, वह कर्ता। अपनी एक-एक गुण की पर्याय को स्वतन्त्ररूप से करे, वह कर्ता। आत्मा कर्म। आत्मा का इष्ट, वह कर्म। ज्ञानी का इष्ट शुद्ध पर्याय, अज्ञानी का इष्ट अशुद्ध पर्याय। यहाँ तो शुद्ध पर्याय की बात चलती है। कर्ता, स्वतन्त्ररूप से करे, वह कर्ता और कर्ता का प्रिय, वह कर्म है। अज्ञानी कर्ता होकर प्रिय—विकार का कार्य करता है। ज्ञानी कर्ता होकर प्रिय—शुद्ध पर्याय को करने का कार्य करता है। समझ में आया? और करण भी आत्मा—साधन भी आत्मा।

इन्द्रियाँ करण नहीं। अपने ज्ञान, दर्शन, चारित्र के लिये इन्द्रियाँ करण नहीं, साधन नहीं, यह विकल्प साधन नहीं। कौन ? यह व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प साधन नहीं। विकल्प रत्नत्रय कर्ता नहीं, निश्चयमोक्षमार्ग का। और विकल्प, मोक्षमार्ग का कार्य नहीं।

इस प्रकार यहाँ कर्ता, कर्म, करण की अभिन्नता है। ओहो! समझ में आया ? अपना ही आत्मा अपने से शुद्ध का कर्ता, शुद्ध कार्य, शुद्ध करण अर्थात् साधन से शुद्ध कर्ता है। देखो, यह पहले आया था, व्यवहार साधन। व्यवहाररत्नत्रय व्यवहार साधन। यह निश्चयरत्नत्रय का निश्चय अपना साधन है। अपने साधन से निश्चयरत्नत्रय करता है। पर से कहना, वह व्यवहार का कथन जाननेयोग्य है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण २, मंगलवार, दिनांक - २५-०८-१९६४, गाथा-१६२, १६३ प्रवचन-११

१६२ गाथा चलती है, मोक्षमार्ग विस्तार के वर्णन में। देखो! यहाँ तक आया है। **वह आत्मा ही वास्तव में चारित्र है, ज्ञान है, दर्शन है...** देखो! जरा सूक्ष्म बात! अपना आत्मा उसमें कर्ता, कर्म, करण आदि छह शक्तियाँ अनादि की पड़ी हैं। आत्मद्रव्य में छह शक्तियाँ—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण—तो यहाँ तीन शक्ति का वर्णन मुख्यरूप से लिया है। आत्मा छठे गुणस्थान में जब हो, उसकी मुख्यरूप से यहाँ बात (ली है)। तब अपने आत्मा के आश्रय से जितना सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की परिणति हुई है, वह तो संवर, निर्जरारूप है, स्वरूप ही है। साथ में जितने व्यवहारमोक्षमार्ग के विकल्प वृत्ति स्वपरप्रत्यय आश्रय से विभाव, विकार, विकल्प उत्पन्न होता है, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहते हैं। परसमय व्यवहार अब बन्ध का कारण अभी तो कहेंगे। स्वपरप्रत्यय है तो बन्ध का कारण, उसे सप्तम गुणस्थान के योग्य जो मोक्षमार्ग है, उसके विकल्प को व्यवहार साधन कहा गया है और व्यवहार साधन व्यवहारनय से अत्यन्त घटित होता है, ऐसा भी उसमें कहा गया है। समझ में आया? स्वपरप्रत्यय व्यवहार अभूतार्थ है। एक ही गाथा महासिद्धान्त!

भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध ध्रुव '**भूदत्थम् सुद्धणओ**' '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' भूतार्थ त्रिकाली भगवान, वही शुद्धनय है, वही शुद्धनय है, वही निश्चयनय है और व्यवहार जितना पर्याय, विकल्प आदि है, वह अभूतार्थ, असत्यार्थ है, आश्रय करनेयोग्य नहीं। तो उसमें मोक्षमार्ग की पर्याय में भी दो प्रकार हैं। एक—भूतार्थ मोक्षमार्ग, एक—असत्यार्थ मोक्षमार्ग। असत्यार्थ कहो या अभूतार्थ कहो, भूतार्थ कहो या सत्यार्थ कहो। भूतार्थ मोक्षमार्ग अपने द्रव्य के आश्रय से शुद्ध चैतन्य श्रद्धा, अनुभव, आनन्द का अनुभव, ज्ञान का वेदन और स्वरूप की स्थिरता जितने अंश में हुई, उतना स्वआश्रय, उसे भूतार्थ मार्ग अथवा भूतार्थ बन्ध को छेदने की पर्याय भूतार्थ कही जाती है। और जितना विकल्प आया, वह पराश्रय है। यह स्वाश्रय है, विकल्प पराश्रय है। तो पराश्रयो व्यवहार। यह व्यवहार निश्चयमोक्षमार्ग की अपेक्षा से व्यवहार को निमित्त साधनरूप

कहा, तो भी वह असत्यार्थ है। वास्तव में मोक्षमार्ग (नहीं है), वह असत्यार्थ है। समझ में आया? इसमें बहुत गड़बड़ चलती है।

मुमुक्षु : बहुत कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन कुछ नहीं, सीधी एक ही बात है। आगमप्रमाण (दो)। यह आगमप्रमाण नहीं? व्यवहार अभूतार्थ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार अभूतार्थ क्या है? सभी व्यवहार अभूतार्थत्वात्, असत्यार्थत्वात् असत्य अर्थ को प्रद्योतन करता है, ऐसा पाठ है। भगवान अमृतचन्द्राचार्य की टीका का पाठ, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का 'व्यवहर अभूतार्थ' यह शब्द पाठ है। सब ही व्यवहार अभूतम् असत्यम् अर्थं, असत्य अर्थ को प्रद्योत करता है। पण्डितजी! व्यवहारमोक्षमार्ग जो विकल्प में आया स्वपरप्रत्यय,... इसका अर्थ यह नहीं, स्व का अर्थ कि स्व के आश्रय से जरा शुद्धता और पर के आश्रय से है, उतनी अशुद्धता। ऐसा अर्थ है ही नहीं। स्वपरप्रत्यय—स्व अपने आत्मा की अशुद्धता वह स्व, उसमें पर निमित्त हुआ, उससे जो विकल्प उत्पन्न हुआ राग की मन्दता, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग का आरोप उपचार से सहचारी-साथ में देखकर, निमित्त देखकर उसे उपचार से व्यवहार कहने में आया है। निमित्त है, वह यथार्थ मोक्षमार्ग है ही नहीं। ओहोहो! यह बहुत झगड़ा चला है, हों! वहाँ तुम्हारे अधिक चलेगा अभी तो। इन्दौर में, कलकत्ता में और... वह कहे, नहीं, एकान्त है। उसके साथ विरोध करनेवाले आओ। बहुत अच्छा भाई!

आत्मा महान अखण्डानन्द प्रभु पूर्ण अनन्त शान्तरस अविकारीरस का सत्त्व, उसके आश्रय से, उसके ध्येय से जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र प्रगट हुए तो कहते हैं कि वह दर्शन, ज्ञान, चारित्र का कर्ता आत्मा है। क्या कहा? निश्चयमोक्षमार्ग की निर्विकारी पर्याय का कर्ता आत्मा है। विकल्प नहीं, व्यवहार नहीं, निमित्त नहीं, यह इसमें सिद्ध हो गया। बराबर है? समझ में आया? यह कर्ता वास्तव में आत्मा ही चारित्र है, ज्ञान है, दर्शन है। **ऐसा कर्ता-कर्म-करण के अभेद के कारण....** देखो! ज्ञानप्रभु अपना स्वभाव ही निर्विकारी मोक्ष की अभेद पर्याय को करनेवाला। समझ में आया? पहले व्यवहार

से साधन कहा था, उसे करनेवाला आत्मा नहीं, ऐसा यहाँ निश्चय कहा। वह उपचार से कथन था, यथार्थरूप से नहीं। छठवें गुणस्थान में स्वपरप्रत्यय व्यवहारमोक्षमार्ग जो कहा था, वह यथार्थ में सप्तम गुणस्थानयोग्य निश्चयमोक्षमार्ग है, उसका यथार्थ में कर्ता नहीं। उसका—निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय का कर्ता आत्मस्वभाव है। कहो, समझ में आया? यहाँ यह बात है। विकल्प का कर्ता (नहीं), यह बात अभी नहीं लेना। विकल्प अपना कर्ता और अपना कर्म। और निमित्त तो दूसरी वस्तु है, यहाँ वह बात नहीं।

राग अपने से हुआ, अपना कार्य, अपना साधन, स्वयं ने रखा, स्वयं से और स्वयं के आधार से (हुआ)। यह अशुद्ध पर्याय के षट्कारक स्वयं से होते हैं, निमित्त से नहीं। यह बात तो पहले पर से पृथक् करने के लिये कही। पर से पृथक् करने के लिये कही। अब यहाँ अशुद्ध उपादान एक समय के अंश में षट्कारक जो मलिन पर्याय का कर्ता आदि था, वह भी आत्मा अब नहीं। निश्चय स्वभाव में ध्येय में लगा और निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय सप्तम गुणस्थानयोग्य जो पर्याय हुई, उसका कर्ता स्वभाव भगवान आत्मा ही है। पूर्व में विकल्प था, वह उसका कर्ता नहीं। समझ में आया?

आत्मा उस राग का कर्ता नहीं। सुनो! व्यवहारमोक्षमार्ग का कर्ता आत्मा नहीं। क्योंकि निश्चय (मोक्षमार्ग) यहाँ हुआ है। परन्तु व्यवहारमोक्षमार्ग कर्ता होकर निश्चयमोक्षमार्ग हुआ है, ऐसा भी नहीं। समझ में आया? राजमलजी! यह चर्चा तुम्हारे बहुत होगी ऊपर। टोडरमलजी ने क्या घर का कहा है? टोडरमलजी ने तो स्वयं दृष्टान्त (उद्धरण) देकर कहा है कि निश्चयनय और व्यवहारनय को परस्पर विरोध है। यह आचार्य का—कुन्दकुन्दाचार्य का दृष्टान्त दिया। '**ववहारोऽभूदत्थो**' इसलिए व्यवहारमोक्षमार्ग वह अभूतार्थ है। भूतार्थ मार्ग एक ही अपने स्वभाव के आश्रय से निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति अपने आत्मा का अनुभव, वह एक ही निश्चयमोक्षमार्ग है। उद्धरण कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा देकर तो बात की है। घर की बात की है उन्होंने? समझ में आया? ऐसा सबमें लगा लेना।

कर्ता—निश्चय से एक भूतार्थ आत्मा। देखो! दूसरा दो कोई कर्ता नहीं। विकार का कर्ता भी अपनी पर्याय है, निमित्त नहीं। अब यहाँ विकार का कर्ता नहीं लेना, यहाँ

निश्चयमोक्षमार्ग का कर्ता लेना है। समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञान, आनन्द का कन्द प्रभु, अपना कर्ता नाम का गुण है, वह ध्येय आत्मा से कर्ता का गुणभेद भी किये बिना आत्मा ही निर्मल निर्विकारी मोक्षमार्ग की सप्तम गुणस्थानयोग्य दशा का कर्ता आत्मा है। पूर्व का राग नहीं अर्थात् यह पूर्व की पर्याय, वह भी वर्तमान मोक्षमार्ग की कर्ता नहीं। जो अभेद साध्यसाधन पहले कहा था... समझ में आया? पहले अभेद साधन कहा था न? कि छठवें गुणस्थानयोग्य जो निर्मल है, वह अभेद साधन है। क्योंकि वह भी निर्मल है, वह सप्तम गुणस्थान की साध्यदशा निर्मल है। यहाँ तो कहा कि सीधा आत्मा निर्मल मोक्षमार्ग की पर्याय का कर्ता है। नवरंगभाई!

मुमुक्षु : पूर्व की पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो ज्ञान कराने के लिये कहा था। समझ में आया? आहाहा! ऐ... डालचन्दजी! यह तुम सब बड़े सामने (बैठनेवालों को) समझना (पड़ेगा)। वहाँ बाधा उठेगी सामने, हों! सामने तैयार होना पड़ेगा।

मुमुक्षु : तैयार हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : तैयार हैं। किसी के लिये कहाँ, स्वयं के लिये तो तैयार होना चाहिए न! उसमें शंका न पड़े, विरोध न हो, डाँवाडोल न हो, ऐसा निर्णय करना, वह अपने लिये है, दूसरों के लिये नहीं।

तो कहते हैं कि यहाँ भगवान आत्मा अपनी सप्तम गुणस्थानयोग्य निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय में ज्ञान, दर्शन, चारित्र तीनों की एकता के अभेद परिणमन में आत्मा ही कर्ता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : शुद्ध परिणति....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शुद्ध परिणति भी सीधी नहीं, आत्मा ही सीधा निर्मल पर्याय का कर्ता है, ऐसा कहा। पण्डितजी! निमित्तकर्ता नहीं, विकल्प व्यवहारमोक्षमार्ग पहले हुआ, वह कर्ता नहीं और पूर्व में शुद्ध पर्याय छठवें गुणस्थानयोग्य थी, वह भी वर्तमान अभेद परिणमन कार्य में वह कर्ता नहीं, आत्मा ही सीधा कर्ता है। समझ में आया? और कर्म—कार्य, वह भी स्वयं से है। आत्मा ही कार्य करनेवाला है। वह कर्ता

और कार्य। निर्मल मोक्षमार्ग की पर्याय अपना कार्य है, आत्मा का कार्य है। व्यवहार का कार्य नहीं, निमित्त का कार्य नहीं, पूर्व की पर्याय का भी कार्य नहीं। समझ में आया? राग का पर कर्ता नहीं, पर्याय कर्ता। पश्चात्, स्वभाव मोक्षमार्ग का कर्ता विकल्प नहीं, अपना स्वभाव कर्ता, वह उसका कार्य। स्वभाव का वह कार्य है। विभाव का कार्य नहीं, पूर्व की पर्याय का कार्य नहीं, निमित्त का कार्य नहीं। समझ में आया? देखो!

कर्ता-कर्म-करण... साधन। जो पहले साधन कहा था... देखो! व्यवहार हो गया। पूर्व में विकल्प को साधन कहा था, वह साधन नहीं। और पूर्व में छठवें गुणस्थान की निर्मल पर्याय को निश्चय अभेद साधन कहा था, यहाँ निश्चय में स्वयं ही करण—साधन होकर निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय सीधी अपने से वर्तमान में होती है। समझ में आया? आहाहा! यह सीधा आत्मा कर्ता, कर्म और करण वह तो समझाना है न! वहाँ अन्दर भेद नहीं है। यह तो समझाने के लिये बात की है कि अपना आत्मा ही करण के **अभेद के कारण निश्चित है।** अपना स्वभाव शुद्ध चिदानन्द, उसमें अनादि करणगुण पड़ा है—साधनगुण पड़ा है। आत्मा में, हों! त्रिकाल। तो वह साधनगुण का धारक भगवान, वह आत्मद्रव्य ही साधनगुण से परिणमन करके अपनी निश्चयमोक्षमार्ग की पर्यायरूप परिणमन करता है। पूर्व की पर्याय नहीं, निर्मल नहीं, राग नहीं, निमित्त नहीं। समझ में आया? बाबूभाई! यह तो विगत दिन अन्त में आया था न, इसलिए बहुत स्पष्ट नहीं हुआ था। अन्तिम भाषा थी न! देखो!

आत्मा ही वास्तव में चारित्र है, ज्ञान है, दर्शन है— ऐसा कर्ता-कर्म-करण के अभेद के कारण... है न नीचे? यह आत्मा आत्मा को, आत्मा कर्ता, आत्मा कर्म, आत्मा से—करण। तीनों लिये हैं। आचरता है। अपने कर्ता, कर्म, करण से आचरता है। अपने कर्ता, कर्म, करण से जानता है। अपने कर्ता, कर्म, करण से अपने को जानता है। अपने कर्ता, कर्म, करण से अपने को देखता है। ओहोहो! समझ में आया? तीनों में लेना। आहाहा! भगवान चिदानन्दस्वरूप पूर्ण स्वभाव पूर्ण ध्रुव ध्येय अन्तर पूर्ण शक्ति के रसकन्द पर दृष्टि करने से, उस ओर वर्तमान पर्याय का झुकाव करने से यह आत्मा ही अपना कर्ता, कार्य और साधन होकर चारित्र का आचरण करता है। चारित्र का आचरण, चारित्र का आचरण, अपना कर्ता, कार्य और साधन होकर आत्मा चारित्र का

आचरण करता है। चारित्र का अनुष्ठान आत्मा स्वयं से कर्ता, कार्य और साधन से आचरता है। समझ में आया? और भगवान आत्मा अपने कर्ता, कार्य और साधन द्वारा अपने को जानता है। अपने कर्ता, कार्य और करण द्वारा अपने को जानता है। दूसरे की बात यहाँ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? कर्ता, कार्य... कर्म अर्थात् कार्य, और करण के साधन द्वारा, कर्ता द्वारा, कार्य द्वारा अपने को अवलोकता है, अपने को देखता है, अपने को श्रद्धा करता है। अन्तर्मुख अपना अवलोकन अपने कर्ता, कार्य, करण द्वारा करता है। समझ में आया? आहाहा!

अभेद के कारण निश्चित है। देखो! वह अभेद के कारण से कर्ता, कर्म का निश्चय है। **इससे (ऐसा निश्चित हुआ कि) चारित्र-ज्ञान-दर्शनरूप होने के कारण....** कौन? **चारित्र-ज्ञान-दर्शनरूप होने के कारण आत्मा को जीवस्वभावनियत चारित्र जिसका लक्षण है....** देखो! भगवान आत्मा ही जीवस्वभाव निश्चयचारित्र जिसका लक्षण है। देखो! एक ही चारित्र लक्षण हो गया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, लक्षण नहीं हो सकता क्या, शुद्धात्मप्रवृत्तिरूप मोक्षमार्ग लक्षण है। प्रवचनसार में है। सबमें लक्षण है। लक्षण न हो, ऐसा होगा? शुद्धात्मतत्त्व प्रवृत्तिलक्षण मोक्षमार्ग है। प्रवचनसार में आया, यहाँ आया। प्रवचनसार में है न पीछे मोक्षमार्ग का अधिकार? २३२ गाथा। वहाँ भी लिया, शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्ति मोक्षमार्ग। निश्चयमोक्षमार्ग, एकाग्रता मोक्षमार्ग एक ही अन्दर श्रमणपना है। शुद्धात्म भगवान पूर्णानन्द की दृष्टि, ज्ञान और रमणता वही मोक्षमार्ग का लक्षण है।

यहाँ भी कहा, **आत्मा को जीवस्वभावनियत चारित्र जिसका लक्षण है....** किसका? **ऐसा निश्चयमोक्षमार्ग....** निश्चयमोक्षमार्ग का लक्षण **आत्मा को जीवस्वभावनियत चारित्र जिसका लक्षण है....** सम्यग्दर्शन, ज्ञान तो है ही, तदुपरान्त अपने में लीनता-रमणता, आनन्द में लवलीन हो जाना, तल्लीन हूँ या नहीं ऐसा विकल्प भी छूट जाना, ऐसी दशा का नाम भगवान निश्चयमोक्षमार्ग का लक्षण कहते हैं और **अत्यन्त घटित होता है....** देखो! निश्चयमोक्षमार्ग का लक्षण अत्यन्त घटित होता

है। कहो, बराबर है? **(अर्थात् आत्मा ही चारित्र-ज्ञान-दर्शन होने के कारण आत्मा ही ज्ञानदर्शनरूप जीवस्वभाव में दृढ़रूप से स्थित चारित्र जिसका स्वरूप है...)** लक्षण स्वरूप लिया। **(ऐसा निश्चयमोक्षमार्ग है।)** कहो। यहाँ सप्तम गुणस्थान के योग्य की बात ली है। बात लिखते समय विकल्प है। मुनि को लिखते समय विकल्प है, वह पुण्यबन्ध का कारण है, उसे निमित्त से व्यवहार से मोक्षमार्ग कहा गया है। वास्तव में वह है नहीं। अपने स्वरूप में निश्चयसम्यग्दर्शन चौथे से होता है, परन्तु वहाँ मोक्षमार्ग के तीन अवयव पूर्ण नहीं तो वहाँ मोक्षमार्ग उपचार से कहा जाता है। परन्तु उपचार से कहने पर भी यथार्थ सम्यग्दर्शन और ज्ञान निश्चय से है। उपचार तो तीसरा अवयव नहीं हुआ, इसलिए उपचार कहने में आया है। नहीं कि चौथे गुणस्थान के सम्यग्दर्शन-ज्ञान व्यवहार सम्यग्ज्ञान और दर्शन है—ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दो मंजिल हो गयी, एक मंजिल बाकी रह गयी। बस, बस। देखो, पुराने व्यक्ति भी ऐसा लेते हैं न अब। दो मंजिल हो गयी, एक मंजिल बाकी रही। तीन मंजिल हो जायेगा, इसलिए निश्चयमोक्षमार्ग हो जायेगा और अल्प काल में अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान हो जायेगा। १६२ गाथा पूरी हुई, लो। अब १६३।

कितनी बात की है, इतना तो स्पष्ट किया है। कर्ता, कर्म, करण डाल दिये। व्यवहार साधन से और व्यवहारमोक्षमार्ग से सातवाँ गुणस्थान होता है, वह कहाँ रहा? यह तो कहते हैं, सप्तम गुणस्थान में व्यवहारमोक्षमार्ग ही है और या छठवें में व्यवहारमोक्षमार्ग नहीं। वह तो अभेद नहीं, इस कारण से मोक्षमार्ग नहीं। चौथे में मोक्षमार्ग उपचार से कहते हैं तो छठवें में तो मोक्षमार्ग है ही। परन्तु तीनों की एकता नहीं, अपूर्णता है, इस अपेक्षा से अल्प गिनकर सातवें में निश्चयमोक्षमार्ग मुख्यरूप से शुरु होता है, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया?

गाथा - १६३

जेण विजाणदि सव्वं पेच्छदि सो तेण सोक्खमणुहवदि।
इदि तं जाणदि भविओ अभवियसत्तो ण सद्दहदि।।१६३।।

जाने-देखे सर्व जिससे हो सुखानुभव उसी से।
यह जानता है भव्य ही श्रद्धा करे ना अभव्य जिय।।१६३।।

अन्वयार्थ :- [येन] जिससे (आत्मा मुक्त होने पर), [सर्वं विजानाति] सर्व को जानता है और [पश्यति] देखता है, [तेन] उससे, [सः] वह, [सौख्यम् अनुभवति] सौख्य का अनुभव करता है;—[इति तद्] ऐसा [भव्यः जानाति] भव्य जीव जानता है, [अभव्यसत्त्वः न श्रद्धत्ते] अभव्य जीव श्रद्धा नहीं करता।

टीका :- यह, सर्व संसारी आत्मा मोक्षमार्ग के योग्य होने का निराकरण (निषेध) है।

वास्तव में सौख्य का कारण स्वभाव की [1]प्रतिकूलता का अभाव है। आत्मा का 'स्वभाव' वास्तव में दृशि-ज्ञप्ति (दर्शन और ज्ञान) है। उन दोनों को [2]विषयप्रतिबन्ध होना, सो 'प्रतिकूलता' है। मोक्ष में वास्तव में आत्मा को सर्व को जानता और देखता होने से उसका अभाव होता है (अर्थात् मोक्ष में स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव होता है)। इसलिए [3]उसका अभाव जिसका कारण है, ऐसे [4]अनाकुलतालक्षणवाले परमार्थसुख की मोक्ष में अचलित अनुभूति होती है।—इस प्रकार भव्य जीव ही [5]भाव से जानता है, इसलिए वही मोक्षमार्ग के योग्य है; अभव्य जीव इस प्रकार श्रद्धा नहीं करता, इसलिए वह मोक्षमार्ग के अयोग्य ही है।

---

१. प्रतिकूलता=विरुद्धता; विपरीतता; उलटापन।
२. विषयप्रतिबन्ध=विषय में रुकावट अर्थात् मर्यादितपना। (दर्शन और ज्ञान के विषय में मर्यादितपना होना, वह स्वभाव की प्रतिकूलता है।)
३. पारमार्थिक सुख का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव है।
४. पारमार्थिक सुख का लक्षण अथवा स्वरूप अनाकुलता है।
५. श्री जयसेनाचार्यदेवकृत टीका में कहा है कि 'उस अनन्त सुख को भव्य जीव जानते हैं, उपादेयरूप से श्रद्धते हैं और अपने-अपने गुणस्थानानुसार अनुभव करते हैं।'

इससे (ऐसा कहा कि) कुछ ही संसारी मोक्षमार्ग के योग्य हैं, सर्व नहीं ॥१६३ ॥

गाथा - १६३ पर प्रवचन

अब १६३।

जेण विजाणदि सव्वं पेच्छदि सो तेण सोक्खमणुहवदि।
इदि तं जाणदि भविओ अभवियसत्तो ण सद्दहदि।।१६३।।

ओहोहो! **टीका :- यह, सर्व संसारी आत्मा मोक्षमार्ग के योग्य होने का निराकरण (निषेध) है।** सब जीव मोक्षमार्ग प्राप्त करने के योग्य नहीं हैं। समझ में आया? इस प्रकार ऐसा है कि सर्व जीव है (सिद्ध)सम, सर्व जीव है ज्ञानमय। सर्व जीव ज्ञानमय एक, परन्तु मोक्ष प्राप्त करने के योग्य सब हैं, ऐसा नहीं है। यह पर्याय की बात हुई। समझ में आया? सेठी! इस प्रकार सर्व जीव है सिद्धसम। आत्मसिद्धि। योगसार में, सर्व जीव है ज्ञानमय। सर्व ज्ञानमय। पूरा चौदह ब्रह्माण्ड पड़ा है, अकेला ज्ञान का समुद्र—सागर। अभव्य हो या भव्य हो या निगोद के अनन्त (जीव हो), अकेला ज्ञान का सूर्य, अकेला ज्ञान का सूर्य चौदह ब्रह्माण्ड में है। पूरा ज्ञान का सूर्य पड़ा है। ज्ञानमय, वही आत्मा। परन्तु वह तो स्वभाव कहा। पर्याय में मोक्ष होने के योग्य सब है, ऐसा नहीं। समझ में आया? **यह, सर्व संसारी आत्मा....** संसारी आत्मा **मोक्षमार्ग के योग्य होने का निराकरण (निषेध) है।**

वास्तव में सौख्य का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव है। देखो, यह एक टीका। वास्तव में सौख्य—आनन्द का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव है। स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव। स्वभाव की प्रतिकूलता का स्वभाव, वह सुख का अभाव। परन्तु सुख का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव, वह वास्तविक सुख का कारण। कर्म के अभाव की बात यहाँ ली नहीं। कर्म का अभाव करे तो प्रतिकूलता टले और कर्म का सद्भाव है, वहाँ तक प्रतिकूलता है, ऐसा नहीं। यह कहते हैं, देखो!

आत्मा का 'स्वभाव'.... पहले क्या कहा, समझ में आया? सौख्य का कारण

स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव। प्रतिकूलता का अभाव। इसका अर्थ वास्तविक सुख का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव, तो वास्तविक सुख का अभाव, वह स्वभाव की प्रतिकूलता का सद्भाव। समझ में आया? वास्तविक सुख का अभाव, स्वभाव की प्रतिकूलता का सद्भाव। समझ में आया? स्वभाव चैतन्य अपना विषय पूर्ण है, उतना जहाँ तक प्रगट न करे, तब तक विषय की मर्यादा है, वही पूर्ण सुख के अभाव का कारण है। पूर्ण सुख के अभाव का वह कारण है। अपने विषय में मर्यादा रही, वही पूर्ण सुख के अभाव का कारण है। समझ में आया? विषय की पूर्ण मर्यादा पूर्ण हो जाये, पूर्ण सुख का अभाव जो प्रतिकूलता के (कारण) था, वह प्रतिकूलता गयी तो पूर्ण सुख हो गया। क्या समझ में आया जरा? भाषा...

पहले कहा न? **वास्तव में सौख्य का कारण....** आनन्द का—अतीन्द्रिय आनन्द का कारण **स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव है।** तो प्रतिकूलता का अभाव हो, स्वभाव की मर्यादा जो पूर्ण है, ऐसी मर्यादा हो जाये तो स्वभाव का आनन्द आ जाये। दूसरे प्रकार से कहें तो वास्तव में आनन्द का अभाव, वह स्वभाव की प्रतिकूलता का सद्भाव। समझ में आया? वास्तव में आनन्द का अभाव, वह स्वभाव की प्रतिकूलता का सद्भाव। यहाँ कर्म के साथ बात ली ही नहीं। अपने स्वभाव विषय की मर्यादा पूर्ण है, ऐसा जब तक (ज्ञान) न करे तो परम आनन्द का उसे अभाव है। समझ में आया? और दुःख का सद्भाव है। और स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव, पूर्ण स्वभाव का ज्ञेय (होना)—पूर्ण स्वभाव विषय हो गया तो प्रतिकूलता का अभाव, वह आनन्द का कारण हुआ। वह पूर्णानन्द का कारण।

मुमुक्षु : .... यह बात नहीं ली।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही लिया है वहाँ। निमित्त से बात की है वहाँ उपादान... निमित्त अन्तर के नैमित्तिक की प्रसिद्धि करता है। क्या? निमित्त का ज्ञान करने में निमित्त के काल में सामने नैमित्तिक की-उपादान की कौन सी दशा है, उसकी निमित्त प्रसिद्धि करता है। बस, निमित्त ने नैमित्तिक की प्रसिद्धि की है। समझ में आया? ज्ञानावरणीय निमित्त है तो प्रसिद्धि करता है कि उसमें केवलज्ञान का अभाव है। अपनी

पर्याय में केवलज्ञान का अभाव है, वह ज्ञानावरणीय है तो निमित्त से प्रसिद्धि (होती है कि) अपने केवलज्ञान में अपने पुरुषार्थ से अभाव है। अपने में केवलज्ञान की पर्याय की पूर्णता चाहिए, उसका अभाव है, वह अपना पुरुषार्थ उल्टा है, वह ज्ञानावरणीय निमित्त-ज्ञान की प्रसिद्धि करता है कि उसका ज्ञान का पुरुषार्थ उल्टा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई ऐसा कहते हैं कि, ऐसा अर्थ में तो तोड़-मरोड़ा है, ऐसा कहते हैं। ऐसा सीधा अर्थ नहीं तो तोड़-मरोड़कर ऐसा अर्थ होता है। वजुभाई! कहो। नहीं, सीधा ऐसा अर्थ है। समझ में आया? यह धवल में लिया है, भाई! ली है न एक? चक्षुदर्शन की एक बात ली है। धवल में ऐसी बात ली है कि चक्षुदर्शन है, वह क्षयोपशम से अपना काम करता है। यह रूप देखता है, ऐसा नहीं। रूप देखना तो ज्ञान हो गया। तो चक्षुदर्शन का क्षयोपशम अपने को देखता है, ऐसा वहाँ लिया। शिष्य ने प्रश्न किया, महाराज... वीरसेनस्वामी की ऐसी गाथा का गला क्यों मरोड़ते हो? तुमने कहा ऐसा पाठ है, धवल में पाठ है। ऐसी गाथा का गला क्यों मरोड़ डालते हो? गाथा में ऐसा लिखा है कि चक्षुदर्शन से देखना, चक्षुदर्शन से देखना। तुम कहते हो कि क्षयोपशमभाव से अपने को देखना उसमें आया। पर को देखने जाये तो ज्ञान हो जाता है, ऐसा नहीं। समझ में आया?

चक्षुदर्शन है न, तो लोगों को क्या ख्याल है? कि इस चक्षुदर्शन द्वारा यह देखना कि यह भगवान है, परमात्मा है, यह सीमन्धर भगवान है। ऐसा चक्षुदर्शन से देखना, वह चक्षुदर्शन। नहीं, ऐसा नहीं है। वह तो ज्ञान हो गया। चक्षुदर्शन तो ज्ञान होने से पहले अन्दर आत्मा के झुकाव में क्षयोपशम का व्यापार हो जाता है, उसे चक्षुदर्शन कहते हैं। तब शिष्य ने प्रश्न किया। पाठ में चक्षुदर्शन से देखना, ऐसा है और तुम अन्तर में देखने का कहते हो, तो गाथा का गला मरोड़ देते हो। समझ में आया? भाई ने प्रश्न किया ऐसा ही वहाँ प्रश्न है। गाथा का गला मरोड़ डालते हो। अरे! नहीं मरोड़ते। सुन! सुन तो सही! यहाँ दर्शन से बात चलती है, उसमें चक्षुदर्शन से यह देखा, वह तो ज्ञान हो गया। यह तो समझाने की भाषा है। इसका भाव ऐसा नहीं है।

चक्षुदर्शन से क्या देखा? रूप। अचक्षुदर्शन से क्या देखा? अन्दर अचक्षुदर्शन। शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श। ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। चक्षुदर्शन से रूप देखना, वह दर्शन का विषय रूप है ही नहीं। सामान्य अवलोकन दर्शन है। वहाँ रूप आया, वह तो ज्ञान अवलोकन हो गया। अचक्षुदर्शन, शब्द। अचक्षुदर्शन का विषय शब्द है? नहीं, शब्द है ऐसा उपयोग हुआ वह तो ज्ञान हो गया। यह शब्द है, ऐसा ज्ञान हो गया। वह अचक्षुदर्शन उपयोग रहा नहीं। समझ में आया? इसी प्रकार गन्ध। यह सूखड़ है, हों! यह अजायबी है। यह जादू की लकड़ी है या नहीं यहाँ? पण्डितजी! इस लकड़ी के लिये बहुत बोला जाता है। एक लकड़ी ऐसी है कि वहाँ जाये तो सब उनके हो जाते हैं और जिस पर लकड़ी घूमे, वह पैसेवाला हो जाता है। और ऐसा कहते हैं। बहुत लोग बातें करते हैं। यह तो हाथ में पसीना होता है तो शास्त्र को छुआ नहीं जाये, तो लकड़ी से छूते हैं। समझ में आया?

कहते हैं कि यह सुगन्ध है। देखो! सुगन्ध। यह सुगन्ध अचक्षुदर्शन घ्राणेन्द्रिय का विषय हुआ?—कि नहीं। यह सुगन्ध है वह तो ज्ञान का उपयोग हो गया। यह सुगन्ध ख्याल में आवे तो ज्ञान का उपयोग हो गया। उस क्षण अचक्षुदर्शन उपयोग ज्ञान होने से पहले हुआ। सामान्यरूप क्षयोपशमभाव। बस, इतना। यह गन्ध है, यह रस है, यह स्पर्श है, यह शब्द है, यह रूप है, पाँचों इन्द्रियों में अचक्षु, चक्षु के उपयोग में भेद पाड़कर उपयोग नहीं होता। समझ में आया? माणेकचन्दजी! आज सूक्ष्म बात आयेगी। यह तो भाई ने कहा न, गाथा का तोड़-मरोड़कर अर्थ करना पड़ता है। तो कहा कि देखो, यहाँ गाथा है। उसमें तो सीधी है। उसमें तो तोड़-मरोड़कर बहुत ऐसी बातें हैं।

चक्षुदर्शन लिया और अर्थ किया आचार्य ने स्वयं का क्षयोपशमभाव। रूप को देखना वह चक्षुदर्शन नहीं। महाराज! बहुत गला मरोड़ते हो। नहीं, भाई! प्रभु! कथन की पद्धति ऐसी है कि चक्षुदर्शन से देखते हैं। तो रूप को देखना, वह चक्षुदर्शन नहीं। चक्षुदर्शन में तो अपने क्षयोपशमभाव का आत्मा को व्यापार होता है, उसका नाम चक्षुदर्शन कहा जाता है। और शब्द, गन्ध, रस, और स्पर्श जानने से पहले, यह शब्द है, ऐसा ज्ञान हुआ, वह अचक्षुदर्शन व्यापार नहीं। अचक्षुदर्शन तो सामान्य क्षयोपशम का व्यापार अन्तर में होता है, उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं। कहो, रूपचन्दजी! समझ में आया?

मुमुक्षु : अनुभव करने के लिये तोड़ना-मरोड़ना....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, बिल्कुल होता है। व्यवहार अभूतार्थ है, उसमें तोड़ना-मरोड़ना क्या? व्यवहार स्पष्ट अभूतार्थ है, असत्यार्थ है। निज पूर्ण रूप को और वास्तविक रूप को कहता नहीं। पूर्ण रूप को क्यों कहा? कि पर्याय को अभूतार्थ कहकर। समझ में आया? और वास्तविक रूप वह नहीं कहता, इसका नाम व्यवहार कहने में आया है।

तो यहाँ कहते हैं, **वास्तव में सौख्य का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव है।** देखो! इसमें तोड़-मरोड़कर नहीं कहा कि कर्म की प्रतिकूलता के अभाव से सुख होता है और कर्म की प्रतिकूलता के सद्भाव से आनन्द नहीं होता है। ऐसी बात नहीं है। सेठी! बहुत सूक्ष्म है। वास्तव में, आत्मा आनन्दमूर्ति नित्यानन्द प्रभु, उसका कारण, प्रगट होने का कारण उसके स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव। प्रगट क्यों नहीं होता है? उसके स्वभाव की प्रगट अवस्था मर्यादित को विषय करती है, इसलिए अमर्यादित विषय बिना अपना आनन्द रुक गया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : स्वभाव से....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभाव कहा न। नहीं, नहीं। आनन्द का कारण कौन? कि स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव। अस्ति-नास्ति कही। आनन्द का कारण, आनन्द का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव, वह आनन्द का कारण है। समझ में आया? विषय जरा सूक्ष्म है। कर्म-फर्म की बात ली ही नहीं। क्या कहा?

अपना आत्मा स्वभाव की पर्याय का विषय पूर्ण करनेवाला है। यह सिद्ध करना है। आया न ऊपर? देखो न! '**जेण विजाणदि सव्वं पेच्छदि**' '**सव्वं**' शब्द पड़ा है अन्दर। सर्व को देखे, वह सुख को अनुभव करे। भाई! यह तो वहाँ से निकालकर कहा कि '**जेण विजाणदि सव्वं पेच्छदि सो तेण सोक्खमणुहवदि। इदि तं जाणदि**' यह तो यहाँ से निकाला है। क्या निकाला है? कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ऐसा कहते हैं, '**जेण विजाणदि सव्वं पेच्छदि सो तेण सोक्खमणुहवदि।**' जो पूर्ण जाने-देखे, वह पूर्णानन्द को अनुभव करे, ऐसा पाठ पड़ा है। समझ में आया? तो अमृतचन्द्राचार्य ने उसमें से

निकाला। आहाहा! देखो! जो कुछ पूर्ण स्वभाव का जानना नहीं होता है, वही सुख के कारण का अभाव है। समझ में आया?

मुमुक्षु : प्रतिकूलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, प्रतिकूलता। यहाँ तो पाठ में ऐसा लिया, '**जेण विजाणदि सव्वं पेच्छदि**' '**सव्वं जाणदि पेच्छदि**' उसका विषय। क्योंकि ज्ञान-दर्शन उसका स्वभाव। क्या? आत्मा का ज्ञान-दर्शन कायमी स्वभाव। तो कायमी स्वभाव का '**सव्वं जाणदि पेच्छदि**' उसका विषय पूर्ण। पूर्ण विषय। तो पूर्ण विषय जिसे हुआ वह '**सोक्खमणुहवदि**'। वह आनन्द का पूर्ण अनुभव करता है। वह इस गाथा में पहले पद का अर्थ है। समझ में आया? अपने आत्मा में... पहले लिया था न, सामान्यचेतना और विशेषचेतना? उसकी बात विशेष लम्बाते हैं। कि स्वभाव आत्मा का क्या कहा? सामान्य दर्शनचेतना, विशेष ज्ञानचेतना। उसका विषय कितना? '**सव्वं जाणदि पेच्छदि**' उसका विषय प्रगट पर्याय, '**सव्वं जाणदि पेच्छदि**'। '**सव्वं सोक्खमणुहवदि**'। '**सव्वं**' अर्थात् पूर्ण। '**सव्वं जाणदि पेच्छदि**' जो ज्ञान-दर्शन अपने चैतन्य की सत्ता का स्वभाव, उसकी पर्याय का विषय '**सव्वं जाणदि पेच्छदि**'। तो '**सोक्खमणुहवदि**'। तो '**सव्वं जाणदि पेच्छदि**' नहीं, वहाँ सुख के अनुभव का अभाव है।

मुमुक्षु : अनिश्चित पदार्थ को तो केवली जानते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! अनिश्चित की कहाँ बात है? यहाँ '**सव्वं जाणदि पेच्छदि**' इसमें... अरे! भगवान! अनिश्चित... सब जानना, सबको जानना-देखना, ऐसी चैतन्य की सामान्य-विशेषमय शक्ति है। प्रगट हुई तो सबको '**जाणदि पेच्छदि**' बस! यह हो गयी। द्रव्य-गुण और पर्याय एकाकार हो गये। द्रव्य भी सामान्यचेतना और विशेषचेतनावाला है। गुण सामान्य और विशेष चेतनास्वरूप है। उसकी पर्याय सामान्य और विशेषरूप '**सव्वं जाणदि पेच्छदि**' हो गयी, एकरूप हो गयी, वह सुख का कारण है। वह आनन्द का कारण है। ऐसी यहाँ बात ली है। समझ में आया? इतने स्वभाव में प्रतिकूलता जो है अल्प मर्यादा, उसका अभाव हो तो '**सव्वं जाणदि पेच्छदि**' होता है, तो पूर्ण आनन्द उत्पन्न होता है। अपनी जानने-देखने की पर्याय में मर्यादा—अल्पता है, तब तक पूर्ण आनन्द का अनुभव नहीं है, ऐसा बतलाना है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका ज्ञान रुका हुआ है। रुका हुआ अपने कारण से। उसका स्वभाव तो पूर्ण जानना-देखना स्वभाव—शक्ति है और पर्याय में ऐसी ताकत है। इतना प्रतिकूलता का अभाव अर्थात् मर्यादा से जानता-देखता है, उसका अभाव करके पूर्ण जानना-देखना हुआ तो पूर्ण आनन्द हुआ। और जानना-देखना मर्यादित है तो आनन्द नहीं, पूर्ण आनन्द है नहीं। अपना ही कारण है, दूसरा कोई कारण है नहीं। समझ में आया? ऐसा कैसे कहा? वास्तव में आनन्द का कारण... पाठ में सौख्य है न, इसलिए सुख लिया है। कुन्दकुन्दाचार्य का शब्द। वास्तव में सौख्य—आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता (अर्थात्) जो मर्यादा थी थोड़ा जानने-देखने की, उसका अभाव हुआ तो ज्ञान-दर्शन पूर्ण हुए, तो आनन्द पूर्ण हो गया। समझ में आया?

आत्मा का 'स्वभाव' वास्तव में दृशि-ज्ञप्ति... देखो! आत्मा का स्वभाव दृशि-ज्ञप्ति है, जानना-देखना है। **उन दोनों को विषयप्रतिबन्ध होना, सो 'प्रतिकूलता' है।** देखो! विषय अधूरा रहता है। भगवान आत्मा, दृशि और ज्ञान अपना स्वभाव कायमी असली पूर्ण अन्तर, उसकी प्रगट पर्याय में **उन दोनों को विषयप्रतिबन्ध होना...** विषय में रुकावट। नीचे नोट है। वह ज्ञेय पूर्ण जानना-देखना, स्वज्ञेय और परज्ञेय सब है न? मर्यादा अल्पता है, वह सब प्रत्यक्ष देखा नहीं। स्वयं को भी। अपने मर्यादित—थोड़े विषय में तीन काल तीन लोक को जानने का अपना विषय पूरा नहीं हुआ। समझ में आया? जानना-देखना अपनी पर्याय में अपने को त्रिकाल पूर्ण तीन काल तीन लोक एक समय में असंख्य प्रदेशसहित पूर्ण जानना-देखना नहीं हुआ तो वही विषय की रुकावट है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या रुकावट है? अपना विषय इसने कैसे रुक गया? इसका स्वभाव ऐसा नहीं है। इसका स्वभाव तो पूर्ण जानना-देखना है। **'सव्वं जाणदि पेच्छदि'** वस्तु है, उसका जानना-देखना अल्प हो, ऐसा कैसे हो सकता है? पदार्थ है, आत्मा है उसका चैतन्य दर्शन-ज्ञान कायमी-कायमी सत्ता स्वभाव है। जैसा गुण है, वैसा ही कार्य

होना चाहिए न। गुण का गुण जितना कार्य होना चाहिए न! समझ में आया? तो गुण परिपूर्ण है तो कार्य भी परिपूर्ण होना चाहिए।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। ऐ... मित्रसेनजी! समझ रहे हैं।

कहते हैं, ओहो! वास्तव में आत्मा का स्वभाव वास्तव में... पहले वास्तव में यह लिया न, **वास्तव में सौख्य का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव है।** तो अब कहते हैं, स्वभाव कौन? तो कहते हैं, स्वभाव की प्रतिकूलता का (अभाव कारण है) तो स्वभाव कितना? **आत्मा का 'स्वभाव' वास्तव में दृशि-ज्ञप्ति...** चेतना सामान्य, चेतना विशेष। देखना वह सामान्यचेतना है; जानना, वह विशेषचेतना है। पृथक्-पृथक् करके जानना, वह ज्ञान है; सामान्यरूप भेद किये बिना देखना, वह दर्शन है। ऐसा उसका शाश्वत् स्वभाव है। तो **उन दोनों को...** स्वभाव ऐसा है तो कार्य भी ऐसा ही पूर्ण होना चाहिए। समझ में आया? द्रव्य पूर्ण है, गुण दर्शन-ज्ञान पूर्ण है तो उसकी पर्याय का कार्य भी पूर्ण होना चाहिए।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मर्यादा हो गयी। मर्यादा रही तो अमर्यादा हुई नहीं, यही दुःख का कारण है। यही सुख के कारण का अभाव है। मर्यादित विषय है, वही सुख के कारण का अभाव (अमर्यादा) न नहीं हुआ... समझ में आया? तो दुःख है। तो पूर्ण सुख हुआ नहीं। यहाँ तो पूर्ण सुख की बात करते हैं। केवलज्ञान पूर्ण आनन्द। इसलिए कहते हैं न, अभव्य नहीं मानता। यहाँ कहते हैं न। समझ में आया? यह डालना है न! एक समय में पूर्ण आनन्द ज्ञान, दर्शन की पूर्ण पर्याय का विषय पूर्ण है, ऐसा अभव्य नहीं मान सकता। लॉजिक से है या नहीं? समझ में आया?

भगवान आत्मा ऐसा ज्ञान-दर्शन कायमी स्वभाव, उसकी कायमी पूर्ण प्रगटता, ऐसा अनन्त विषय—मर्यादारहित विषय के अभाव के कारण आनन्द का अभाव है और उसका सद्भाव हुआ तो आनन्द का सद्भाव पूर्ण हो गया। ऐसा आनन्द का पूर्ण स्वभाव और ज्ञाता-दृष्टा की पूर्ण पर्याय के साथ आनन्द की प्रतीति अभव्य नहीं करता। उसके

कार्य में ऐसी सामर्थ्य नहीं है कि पूर्ण कार्य केवलज्ञान, केवलदर्शन अथवा सामान्य-विशेष चेतना का विषय पूर्ण प्रगट और उसके साथ पूर्ण आनन्द का अनुभव, ऐसी अभव्य प्रतीति नहीं करता। भव्य प्रतीति करता है। मुझमें आनन्द है। ज्ञान-दर्शन सामान्य चेतना पर दृष्टि देने से जो आनन्द का अनुभव उसे हुआ, ऐसा ही पूर्ण विषय प्रगट करने पर पूर्ण आनन्द होगा, ऐसी श्रद्धा भव्य को, समकिती को होती है। समझ में आया? लो, और बहुत लम्बी बात हो गयी। क्या हुआ?

वास्तव में **उन दोनों को विषयप्रतिबन्ध होना सो 'प्रतिकूलता' है।** ज्ञान-दर्शन का प्रगट कार्य—पर्याय ऐसा होना चाहिए। ऐसे (अमर्यादित को) विषय नहीं करने से विषय रुक जाता है। स्वयं के कारण मर्यादित अल्प सीमा में रुक जाता है, वही पूर्ण आनन्द का प्रतिकूलता का अभाव नहीं हुआ तो पूर्ण आनन्द हुआ नहीं। समझ में आया? यह किस प्रकार का मार्ग, भाई! यहाँ तो द्रव्यस्वभाव, गुणस्वभाव, पर्यायस्वभाव की बात चलती है। समझ में आया? भगवान द्रव्यस्वभाव सामान्य दर्शनचेतना, ज्ञानचेतना। यह दो शक्तियाँ जिसकी शक्ति है, सर्व प्रगट जानना-देखना, तब पूर्ण आनन्द का कारण हुआ। तब पूर्ण आनन्द की प्रतिकूलता का अभाव हुआ। समझ में आया? ओहोहो!

गुण की ऐसी कार्य-दशा, गुण वह स्वतन्त्र पूर्ण है तो उसकी कार्यपूर्णता (होना चाहिए), और कार्य की पूर्णता—सब विषय को जानना-देखना हो गया तो आनन्द की पूर्णता हो गयी। वहाँ कहीं जानने की आकुलता नहीं रही, अपूर्णता नहीं रही, आकुलता नहीं रही। पूर्ण शुद्धभाव ज्ञान-दर्शन में कार्य हुआ तो पूर्ण आनन्द हो गया। ऐसी श्रद्धा अभव्य को नहीं होती। आहाहा! वह ज्ञान-दर्शन और पूर्ण कार्य, पूर्ण कार्य के साथ पूर्ण आनन्द है। उस अल्पज्ञ पर्याय की प्रतीति करनेवाला, राग और अल्पज्ञ पर्याय की प्रतीति करनेवाला, व्यवहारनय के वर्तमान विषय को प्रतीति करनेवाला निश्चय विषय पूर्ण और पूर्ण आनन्द की प्रतीति वह नहीं कर सकता। समझ में आया?

मुमुक्षु : रुक गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : रुक गया, तेरे कारण से रुक गया। विषय तो, तीन काल-तीन लोक को सबको जानना तेरा विषय है न! वस्तु है, वस्तु में अपूर्ण विषय कहाँ से आया? समझ में आया? राजमलजी! देवीलालजी! आहाहा!

अकेला पृथक् गोला है, चैतन्य का सूर्य झबककर अन्दर से पूर्ण न हो तब तक पूर्ण आनन्द कहाँ से आयेगा? ऐसा कहते हैं। और पूर्ण आनन्द नहीं, तब तक साधक को भी थोड़ा सुख और थोड़ा दुःख है और अज्ञानी को तो अकेला दुःख है। अज्ञानी को तो अकेला दुःख है। कहाँ गये लक्ष्मीचन्दजी! समझ में आया? जरा सूक्ष्म विषय है। भगवान आत्मा... कहते हैं कि ऐसे आत्मा की प्रतीति अभव्य को नहीं होती। अभव्य जैसे मिथ्यादृष्टि को भी प्रतीति नहीं होती। आहाहा! जिसका जानना-देखना स्वभव, वास्तव में वह स्वभाव प्रतिबद्ध अपनी मर्यादा में रुकता है, इसलिए पूर्ण प्राप्ति नहीं, इसलिए आनन्द का अभाव है।

कहते हैं, **विषयप्रतिबन्ध होना सो 'प्रतिकूलता' है।** अपनी पर्याय में अल्प विषय की मर्यादा में रुका, वही पूर्ण प्रगटता में विघ्नकारक है। पूर्ण ज्ञान-दर्शन के पूर्ण विषय में वह विघ्नकारक है और उस विघ्न के कारण पूर्ण विषय प्रगट नहीं हुआ तो पूर्ण आनन्द है ही नहीं। ओहोहो!

मुमुक्षु : सिद्ध भगवान लोकालोक देखते हैं और सुख....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी सुख नहीं लोकालोक का सुख। लोकालोक देखते हैं, उसका सुख भगवान को होगा? यह दोपहर में आयेगा। गाथा है न कर्मफल की। भगवान तो लोकालोक का नाटक देखते हैं, उसका सुख है भगवान को। अरे.. भगवान! यहाँ तो अपने ज्ञान-दर्शनस्वभाव की पूर्ण पर्याय प्रगट हुई, वह सुख का कारण है। समझ में आया? आहाहा! पर्याय की पूर्णता... और गुण है, उसके कार्य बिना... ऐसा लिया है न शक्ति में?

४७ शक्तियाँ। वह शक्ति प्रतीति में आयी तो कार्य आये बिना शक्ति प्रतीति में आती नहीं, ऐसा वहाँ कहा। आत्मा में जो प्रभुता की शक्ति पड़ी है तो उस शक्ति का कार्य अपनी पर्याय में न आवे तो शक्ति और शक्तिवान की प्रतीति हुई नहीं। शक्ति और शक्तिवान की प्रतीति होने पर प्रभुतागुण तीनों में व्याप्त हो जाता है। द्रव्य प्रभु, गुण प्रभु, पर्याय प्रभु। पर्याय में प्रभुता आ जाती है। सम्यग्दर्शन में... प्रभुतागुण जो आत्मा में पड़ा है, यहाँ परमेश्वर आ गया और, परमेश्वरपद पड़ा है, उस शक्ति को धारक परमेश्वर आत्मा की दृष्टि करने से परमेश्वर शक्ति जो है, उसकी प्रभुता की शक्ति पर्याय में आये

बिना रहती नहीं। प्रभुता की शक्ति आती नहीं, वहाँ तक उसे द्रव्य-गुण-पर्याय की प्रतीति यथार्थ नहीं है। द्रव्य-गुण की प्रतीति नहीं। समझ में आया? मुझमें प्रभुता है, प्रभुता है—ऐसा नहीं।

प्रभुता मुझमें है। मुझमें पूर्ण परमेश्वरपद पड़ा है। ऐसी एक शक्ति, ऐसी अनन्त शक्ति। शक्ति—गुण है तो शक्ति क्या विशेष बिना रहती है? अज्ञान में उसे विशेष का ख्याल नहीं। समझ में आया? तो वास्तव में गुण की विशेषता प्रभुता का पर्यायरूप परिणमन होना, वह प्रभुतागुण की विशेष पर्याय है। वह सामान्य अकेला रहे, तब तक अज्ञान दशा है, अज्ञान है। प्रभुता की प्रतीति नहीं, आत्मा की प्रतीति नहीं तो कार्य की दशा प्रगट हुई नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रभुता आ गयी। आ गयी, उसमें प्रभुता की प्रतीति आ गयी, ऐसा सिद्ध करना है। पूर्ण प्रभुता मेरा विषय पूर्ण है और पूर्णानन्द हुआ, ऐसा अंश में प्रतीति में सब आ गया है। समझ में आया? ठीक! कहाँ की कहाँ बात निकली। यहाँ तो...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं? समझ में नहीं आया।

मुमुक्षु : आज का दिन प्रभुता के लिये है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; बराबर है। बहिन का जन्मदिन है न आज! बहिन की बहुत विशेषतायें हैं। जगत को यह चीज़ ख्याल में आना दुर्लभ है। उनका आत्मा और उनका जन्म कोई विशेषता लेकर ही आया है। समझ में आया? ठीक भाई! किसने कहा और? ठीक है। आज प्रभुता की... समझ में आया? आहाहा!

और क्या कहा? कर्म-फर्म की बात ही नहीं। निद्धत कर्म रोकते हैं तो ज्ञान-दर्शन की पर्याय पूर्ण न हुई तो पूर्ण आनन्द नहीं हुआ, ऐसा नहीं है। समझ में आया? **उन दोनों को...** कौन दोनों को? भगवान दर्शन-ज्ञानचेतना की पूर्ण पर्याय को विषयप्रतिबन्ध होना, पूर्ण पर्याय का विषय प्रगट न होना, इसका नाम पूर्ण पर्याय प्रगट न होना, यही प्रतिकूलता है। ओहोहो! समझ में आया?

मुमुक्षु : साधन नहीं उसका क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ क्या साधन नहीं ? बाहर का क्या साधन ? सब है। महासुख तो नाम है उसका। कहाँ गया महासुख ? है या नहीं ? लो, महासुख नाम है। विनय से काम लेता है, बापूजी... बापूजी तो करता है, अब क्या बाहर के साधन बाकी हैं ? बापूजी यह लो, बापूजी यह लो... बापूजी यह लो, ऐसा तो करता है बेचारा, लो। धूल में भी बाहर साधन है नहीं, कहो, समझ में आया ? जड़ की पर्याय जड़ में, उसमें अपने को क्या साधन आया ? दोपहर में थोड़ी बात आयेगी, कर्मफल की बात आनेवाली है न ? क्या है ? क्या है ? बाहर की पर्याय तो तुझे स्पर्श नहीं करती, उसमें तूने साधन कहाँ से मान लिया ? और विकल्प को सुख का साधन तूने कहाँ से मान लिया ?। विकल्प भी राग है, उसे सुख का साधन किस प्रकार मान लिया ? क्योंकि स्वभाव में विकल्प है नहीं। स्वभाव में साधन पड़ा है, उस साधन में मलिनता है ही नहीं। उस साधन से कार्य लिया नहीं और विकल्प-साधन से लिया, दृष्टि मिथ्या है, अज्ञान है। समझ में आया ? ओहोहो !

विषयप्रतिबन्ध होना सो 'प्रतिकूलता' है। लो। **मोक्ष में वास्तव में आत्मा को सर्व को जानता और देखता होने से उसका अभाव होता है...** देखो ! मोक्ष सिद्ध करना है न ! आहाहा ! मोक्ष में वास्तव में आत्मा सर्व को जानता और देखता होने से। वह प्रतिकूलता जो विषय की मर्यादा थी, वह समाप्त हो गयी और पूरा-पूरा अभाव हो गया। पूर्ण दशा (हो गयी)। ऐसी प्रतिकूलता का अभाव होता है। लो। विशेष बात है...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

श्रावण कृष्ण ३, बुधवार, दिनांक - २६-०८-१९६४, गाथा-१६३, १६४ प्रवचन-१२

नौ पदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग का विस्तार यह (अधिकार का) नाम है। १६३ में क्या कहा, देखो! **वास्तव में सौख्य का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव है।** क्या कहा? आत्मा, वास्तव में आत्मा का स्वभाव दृष्टि और ज्ञप्ति है। आत्मा का स्वभाव जानना और देखना है। वह अपने विषय को पूर्ण करे अपने सम्बन्ध में तो पर की ओर के विषय की रुकावट रुक जाती है। क्या कहा? अपना चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा (स्वभाव) अथवा सामान्य चैतन्य-विशेष चैतन्य अर्थात् दर्शन और ज्ञान, ऐसा आत्मा का स्वभाव, उसमें परमानन्द का सुखस्वरूप स्वभाव कैसे प्राप्त होता है? विषयप्रतिबन्ध का अभाव (होने से)।

ज्ञान-दर्शन ने जितना पर को विषय किया है, उतनी वहाँ आकुलता है। समझ में आया? जितने अपने ज्ञान-दर्शन से अपने में स्वविषय को, आत्मा को स्वध्येय विषय बनाकर जितने ज्ञान और दर्शन सम्यक्रूप से निर्मल हुए, उतनी आनन्द के अनुभव की प्राप्ति हुई। समझ में आया? प्राणी सुख को चाहता है न? सुख को चाहता है न? आनन्द-सुख की अभिलाषा है न जगत को? तो कहते हैं कि आनन्द कहाँ? अपना जो ज्ञान और दर्शन जो त्रिकाली स्वभाव है, उसमें आनन्द है। समझ में आया? वह आनन्द नहीं निमित्तों में, नहीं कर्म के उदय में, नहीं आनन्द शुभ-अशुभ विकल्प में। समझ में आया? वह आनन्द आत्मा में ज्ञान-दर्शन जो स्वभाव पड़ा है, उसका अविनाभाव आत्मा चेतना सामान्य-विशेष चेतना, उसका अविनाभाव जो आनन्द, वह अपने में है। ज्ञान और दर्शन जितना अपना विषय करके जितनी पर की रुकावट दूर करता है, उतना आनन्द और अनुभव का वेदन होता है। समझ में आया? और पूर्ण आनन्द के अभाव का कारण अपना स्वविषय को पूर्णरूप से पकड़कर अनुभव नहीं करता तो उसके ज्ञान-दर्शन की मर्यादा पर का विषय देखने में रुक जाता है। सेठी! समझ में आया? तो कहते हैं, मोक्षमार्ग अधिकार में यह बात ली है।

जितने ज्ञान और दर्शन सीमा में मर्यादित विषय करता है, स्व को विषय थोड़ा

किया होने पर भी... जितना मर्यादित विषय है और अन्तर का अमर्यादित विषय पूर्ण नहीं किया... समझ में आया? उतनी उसे आकुलता है और पूर्ण आनन्द का उसे अभाव है।

मुमुक्षु : समझ में नहीं आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में नहीं आया? ठीक, बहुत अच्छी बात। इतना समझना चाहे, वह तो ठीक है न? जिज्ञासा तो है। कहो।

ऐसा कहते हैं कि भगवान आत्मा... कहा न? उसका स्वभाव ही वास्तव में दृशि-ज्ञप्ति है। उसका स्व—अपना निजभाव—जानना-देखना चेतना सामान्य और विशेष चेतना है। जानना-देखना, वह चेतना आत्मा में है। उस चेतना के साथ अविनाभाव आनन्द है। वह चेतना जितनी स्वविषय में रुकती है, उतना आनन्द आता है और जितनी परविषय में रुक जाये, उतना आनन्द का अभाव और दु:ख की उत्पत्ति का भाव होता है। जरा सूक्ष्म बात है। बहियों में बहुत ध्यान रखा है न!

मुमुक्षु : आपने रुक जाने का कहा न, बहुत रुक गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, रुक गये बहियों में और यह और.... कहाँ गये मोहनभाई?

मुमुक्षु : मुम्बई गये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ले, कब गये? यह तो खबर नहीं।

मुमुक्षु : आठ दिन हो गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : आठ दिन हो गये? बहुत लोग कहाँ खबर पड़े? ठीक। कहो, समझ में आया?

भगवान आत्मा अपना स्वभाव अन्दर सुख है। ४७ शक्तियाँ ली हैं न? उसमें जीवत्वशक्ति, चितिशक्ति, दृशि, ज्ञानशक्ति, ऐसी ली है। पहले जीवत्वशक्ति ली है। चैतन्य भावप्राण। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, सत्ता। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, सत्ता जिसके भावप्राण आत्मा में गुणरूप से व्यापक है। और उसमें चितिशक्ति चेतनाशक्ति है। उस चेतना के दो प्रकार—दृशि और ज्ञप्ति। तीसरी और चौथी शक्तियाँ हैं। है या नहीं? जीवत्वशक्ति,

चितिशक्ति, दृशिशक्ति और ज्ञानशक्ति। पश्चात् सुखशक्ति ली है। जीवत्वशक्ति, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य,... समझ में आया? प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शित्व और सर्वज्ञ, ऐसी दसवीं शक्ति ली है, देखो! ४७ शक्ति है उसमें। तो कहते हैं कि भगवान आत्मा में अपना जीव का जीवन ज्ञान, दर्शन, आनन्द और सत्तापना का जीवन उसकी सत्ता में व्यापकरूप से पड़ा है। वह जीवत्वशक्ति का चितिशक्ति कारण है। वह चितिशक्ति जीवनशक्ति का ही लक्षण है। चेतना... चेतना। और चेतना के दो प्रकार—दृशिशक्ति और ज्ञान।

यहाँ यह लिया है, देखो! दृशिशक्ति और ज्ञप्तिशक्ति उसका स्वभाव है। उस स्वभाव में... बाद में लिया देखो, पाँचवीं में सुख लिया है ४७ शक्तियों में। यही अमृतचन्द्राचार्य ने निकाली हैं ४७ शक्तियाँ। यही अमृतचन्द्राचार्य इस टीका का अर्थ करते हैं। तो कहते हैं कि भगवान आत्मा दृशि और ज्ञप्ति, जानना और देखना जिसका स्वभाव है। **उन दोनों को विषयप्रतिबन्ध होना....** वह ज्ञान-दर्शन पर में मर्यादितरूप से रुक जाना, पर का लक्ष्य करके रुक जाना। अपने लक्ष्य में पूर्णरूप से रुकना नहीं, अपने ध्येय में पूर्णरूप से रुकना नहीं और पर के लक्ष्य में रुक जाना, यह पूर्ण आनन्द के विषय का प्रतिबन्ध, वही प्रतिकूलता है। उस प्रतिकूलता का अभाव अभवा स्वभाव के प्रति पूर्ण विषय का सद्भाव, वही पूर्ण आनन्द का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : कर्म का उदय प्रतिबन्धक नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। कर्म के उदय की यहाँ बात ही नहीं है। समझ में आया?

भगवान आत्मा... ओहो! जीवनशक्ति, चितिशक्ति, दृशिशक्ति, ज्ञानशक्ति (आदि) स्वभाव से भरपूर है। उसमें सुखशक्ति भी अन्दर है परन्तु प्रगट में जितना यह ज्ञान और दर्शन अपने को विषय करके एकाकार होता है, उतना गुणस्थान प्रमाण में आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का-वेदन का अनुभव होता है, इसका नाम भगवान धर्म कहते हैं। आहाहा! भारी धर्म, भाई। ऐ... नवरंगभाई! जितने यह ज्ञान और दर्शन की पर्याय पर को विषय करके रुक जाये, उतना दुःख है। उतना प्रतिकूलता का भाव है। उस प्रतिकूलता का अभाव करना, वही पूर्ण आनन्द का कारण है। आहाहा! समझ में आया?

जानना-देखना अल्प प्रगट हुआ परन्तु विशेष जानने-देखने की आकुलता रही।

उसमें लक्ष्य करने से विशेष जानने-देखने की आकुलता होना, वही स्वविषय का पूर्ण आनन्द का प्रतिकूलता का भाव है। उस प्रतिकूलता का अभाव, वही पूर्ण आनन्द का कारण है। ओहोहो! समझ में आया? **दोनों को विषयप्रतिबन्ध होना सो 'प्रतिकूलता' है।** नीचे लिखा है न, विषयप्रतिबन्ध। 'विषय में रुकावट अर्थात् मर्यादितपना।' अपने अमर्यादित ज्ञान और दर्शन... भगवान आत्मा अमर्यादित स्वभाव सुख और आनन्द से भरपूर है, अपनी प्रभुता से पूर्ण पड़ा है, अपनी स्वच्छता से पूर्ण निर्मलता का धाम पड़ा है, उसमें विषय अल्प करने पर भी, पूर्ण विषय नहीं किया, उतना परविषय में रुकना हुआ, उतना अपने को अपने कारण से पूर्ण आनन्द का अभाव हो रहा है। समझ में आया? ओहोहो!

मोक्ष में वास्तव में आत्मा को सर्व को जानता और देखता होने से.... लो, पूर्ण विषय जहाँ अपना प्रगट हो गया और पर के विषय की रुकावट व्यय हो गयी, एकाकार भगवान अपने चैतन्य के असंख्य प्रदेश में आनन्द की कणिका जो शक्ति—गुणरूप पड़ी है, उसमें लीन होकर पूर्ण ज्ञान-दर्शन की पर्याय जहाँ प्रगट हुई, वहाँ मोक्ष में वास्तव में आत्मा सर्व को जानता-देखता हुआ, **सर्व को जानता और देखता होने से उसका अभाव होता है....** किसका? विषय को मर्यादित जानने-देखने का अभाव होता है। भारी अटपटी (बात)। समझ में आया?

भगवान आत्मा, जहाँ अपना सर्व जानना-देखना मोक्ष में हुआ वहाँ आनन्द की रुकावट थी, जो प्रतिकूलता पर की मर्यादा में जानने-देखने का रुकना था, वह अपने में एकाकार (होकर) घुस गया तो पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञाता-दृष्टा हो गया। उस मोक्ष में पूर्ण सुख है, दूसरे में कहीं सुख नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : पुरुषार्थ बहुत करना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत पुरुषार्थ का अर्थ क्या? स्वभाव-सन्मुख पुरुषार्थ करना, परसन्मुख से हटाना। हटाना वह व्यवहार से है। भगवान पूर्णानन्द पड़ा है, वह ज्ञान की पर्याय, दर्शन की पर्याय अन्तर में पूर्ण विषय करके लीन हो जाये तो सम्पूर्ण सर्वज्ञ और सर्वदर्शी प्रगट हो जाये। समझ में आया? देखो! सुख, वीर्य। चिति, जीवत्व, चिति,

दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुता। सातवीं शक्ति प्रभुता है। पश्चात् विभुता है—सर्वव्यापक है। पश्चात् सर्वदर्शी और सर्वज्ञ। आचार्य ने क्रमसर बात (की है)।

यहाँ भगवान आत्मा अपने ज्ञान-दर्शन से चैतन्य निज स्वभाव से भरपूर है। उसमें जितना लीन होकर एकाकार हुआ, उतना आनन्द (हुआ)। जितना मर्यादित विषय रह गया, अल्प जानना-देखना रहा, उतनी पूर्ण आनन्द की रुकावट हुई। लो, बाहर का कोई कारण है नहीं। समझ में आया? मोक्षमार्ग अधिकार है न। यह तो कहते हैं कि व्यवहारमोक्षमार्ग में रुकना, उतना भी आनन्द का अभाव है। उतना भी विकल्प में रुकना, उसमें अपने पूर्ण आनन्द का अभाव है। स्वविषय उसमें पूर्ण नहीं होता। आता है न आगे? भाई! नहीं वह आत्मविषय से विरुद्ध? व्यवहारमोक्षमार्ग, भाई! आता है न? १७२ में आता है न? आत्मविषय से विरुद्ध है। वह १७२ में आ गया है। १७२।

भिन्न विषयवाला। हिन्दी में २५७ पृष्ठ है, अन्तिम लाईन है। **भिन्न विषयवाले में श्रद्धान-ज्ञान....** देखो! कथनपद्धति ऐसी ली है न! देखो! यहाँ विषय लिया। लो। है? २५७ पृष्ठ हिन्दी में है, अन्तिम लाईन है। गुजराती में थोड़ा अन्तर होगा। ओहोहो! अद्भुत बात करते हैं! **भिन्न विषयवाले में श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र द्वारा....** देखो कोष्ठक में। **(-आत्मा से भिन्न जिसका विषय है, ऐसे भेदरत्नत्रय द्वारा)....** आहाहा! फिर और संस्कार डालते हैं, यह बाद में बात। यह और आयेगा तब बात। यह... है, आरोप से कथन है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, जितना व्यवहारमोक्षमार्ग है, नौ तत्त्व की भेदरूप श्रद्धा, पंच महाव्रत, बारह व्रत का विकल्प और शास्त्र की ओर के झुकाववाला ज्ञान, वह सब परविषय है। उसमें आत्मविषय नहीं है। समझ में आया? राजमलजी! व्यवहारमोक्षमार्ग... देखो! यहाँ मोक्षमार्ग अधिकार चलता है, तो आगे वहाँ लेकर कहा और यहाँ भी यही कहना है कि जितना व्यवहार के विषय में रुकता है, उतना आत्मा के पूर्ण आनन्द में प्रतिकूलता है। उसका अभाव करना। यहाँ चारित्र की व्याख्या चलती है न! चारित्र मोक्ष का मार्ग है और चारित्र जितना राग में रुका, उतना ज्ञान-दर्शन भी पर के विषय में अटक जाते हैं, रुक जाते हैं। अरे!

तो कहते हैं, **मोक्ष में वास्तव में आत्मा को सर्व को जानता और देखता होने से उसका अभाव होता है...** समझ में आया? यह प्रतिबन्ध का (अभाव होता है)। परद्रव्य का विषय, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा... ओहो! लोग चिल्लाहट मचाते हैं कि अरे! यह क्या? समझ में आया? सद्बोध चन्द्रोदय में एक बात ऐसी ली है कि वह बुद्धि व्यभिचारिणी है कि जो शास्त्र में रुकती है। शास्त्र में रुकती बुद्धि को कुयुशि, असति, कुल्टा स्त्री कहा है। आहाहा! नहीं न यहाँ? पद्मनन्दि पंचविंशति। समझ में आया? लोग उसकी चिल्लाहट मचाते हैं। अरे! भगवान की वाणी को (ऐसा कहते हैं)। भाई! वाणी नहीं, बुद्धि कुलटा है। सुन तो सही। वाणी तो पर रह गयी। शास्त्र में जितनी (बुद्धि) घुस जाती है, उतना विकल्प है और उतनी कुसती है वह। आहाहा! समझ में आया? यह पद्मनन्दि में है। सद्बोध चन्द्रोदय एक अधिकार है, बहुत सरस है। पद्मनन्दि आचार्य ने निश्चय और व्यवहार और दान, सब अधिकार ऐसे लिये हैं, बहुत अलौकिक बात! महामुनि दिगम्बर सन्त जंगल में बसनेवाले, उन्होंने २६ अधिकार बनाकर पद्मनन्दि पंचविंशति नाम दिया है, अधिकार २६ हैं। उसमें यह लिया है, भगवान! तेरी बुद्धि शास्त्र में भी रुक जाये, उतना ज्ञान-दर्शन का विषय रुकता है।

मुमुक्षु : यहाँ भिन्न साध्य-साधन का अभाव लिया तो उसमें ध्यान कौनसा माना जायेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान, धर्मध्यान। अपने स्वरूप में एकाकार धर्मध्यान है। शुक्लध्यान, आगे बढ़कर शुक्लध्यान होता है। परन्तु शुक्लध्यान जहाँ हुआ तो ...केवलज्ञान हो जाता है। धर्मध्यान की बात है न! वह तो धवल में पहले से दसवें गुणस्थान तक धर्मध्यान लिया है। धवल में वीरसेनस्वामी ने दसवें गुणस्थान तक धर्मध्यान लिया है। सामान्य अपने तत्त्वार्थसूत्र में सातवें गुणस्थान तक धर्मध्यान लिया है। आठ से शुक्लध्यान (लिया है)। वह तो विशेष उज्ज्वलता के कारण शुक्ल कहा। अपने स्वभाव में एकाकार होना, इसका नाम स्वभावध्यान कहो या धर्मध्यान कहो। समझ में आया? जितना राग में रुके, उतना आर्तध्यान है। जिसे व्यवहार धर्मध्यान कहते हैं, उसे परमार्थ से आर्तध्यान कहते हैं। आहाहा!

यह कहते हैं, अपना विषय छोड़कर जितना परविषय बनाया व्यवहाररत्नत्रय

को भी, वह परविषय है, क्योंकि उसका लक्ष्य पर के ऊपर है। तो इतनी रुकावट है, आनन्द की रुकावट है, आनन्द में वह सहायक नहीं है।

मुमुक्षु : ....सहायक कहने में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सहायक कहने में आता है। साधन का अर्थ, वह तो निमित्त से साधन कहा है। समझ में आया? वह तो सातवें गुणस्थान का साध्य है, उसका साधन व्यवहार से निमित्त से कहा है, उपचार करके (कहा है)। वास्तव में साधन नहीं है। यह तो कल आ गया नहीं? कर्ता, कर्म, और करण। कर्ता, कर्म कल आ गया। कर्ता, कर्म और करण। विकल्प को तो छूना ही नहीं, इसका नाम अन्तर की एकाग्रता और धर्मध्यान है। आहाहा!

मुमुक्षु : सिद्धप्रभु का ध्यान....

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्धप्रभु का ध्यान तो स्वयं को सिद्ध समान करके ध्यान करे तो। यह सिद्ध है, ऐसा लक्ष्य करके विकल्प आता है, वह भी व्यवहार धर्मध्यान और परमार्थ से आत्मा के चैतन्यप्राण पीड़ित होते हैं। यह तो बापू! अध्यात्म पुरुषों की क्रीड़ा है। समझ में आया? यह कसरत, यह व्यायामशाला दूसरी है। इस व्यायाम में कभी आया नहीं। भगवान आत्मा...

मुमुक्षु : यह बात तो भव्य जीवों को समझ में आये ऐसी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आयेगा, अभी कहेंगे, अभी यह कहेंगे। अभव्य को नहीं बैइे, अपात्र को यह बात नहीं बैठती।

ओहो! मेरी वस्तु मेरे पास आनन्दकन्द अनाकुल आनन्द है। उसमें जितना एकाकार हुआ, उतना चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें गुणस्थान के योग्य आनन्द का अनुभव है। यह अभी नीचे कहेंगे जयसेनाचार्य की टीका में। समझ में आया? और जितना आत्मा में एकाकार नहीं, उतनी प्रतिकूलता हुई। पर में लक्ष्य गया, उतना आनन्द का अभाव है, वही पूर्णानन्द में रुकावट है। आहाहा!

मुमुक्षु : अमर्यादित पदार्थ को मर्यादित ले लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मर्यादित ले लिया। तीन काल—तीन लोक अपनी पर्याय को जानने से ज्ञात हो जाती है। तीन लोक जानना नहीं। उन्हें कहाँ जानना है। अपनी एक समय की पर्याय को जानता है, उसमें लोकालोक आ जाता है। भिन्न नहीं रहता। पर्याय की पूर्णता, पर्याय ने स्वविषय पूर्ण किया तो पर्याय पूर्ण केवलदर्शन आदि की हुई, उसे देखती है। द्रव्य को, गुण को और पर्याय को तीनों को देखती है, स्वयं को। उसमें यह लोकालोक, अपनी पर्याय को देखने से पर्याय का स्वभाव स्वपरप्रकाशक सामर्थ्य है, ऐसा ज्ञान में आ गया। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **मोक्ष में वास्तव में आत्मा को सर्व को जानता और देखता होने से उसका अभाव होता है...** उसका अर्थात् किसका? विषय का प्रतिबन्ध था, अल्प मर्यादा थी, उसका नाश हो गया। **(अर्थात् मोक्ष में स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव होता है)। इसलिए उसका अभाव जिसका कारण है,....** देखो! **उसका अभाव जिसका....** 'पारमार्थिक सुख का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव है।' नीचे नोट है। इसलिए उसका अभाव। पारमार्थिक सुख का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव **जिसका कारण है, ऐसे अनाकुलतालक्षणवाले परमार्थसुख की....** ओहो! ऐसा अनाकुलता लक्षणवाला परमार्थ सुख का लक्षण स्वरूप अनुकूलता है। 'परमार्थ सुख का लक्षण अथवा स्वरूप...' नीचे नोट। ३ (तीन) 'परमार्थ सुख का लक्षण अथवा स्वरूप अनाकुलता है।' जितना परविषय में रुकता है, सम्यग्दृष्टि भी, मुनि भी जितने परविषय में रुकते हैं, उतना आनन्द का अभाव है, उतनी आकुलता है। ओहोहो! इस मोक्षमार्ग अधिकार में यह बात ली है। कारणसर ली है। जितना निश्चयस्वभाव का विषय और अवलम्बन लिया, उतना आनन्द है। जितना परविषय में रुका, उतना आनन्द का अभाव कहो या दु:ख का सद्भाव कहो। आकुलता कहो। आहाहा!

मुमुक्षु : बन्ध का कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बन्ध का (कारण) यह तो अभी आयेगा। १६४ में आयेगा। **'बंधो व मोक्खो'**। वहाँ लेंगे। यह तो क्रमसर गाथा आयी है।

अनाकुलतालक्षणवाले परमार्थसुख की मोक्ष में अचलित अनुभूति होती है।

मोक्ष में सुख की अचलित अनुभूति (होती है)। देखो! वहाँ अनुभूति। चलित न हो, ऐसी अनुभूति परमार्थ भगवान आत्मदशा में पूर्ण हो गयी। समझ में आया? लोगों को गड़बड़ी क्यों लगती है? अरे! शास्त्र में बुद्धि रुक जाये, वह असती? अपनी बुद्धि अपने में न रुके तो वह असती है। समझ में आया? पाप के परिणाम से (बचने के लिये) वह पुण्य का विकल्प है, वह आता है अवश्य, परन्तु उसमें रुकना, वह बन्ध का कारण है। इतना विषय प्रतिबन्ध है। पहले उसका स्वआश्रित निर्णय किये बिना पराश्रितपना उससे छूटेगा नहीं। जब पराश्रित में लाभ मानेगा तो स्वआश्रित में वीर्य जायेगा ही नहीं। व्यवहार से लाभ मानेगा तो निश्चय का आश्रय करने के वीर्य की स्फुरणा होगी नहीं। अपने ज्ञान, दर्शन और वीर्य निज स्वरूप की ओर झुकेगा ही नहीं। यह कहते हैं।

मुमुक्षु : स्वयं प्रतिबन्धक हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो प्रतिबन्ध हो गया।

भगवान अकेला चिदानन्द स्वविषय में पूर्ण आ जाये (तो) पूर्ण सर्वज्ञ और पूर्ण पद, पूर्ण आनन्द (प्रगट हो जाये)। समझ में आया? यहाँ तो अभी व्यवहार से ऐसा होगा और अमुक से ऐसा होगा। व्यवहार साधन कहा, उसे विषयप्रतिबन्ध कहकर आनन्द का अभाव बताया। समझ में आया? मोक्षमार्ग में यह क्यों डाला? यह मोक्षमार्ग विस्तार का कथन है यह तो। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान आत्मा... देखो! सुख आया न? चिति, दृशि, ज्ञान, सुख। अनाकुल लक्षण सुख। वीर्य—अपना वीर्य अपने आनन्द आदि की निर्मल पर्याय की रचना करे, वह वीर्य का काम है। वीर्य राग की रचना करे, वह स्वाभाविक वीर्य का काम नहीं। आत्मा का वीर्य / बल स्वभाव वह तो निर्मल शुद्ध पर्याय की रचना करने की सामर्थ्य रखता है। समझ में आया? आत्मबल, वह आत्मबल नाम का गुण है, वह बलवान होकर स्वरूप की रचना करने की सामर्थ्य रखता है। विकार की रचना करने का स्वभाव वीर्य में सामर्थ्य है ही नहीं। समझ में आया? जब पर्याय की बात करनी हो तो पर्याय का वीर्य जो अशुद्ध होकर काम करता है, वह वीर्य स्वभाव नहीं। उसका

स्वभाववीर्य विकार को रचे, ऐसा वीर्य स्वभाव में है ही नहीं। आहाहा! थोड़ा सूक्ष्म है। राजमलजी! आहा!

भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने ४७ शक्ति में लिया है। वीर्य किसे कहते हैं? स्वरूप की रचना करे, वह वीर्य। स्वरूप की रचना करे, वह वीर्य। ४७ शक्ति में लिया है। समयसार। विभाव की रचना करे, वह आत्मवीर्य और आत्मबल अन्तर का नहीं है। रुका हुआ वह पर्याय का धर्म वह स्वभावधर्म द्रव्यस्वभाव में है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह आत्मा अपने वीर्य से जब ज्ञान, दर्शन की पूर्ण रचना करके, आनन्द की पूर्ण रचना हुई, उसका नाम मोक्ष। वहाँ प्रतिकूलता का अभाव है, वहाँ आनन्द की परिपूर्णता का सद्भाव है। समझ में आया?

इस प्रकार भव्य जीव ही भाव से जानता है,... देखो! यह तो आत्मा का परितसंसार—अल्प संसार रह गया हो, अपनी तैयारी अपने स्वभाव-सन्मुख हुई हो, ऐसा भव्य जीव ही भाव से जानता है, ऐसा कहा न? भाव से जानता है, इसका अर्थ विकल्प से (जानता है), ऐसा नहीं। समझ में आया? अपने आत्मा के भाव से जानता है कि ओहो! मेरा आनन्द मेरे पास है और मैंने मुझे विषय किया, उतना मुझे आनन्द आया। उसी आनन्द की प्रतिकूलता का विषय रहता है, उतना मुझे आनन्द का अभाव है। पूर्ण स्व का विषय करूँ, परविषय का प्रतिबन्ध छूट जाये तो पूर्ण ज्ञान हो जाये, ऐसा सम्यग्दृष्टि मानता है। क्या कहा? थोड़ी हिन्दी खोजनी पड़ती है, रुक जाना पड़ता है।

भव्य जीव ही भाव से जानता है,... आहा! **इसलिए वही मोक्षमार्ग के योग्य है;....** अर्थात् भव्यप्राणी, अपने स्वभाव में आनन्द है, ऐसे स्व को विषय किया है, उतना आनन्द के नमूने का अनुभव हुआ है। नमूना कहते हैं न? यह रुई की बड़ी गाँठ होती है या नहीं? रुई की गाँठ, गाँठ। इतना... है, लो भाई! लाख गाँठ देनेवाले हैं। श्वेत-सफेद, पीलापन बिल्कुल नहीं। रुई पीली होती है न? पीली, पीली रुई की कीमत (कम होती है)। सफेद, सफेद मक्खन जैसा सफेद, उसमें से निकालकर (बताते हैं)। इसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्द की गाँठ पड़ी है। उसका विषय सम्यग्दर्शन से एकाकार होकर भव्य जीव उसे पूर्णानन्द की प्राप्ति किस प्रकार होती है और मैं क्यों

रुका हूँ और मुझमें आनन्द है, उसका भान भव्य जीवों को होता है। उसमें से नमूना लिया। गाँठ में से लिया। स्व को विषय बनाकर, स्व को विषय बनाकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान की कणिका का जागृत का अनुभव हुआ तो उसने निर्णय किया कि यह आनन्द मुझमें है। मैं जितना स्व को विषय बनाऊँ, उतना आनन्द विशेष आता है। जितना पर के विषय में रुक जाऊँ, उतनी आकुलता है। पण्डितजी!

मुमुक्षु : जानना तो पड़ेगा न।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले जाने बिना, निर्णय किये बिना कहाँ से चलेगा? जानना पड़ेगा, पहले इस प्रकार की श्रद्धा की जमावट करनी पड़ेगी और वीर्य को उस जमावट में रोकना पड़ेगा कि यही मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग तीन काल-तीन लोक में नहीं है। भगवान के पास जाओ या (स्वर्ग में) जाओ या नरक में जाओ, जहाँ हो वहाँ मार्ग तो यह एक ही है, दूसरा कोई मार्ग नहीं। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' परमार्थ का पंथ दूसरा नहीं होता, ऐसा भव्य जीव मानता है।

भाव से जानता है,.... देखो! नीचे इसका स्पष्टीकरण किया है। नीचे, ४ (चार) 'श्री जयसेनाचार्यदेवकृत टीका में कहा है कि, उस अनन्त सुख को भव्य जीव जानता है...' देखो! अनन्त-अनन्त बेहद अपरिमित आत्मा आनन्द की गाँठ है। उसमें अपरिमित आनन्द पड़ा है, उसे भव्य जीव ही जानता है। 'उपादेयरूप से श्रद्धा करता है...' उपादेय, यह आनन्द ही आदरणीय है। जितना विकल्प उठता है, वह आकुलता है, वह आदरणीय नहीं। आहाहा! घटना... यह स्वपरप्रत्यय मोक्षमार्ग जो उत्पन्न होता है, वह (आकुलता है), ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई! यह स्वपरप्रत्यय का विकल्प है... (आकुलता है)। यह १३वीं गाथा में आया न? नवमें में। प्रवचनसार में स्व-पर का आया। ९३ गाथा में विभावपर्याय... स्वपने में तो बहुत आया है। स्व का अर्थ वहाँ शुद्धता की बात नहीं। स्वयं एकाकार होकर निमित्त पर के ऊपर लक्ष्य होकर विकल्प होता है, वह विकल्प है, वह दुःखरूप है। वही अपने स्वभाव का भव्य जीव को भान होता है तो आनन्द को उपादेय मानता है।

मुमुक्षु : श्रद्धा में....

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धा में हरकत है और राग जो आया, उसे उपादेय मानता नहीं। व्यवहारमोक्षमार्ग उत्पन्न होता है, उसे उपादेय मानता नहीं। क्योंकि वह विकल्प और दु:ख है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में... राग में सुख है, ऐसी श्रद्धा करो तो निश्चय होगा? ओहोहो! बहुत गड़बड़ हो गयी। समझ में आया?

कहते हैं कि उपादेयरूप श्रद्धा करता है और जानता है, इतना ही नहीं, साथ में थोड़ा आचरण भी हुआ है। तीसरा आचरण कहना है न? भव्य जीव ही अनन्त सुख को स्वज्ञेय करके जानता है, उपादेयरूप से श्रद्धा करता है, वही आनन्द को प्रगट करना उपादेय है और अपने-अपने गुणस्थान अनुसार अनुभव करता है। चौथे गुणस्थान में उसके योग्य आनन्द का अनुभव आता है, पंचम गुणस्थान में उसके योग्य विशेष आनन्द का अनुभव आता है, छठवें गुणस्थान में उसके योग्य विशेष आनन्द का अनुभव होता है, सातवें में उससे विशेष आनन्द का अनुभव होता है, आठवें में विशेष और बारहवें में पूर्ण सुख, तेरहवें में अनन्त सुख, सिद्ध में अनन्त अव्याबाध सुख (होता है)। समझ में आया?

चौथे गुणस्थान में आनन्द का वेदन थोड़ा, पाँचवें में विशेष, छठवें में विशेष, सातवें में विशेष, आठवें में विशेष... जाओ, दसवें में विशेष, बारहवें में पूर्ण सुख। अभी अनन्त नहीं। और तेरहवें में अनन्त सुख। ज्ञान, दर्शन, वीर्य अनन्त हो गये तो अनन्त सुख (प्रगट हुआ)। सिद्ध में अनन्त अव्याबध सुख। वेदनीय आदि का नाश होकर अनन्त अव्याबाध सुख (प्रगट हुआ)। समझ में आया?

तो कहते हैं, अपने-अपने गुणस्थानानुसार अनुभव करते हैं। देखो! यहाँ भव्यजीव की बात की है, हों! वही वास्तव में भव्य है। भान हुआ, वह भव्य है। समकिती, ऐसा नहीं लिया। भव्य जीव, ऐसा लिया। भाषा है। उसमें आ गया कि जीव जानता है, उपादेयरूप से श्रद्धा करता है, उसमें सम्यग्दर्शन आ गया। और अपने-अपने गुणस्थानानुसार अनुभव चारित्र आ गया, आनन्द का अनुभव करते हैं। समझ में आया? चारित्र

आनन्ददायक है, दुःखदायक नहीं। (लोग) कहते हैं, अरे... भाई! मुनिपना पालना, बाईस परीषह... आहाहा! जंगल में रहना... अरे! क्या तुम चारित्र को दुःख कहते हो? चारित्र दुःखदाता है? चारित्र दुःखदाता है? तेरी श्रद्धा में बड़ी विपरीतता है। समझ में आया?

चारित्र सुखदाता है। चारित्र-चरण अन्तर में रमना, वह अतीन्द्रिय आनन्द का दाता है। वह यह कहते हैं न, देखो न, क्या कहते हैं? अनुभव कहते हैं न, गुणस्थानानुसार आनन्द का अनुभव। समझ में आया? जितना स्वरूप में रमता है, उतना चारित्र आनन्ददाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : लोहे के चने हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोहे के चने हैं, दुःखी हुए होंगे? दुःखी हो गया—ऐसा है? मृगापुत्र का आता है न? लोहे के चने दूध के दाँत से चबाना, यह बात सम्प्रदाय में आती है। दूध के दाँत और लोहे के चने, ऐसा बापू! चारित्र है। क्या कहना है तुझे? चारित्र प्रतिकूलता दुःख का कारण, आकुलता-खेद का कारण? क्या कहना है तुझे? समझ में आया?

मुमुक्षु : तलवार की धार पर चलना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तलवार की धार पर चलना है। दुःख है? चारित्र की श्रद्धा का ही तुझे भान नहीं है। चारित्र किसे कहना, किसे सम्यग्दर्शन कहना, किसे ज्ञान कहना?—(इसकी तुझे खबर नहीं)। आहाहा! यह आया नहीं छहढाला में, नहीं? वैराग्य और क्या वह? 'आतमहित वैराग्य, ज्ञान और स्थिरता, लखे आपको कष्ट दान।' मूढ़ है। पण्डितजी! आया या नहीं यह? इस प्रकार मुनि को देखे... आहाहा! उनकी माँ उन्हें खाती है, सिंहनी काटती है। बहुत दुःख है। भगवान! तूने मुनि की दशा देखी नहीं। मुनि की दशा की तुझे खबर नहीं, प्रभु! वे तो चारित्र में-आनन्द में लीन हैं। आहाहा! तू उन्हें संयोग से दुःखी कहता है तो मुनिपने के चारित्र का आनन्द क्या है, उसकी तुझे खबर नहीं। चारित्रगुण के उपादेयपने में क्या आनन्द है, उसकी तुझे खबर नहीं। समझ में आया? आहाहा! मुनि महादुःखी! तू सुखी, अनुकूलता है तो! खाने-पीने को ताजा

रोटी मिले। मुनियों को तो ताजा रोटी नहीं मिलती, ठण्डी मिलती है, ठण्डी चाहिए हो तो गर्म मिलती है, गर्म चाहिए हो ठण्डा मिलता है। यहाँ तो तैयार। आटा तैयार करके आये फिर तवे में से एकदम थाली में गर्म-गर्म सीधी। और तुअर की दाल और मूँग की दाल। बापू! अपने ऐसा हो तो शरीर निरोग रहे।

मुमुक्षु : आराम से बैठकर जीमना।

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्हें (मुनिराज को) खड़े-खड़े जीमना, इसे बैठे-बैठे आराम से जीमना। सच्ची बात। उन्हें कितना दुःख! अरे..! भगवान! तुझे खबर नहीं, प्रभु! तुझे सुखी मानना है? ऐसे अनुकूल रोटी मिली और ताजा लड्डू मिले और ताजा आँधण मिला। आँधण कहते हैं? यह ओसामण नहीं करते? दाल का पानी। चूल्हा हो न चूल्हा, वहाँ नीचे अग्नि हो, उसे बाहर निकालकर पत्थर पर रखे। गर्म-गर्म पानी पीवे। आँधण बघारी हुई दाल का। बापू! मुनियों को ऐसा कहाँ से मिले? क्या दुःखी मानना है? मूढ़ है। हमको मिलता है, मुनि को नहीं मिलता। आहाहा! तू बादशाह है और उन्हें तू गरीब मानता है? ऐसा? धर्मचन्दजी! यह बादशाह है। आहाहा! जंगल में बबूल के नीचे बैठे हों, अन्दर आनन्द का रस, आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द... आनन्द... आनन्द... कहते हैं कि उन्हें गुणस्थान प्रमाण आनन्द का अनुभव है। दुःख का अनुभव नहीं। जरा अल्प रागादि हैं, उनकी गौणता है, उनकी मुख्यता नहीं। तो ध्यान में बैठे परीषह में, दुःख नहीं है। समझ में आया?

परीषह के विजेता किसे कहते हैं? विजय करते हुए दुःख हो, वह परीषह है? वह तो हार गया, परीषह जीत गया। ओहो! स्वरूप की रमणता में इतने लवलीन... लवलीन... लवलीन... छठवाँ-सातवाँ, छठवाँ-सातवाँ हजारों बार है। चारित्र आनन्ददायक है। जितना अटकना होता है, उतना दुःख है, जितनी स्वरूप में लीनता हुई है, प्रतिकूल संयोग का बाहर में पार न हो, अन्दर आनन्द है। उस आनन्द की दशा को चारित्र कहते हैं, दुःख की दशा हो, उसका नाम चारित्र है नहीं। समझ में आया? अरे... भाई! यह आत्मा को कैसा माना? आत्मा को ऐसा माना कि आत्मा को जितना आगे जाने पर चारित्र लेना पड़े, वह दुःखदायक है। आत्मा ही दुःखदायक है, इसका अर्थ (ऐसा

हुआ)। आत्मा दुःखदायक है, उसका गुण दुःखदायक है, उसकी निर्मल पर्याय दुःखदायक है। आहाहा! समझ में आया? राजमलजी! देवीलालजी! क्या है? बहुत गड़बड़ी हो गयी। करके तो देखो बाहर। अरे... भगवान! बाहर की कहाँ बात है? क्या देखे? बाहर में कष्ट हो, वह तो राग-द्वेष है, भाई! प्रभु! तेरा शान्तरस अन्दर पड़ा है। उस शान्तरस में अन्दर डुबकी मारने से शान्ति आती है। उसका नाम दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। चारित्र कहीं बाहर की जड़क्रिया और विकल्प उठा, वह भी चारित्र है नहीं।

'अपने-अपने गुणस्थानानुसार अनुभव करते हैं।' देखो! आनन्द का अनुभव चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें, आठवें में बढ़ जाता है। तब यह कहे कि परीषह बढ़ जाता है। पण्डितजी! व्याख्या ही दूसरी है। आगे बढ़ा तो आनन्द बढ़ा, यहाँ ऐसा कहते हैं। वे कहे, आगे बढ़े तो बहुत सहन करना पड़े, हों! बहुत परीषह। क्या कहता है तू? इतना माप तेरे पास? ऐसा माप कहाँ से लाया तेरा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका इलाज? मुनि अन्दर में इलाज करते हैं। ओहो! आत्मा का भान न हो और बाहर से रोग आया और इलाज नहीं करते, इसलिए समता है, ऐसा नहीं है। वह तो हठ है। बाहर से इलाज न करे और सहन करे, वह सहनशीलता है ही नहीं। ज्ञानानन्दस्वभाव को विषय बनाकर आत्मा के आनन्द का अनुभव करे, इसका नाम सहनशीलता है।

तो कहते हैं, ओहो! **भव्य जीव ही भाव से...** यहाँ तो भाव से भव्य जीव जानता है न, अभव्य को खबर नहीं अपात्र को। वह तो दुःखदायक है, ऐसा जानता है। धर्म के अंशरूप से प्रगट होने से आनन्द है। तो पूर्ण आनन्द की तो क्या बात करना! उस पूर्ण आनन्द में ऐसा आनन्द आता है, ऐसी भव्य जीव को ही मोक्ष की श्रद्धा है। केवलज्ञान की पर्याय और चारित्र के फलरूप मोक्ष की श्रद्धा समकितदृष्टि को ही होती है। अज्ञानी को वह श्रद्धा नहीं होती। वहाँ उसके पास राग का मापदण्ड है। राग का मापदण्ड है, उससे माप करता है।

मुमुक्षु : राग से माप नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग से माप नहीं होता।

इस प्रकार भव्य जीव ही भाव से जानता है, इसलिए वही मोक्षमार्ग के योग्य है;.... वही मोक्षमार्ग के योग्य है। ओहो! भव्य हैं न, इसलिए योग्य लिया। **अभव्य जीव इस प्रकार श्रद्धा नहीं करता,...** आचार्य तो कहते हैं कि अभी श्रद्धा नहीं करता, वह अभव्य है, ऐसा भी प्रवचनसार में तो कहते हैं। अभव्य, यहाँ तो अभव्य जीव श्रद्धा नहीं करता, ऐसे जीव में दो भेद कर दिये—भव्य और अभव्य। पहले उपोद्घात में। समझ में आया? सब जीव समान नहीं, ऐसा कहकर अभव्य को मोक्ष की प्रगट पर्याय कैसी है, उसकी प्रगट पर्याय भूतार्थ धर्म की पर्याय का भान नहीं तो भूतार्थ धर्म का पूर्ण फल क्या है, उसकी श्रद्धा-बद्धा नहीं है। मोक्ष की श्रद्धा नहीं, आत्मा की श्रद्धा नहीं। आत्मा ज्ञानमात्र आनन्द है, उसकी श्रद्धा नहीं। मोक्षमार्ग निर्मल पर्याय की श्रद्धा नहीं। संवर, निर्जरा की नहीं, मोक्ष की नहीं, आत्मा की नहीं, उसे किसी की श्रद्धा नहीं। ओहोहो! समझ में आया?

इससे (ऐसा कहा कि) कुछ ही संसारी मोक्षमार्ग के योग्य हैं,... यह योगफल लिया। भव्य, अभव्य। प्रवचनसार में तो कुन्दकुन्दाचार्य ने लिया है एकदम, अभव्य। आत्मा में आनन्द है और क्षुधा-तृषा लगती है और उसमें आहार लेने से आनन्द है? भगवान को भी आहार ले तो आनन्द है? अभव्य है। भगवान सर्वज्ञ हुए, उन्हें आहार-पानी लेकर आनन्द आता है, उन्हें भी क्षुधा लगती है और आहार लेते हैं, पानी लेते हैं, रोग होता है, दवा लेते हैं। (ऐसा नहीं होता)।

मुमुक्षु : असातावेदनीय।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी असातावेदनीय-फेदनीय नहीं। तू भगवान को जानता नहीं। भगवान तो... 'न जिने', ऐसा भी पाठ है। यह तो उपचार से कहा है, उदय को देखकर। बाकी सर्वार्थसिद्धि की टीका में पूज्यपादस्वामी ने कहा, 'न जिने'। जिन को ग्यारह परीषह है ही नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अज्ञानी निकालता है, निकालने दो न। वह तो उदय

जरा है तो कहा है, परमार्थ से भगवान को परीषह है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञाता! ओ... माँगीरामजी! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... आनन्द में अपूर्णता नहीं। वह तो निमित्त का जरा अभाव नहीं, इतनी बात है। उसमें आनन्द पूर्ण है, अनन्त आनन्द है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त सुख, ज्ञान, दर्शन, वीर्य पूर्ण हो गये हैं। ज्ञान, दर्शन पूर्ण हो गये हैं। ज्ञान समान न सुख। आता है या नहीं वह? छहढाला में आता है। यह सुख का कारण है। ज्ञान जहाँ पूर्ण हुआ, पूर्ण ज्ञान सुख का कारण है, आनन्द का कारण है। समझ में आया? आता है यह छहढाला में। द्यानतराय, दौलतरामजी ने बहुत अच्छा (बनाया है)। पहले के पण्डित... बनारसीदास, टोडरमल और... ओहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डित का क्या? वह तो सत्यमार्ग के प्रणेता हैं। सत्यमार्ग ख्याल में आया था कि यही मार्ग है। बनारसीदास ने कहा कि समकिती व्यवहार से मुक्त है। चिल्लाहट मचाये, बैठे यह लोगों को? व्यवहारमोक्षमार्ग के विकल्प से सम्यग्दृष्टि मुक्त है। बन्ध अधिकार में लिया है। अध्यवसायमात्रं... वहाँ जहाँ लिया है न, उसका पद बनारसीदास ने बनाया। सम्यग्दृष्टि व्यवहार से मुक्त है। क्यों? कि व्यवहार, विकल्प है। विकल्प से अपना स्वभाव भिन्न अनुभव करते हैं तो व्यवहार से मुक्त है। व्यवहार उनके ज्ञान का ज्ञेय हो गया है। समझ में आया? तब यह कहे कि, व्यवहार से साधन होकर आगे बढ़ते हैं। अरे! सुन तो सही। बनारसीदासजी की बात आचार्य के पेट (अभिप्राय) खोलकर उन्होंने की है। हमको पंचाध्यायी की समझण है, उनको नहीं आती। अब... मूढ़ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उनको अप्रमाणित न करे तो सोनगढ़ की बात सच्ची हो

जाती है। इसलिए अप्रमाणित कहे बिना उन्हें छुटकारा नहीं। बनारसीदास, टोडरमल, राजमल इनकी बात यदि सच्ची कहो तो यहाँ का (सोनगढ़ का) सच्ची सिद्ध हो जाये, और उनका मिथ्या सिद्ध हो। ... समझ में आया? कहते हैं न? चूड़ी तोड़े पति के बैठे हुए। ऐसी बात कहीं आती है। कहावत आती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह और अलग। यह तो एक विरोध के लिये अपनी चूड़ी तोड़े, पति बैठा हो तो भी। ऐसी कहावत आती है। यह आती है अपने कहावत, काठियावाड़ में आती है। वह है।

यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन भान हुआ, शुद्ध चिदानन्द हूँ, यह व्यवहार से मुक्त है। विकल्प व्यवहार है, वह निर्विकल्प दृष्टि, अनुभव की पर्याय में विकल्प दूर रहते हैं, अन्तर एकमेक हुआ नहीं। लक्ष्मीचन्दजी! समझ में आया? व्यवहार विकल्प सम्यग्दर्शन निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान में, लीनता में एकत्व होता नहीं। एकत्व होता नहीं, इसलिए पृथक् रहता है। पृथक् रहता है, इसलिए सम्यग्दृष्टि व्यवहार से मुक्त है। बन्ध अधिकार में लिया है, वह वस्तु का स्वरूप लिया है। समझ में आया? यह समयसार नाटक में है। यहाँ कहाँ, सब पुस्तकें यहाँ कहाँ रखे?

कुछ ही संसारी मोक्षमार्ग के योग्य हैं,.... समझ में आया?

मुमुक्षु : ज्ञान में नगीना जड़ गया है....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो हमारे बतलाना पड़े न! रामजीभाई बतावे न वहाँ कोर्ट में। लो, यह कायदा।

मुमुक्षु : .... अभी सब उल्टे अर्थ करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उल्टे अर्थ। समझ में आया?

कुछ ही संसारी मोक्षमार्ग के योग्य हैं,.... दूसरी भाषा से कहें तो आस्रव और बन्ध की एकता में रहनेवाले अनन्त जीव रहेंगे। आस्रव और बन्ध के साथ एकत्व माननेवाले अनन्त जीव रहेंगे। आस्रव और बन्धरहित सब हो जाये तो सबकी मुक्ति हो जाये, तो संसार अनादि का पड़ा है, अनन्त काल रहेगा। समझ में आया?

मुमुक्षु : श्रद्धा के ऊपर बल आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धा के ऊपर जोर आया है यहाँ। आस्रव और बन्धभाव के साथ एकत्व माननेवाले अनादि रहेंगे। वे पात्र नहीं हैं। यह आस्रव और बन्ध से भिन्न पड़ने के लिये पात्र नहीं हैं। उन्हें यह बात नहीं रुचेगी। विकल्प आस्रव हो, रुका हो उतना भावबन्ध है। भावबन्ध है न? प्रतिकूलता कहा न? इतना भाव रुका। समझ में आया? वह भावबन्ध और आस्रव से रहित भगवान आत्मा है, वह कोई जीव श्रद्धा करेगा। बाकी आस्रव और बन्धवाले माननेवाले अनन्त रहेंगे। यहाँ तो भव्य, अभव्य की बात की है। १६३ गाथा हो गयी। अब १६४ (गाथा)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ-बाभ की कहीं नहीं। विरुद्ध कार्य के कारणपने की प्राप्ति का कारण है। बन्ध कारण है, ऐसा कहेंगे। मोक्ष होता है स्वभाव से, बन्ध होता है राग से। इसलिए तो यहाँ लिया है। व्यवहारमोक्षमार्ग का विकल्प चारित्र की अपूर्णता है। चारित्र मोक्षमार्ग लिया है न! पहले से चारित्र मोक्षमार्ग लिया है, १५४ गाथा से। तो चारित्र पूर्ण स्थिर न हुआ, उतनी अस्थिरता व्यवहारमोक्षमार्ग का विकल्प रहता, वह बन्ध का कारण है, स्थिरता जितनी रहती है, उतना मोक्ष का कारण है। यह चारित्र मोक्ष का कारण लेकर बात का स्पष्टीकरण किया है। समझ में आया? चारित्र पूर्ण स्थिर हो जाये तो साक्षात् मोक्ष (हो जाये)। जितनी स्थिरता की न्यूनता, उतनी व्यवहार विकल्प की, मोक्षमार्ग की विषय की रुकावट है। समझ में आया?

गाथा - १६४

दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि।
साधूहि इदं भणिदं तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा।।१६४।।

दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग इति सेवितव्यानि।
साधुभिरिदं भणितं तैस्तु बन्धो वा मोक्षो वा।।१६४।।

दृग-ज्ञान अर चारित्र मुक्तिपंथ मुनिजन ने कहे।
पर ये ही तीनों बंध एवं मुक्ति के भी हेतु हैं।।१६४।।

अन्वयार्थ :- [दर्शनज्ञानचारित्राणि] दर्शन-ज्ञान-चारित्र, [मोक्षमार्गः] मोक्षमार्ग है। [इति] इसलिए, [सेवितव्यानि] वे सेवनयोग्य हैं—[इदम् साधुभिः भणितम्] ऐसा वह साधुओं ने कहा है; [तैः तु] परन्तु उनसे [बन्धः वा] बन्ध भी होता है और [मोक्षः वा] मोक्ष भी होता है।

टीका :- यहाँ, दर्शन-ज्ञान-चारित्र का कथंचित् बन्धहेतुपना दर्शाया है और इस प्रकार जीवस्वभाव में नियत चारित्र का साक्षात् मोक्षहेतुपना प्रकाशित किया है।

यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यदि अल्प भी परसमयप्रवृत्ति के साथ मिलित हो तो,

---

१. घृत स्वभाव से शीतलता के कारणभूत होने पर भी, यदि वह किंचित् भी उष्णता से युक्त हो तो, उससे (कथंचित्) जलते भी हैं; उसी प्रकार दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वभाव से मोक्ष के कारणभूत होने पर भी, यदि वे किंचित् भी परसमयप्रवृत्ति से युक्त हों तो, उनसे (कथंचित्) बन्ध भी होता है।

१. परसमयप्रवृत्तियुक्त दर्शन-ज्ञान-चारित्र में कथंचित् मोक्षरूप कार्य से विरुद्ध कार्य का कारणपना (अर्थात् बन्धरूप कार्य का कारणपपा) व्याप्त होता है।

[शास्त्रों में कभी-कभी दर्शन-ज्ञान-चारित्र को भी, यदि वे परसमयप्रवृत्तियुक्त हों तो, कथंचित् बन्ध का कारण कहा जाता है; और कभी ज्ञानी को वर्तनेवाले शुभभावों को भी कथंचित् मोक्ष के परम्पराहेतु कहा जाता है। शास्त्रों में आनेवाले ऐसे भिन्न-भिन्न पद्धति के कथनों को सुलझाते हुए, यह सारभूत वास्तविकता ध्यान में रखनी चाहिए कि—ज्ञानी को जब शुद्धाशुद्धरूप मिश्रपर्याय वर्तती है, तब वह मिश्रपर्याय एकान्त से

अग्नि के साथ मिलित घृत की भाँति (अर्थात् [१]उष्णतायुक्त घृत की भाँति), कथंचित् [१] विरुद्ध कार्य के कारणपने की व्याप्ति के कारण बन्धकारण भी हैं और जब वे (दर्शन-ज्ञान-चारित्र), समस्त परसमयप्रवृत्ति से निवृत्तरूप ऐसी स्वसमयप्रवृत्ति के साथ संयुक्त होते हैं तब, जिसे अग्नि के साथ मिलितपना निवृत्त हुआ है, ऐसे घृत की भाँति, विरुद्ध कार्य का कारणभाव निवृत्त हो गया होने से साक्षात् मोक्ष का कारण ही है। इसलिए 'स्वसमयप्रवृत्ति' नाम का जो जीवस्वभाव में नियत चारित्र, उसे साक्षात् मोक्षमार्गपना घटित होता है [२] ॥१६४॥

गाथा- १६४ पर प्रवचन

दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि।
साधूहि इदं भणिदं तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा।।१६४।।

लो, यह समयसार की १६वीं गाथा आती है न?

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णे वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो।।१६४।।

'मोक्ष भी होता है।' देखो!

टीका :- यहाँ, दर्शन-ज्ञान-चारित्र का कथंचित् बन्धहेतुपना दर्शाया है... जितना व्यवहार सम्यग्दर्शन, ज्ञान का विकल्प है, उतना बन्धहेतु है। मोक्षमार्ग दो कहे न? दोनों में एक बन्ध का कारण है, एक मोक्ष का कारण है, ऐसा यहाँ बतलाना है। **दर्शन-ज्ञान-चारित्र का कथंचित् बन्धहेतुपना दर्शाया है और इस प्रकार जीवस्वभाव में नियत**

संवर-निर्जरा-मोक्ष के कारणभूत नहीं होती अथवा एकान्त से आस्रव-बन्ध के कारणभूत नहीं होती, परन्तु उस मिश्रपर्याय का शुद्ध अंश संवर-निर्जरा-मोक्ष के कारणभूत होता है और अशुद्ध अंश आस्रव-बन्ध के कारणभूत होता है।]

२. इस निरूपण के साथ तुलना करने के लिये श्री प्रवचनसार की ११वीं गाथा और उसकी तत्त्वप्रदीपिका टीका देखिए।

चारित्र का साक्षात् मोक्षहेतुपना प्रकाशित किया है। देखो! जितनी स्थिरता में—चारित्र में कमी रहती है, उतना व्यवहारमोक्षमार्ग का विकल्प उत्पन्न होता है। यह मोक्षमार्ग के विस्तार का अधिकार है। समझ में आया? जितनी स्वरूप में लीनता की कमी रहती है, वहाँ विषय का प्रतिबन्धपना कहा था। यहाँ चारित्र की—स्थिरता की जितनी न्यूनता है उतना राग आता है। वही दर्शन, ज्ञान, चारित्र में राग का भाग रहा, वह बन्धहेतु है। **और इस प्रकार जीवस्वभाव में...** भगवान आत्मा के स्वभाव में नियत चारित्र का, **निश्चयचारित्र का साक्षात् मोक्षहेतुपना प्रकाशित किया है।**

यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यदि अल्प भी परसमयप्रवृत्ति के साथ मिलित हो.... परसमय अर्थात् राग, विकल्प। जितनी स्वसमयस्वरूप स्थिरता परसमय की प्रवृत्ति के साथ मिलित हो... समझ में आया? यह श्लोक लिया है न? भाई! नियमसार में नहीं? परसमय में दो लिये हैं। बहिरात्मा और अन्तरात्मा। स्वसमय में परमात्मा लिये हैं। है न, वह श्लोक दूसरा है। जितना अन्तरात्मा प्रगट हुआ, परन्तु जितना राग बाकी है, उतना वह परसमय है। धर्मात्मा को भी। और बहिरात्मा तो परसमय है ही। परमात्मा अकेले स्वसमय पूर्ण हो गये, पूर्णानन्द पूर्ण। तो जितना अन्तरात्मा को भी राग रहा, उतना परसमय है। समझ में आया? तो परसमय के दो भाग करके बहिरात्मा और अन्तरात्मा दोनों को परसमय में लिया है। इस अपेक्षा से (लिया है)। राग रहता है। राग रहता है, वह परसमय की प्रवृत्ति के साथ मिलित हो तो अग्नि के साथ... इसकी दृष्टान्त के साथ में तुलना होगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ४, गुरुवार, दिनांक - २७-०८-१९६४, गाथा-१६४ प्रवचन-१३

१६४ गाथा चलती है। क्या अधिकार है? इस पंचास्तिकाय को भी यहाँ समयसार कहते हैं। पंचास्तिकाय समयसार। नाम भी है न इसमें। पंचास्तिकाय समयसार। समझ में आया? पंचास्तिकाय समयसार में नौ पदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग का विस्तार वर्णन का अधिकार १६४ गाथा में चलता है। १५४ से चला आया है।

टीका :- यहाँ, दर्शन-ज्ञान-चारित्र का कथंचित् बन्धहेतुपना दर्शाया है.... कथंचित्। कथंचित् मोक्ष का कारण है, कथंचित् बन्ध का कारण है। वह क्या कथंचित्? कहा न कथंचित्? देखो, आता है न? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो अपने स्वभाव के आश्रय से होता है, वह मोक्ष का कारण है। समझ में आया? टीका में सब है, हों! जयसेनाचार्यदेव की टीका में। यहाँ आया न, बन्धहेतु, उसमें आया है। जितने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र अपने स्वद्रव्य के आश्रय से उत्पन्न हों, वह तो मोक्ष का ही कारण है। वही सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जितने परद्रव्य के आश्रय से पराश्रित उत्पन्न हों, उतना वह बन्ध का कारण है। समझ में आया? तो दोनों इसमें समाहित कर दिये, लो।

शुद्धरत्नत्रय और अशुद्ध व्यवहाररत्नत्रय। शुद्धरत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र अपने स्वद्रव्य के आश्रय से होते हैं, और व्यवहाररत्नत्रय जिसे यहाँ साधन कहा, व्यवहारसाधन कहा, वह साक्षात् पुण्यबन्ध का कारण है। परम्परा उसका अभाव करके होगा तो परम्परा वह व्यवहाररत्नत्रय जो स्वपरप्रत्यय, स्वपरप्रत्यय हेतु, आत्मा और निमित्त के सम्बन्ध में उत्पन्न होनेवाला रागरूपी भाव, वह स्वपरप्रत्यय है, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहा गया है। वह पराश्रित भाव है। वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र में दो भाग कर दिये। एक स्वआश्रित और एक पराश्रित। एक निश्चय, एक व्यवहार। एक शुद्धरत्नत्रय, एक अशुद्धरत्नत्रय। समझ में आया? तो जितने दर्शन, ज्ञान, चारित्र...

वास्तव में सम्यग्दर्शन को रागवाला सम्यक्—सम्यग्दर्शन कहा, वह तो व्यवहार से है। समझ में आया? क्या? सम्यग्दर्शन तो अपने स्वरूप के आश्रय से निर्विकल्प राग बिना की प्रतीति होती है, यह एक ही प्रकार का सम्यग्दर्शन है। परन्तु यहाँ पराश्रित

भाव, नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, ऐसे भाव को भी यहाँ व्यवहार समकित कहने में आया है। समझ में आया? नौ तत्त्व के भेद। अभेद स्व के आश्रय से हुआ, वह निश्चय-सम्यग्दर्शन है और पर के आश्रय से हुआ, वह व्यवहारसम्यग्दर्शन है। तो व्यवहार-सम्यग्दर्शन में व्यवहार वह राग है और सम्यग्दर्शन और सम्यक् श्रद्धागुण की पर्याय है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? क्या कहा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह चारित्रगुण की विकारी पर्याय है। उसे यहाँ पराश्रित व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा गया है।

देखो! यहाँ कहते हैं, कथंचित् बन्धहेतु। कौन कथंचित् बन्धहेतु? जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र है, उसमें कथंचित् बन्धहेतु और उसमें कथंचित् मोक्षहेतु, ऐसा इन तीनों में। व्यवहाररत्नत्रय कथंचित् बन्धहेतु, ऐसा नहीं। क्या कहा समझ में आया? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो तीन है, उसमें से कथंचित् बन्धहेतु तीन में है और कथंचित् मोक्षहेतु तीन में है, ऐसा लेना। तीनों में। जितना सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र अपने ज्ञायक चिदानन्द स्वभाव के आश्रय से उत्पन्न हुए, स्व के आश्रय से, शुद्धात्मा के आश्रय से, उतना तो निश्चयरत्नत्रय, शुद्धरत्नत्रय मोक्ष का साक्षात् कारण है। और वही सम्यग्दर्शन, ज्ञान जितना परालम्बन में जितना व्यवहारदर्शन, व्यवहारज्ञान, व्यवहारचारित्र राग की मन्दता का शुभ उपयोगरूप भाव (परिणमता है), उसे यहाँ व्यवहारसमकित कहा, उसे व्यवहार ज्ञान कहा, उसे व्यवहारचारित्र कहा। ये तीनों दर्शन, ज्ञान, चारित्र नहीं है, तथापि इन्हें कहना, वह पराश्रित है, स्वपरप्रत्यय है तो वह बन्ध का कारण है। समझ में आया? डालचन्दजी! देखो! यहाँ इन तीन में बहुत गड़बड़ होगी। यह पाठ बोलते हैं, देखो!

'दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि' 'सेविदव्वाणि' दोनों। **'साधूहि इदं भणिदं तेहिं दु बंधो वा मोक्खो वा।'** दोनों सेवन करना। व्यवहार और निश्चय। परन्तु इसका अर्थ... यह तो आता है, व्यवहार-भेदरत्नत्रय आराधना, सेवन करना। परन्तु इसका अर्थ समझना चाहिए या नहीं? समझ में आया? **'दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि' 'इदं भणिदं तेहिं' 'तेहिं'** अर्थात्

दर्शन, ज्ञान, चारित्र। **'तेहिं दु बंधो वा मोक्खो वा'** यह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र बन्ध और मोक्ष का कारण है, ऐसी गाथा है। समझ में आया? देखो! अर्थ में भी ऐसा कहा है। **'तैः तु' परन्तु उनसे....** उनसे अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र से **बन्ध भी होता है और मोक्ष भी होता है।** पण्डितजी! यह **'सेविदव्वाणि'** दोनों में आया। यह आता है न, होता है; इसलिए **'सेविदव्वाणि'।** आराधता है, ऐसा भी कहा जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...दोनों के लिये?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों के लिये। इसलिए तो यह अर्थ निकाला।

'दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि' 'तेहिं' वह दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो सेवन करने का मोक्षमार्ग कहा **'तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा'।** वह बन्ध का और मोक्ष का कारण है। समझ में आया? है या नहीं इसमें? देखो न, अर्थ में है या नहीं? शब्दार्थ में है। **दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है।** शब्दार्थ **इसलिए, वे सेवनयोग्य हैं**—वे सेवनयोग्य है। दोनों, हों! **ऐसा वह साधुओं ने कहा है; परन्तु उनसे....** उस मोक्षमार्ग से **बन्ध भी होता है और मोक्ष भी होता है।** व्यवहारनय से कथन चलता है तो उसे दोनों सेवन करना, यह आता है, उसे सेवन करना, ऐसा कहने में आता है। व्यवहार से ऐसा निमित्त आता है। परद्रव्य के आश्रय से नौ तत्त्व के भेद की श्रद्धा... वास्तव में तो वह समकित है नहीं। समझ में आया? शास्त्र में लिखते हैं न? सराग समकित। जयसेनाचार्य तो बहुत लिखते हैं। समझ में आया? और वीतराग समकित। लोग यह विवाद करते हैं न। परन्तु सराग समकित का अर्थ क्या? सम्यग्दर्शन, वह तो अपने शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा की निर्मल पर्याय है। और सराग है, वह तो चारित्र की विकारी पर्याय है। तो सराग समकित का अर्थ क्या? सम्यग्दर्शन अनुदयरूप है, उपशमरूप है, क्षयोपशमरूप है, क्षायिकरूप है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन, अपना जो सम्यग्दर्शन, स्वभाव के आश्रय से जो उत्पन्न हुआ, वह तो उपशमरूप है, क्षयोपशमरूप है, क्षायिकरूप है और राग उदयरूप है। क्या (कहा), समझ में आया? दोनों भिन्न हो गये।

सम्यग्दर्शन को सराग समकित कहना, इसका अर्थ क्या? उदयवाला सम्यग्दर्शन,

ऐसा ? उदयवाला सम्यग्दर्शन। सराग समकित का अर्थ उदयवाला सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन उदयवाला है ही नहीं। सम्यग्दर्शन तो अपने शुद्ध चैतन्य के आश्रय से निर्विकल्प—राग बिना की निर्मल पर्याय निर्दोष शुद्ध हुई है, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। वह तो उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव से है। और राग को जहाँ सराग समकित कहा तो राग तो उदयभाव है। तो उदयभाववाला समकित, वह तो चारित्र का राग है और जहाँ चारित्र का राग नहीं, इस अपेक्षा से आरोप से कथन (किया) कि सराग समकित और राग रहा नहीं, वहाँ वीतराग समकित। समकित तो वीतरागी ही है। लो। समझ में आया ? इस गाथा में से बन्ध और मोक्ष और कितनी बातें निकालते हैं। परन्तु किस अपेक्षा से ?

मुमुक्षु : कारण एक, कार्य दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : कारण एक... कारण भी दो और कार्य भी दो, यहाँ तो है। यहाँ तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र कारण भी दो और कार्य भी दो। जितना सम्यग्दर्शन, ज्ञान स्व के आश्रय से हुआ, वह कारण एक, उसका मोक्ष एक कार्य। और वही सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जितना रुककर राग में रुका परद्रव्य के आश्रय से, वह कारण और उसका कार्य बन्ध। वह परम्परा मोक्ष का कारण साधन गिनकर कहने में आया है। पहले (कहा) उसके साथ मिलाना है न! शुद्धरत्नत्रय साध्य और अशुद्धरत्नत्रय साधन, व्यवहाररत्नत्रय साधन। वह व्यवहाररत्नत्रय विकल्पात्मक को रत्नत्रय कहा, वह है नहीं, वास्तविक रत्नत्रय है नहीं। रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन निर्मल क्षयोपशमभाव, क्षायिकभाव, उपशमभाव है, सम्यग्ज्ञान भी क्षयोपशमभाव है, सम्यक्; और चारित्र भी क्षयोपशमभाव है। समझ में आया ?

इसके साथ सराग सम्यग्दर्शन, सराग ज्ञान, सराग चारित्र। यह तो उदयभाववाले दर्शन, ज्ञान, उदयभाववाला ज्ञान, उदयभाववाला चारित्र। वह तो आरोप से कथन किया गया है। चारित्र की प्रधानता बतलाने में कि जब तक चारित्र का राग है तो उसके समकित को सराग समकित कहा। समकित सराग-फराग है ही नहीं। समझ में आया ? और राग गया तो समकित को वीतराग समकित कहा गया है। वह चारित्र के (राग के) अभाव की अपेक्षा से। सम्यग्दर्शन तो है वह है वीतराग, एक प्रकार का ही है। आहाहा!

कठिन भाई! समझ में आया? इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान तो आत्मा के आश्रय से हुआ, वह एक ही सम्यग्ज्ञान है। उस ज्ञान में रागवाला ज्ञान, बन्धवाला ज्ञान, ऐसा यहाँ आया या नहीं?

सम्यग्दर्शन निश्चय स्वआश्रय से है, वह सम्यग्दर्शन मोक्ष का कारण और जितनी उसके साथ नौ तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा पराश्रित होने से बन्ध का कारण है। तो सम्यग्दर्शन ही कथंचित् बन्ध और कथंचित् मोक्ष अर्थात् स्वआश्रयवाला मोक्ष का कारण है और पराश्रयवाला बन्ध का कारण है। समझ में आया? इसी प्रकार ज्ञान, आत्मज्ञान जो है, वही ज्ञान है। उसमें उदयभाव है ही नहीं कि रागवाला ज्ञान, रागवाला ज्ञान। परन्तु साथ में शास्त्र पढ़ना आदि का विकल्प राग है, उसे गिनकर रागवाला ज्ञान, एक राग बिना का ज्ञान, एक रागवाला ज्ञान (कहने में आया)। समझ में आया? तो जितना पराश्रय से राग रहा, वह पुण्यबन्ध का साक्षात् कारण है, परम्परा मोक्ष का कारण (ऐसा) यहाँ भेद साध्य-साधन में लिया गया है। समझ में आया? कितने बोल इसमें...

इसी प्रकार चारित्र, स्वरूप के आश्रय से जितना शान्त, अविकारी उपशमरस ढल गया, अविकारी परिणमन (हुआ), वह चारित्र। एक ही स्वआश्रय से चारित्र। उसे पराश्रय से राग बाकी रहा (उसे) सरागचारित्र (कहा)। तो चारित्र तो चारित्र है वह है। परन्तु राग के कारण से उसे सरागचारित्र कहा जाता है। तो राग है, वह बन्ध का कारण है और जो निर्मल चारित्र, वह मोक्ष का कारण है। समझ में आया?

यहाँ, दर्शन-ज्ञान-चारित्र का कथंचित् बन्धहेतुपना.... कथंचित् का अर्थ व्यवहाररत्नत्रय कथंचित् बन्ध का कारण और कथंचित् मोक्ष का कारण, ऐसा नहीं। ऐसा निश्चयरत्नत्रय कथंचित् बन्ध का कारण और कथंचित् मोक्ष का कारण, ऐसा नहीं। परन्तु दर्शन, ज्ञान, चारित्र सामान्य बात की, तब उसमें एक भाग मोक्ष का कारण, दूसरा (भाग) बन्ध का कारण। इस अपेक्षा से कथंचित् बन्ध का कारण कहा गया है। कहो, समझ में आया? **और इस प्रकार जीवस्वभाव में नियत चारित्र का...** देखो! मुद्दा यहाँ यह लेना है। शुरु यह किया है न! चारित्र जितना स्वरूप में पूर्ण हो गया, वह मोक्ष का कारण है। उस चारित्र में जितनी कमजोरी रह गयी, दर्शन-ज्ञान-चारित्र में राग

आया उस कमजोरी को व्यवहार दर्शन, ज्ञान, चारित्र कहा गया है। उस चारित्र की निर्मलता की पूर्णता का उसमें अभाव है। तो वह प्रकार... जीवस्वभाव ज्ञान और दर्शन। कौन ज्ञान-दर्शन? चेतना। जीव में सामान्यचेतना दर्शन, विशेषचेतना ज्ञान। ऐसे जीवस्वभाव में नियत निश्चय चारित्र का। निश्चयचारित्र स्व में लीन होना **साक्षात् मोक्षहेतुपना....** साक्षात् मोक्षहेतुपना **प्रकाशित किया है।** चारित्र को ही साक्षात् मोक्षहेतुपना सिद्ध किया है। इस चारित्र में सम्यग्दर्शन, ज्ञान निर्मल तीनों आ गये। कहो, समझ में आया? इस अर्थ में बहुत गड़बड़ी (करते) हैं। देखो! पंचास्तिकाय में उसमें लिया है, रात्रि में बात नहीं चली थी? शुद्ध, अशुद्ध रत्नत्रय यथाक्रमेण मोक्ष और पुण्यबन्ध का कारण है। तो शुद्धरत्नत्रय, वह मोक्ष का कारण है और अशुद्धरत्नत्रय पुण्य का कारण है। तो अशुद्धरत्नत्रय यदि अकेले छठवें तक हो तो अकेला पुण्य का कारण हुआ। और फिर परम्परा मोक्ष का कारण साधन देखकर कहा। समझ में आया इसमें?

अकेला अशुद्धरत्नत्रय तो साक्षात् पुण्य का कारण कहा। समझ में आया? तब वर्तमान (शुभभाव) पुण्य का कारण है, वह तो परम्परा निमित्त देखकर (कहा)। मोक्ष के भिन्नसाध्यसाधनभाव में भिन्न साध्य वह निर्मल है, भिन्न साधन वह मलिन है, उसे निमित्त देखकर, उसे भिन्नसाध्यसाधन कहा। परन्तु उसके साथ भिन्न साध्यसाधन के काल में कि व्यवहाररत्नत्रय अशुद्ध रत्नत्रय के काल में अशुद्धरत्नत्रय साक्षात् तो पुण्य का कारण है। तो उसके काल में वहाँ कोई संवर, निर्जरा का कारण है या नहीं? भाई! समझ में आया? शुद्धरत्नत्रय सातवें के योग्य निश्चय हो, वह तो सातवें में, परन्तु पहले चौथे, पाँचवें में, छठवें में... यहाँ तो यह कहा कि अशुद्धरत्नत्रय है, वह तो बन्ध का कारण है। तो बन्ध का कारण है तो चौथे में, पाँचवें में, छठवें में अकेला अशुद्ध रत्नत्रय हो तो (संवर, निर्जरा के) परिणाम प्रगट हुए हैं या नहीं? समझ में आया? या बन्ध परिणाम से संवर-निर्जरा होती है? तो यह कहते हैं कि नहीं, चौथे, पाँचवें, छठवें में तो शुभ उपयोग व्यवहाररत्नत्रय है, उसमें ही शुद्ध अंश है। जितनी निवृत्ति हुई, उतना शुद्ध है, प्रवृत्ति विकल्प रहता है, वह अशुद्ध है। ऐसा है ही नहीं।

मुमुक्षु : जो कारण बन्ध का हो, वह संवर का कारण....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह संवर का कारण कहाँ से होगा? तब कहते हैं कि उसमें परम्परा मोक्ष का कारण कहा है न? भेदरत्नत्रय को साध्यसाधन कहा न? वह तो उपचार से—व्यवहार से कहा है। यथार्थ में वह है ही नहीं। वह तो निमित्त का ज्ञान कराने को (कहा है)। चौथे, पाँचवें, छठवें में देव-गुरु-शास्त्र, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प है। पाँचवें, छठवें में बारह व्रत और पंच महाव्रत की योग्यतावाले मन्द कषाय का ही निमित्त है। ऐसे अनुकूल व्यवहार से निमित्त देखकर परम्परा साधन है, ऐसा आरोप किया गया है। ओहोहो! मित्रसेनजी! लोग बहुत गड़बड़ कर डालते हैं।

कहते हैं, भगवान आत्मा... दो बार लिया है भाई ने, नहीं? टीका में। स्वआश्रित, पराश्रित दो बार लिया है और तीसरी बार शुद्धात्माश्रित, ऐसा तीसरी बार लिया वापस। वह और वापस स्पष्टीकरण चुस्त किया है। भगवान आत्मा... यहाँ तीन बोल में दो प्रकार लेना। एक, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो स्वाश्रय, स्वाधीन, राग बिना निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र है, वह तो वर्तमान संवर, निर्जरा है, साक्षात् मोक्ष का कारण है। और राग जितना बाकी रहा, भेदवाली श्रद्धा, शास्त्र का भेदरूप ज्ञान और पंच महाव्रत के विकल्प को परम्परा साधन कहा है, साक्षात् पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया? पराश्रित हुआ इसलिए। जितना पराश्रित राग, नौ तत्त्व का भेद पराश्रित हुआ। शास्त्रज्ञान पराश्रित हुआ और पंच महाव्रत के परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण के (परिणाम) पराश्रित हुए। धन्नालालजी! आहाहा!

मुमुक्षु : एक सिद्धान्त—स्वाश्रित वह निश्चय, पराश्रित वह व्यवहार।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, बात यह। स्वाश्रितो निश्चय, पराश्रितो व्यवहार, महासिद्धान्त।

मुमुक्षु : ....परम्परा मोक्ष का कारण कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा मोक्ष का आरोप दिया जाता है। उसका अभाव करेगा। दृष्टि में ख्याल है कि हेय है। उपादेय तो यही है—संवर, निर्जरा, मोक्ष प्रगट करने की अपेक्षा से। उपादेय अकेला द्रव्य ही है। निश्चय से उपादेय तो ज्ञायकभाव ही त्रिकाल ज्ञायक अखण्डानन्द ही उपादेय है, परन्तु प्रगट करनेयोग्य संवर, निर्जरा, मोक्ष है। प्रगट

करने की अपेक्षा से उत्पाद की अपेक्षा से उसे उपादेय कहा गया है। और आस्रव, बन्ध को व्यय की अपेक्षा से हेय कहा गया है। नाश करनेयोग्य है। समझ में आया? उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत् हो गये तीनों। देखो! एक समय में ध्रुव ज्ञायकभाव, वही साक्षात् उपादेय है। स्वआश्रय। और संवर, निर्जरा, मोक्ष निर्मल पर्याय है, उत्पन्न करनेयोग्य है, शुद्ध है, अपने स्वभाव में से प्रगट होती है। मोक्ष भी एक अंश है। केवलज्ञान है न, एक अंश है। स्वभाव में से उत्पन्न होता है और स्वभाव की पर्याय प्रगट होने का कारण है, प्रगट करने के लिये आदरणीय है, इस अपेक्षा से उसे उपादेय कहा गया है। तथा पुण्य और पाप, आस्रव और बन्धभाव हेय कहे, क्योंकि वे व्यय करनेयोग्य हैं, उत्पन्न करनेयोग्य नहीं। समझ में आया? परन्तु बहुत सूक्ष्म। कितनी बात याद रखना?

यहाँ गड़बडी यह है न, **'बंधो व मोक्खो वा'**। इसलिए हमारे पण्डितजी ने स्पष्टीकरण किया है। वे कहते हैं, भाई! देखो! सम्यग्दर्शन को स्वर्ग के आयुष्य का बन्ध का कारण कहा, तत्त्वार्थसूत्र में। अभी आया था। अरे! सम्यग्दर्शन, स्वर्ग के बन्ध का कारण वह सम्यग्दर्शन नहीं। सम्यग्दर्शन के साथ विकल्प है, वह स्वर्ग आयुष्य का करण है। पण्डितजी! यह तत्त्वार्थसूत्र में आता है न? **'सम्यक्त्वं च'** यह स्वर्ग के आयुष्य का कारण। सराग संयम... ऐसे सोलहकारण (भावना से) जो तीर्थंकरगोत्र बँधता है, उसमें भी दर्शनविशुद्धि जो ली है, वह दर्शनविशुद्धि तीर्थंकरगोत्र के बन्ध का कारण नहीं। और साथ में विकल्प आया है, वह तीर्थंकरगोत्र के बन्ध का कारण है। सम्यग्दर्शन बन्ध का कारण? सम्यग्दर्शन तो संवर, निर्जरा का कारण है। वह तो मोक्ष का कारण शुद्ध है। उससे बन्ध नहीं होता। यह लगा देते हैं। कभी सम्यग्दर्शन-ज्ञान भी बन्ध का कारण है। देखो! यह लिखा। और कभी शुभभाव भी मोक्ष का कारण है। नीचे आयेगा, स्पष्टीकरण आयेगा कि ऐसा है ही नहीं। देखो!

यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यदि अल्प भी परसमयप्रवृत्ति के साथ मिलित हो... यह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र **यदि अल्प भी परसमय...** अर्थात् यह जो स्व-परप्रत्यय हेतु व्यवहाररत्नत्रय कहा था, विकल्प, राग, विभाव। स्वपरप्रत्यय हेतु, वह विभाव, स्वाश्रय वह स्वभाव, तो कहते हैं, यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र यदि अल्प भी, **अल्प भी परसमयप्रवृत्ति के साथ मिलित हो तो, अग्नि के साथ मिलित घृत की भाँति...** लो।

घी तो ठण्डा है परन्तु अग्नि के साथ मिला, इसलिए थोड़ा उष्ण हो गया है। **अग्नि के साथ मिलित घृत की भाँति...** घी। **(अर्थात् उष्णतायुक्त घृत की भाँति), कथंचित् विरुद्ध कार्य के कारणपने की....** विरुद्ध कार्य के कारणपने की **व्याप्ति के कारण बन्धकारण भी हैं....** अब दोनों का स्पष्टीकरण। पहले आया न यह ? उष्णतायुक्त घी। नीचे स्पष्टीकरण। 'घी स्वभाव से शीतलता के कारणभूत होने पर भी...' घी तो शीतल है। 'यदि वह थोड़ी भी उष्णता से युक्त हो...' अग्नि के साथ युक्त जो घी गर्म हो, 'तो उससे (कथंचित्) जलते भी हैं...' समझ में आया ? जलाता है। गर्म घी डाले ऐसे तो जल जाये। गर्म घी से जल जाते हैं। समझ में आया ?

उसी प्रकार दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वभाव से मोक्ष के कारणभूत होने पर भी... स्वभाव तो मोक्ष का ही कारण है। **यदि वे किंचित् भी परसमयप्रवृत्ति से युक्त हों तो, उनसे (कथंचित्) बन्ध भी होता है।** राग से बन्ध भी होता है। उसमें से निकालते हैं कि थोड़ा बन्ध भी होता है, थोड़ा कथंचित्, ...ऐसा नहीं। वह तो तीनों शुद्ध हैं, उनसे मोक्ष होता है और तीनों में थोड़ी अशुद्धता है इन दोनों की अपेक्षा से कथंचित् मोक्ष, कथंचित् बन्ध (कहा जाता है)। अशुद्ध है, वह कथंचित् बन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : परसमयप्रवृत्ति से....

पूज्य गुरुदेवश्री : परसमयप्रवृत्ति से युक्त राग, राग।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बुद्धिपूर्वक राग है तो अबुद्धिपूर्वक तो है ही अन्दर। यह नौ तत्त्व की श्रद्धा, यह पंच महाव्रत के भाव बुद्धिपूर्वक ख्याल है। उस काल में ख्याल में न आवे, ऐसे अबुद्धिपूर्वक के भी हैं। इस बात का यहाँ काम नहीं है। तथापि बुद्धिपूर्वक है तो अबुद्धिपूर्वक अन्दर है सही। अबुद्धिपूर्वक का अर्थ ऐसा नहीं... ख्याल में नहीं आनेवाले को अबुद्धिपूर्वक कहते हैं। उसी समय। पंच महाव्रत के, व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प हुए, ख्याल में आये, उसे उपचार से असद्भूतव्यवहारनय से बुद्धिपूर्वक का राग कहा गया है। और उसी समय ख्याल में नहीं आनेवाला अन्दर में है। उपयोग स्थूल है न, उसी समय में ख्याल में नहीं आनेवाला है। परन्तु बुद्धिपूर्वक, अबुद्धिपूर्वक को सिद्ध करता है। और कहाँ आये ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से कहते हैं, कहते हैं। जो राग व्यवहार ख्याल में आया, नौ तत्त्व की भेदरूप श्रद्धा का विकल्प और पंच महाव्रत का विकल्प जो ख्याल में आया, उसे बुद्धिपूर्वक कहा गया है। उसे असद्भूत उपचार कहा गया है और असद्भूत अनुपचार, उसी समय है। बुद्धिपूर्वक है, वह अबुद्धिपूर्वक को सिद्ध करता है। बुद्धिपूर्वक साधन है और इतना ख्याल में आनेवाला है तो अन्दर ख्याल में नहीं आनेवाला राग भी है, उसे—अबुद्धिपूर्वक को यहाँ अनुपचार से असद्भूत राग कहा गया है। कठिन बात भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... शब्द तो करते हैं या नहीं? देखो! राग है। अब राग ख्याल में आया और मुझे जानना, वह असद्भूत उपचार हुआ। है नहीं अपने स्वभाव में। राग आया तो ख्याल आया कि आया, यह है, यह व्यवहार उपचार। उसी समय ख्याल में नहीं आनेवाला, उसे साध्य बनाकर, यह बुद्धिपूर्वक का राग व्यवहार साधन बना, साधन से साध्य है, अन्दर निश्चित अबुद्धिपूर्वक राग है। नहीं तो अबुद्धिपूर्वक राग ऐसे प्रगट जानने में नहीं आता। समझ में आया? कठिन बात! पंचाध्यायी की बात है न!

मुमुक्षु : परसमय अर्थात् राग?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग। परसमय शब्द से राग के आधीन जितने दर्शन, ज्ञान, चारित्र हुए, उतनी परसमयप्रवृत्ति है। स्वभाव के साथ जितने हुए, उतनी स्वसमयप्रवृत्ति है। यह दूसरी बात है, चलती बात दूसरी है।

यहाँ चलता है उसमें ख्याल में आया या नहीं? ऐसा प्रश्न किया न? आत्मा में चार नय उतारे हैं पंचाध्यायी में। समझ में आया? पहले बहुत स्पष्टीकरण होता था। एक बार तो यहाँ पौन घण्टे में पाँच इंच वर्षा हुई थी। (संवत्) १९९२ के वर्ष, ज्येष्ठ शुक्ल १२। पौन घण्टे में पाँच इंच। तब हम और वीरजीभाई—दोनों, चार नय में साध्य-साधन घटित करते थे। साधन-साध्य, साधन-साध्य। ९२, समझे? २८ वर्ष हुए। यह हीराभाई के मकान में। वर्षा, वर्षा पानी।

जितना राग है न ख्याल में आनेवाला, वह साधन हुआ। किसका? अबुद्धिपूर्वक सिद्ध करने में कि अन्दर राग है। एक बात। और अबुद्धिपूर्वक भी सिद्ध हो गया। अब अबुद्धिपूर्वक राग है, उसका ज्ञान हुआ कि यह राग है, उसका ज्ञान हुआ। वह सद्भूत उपचारनय ज्ञान का कहने में आता है। उसका ज्ञान किया न कि यह राग है। राग बुद्धिपूर्वक, अबुद्धिपूर्वक है, दोनों हैं, ऐसा ज्ञान किया। तो उसका ज्ञान किया, वह स्व के ज्ञान की सामर्थ्य है और पर का ज्ञान किया, वह स्वपरप्रकाशकज्ञान प्रमाणज्ञान सद्भूत उपचारनय का विषय हो गया। और ज्ञान है, वह इस गुणी का है, आत्मा का है, वह ज्ञान आत्मा का है, यह सद्भूत अनुपचार हो गया। समझ में आया?

मुमुक्षु : आत्मधर्म में आ गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मधर्म में आ गया है, बहुत बातें आ गयी हैं। पहले बहुत सब बातें आ गयी है। समझ में आया? छठवीं गाथा, सातवीं गाथा में घटित किये हैं। छठवीं में तीन और सातवीं में एक (नय)।

ण वि होदि अपमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णादो जो सो दु सो चेव॥६॥

इसमें (छठवीं में) तीन नय घटित किये हैं। असद्भूत उपचार, अनुपचार, सद्भूत उपचार। और सातवीं गाथा में सद्भूत अनुपचार।

ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं।
ण वि णाणं चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो॥७॥

यह अनुपचार। यह पर्याय अथवा गुण इसका है, इसलिए अनुपचार। समझ में आया? ऐसी अभेददृष्टि करने में, एकाकार होने में इन चारों नय का लक्ष्य छूटकर... समझ में आया? उपचार का, अनुपचार का, पर को जानने का और यह इसका ज्ञान, ऐसा भेद भी छूटकर। पण्डितजी! आहाहा! समझ में आया? लो, और बुद्धिपूर्वक में ऐसा निकल गया जरा। बुद्धिपूर्वक के पंच महाव्रत हैं वे। व्यवहारश्रद्धा, वह बुद्धिपूर्वक का राग है, अबुद्धिपूर्वक साथ में है। यह नौ तत्त्व की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम यह सब राग है, परसमयप्रवृत्ति है। उसे व्यवहाररत्नत्रय कहा जाता है। उसे साक्षात्

पुण्यबन्ध का कारण कहा जाता है। उसे परम्परा साधन, साध्य का कहा गया है। आहाहा! बाबूभाई! आहाहा! भगवान! कितनी बात! समझ में आया?

यहाँ तो इतना सिद्ध करना था कि 'उसी प्रकार दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वभाव से मोक्ष के कारणभूत होने पर भी, यदि उसमें थोड़ी भी परसमयप्रवृत्ति से युक्त हो तो, उससे (कथंचित्) बन्ध भी होता है।' तो जितना पराश्रित राग हुआ, वही सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र कहने में आया न? उसमें से जितने भाग में पर का आश्रय लिया, वह बन्ध का कारण है। स्व का आश्रय लिया... जैसे घी गर्म—उष्ण हुआ। डाले तो क्या कहते हैं? जलाता है या नहीं? जला दे।

पहले एक बात हुई थी। भाई! यह गुलाबचन्दजी थे न? गुलाबचन्दजी हमारे एक स्थानकवासी थे। फिर ब्रह्मचर्य की बात करे तो ऐसी बात करे न, कड़क भाषा। घर में लड़कियाँ जणे, बहू जणे और सास जणे, तीन-तीन जाने। ऐसी भाषा बोले। समझ में आया? एक गुलाबचन्दजी थे, राजकोट के स्थानकवासी साधु। पश्चात् ऐसा बोले न! यह? एक ओर सासु जणे, एक ओर बहू जणे और एक ओर लड़की जणे। लज्जा नहीं आती। ऐसी भाषा। फिर एक गृहस्थ था, (वह कहे), महाराज! घी तो सही परन्तु गर्म बहुत। भाई! ऐसा कहते हैं। नवरंगभाई! घी परन्तु गर्म बहुत। जलाता है। भाई! सुननेवाले सेठिया बैठे हों, गृहस्थ बैठे हों जरा... समझे न? ऐसे तो बड़ी उम्र में विवाह किया हो तो उसे लड़का हो और लड़के को लड़का हो और लड़की को लड़का हो। तीनों डिलीवरी एक साथ अलग-अलग कमरे में हों कहीं। वह कड़क व्यक्ति न, ऐसा कहे... तुमने देखा था या नहीं? वह तो उसके भगत थे। नहीं? (संवत्) १९८२ में न? ८२ में। ८२ में पहले वहाँ थे। ८२ में ही गुजर गये। ६९ में। ६९ में सुंदर वोरा के सामने थे। सुंदर वोरा के सामने है न भोजनशाला? वहाँ उतरे थे। ६९ के वर्ष। वहाँ मैं आया था, ६९ में ज्येष्ठ महीने में। ६९। चातुर्मास वहाँ था। ६९ का चातुर्मास वहाँ था। सुंदर वोरा का उपाश्रय। सुंदर वोरा के उपाश्रय के सामने भोजनशाला है। ६९ में मैं वहाँ गया था, ६९ के वर्ष में गया था। यहाँ कहते हैं... वह ऐसा बोलते न कड़क, फिर धीरज से एक सेठ बोले, महाराज! बात तो ठीक है परन्तु घी बहुत गर्म। जलाता है। लोगों को कठोर लगता है।

इसी प्रकार यह घी गर्म है, गर्म। घी है, परन्तु जलाता है। अग्नि के सम्पर्क से जलाता है। कहो, समझ में आया? अब **कथंचित् विरुद्ध कार्य...** इसका अर्थ चलता है, देखो! कथंचित् विरुद्ध कार्य क्या है? सम्यग्दर्शन-ज्ञान तो मोक्ष का कारण है और कार्य मोक्ष है। सम्यग्दर्शन, चारित्र तो निश्चय कारण है और कार्य मोक्ष है। तो मोक्ष कार्य से विरुद्ध कार्य, उसका कारणपना। बन्ध जो मोक्ष से विरुद्ध कार्य बन्ध, उसका कारणपना। बन्ध का कारण। क्या कहा? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों स्वआश्रय से है, वह तो मोक्ष का कारण है। तो मोक्ष कार्य, वह कारण। तो मोक्षकार्य से विरुद्ध कार्य। विरुद्ध कार्य कौन?—कि बन्ध। उसका कारण कौन? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जितने पराश्रय से हुए, उतना बन्ध का कारण है। अर्थात् मोक्षकार्य से विरुद्ध कार्य का कारण है। समझ में आया? भाषा ऐसी अटपटी है। परन्तु यहाँ तो मोक्ष समझाना है। उसके साथ में मोक्ष के कार्य से विरुद्ध कार्य बन्ध का, वह व्यवहाररत्नत्रय कारण है, ऐसा बतलाना है। समझ में आया?

जितने अशुद्धरत्नत्रय है विकल्पात्मक हुआ, जितनी निर्विकल्प वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र है, वह तो मोक्ष का कार्य और मोक्ष का कारण है। अब मोक्ष के कार्य से (विरुद्ध कार्य) अशुद्धरत्नत्रय है, परसमयप्रवृत्ति है, पर के लक्ष्य से उतना पराश्रित भाव (हुआ), देव-गुरु-शास्त्र आदि परद्रव्य के आश्रय से हुए न वे भाव? समझ में आया? जयसेनाचार्य में तो दोनों में लिया है। उस पाप में भी लिया है। भाई! ऐसा कि मिथ्यात्व, विषयकषाय में परद्रव्य। स्त्री, कुटुम्ब, कुदेव, कुगुरु वह परद्रव्य के आश्रय से मिथ्यात्व आदि पापबन्ध का कारण है। समझ में आया? दो बतलाना है न! परद्रव्य के दो प्रकार। एक परद्रव्य जिससे सुदेव, सुगुरु, सुशास्त्र के आश्रय से और भेद के आश्रय से हुआ राग, वह पुण्यबन्ध का कारण है। मोक्षकार्य से विरुद्ध बन्धकार्य का कारण है। परन्तु एक मिथ्यात्व, विषयकषाय के परिणाम जो कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र निमित्त और स्त्री-कुटुम्ब-परिवार पाप के निमित्त, उनके आश्रय से हुए भाव, वह पापबन्ध का कारण है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पुण्य है। वे तीन मोक्ष का कार्य है। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की श्रद्धा में निमित्त वह परद्रव्य है, तो वह पापबन्ध का-मिथ्यात्वबन्ध का कारण है। और विषयकषाय के निमित्त में स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, स्त्री, पुत्र, परिवार आदि, वे पाप के अशुभ परिणाम हैं और परद्रव्याश्रित हैं। वह पापबन्ध का कारण है। तथा देव, गुरु और शास्त्र सच्चे, साधर्मी इत्यादि के आश्रय से उत्पन्न हुए, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का विकल्प जो शुभराग है, वह साक्षात् पुण्य का कारण है। समझ में आया? और परम्परा व्यवहार से साधन गिनकर मोक्ष का साधन व्यवहार से कहा गया है। निश्चय से तो शुद्ध रत्नत्रय परिणति है, वह जितना शुद्धपना चौथे, पाँचवें, छठवें में प्रगट हुआ, वही साक्षात् निश्चयरत्नत्रय के योग्य जो मोक्षमार्ग है, उसका वास्तविक साधन तो शुद्ध निर्मल पर्याय है। छठे गुणस्थान से शुद्धपर्याय साधन है। राग को व्यवहार साधन कहकर, मोक्ष का व्यवहारसाधन कहा गया है।

मोक्ष के दो कारण कहे, फिर कार्य के दो कारण कहाँ से होंगे? व्यवहाररत्नत्रय और निश्चयरत्नत्रय मोक्ष का कारण, दो मोक्ष के मार्ग। लो। दोनों मोक्ष के मार्ग। इसका अर्थ कि जो व्यवहार मोक्ष का मार्ग कहा, वह है तो बन्ध का मार्ग, परन्तु वहाँ व्यवहार साध्यसाधन में जो लिया है, वह साध्यसाधन में लिया, वह मोक्ष का साधन है, ऐसा लिया अथवा शुद्ध का साधन है, ऐसा निमित्त से लिया है। ओहोहो! गजब झंझट, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दर्शन में राग साथ में है न, नौ तत्त्व के भेद की श्रद्धा। इतनी परसमयप्रवृत्ति राग है न? नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा राग है न! वह विकल्प में आया परन्तु उसका नाम व्यवहारसमकित है न आरोप! निश्चयसमकित के साथ नौ तत्त्व के विकल्प हुए तो इस समकित के साथ निमित्त है, उपचार है, सहचारी है तो उसे व्यवहारसमकित कहने में आया है। है नहीं, राग है। परन्तु यहाँ निमित्त देखकर व्यवहारसमकित कहा गया है। व्यवहारसमकित, वह समकित है ही नहीं, है तो राग। तो व्यवहार कहते हैं न? व्यवहार, अन्यथा कहे, उसका नाम व्यवहार। यथार्थ कहे, उसका नाम निश्चय।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विरुद्ध है न, कहा न। सम्यग्दर्शन-ज्ञान निर्मल है, उसके साथ व्यवहार कषाय की मन्दता ऐसी ही होनी चाहिए, दूसरा नहीं होना चाहिए, ऐसी अनुकूलता देखकर व्यवहार से साध्य का साधन कहने में आया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। अनुकूलता व्यवहार से, निश्चय से नहीं। यह तो भाषा बीच में आती है, समझना बराबर। आगे-पीछे भाषा नहीं। समझ में आया? व्यवहार से क्यों अनुकूल? यह तो पहले कहा कि छठवें गुणस्थान में व्यवहार अनुकूल का अर्थ, कि सच्चे देव-गुरु-शास्त्र, अरिहन्त त्रिलोकनाथ परमात्मा, गुरु निर्ग्रन्थ, शास्त्र सनातन अनेकान्त कहनेवाले, उनकी श्रद्धा, वह राग यहाँ निश्चय सम्यग्दर्शन में उसी राग की पर्याय निमित्तरूप होती है, वही अनुकूल है। कुदेव, कुगुरु की श्रद्धा के निमित्त का राग वहाँ अनुकूल नहीं है। और छठवें गुणस्थान में अपना जो ज्ञान हुआ—आत्मज्ञान, उसके साथ अनुकूल क्या है? सर्वज्ञ भगवान ने कहे हुए शास्त्र का ज्ञान वह निमित्तरूप अनुकूल है। कुशास्त्र का ज्ञान निमित्तरूप भी अनुकूल नहीं। इस कारण से उसे निमित्त से व्यवहार से अनुकूल कहने में आया है।

मुनि को छठवें गुणस्थान में जो निर्मल पर्याय हुई,उसके साथ अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प, यही एक अनुकूल निमित्त है। उन्हें वस्त्र-पात्र लेना, अध:कर्मी आहार लेना, ऐसा विकल्प व्यवहार से अनुकूल नहीं है। इस अपेक्षा से व्यवहार अनुकूल कहने में आया है। समझ में आया? बहुत विषय निकल गया। आज तो एक घण्टे में बहुत निकला।

मुमुक्षु : बड़ा विषय।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा विषय। लो, हमारे छोटाभाई कहते हैं। हमारे पण्डित हैं तो भी कहते हैं, बड़ा विषय है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, बिल्कुल नहीं। आधा-फाधा कौन कहता है? आधा-

फाधा करे... यह क्या कहते हैं? **विरुद्ध कार्य के कारणपने की व्याप्ति के कारण बन्धकारण भी हैं....** यह आधा करता है क्या? जितना शुद्ध रत्नत्रय है, वही संवर, निर्जरा और मोक्ष का कारण है। जितना अशुद्ध रत्नत्रय है, मोक्षकार्य से विरुद्ध बन्धकार्य का कारणपना होने से वह विपरीत है। विरुद्ध कार्य है। ठीक है, हमारे देवीलालजी कहते हैं, दो भाग कर दो। थोड़ा यहाँ और थोड़ा वहाँ। यह जानकर पूछते हैं। जानकर पूछते हैं न स्पष्टता के लिये। समझ में आया? स्पष्टीकरण तो होता है न! क्यों?

अब यहाँ नीचे दूसरा बोल आया न? **विरुद्ध कार्य के कारणपने की व्याप्ति के कारण....** अपने ऊपर से अर्थ किया, परन्तु अब अन्दर लिखा है, देखो! 'परसमयप्रवृत्तियुक्त दर्शन-ज्ञान-चारित्र में कथंचित् मोक्षरूप कार्य से विरुद्ध कार्य का कारणपना है (अर्थात् बन्धरूप कार्य का कारणपना) व्यापता है।' वहाँ तो व्याप्ति तो बन्ध के कारण के साथ है। अब स्पष्टीकरण करते हैं। '(शास्त्रों में कभी-कभी दर्शन-ज्ञान-चारित्र को भी, यदि वे परसमयप्रवृत्तियुक्त हों तो, कथंचित् बन्ध के कारण कहा जाता है...' जैसे यहाँ (कहा) वैसे अन्यत्र (समझ लेना)। 'और कभी ज्ञानी को वर्तते हुए शुभभावों को भी कथंचित् मोक्ष के परम्पराहेतु कहा जाता है।' देखो! परम्परा विरुद्ध। मोक्षमार्ग को कदाचित् बन्ध कहते हैं और बन्धभाव को कदाचित् मोक्ष का परम्परा हेतु कहते हैं। दो प्रकार की कथनी चलती है।

'शास्त्रों में आनेवाले ऐसे भिन्न-भिन्न पद्धति के कथन सुलझाते हुए...' दोनों का मेल करने में 'यह सारभूत हकीकत ख्याल में रखना कि—ज्ञानी को जब शुद्धाशुद्धरूप मिश्रपर्याय वर्तती है... देखो! 'शुद्धाशुद्ध मिश्रपर्याय वर्तती है, तब वह मिश्रपर्याय एकान्त से संवर-निर्जरा-मोक्ष के कारणभूत नहीं होती...' लो, यह शब्द आया शुद्धाशुद्ध रत्नत्रय का। शुद्धाशुद्ध रत्नत्रय साथ में है, उस मिश्रपर्याय में एकान्त से संवर-निर्जरा (नहीं है), मिश्रपर्याय है, इतनी मिश्र हुई न! शुद्ध भी है, अशुद्ध भी है, इसलिए मिश्र हुई। निश्चयरत्नत्रय है और व्यवहाररत्नत्रय है, इसलिए मिश्र हुई। 'तब वह मिश्रपर्याय एकान्त से संवर-निर्जरा-मोक्ष के कारणभूत नहीं होती अथवा एकान्त से आस्रव-बन्ध के कारणभूत नहीं होती। परन्तु उस मिश्रपर्याय का...' अब देखो! मिश्रपर्याय लेनी है

न! वह मिश्रपर्याय एकान्त से मोक्ष का कारण नहीं, एकान्त से बन्ध का कारण नहीं। तो उसके दो भाग पड़ गये। 'शुद्ध अंश संवर–निर्जरा–मोक्ष के कारणभूत होता है...' लो। जितने स्वस्वभाव के आश्रय से शुद्ध सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र निर्मल हुए, वही मोक्ष का कारण है। उसी काल में 'अशुद्ध अंश आस्रव–बन्ध के कारणभूत होता है।' लो! जितना अशुद्ध अंश रहता है, जो यह बन्ध का कारण कहा वह। सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र परसमयप्रवृत्ति में प्रवर्तते हैं, उसी समय वे भाव तो बन्ध का ही कारण है। शुद्ध (भाव) मोक्ष का कारण है। मिश्र ले, वह एकान्त संवर–निर्जरा और एकान्त बन्ध का कारण नहीं है। परन्तु भिन्न करने पर, शुद्ध अंश वह संवर–निर्जरा का कारण है; अशुद्ध, वह बन्ध का कारण है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सामान्य बात की उसमें जैसे कि द्रव्य। द्रव्य कथंचित् नित्य, कथंचित् अनित्य। एक हुआ। समाप्त। अब जब द्रव्य द्रव्यार्थिक से एकान्त नित्य है। पर्यायार्थिक से एकान्त पर्याय में अनित्य है। ऐसा नहीं कि द्रव्यार्थिक से कथंचित् नित्य है और कथंचित् अनित्य है। वह तो जब द्रव्य सामान्य ले, सामान्य द्रव्य, द्रव्य और पर्याय, तो कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य। परन्तु उसका द्रव्य लिया—सामान्य द्रव्य पूरा, त्रिकाल द्रव्यार्थिकनय से, निश्चयनय से द्रव्य नित्य ही है, नित्य ही है। निश्चयनय से द्रव्यार्थिकनय से कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य है, ऐसा नहीं होता है। और पर्याय एक समय की है, वह पूरे द्रव्य की अपेक्षा से कथंचित् नित्य, अनित्य ले लिया, परन्तु पर्यायदृष्टि से पर्याय अनित्य ही है। पर्यायदृष्टि से पर्याय नित्य भी है और अनित्य भी है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय की अनित्य है। पर्याय अनित्य ही है।

मुमुक्षु : एक समय के लिये नित्य है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। नित्य कैसी? 'है' अपेक्षा से सत्, परन्तु है अनित्य। एक समय रहनेवाली है। समझ में आया? ले, यह कहते हैं, पण्डित के लिये

व्याख्यान है। यह सब पण्डित समझने के योग्य इसलिए व्याख्यान है। सब जिज्ञासु कितने आये हैं, देखो न इस बार। समझने की जिज्ञासावाले नये बहुत आये हैं। कहो, समझ में आया? यह पाठ है, उसमें से तो अर्थ होता है। पाठ के साथ में मिलानकर याद न रहे? ऐसा कहाँ है? उसके साथ मिलाकर बात करते हैं या नहीं?

कहते हैं, **विरुद्ध कार्य के कारणपने की व्याप्ति के कारण....** इसका अर्थ किया नीचे। विरुद्ध का अर्थ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वह मोक्ष का कारण है और उसके साथ राग आया, वह मोक्ष के कार्य से विरुद्ध बन्ध का कारण है। एक ही...

मुमुक्षु : प्रयोजनभूत है, इसलिए समझना पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझना पड़ेगा। बराबर है, बराबर है। लो, डालचन्दजी कहते हैं। यह मूल बात है।

मुमुक्षु : .... पर्याय एक समय में है?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय में है। राग भी है और अराग भी है। जितना स्वद्रव्य के आश्रय से निर्मल हुआ, उतना शुद्ध है। ज्ञानधारा और कर्मधारा। लो, और यह आया। आज सूक्ष्म ही आया है। एक पर्याय में दो भाग। वे चिल्लाहट मचाते हैं न? एक पर्याय में दो नहीं। देखो! समझ में आया? यह कहते हैं न, व्यवहारसम्यग्दर्शन और निश्चयसम्यग्दर्शन के स्वामी भिन्न-भिन्न हैं। भाई! आया है न इसमें? नहीं। एक समय में निश्चयसम्यग्दर्शन का स्वामी वह है, व्यवहार विकल्प आते हैं, उनका स्वामी वर्तमान उसकी भूमिका में वह है। आया था। स्वामी भिन्न-भिन्न, काल भिन्न-भिन्न। तीन बोल लिये हैं। तीसरा बोल याद नहीं रहा। तीन बोल लिये हैं। पंचाध्यायी (में कहा) सम्यग्दर्शन का स्वामी एक ही है। समझ में आया? भिन्न-भिन्न स्वामी नहीं।

सराग समकित लगाते हैं? राग तो उदय का कार्य है। उसे क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय के साथ लगाते हैं? तेरा शास्त्र पठन सब वृथा है। तूने कायक्लेश किया। पढ़-पढ़कर, वांचन-वांचन कर तूने क्या निकाला? समझ में आया? सराग समकित? क्या कहते हैं? सराग समकित? जहरवाला अमृत? क्या कहते हैं? जहर भिन्न है, अमृत भिन्न है। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन पर्याय श्रद्धागुण की निर्मल है। राग चारित्रगुण की

विकारी है। उसके साथ सराग समकित कहना, समकित के दो भाग करते हैं, वे वस्तु का स्वरूप नहीं समझते। समकित तो एक ही भाग है। निश्चय वीतरागी दृष्टि अपने स्वभाव की हुई, चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें, तेरहवें, जाओ सिद्ध में (सर्वत्र एक समान है)। आहाहा!

मुमुक्षु : अभेद....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभेद तो थी, उसकी यहाँ बात नहीं है। निर्मल पर्याय हुई, वह एक ही प्रकार की है। चौथे में हो, पाँचवें में हो, छठवें में हो और सिद्ध में। विषय तो अभेद है, वह तो है ही। यह तो सम्यग्दर्शन एक ही प्रकार का है, दूसरे प्रकार का है ही नहीं। राग को समकित कहना, वह तो आचार्यों ने अपेक्षित कहा है। चारित्र की प्रधानता के कथन की बात है। मन्द राग है, बहुत थोड़ा रह गया, वहाँ वीतराग समकित कहने में आया है। बहुत राग है, वहाँ रागवाला समकित, राग की तीव्रता है, नाश करनेयोग्य है, ऐसा बतलाने को सराग (समकित कहा), परन्तु समकित है, वह तो निश्चय ही है। समझ में आया? स्वआश्रय से प्रगट हुआ, वह निश्चय सम्यक् एक ही शुद्ध है। एक ही प्रकार का है। उसे राग से कहना, दूसरे गुण की पर्याय को दूसरे गुण की पर्याय में लगाना... उसमें प्रयोजन क्या आया? चारित्रगुण की विकल्प पर्याय है, वह विकार है। और सम्यग्दर्शन अपने श्रद्धागुण की निर्मल निर्विकारी पर्याय है। एक गुण की दूसरी वह भी विकारी, उसे उसके साथ लगाना नहीं। निश्चय में यथार्थ है, व्यवहार से आचार्यों ने बात की है। समझ में आया?

विरुद्ध कार्य के कारणपने की व्याप्ति के कारण बन्धकारण भी हैं और जब वे (दर्शन-ज्ञान-चारित्र),... देखो! **समस्त परसमयप्रवृत्ति से निवृत्तरूप...** विकल्प से हटकर अपने शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र में अकेला स्वसमय के आश्रय से हो गया। ओहोहो! समझ में आया? **समस्त परसमयप्रवृत्ति से निवृत्तरूप...** राग से निवृत्तिरूप, स्वभाव के अवलम्बन से उग्ररूप, स्वभाव के अवलम्बन में उग्ररूप, राग से हटनेरूप। **ऐसी स्वसमयप्रवृत्ति के साथ संयुक्त होते हैं....** कौन? दर्शन-ज्ञान-चारित्र। **तब, जिसे अग्नि के साथ मिलितपना निवृत्त हुआ है,....** लो। जैसे अग्नि के साथ घी नहीं था,

(तब) अकेला शीतल था। नारायण कहते हैं न? ठण्डा नारायण घी। एक हमारे थे। जयरामभाई घी को नारायण कहते थे। रोगी को दो। परन्तु वह मर जायेगा, कहा। नारायण। नारणभाई को दिया था वींछिया में, उन्हें रोग था न। भाई! सब जगह नहीं होता नारायण। अरे! अभिमान चढ़ गया। यह सब ऊँटवैद्य जैसे वैद्य। घी में कुछ दिक्कत नहीं, वह तो नारायणरूप कहलाता है। परन्तु यह कफ हो, जम जायेगा घी में। वहाँ नारायणरूप नहीं होता। रोग बढ़ गया था, भाई!

तब, जिसे अग्नि के साथ मिलितपना निवृत्त हुआ है,... किसे? घी को। **ऐसे घृत की भाँति, विरुद्ध कार्य का कारणभाव निवृत्त हो गया...** क्या? अपना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो मोक्ष का कारण है, उसमें से विरुद्ध कार्य—बन्ध विरुद्ध कार्य है, उसका कारणपना, वह परसमयप्रवृत्ति का विकल्प निवृत्त हो गया है। समझ में आया? यह बात समझ में नहीं आये, ऐसी नहीं है। यह तो बहुत साधारण भाषा से कहा जाता है। ऐसी कोई शास्त्रीय भाषा कठिन नहीं है, परन्तु ख्याल तो करना चाहिए न अन्दर। **साक्षात् मोक्ष का कारण ही है।** देखो, लो। यह साक्षात् मोक्षकारण ही है। इसमें पुण्य है, वह साक्षात् मोक्षकारण परम्परा साधन कहा गया है। कथनपद्धति में क्या अपेक्षा है, यह समझना चाहिए न! **इसलिए 'स्वसमयप्रवृत्ति' नाम का जो जीवस्वभाव में नियत चारित्र, उसे साक्षात् मोक्षमार्गपना घटित होता है।** लो, समझ में आया? स्वसमयप्रवृत्ति अपना स्वभाव, उसके साथ जीवस्वभाव में नियत निश्चय चारित्र, उसे साक्षात् मोक्षमार्गपना घटित होता है। उसकी बात थोड़ी प्रवचनसार में है, उसे मिलाने की बात है....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ५, शुक्रवार, दिनांक - २८-०८-१९६४, गाथा-१६४, १६५ प्रवचन-१४

पंचास्तिकाय, गाथा-१६४। मोक्षमार्ग का विस्तार चलता है, उसमें अन्तिम पंक्ति है। **इसलिए 'स्वसमयप्रवृत्ति' नाम का जो जीवस्वभाव में नियत चारित्र, उसे साक्षात् मोक्षमार्गपना घटित होता है।** यहाँ दोनों लिये, इस गाथा में। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जितने परसमय अर्थात् राग का अवलम्बन करते हैं, उतना वह बन्ध का कारण है। व्यवहाररत्नत्रय वास्तव में तो पर के अवलम्बन से तो बन्ध का कारण है, ऐसा है। किसी ने वहाँ प्रश्न किया था। ऐसा कि व्यवहाररत्नत्रय बन्ध का कारण क्यों नहीं कहा? राग बन्ध का कारण कहा। परन्तु वह तो व्यवहाररत्नत्रय का पहले स्पष्टीकरण आया है। स्वपरप्रत्यय को व्यवहाररत्नत्रय कहते हैं। कहो, समझ में आया?

स्वपरप्रत्यय का अर्थ क्या? नहीं, नहीं। स्वपरप्रत्यय का अर्थ स्व में अनुभूति का प्रश्न नहीं। स्वपरप्रत्यय का अर्थ... धारा नहीं यह? आत्मा और निमित्त कर्म से उत्पन्न हुआ विकल्प, उसे स्वपरप्रत्यय कहते हैं। उसमें अनुभूति का प्रश्न है ही नहीं। समझ में आया? स्वआश्रय आत्मा के आश्रय से जितना निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुए हैं, वह तो स्वद्रव्य आश्रय मुक्ति का कारण है। परन्तु जितने विकल्प व्यवहाररत्नत्रय स्वपरप्रत्यय-हेतु उत्पन्न होते हैं, मोक्षमार्ग तीनों हैं—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, परन्तु उसमें से एक व्यवहार है। पर के आश्रय से जितने विकल्प उठते हैं, वह बन्ध का कारण है। स्वपरप्रत्यय-हेतु व्यवहाररत्नत्रय बन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखा है न, **'बंधो व मोक्खो वा'**। क्या कहा? कल आ गया न? क्या कहा? **'साधूहि इदं भणिदं तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा'** कौन **'तेहिं?' 'तेहिं'** कौन, कल कहा था। **'तेहिं'** उससे—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से बन्ध होता है और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से मुक्ति होती है। पाठ ऐसा बोलता है, देखो! **'दंसणणाण-चरित्ताणि मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि। साधूहि इदं भणिदं तेहिं'** अर्थात् मोक्षमार्ग से बन्ध होता है और मोक्षमार्ग से मोक्ष होता है। दोनों होते हैं। जितना अपने स्वद्रव्य के

आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय हुए, वह तो साक्षात् अकेला मोक्ष का कारण है, चारित्रसहित। और जितना स्वपरप्रत्यय राग आया, वह मोक्षमार्ग जो व्यवहार से कहा था, वह बन्ध का कारण है। पुण्यबन्ध का ही कारण है। यह तो कल बहुत चला था। फिर साध्यसाधन देखकर व्यवहार से उसे साधन कहा है, परन्तु साक्षात् वर्तमान तो वह पुण्यबन्ध का ही कारण है। इसका स्पष्टीकरण किया। समझ में आया? यह श्रावक को भी होता है और मुनि को भी होता है। समझ में आया? निश्चयरत्नत्रय... कल नियमसार में से कहा था।

श्रावक भी पंचम गुणस्थान में अपने आत्मा की निश्चयरत्नत्रय की सेवा करता है। पण्डितजी! कल आया था। यह नियमसार में कहा था। भक्ति के अधिकार में। श्रावक और मुनि, दोनों अपना स्वभाव पंचम गुणस्थान के योग्य सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वद्रव्य के आश्रय से है, निश्चय शुद्धरत्नत्रय पंचम गुणस्थान के योग्य है, उसकी वह सेवा करता है, आराधना करता है और मुनि, मुनि के योग्य जो शुद्ध रत्नत्रय है, उसका वे आराधन, भक्ति और भजन करते हैं। भजन अर्थात् एकाग्रता की बात है। वहाँ विकल्प-फिकल्प की बात है नहीं। समझ में आया?

कोई कहता है कि सातवें में निश्चयरत्नत्रय होता है। यहाँ तो पाँचवें में भी शुद्ध रत्नत्रय लिया। पाठ में लिया कि गृहस्थ और मुनि दोनों को दर्शन, ज्ञान, चारित्र की सेवा है। यहाँ भी यह लिया। समझ में आया? दर्शन, ज्ञान, चारित्र की सेवा यहाँ सामान्य बात की है, परन्तु वहाँ विशेष स्पष्ट कर दिया है और समयसार की अन्तिम गाथायें हैं न, ४११ आदि, उनमें भी लिया न? उसमें यह लिया है कि गृहस्थलिंग और मुनिलिंग को छोड़कर अर्थात् लक्ष्य छोड़कर अपना शुद्ध रत्नत्रय अभेद रत्नत्रय है, उसे पंचम गुणस्थानवाले आराधते थे। समझ में आया? वहाँ अभेद रत्नत्रय लिया है। नियमसार में शुद्ध रत्नत्रय लिया। वह तो एक ही अर्थ है। अभेद रत्नत्रय कहो, शुद्ध रत्नत्रय कहो, अभ्यन्तर रत्नत्रय कहो, स्वभाव रत्नत्रय कहो, स्वआश्रय रत्नत्रय कहो, सब एक अर्थ में है। राजमलजी! समझ में आया? कहाँ गये राजमलजी? देवीलालजी! यह समझना। बहुत गड़बड़ उठती है, हों! अभी होगी। वे लोग एकदम समाधान नहीं करते। ऐसा है

और ऐसा है। मुनि को सप्तम गुणस्थान (होता है), अभी व्यवहाररत्नत्रय अकेला है। निश्चय नहीं। अखबार में-(जैन)पत्रिका में बहुत बार आता है।

यहाँ तो कहते हैं, समयसार में कहा, नियमसार में कहा। समझ में आया? और पुण्य-पाप के अधिकार में भी समयसार में ऐसा कहा कि जब तुम शुभभाव का निषेध करते हो तो मुनि को शरण किसका? इसका अर्थ करते हुए नाटक समयसार में बनारसीदास ने दोनों लिये हैं कि आप जब शुभभाव का धर्म में निषेध करते हो तो श्रावक को और मुनि को आलम्बन किसका रहा? समझ में आया? शुभभाव की क्रिया, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति रागादि धर्म नहीं है, धर्म नहीं है, धर्म नहीं है। तो श्रावक को और मुनि को आलम्बन किसका रहा? ऐसा बनारसीदासजी ने लिया है। समझ में आया? यहाँ नहीं। कलश-टीका है न। निषिद्धे। पाठ में अकेला लिया है भले। समझ में आया? पुण्य-पाप के अधिकार में है न? निषिद्धे। समझ में आया? पुण्य-पाप का पाँचवाँ श्लोक है।

निषिद्धे सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि किल
प्रवृत्ते नैष्कर्म्ये न खलु मुनयः सन्त्यशरणाः।
तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रतिचरितमेवां हि शरणं
स्वयं विन्दन्त्येते परमममृतं तत्र निरताः॥१०४॥

इसमें बनारसीदास ने लिया है। इस कलश के अर्थ में लिया, देखो!

सिष्य कहै स्वामी तुम करनी असुभ सुभ,
कीनी है निषेध मेरे संसै मन मांही है।

तुमने तो शुभ-अशुभ दोनों राग का निषेध किया है कि (वह) धर्म नहीं, धर्म नहीं। लक्ष्मीचन्दजी! '**सिष्य कहै स्वामी तुम करनी असुभ सुभ,**' शुभ-अशुभ करणी, हों! विकल्प, शुभ-अशुभभाव '**कीनी है निषेध मेरे संसै मन मांही है।**' मुझे शंका है, शिष्य कहता है। '**मोखके सधैया ग्याता देसविरती मुनि**' मोक्ष के सधैया—मोक्ष को साधनेवाले ज्ञाता। देशविरति, देशविरति और मुनि। देखो! दोनों लिये हैं। देवविरति अर्थात् पंचम गुणस्थानवाले और मुनि। **तिनकी अवस्था तौ निरावलंब नांही है।** प्रभु!

उनकी निरालम्बन अवस्था तो है नहीं। पंचम गुणस्थान में श्रावक ज्ञाता है। छठवें गुणस्थान में मुनि है। निरालम्ब तो है नहीं, विकल्प तो आता है और तुम तो निषेध करते हो कि वह धर्म नहीं। अट्ठाईस मूलगुण धर्म नहीं, पंच महाव्रत धर्म नहीं, बारह व्रत धर्म नहीं तो उन्हें आलम्बन किसका है?

'**कहै गुरु करमकौ नास अनुभौ अभ्यास,**' अनुभव अभ्यास। पंचम गुणस्थानवाले को कहते हैं, हों! दोनों को—मुनि को और इसे। '**कहै गुरु करमकौ नास अनुभौ अभ्यास, ऐसौ अवलंब उनहीकौ उन पांही है।**' पंचम गुणस्थान में भी अन्दर निज स्वरूप का अवलम्बन श्रावक को है। वह मोक्षमार्ग है। वह मोक्ष का सधैया है। है न? समझ में आया? क्या कहा? साधनेवाले, मोक्ष के सधैया। श्रावक और मुनि दोनों मोक्ष के सधैया। पंचम गुणस्थानवाले श्रावक और छठवेंवाले मुनि मोक्ष के सधैया—ज्ञाता। दोनों ज्ञाता-दृष्टा हैं। राग आता है, उसके ज्ञाता-दृष्टा हैं। कर्ता-धर्ता नहीं। जो षट्कर्म आये न पंचम गुणस्थानयोग्य? आते हैं न? देवसेवा, गुरु उपासना इत्यादि, उस विकल्प के ज्ञाता-दृष्टा हैं, कर्ता-हर्ता नहीं।

कहते हैं कि जब ऐसा ज्ञान राग को भी कर्ता नहीं तो पंचम गुणस्थान की सेवा में उसे किसका अवलम्बन लेना? देव-गुरु-शास्त्र के अवलम्बन निमित्त को उड़ा दिया। पर के (लक्ष्य से होनेवाला) शुभभाव, उसे उड़ा दिया। अब करना क्या उसे? राजमलजी!

मुमुक्षु : ज्ञाता-दृष्टा बना दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बनाया नहीं, है,। बनाया नहीं। अब ज्ञाता को क्या सेवन करना, इसकी बात है। ज्ञाता देशविरति, मुनि। देशविरति ज्ञाता और ज्ञाता मुनि '**तिनकी अवस्था तौ निरावलंब नांही है। कहै गुरु करमकौ नास अनुभौ अभ्यास।**' पंचम गुणस्थान में भी अन्तर आनन्द का अनुभव अभ्यास, वही मोक्ष का मार्ग है, वही कर्म का नाश करनेवाला है। बीच में व्यवहार विकल्प आता है, वह बन्ध का कारण है। समझ में आया? देखो!

'**ऐसौ अवलंब उनहीकौ उन पांही है।**' उनका उनके पास। उसमें अर्थात् आत्मा

में। राग आत्मा नहीं। षट् कर्म के विकल्प उठते हैं, वह आत्मा नहीं, वह तो आस्रव विकल्प है। बनारसीदास ऐसा कहा गये हैं। उसमें मुनिश लिया है तो इन्होंने दो निकाले—श्रावक और मुनि।

मुमुक्षु : आधार पण्डित का....

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डित ने अन्दर से न्याय से निकाला है। यह तो पहले कहा नहीं यहाँ? समयसार में कहा, अन्दर नियमसार में लिया, अब यह आधार आचार्य के हैं, उनके साथ यह आधार है। समझ में आया? राजमलजी! तुमको सबको तैयार होना पड़ेगा, हों! बहुत।

'**निरुपाधि आतम समाधि सोई सिवरूप,**' देखो! निरुपाधि। विकल्प बिना का निर्विकल्प ज्ञाता-दृष्टा का स्वभाव '**समाधि सोई सिवरूप,**' वही शिवरूप '**और दौर धूप पुद्गल परछांही है।**' (पद ८) बाकी सब विकल्प उठते हैं, बारह व्रत के श्रावक को, मुनि को अट्ठाईस मूलगुण के '**और दौर धूप पुद्गल परछांही है।**' आहाहा! पण्डितजी! वह विकल्प पुद्गल की पर्याय—परछाही है। देखो! बनारसीदासजी की बात सहन करना... लोग फिर निकाल डालते हैं कि बनारसीदासजी ने कहा है। अरे... सुन तो सही! बनारसीदास घर का नहीं कहते। आचार्य संस्कृत में कहते हैं। संस्कृत में सब भरा है। वही बात कहते हैं। इसकी प्रचलित भाषा में स्पष्ट करते हैं। यहाँ भी श्रावक और मुनि दोनों को वहाँ पंचम गुणस्थान योग्य और छठवें गुणस्थान योग्य आत्मा का जितना अवलम्बन है, तो यहाँ तो तीनों हैं—दर्शन-ज्ञान-चारित्र, पंचम गुणस्थानयोग्य शुद्ध रत्नत्रय की सेवा करता है। उसका आधार आत्मा है। समकिती, श्रावक और मुनि निराधार निरालम्बन नहीं है। यह आया या नहीं?

और यहाँ समयसार में आया। ४११वीं गथा में कहा।'**जहित्तु लिंगे सागारणगारए हें वा गहिदे। दंसणणाणचरित्ते अप्पाणं जुंज मोक्खपहे।**' जो लिंग ग्रहण किया, उसका लक्ष्य छोड़कर '**जहित्तु**'। समझ में आया? अपने दर्शन-ज्ञान-चारित्र सेवन करना। श्रावक ग्यारहवीं प्रतिमावाले, कोपीन आदि लिये न? वेश लिया है। पंचम गुणस्थानवाले भी शुद्ध रत्नत्रय का, अभेद रत्नत्रय का सेवन पंचम गुणस्थान में भी

करता है। दूसरी जगह तो बहुत आता है। द्रव्यसंग्रह में, परमात्मप्रकाश में (आता है)। भेदाभेद रत्नत्रय आराधक, भेदाभेद रत्नत्रय आराधक। परन्तु आराधक का अर्थ ऐसा करते हैं। यह पकड़े। इसमें कोई दूसरा कर नहीं सकता। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ने का अर्थात् लक्ष्य छोड़कर। छोड़ना क्या? वस्तु छूट जाती है? अपने स्वभाव का अवलम्बन करो। निश्चयरत्नत्रय का आधार है, तब उसका विकल्प व्यवहार भी हो, नग्नदशा भी हो। हो उसे छोड़ना, इसका अर्थ क्या छोड़ देना है? उसका लक्ष्य छोड़कर, उसे मोक्षमार्ग नहीं मानकर। अट्ठाईस मूलगुण, बारह व्रत के विकल्प को मोक्षमार्ग नहीं मानकर, लक्ष्य छोड़कर, उसका आश्रय छोड़कर मात्र आत्मा का अवलम्बन करना, यही श्रावक और मुनि का अन्तर में अवलम्बन है। देखो! ऐसी बात तो है। गृहस्थाश्रम में रहे हुए पंचम गुणस्थानवाले। यहाँ भले ग्यारहवीं प्रतिमा ली है। कोपीन आदि लिये हैं, वेश। परन्तु बाकी सब ले लेना। वहाँ लिये न! वहाँ कहाँ ग्यारहवीं प्रतिमा ली है। वहाँ तो प्रतिमा के भेद किये हैं। यह नियमसार, वहाँ तो अपने नीचे प्रतिमा में भेद किये हैं। श्रावक और मुनि, ... दोनों पाठ कुन्दकुन्दाचार्य के हैं। दोनों को अपने शुद्ध रत्नत्रय का आराधन है और सेवन करते हैं। जितने रागादि हों, उतना जाननेयोग्य बन्धभाव है। समझ में आया? ऐसा सुनकर कोई स्वच्छन्दी हो जाता है, वह तो उसकी कल्पना से है। कोई वस्तु के स्वरूप से स्वच्छन्दी होता है, ऐसा नहीं होता। समझ में आया?

ऐसा स्वभाव... ओहो! विकल्प है, निमित्त है, है तो सही न! न हो तो उसका निषेध करना, लक्ष्य छोड़ना कहाँ से आया? लक्ष्य छोड़कर चैतन्यप्रभु पूर्ण ज्ञान से भरपूर अभेद स्वरूप, उसके अभेद रत्नत्रय की सेवा करना, वही श्रावक और मुनि को अवलम्बन और आराधन है। मित्रसेनजी! यह पंचम गुणस्थान में ऐसा लिया है। आहाहा! उत्साही, उत्साही है। समझ में आया?

अब अपने यहाँ नीचे बाकी रह गया था। विरुद्ध कार्य है न? कहाँ यह रह गया? **'स्वसमयप्रवृत्ति' नाम का जो जीवस्वभाव में नियत चारित्र, उसे साक्षात् मोक्षमार्गपना**

घटित होता है। है न? १६४ गाथा की अन्तिम लाइन का फुटनोट नीचे। 'इस निरूपण के साथ तुलना के लिये श्री प्रवचनसार की ११वीं गाथा और उसकी तत्त्वप्रदीपिका टीका देखो।' उसमें भी गड़बड़ करते हैं, यह ११वीं गाथा है न? उसका यहाँ आधार दिया है। हमारे पण्डितजी ने उसके साथ तुलना कराई है। देखो! प्रवचनसार ११वीं गाथा।

धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपओगजुदो।
पावदि णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो य सग्गसुहं॥११॥

देखो! पाठ में अन्तर पड़ेगा, हों! १६५ में आयेगा, '**सुद्धसंपओगादो**' भाई! '**सुद्धसंपओगादो**' यह दूसरी बात और वह दूसरी बात। '**सुद्धसंपओगजुदो**' यह शुद्ध उपयोग है और यहाँ जो १६५ में '**सुद्धसंपओगादो**' आयेगा, वह शुभभाव है। समझ में आया?

तो यहाँ कहते हैं कि जो आत्मा धर्मपरिणत स्वभाववाला होता है, धर्मपरिणत— अरागी, वीतरागी स्वभाव का जिसे निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित परिणति / अवस्था हुई है, वह शुद्ध उपयोग परिणति वहन करे और टिका रखता है, शुद्ध उपयोग में रहे तब तो विरोधी शक्ति रहित होने के कारण अपना कार्य करने में समर्थ है। क्योंकि राग विरोध-बन्ध का कारण, उससे रहित हुआ, तो अपना शुद्ध उपयोग मोक्षकार्य करने में समर्थ है। मोक्षकार्य करने में शुद्ध उपयोग समर्थ है। ऐसे चारित्रवाला होने से साक्षात् मोक्ष प्राप्त करता है।

जब वह धर्मपरिणत स्वभाववाला.... इसमें गड़बड़ करते हैं, देखो! नहीं, धर्मपरिणत छोड़ देते हैं अथवा धर्मपरिणत शुभ उपयोगवाला है, ऐसा (वे) कहते हैं। वह शुभ उपयोग ही धर्मपरिणत है, ऐसा नहीं। जब वह धर्मपरिणत स्वभाववाला होने पर भी, अपने स्वभाव में तीन कषाय का अभाव, ऐसा धर्म परिणति तो उसको है। उसे धर्मपरिणति कहते हैं। शुभभाव को धर्मपरिणति नहीं कहते। समझ में आया? धर्मपरिणत स्वभाववाला होकर। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान—स्वसंवेदनज्ञान और स्वरूप का तीन कषाय के अभावरूप परिणमन, ऐसा होने पर भी शुभ उपयोग परिणति के साथ जुड़ता है। जब वह शुभभाव के साथ जुड़ता है तो स्वर्ग प्राप्त करता है। वह शुभराग आया, उसके

पुण्यबन्ध से स्वर्ग में जाता है। परन्तु धर्मपरिणति तो है। वह शुभ उपयोग धर्मपरिणति नहीं। ऐसा अर्थ आया था एक पत्र में। एक बड़े पण्डित ने लिखा था कि देखो! शुभ उपयोग धर्मपरिणतवाला... उसकी यहाँ बात ही कहाँ है। यहाँ तो धर्मपरिणति तो अपने अन्दर में शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र की परिणति हुई है, उसे धर्मपरिणति कहते हैं। उसके साथ यदि शुद्ध उपयोग हो तो मोक्ष होता है, परन्तु साथ में शुद्ध उपयोग न हो, शुभ उपयोग हो तो स्वर्ग में जाता है। ऐसी बात है। समझ में आया?

तब, जो विरोधी शक्ति सहित होने के कारण... यह अपने चला न यहाँ, उसका आधार। विरोधी शक्ति हुई वह। धर्मपरिणत होने पर भी राग—शुभ उपयोग आया। वह शुद्ध उपयोग अथवा शुद्ध परिणति तो मोक्ष का कारण है, परन्तु राग बन्धरूपी कार्य का कारण विरोधी शक्तिवाला है। मुनि को छठवें गुणस्थान में सम्यग्दर्शन, ज्ञान और तीन कषाय के अभावरूप चारित्र होने पर भी शुभ उपयोग विरोध कार्य है, वह बन्ध का कारण है। समझ में आया? तो उससे **स्वकार्य करने को असमर्थ है...** शुभराग है, वह स्वकार्य करने को असमर्थ है। **और कथंचित् विरुद्ध कार्य करनेवाला है...** हो गया। यह राग आया वह बन्ध का कारण हो गया। **ऐसा चारित्रवाला...** है तो चारित्रवाला। शुभपरिणाम के कारण से नहीं, (परन्तु) शुद्ध परिणति (होने से)। उसका नाम नहीं देते। यहाँ (टेप में) उतरता है न। एक पण्डित ने लिखा था, बहुत बड़ा पण्डित है, वह कहे, देखो! यहाँ शुभ उपयोग को धर्मपरिणत कहा है। ऐसा है ही नहीं। धर्मपरिणत तो अन्दर शुद्ध, रागरहित जितनी दशा हुई है, उसे शुद्धपरिणति की भूमिका छठवीं भूमिका कहा जाता है। छठवीं भूमिका अर्थात् छठवाँ गुणस्थान। उसमें जो शुभराग आया, वह विरुद्ध कार्य करनेवाला चारित्र होने से। देखो! यहाँ भी दृष्टान्त दिया।

अग्नि से गर्म हुआ घी जिसके ऊपर छिड़का गया हो, वह पुरुष दाहदुःख को प्राप्त करता है, उसी प्रकार स्वर्गसुख के बन्ध को प्राप्त करता है। इस शुभ उपयोग में तो स्वर्ग का सुख गर्म घी जैसा है। घी से जले हुए जैसा है सुख वहाँ। राग... राग... राग... राग... राग... इन्द्राणियाँ और लक्ष्मी और साधन। उसका झुकाव समकिती को भी। यह समकिती है, उसकी बात चलती है। और छठवें गुणस्थान में भी चारित्रपरिणति

निर्मल होने पर भी, यदि शुभराग में जुड़ान हो जाये तो स्वर्ग में चला जाये। घी से जले हुए जैसे भोग का भोग लेगा। आकुलता... आकुलता। समकिती को भी चौथे गुणस्थान में वहाँ इतनी आकुलता होगी। इसलिए शुद्ध उपयोग उपादेय है, और शुभ उपयोग हेय है। छठवें गुणस्थान में भी पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण का जो विकल्प आया, वह हेय है। शुद्ध उपयोग ही उपादेय है और नीचे की भूमिका में जितनी शुद्धपरिणति हुई, वह उपादेय है। समझ में आया?

यहाँ अग्नि के दृष्टान्त के साथ मिलान किया है। तत्त्वप्रदीपिका टीका देखो। यह पढ़ी है वह। '**धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपओगजुदो।**' मोक्ष प्राप्त करता है। धर्म परिणत आत्मा यदि शुभ उपयोग सहित हो, धर्म परिणत तो है ही, अकेला शुभ उपयोग नहीं। भारी गड़बड़ करते हैं। यह धर्म परिणत आत्मा '**सुद्धसंपओगजुदो**' मोक्ष (प्राप्त करता है)। धर्म परिणत आत्मा शुभरागसहित हो तो स्वर्ग (प्राप्त करता है)। समझ में आया?

अब यहाँ १६५ गाथा। देखो, वहाँ '**सुद्धसंपओगजुदो**' था। यहाँ दूसरी भाषा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो रागसहित बन्ध है। समकित के साथ बन्ध नहीं। राग साथ में आता है न, उसका बन्ध। यह तो सबमें, दर्शनविशुद्धि में भी विकल्प आया, वह तीर्थंकरगोत्र का बन्ध (करते हैं)। वह तो शुद्ध ही है। पुरुषार्थसिद्धिउपाय में लिया नहीं? जितने अंश में सम्यग्दर्शन शुद्ध है उतना मुक्ति का कारण। जितना राग अंश है... तीन गाथायें हैं। वह आता है, आता है। उसमें भले सम्यग्दर्शन, ज्ञान (शब्द) नहीं परन्तु, चारित्र में जितने अंश में चारित्र निर्मल है, उतना मोक्ष का कारण है। उसी पर्याय में जितना राग है (उतना बन्ध का कारण है)। दर्शन-ज्ञान में तो एक पर्याय दूसरी नहीं होती। परन्तु इस चारित्र में तो होती है या नहीं? परन्तु ज्ञानधारा और कर्मधारा कैसे आयी? एक पर्याय में दो भाग।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र की पर्याय कहाँ... यहाँ भी चारित्रपर्याय की बात है।

परसमयप्रवृत्ति करता है, उतना दोष है, बन्ध का कारण है, यह सिद्ध करना है। साक्षात् शुद्ध उपयोग चारित्र तो मोक्ष का कारण है। समझ में आया? क्या कहा?

जितने अंश में जो राग रहा, ...पुरुषार्थसिद्धिउपाय में तीन गाथायें हैं न? वह चारित्र में भी जितने अंश में रागरहित परिणति हुई, एक समय की पर्याय, वह मोक्ष का कारण। उसी पर्याय में जितना राग रहा, वह बन्ध का कारण। एक पर्याय में दो भाग आये। ज्ञानधारा। ज्ञानधारा का अर्थ सम्यक्ज्ञान-दर्शन और चारित्र की शुद्धता, वह ज्ञानधारा और जितना राग, वह कर्मधारा, बन्धधारा। समकिती को दोनों एकसाथ चलती है। समझ में आया? किसी जगह ऐसा भी कह दे कि सम्यग्दृष्टि अबन्ध है, आस्रव रहित है। दृष्टि की प्रधानता से—मुख्यता से ऐसा भी कहे और साथ में भिन्नता बतलाने के लिये राग-बन्धधारा भी चलती है, उतना बन्धधारा में राग है, उतनी यहाँ निर्मलता में न्यूनता है। दोनों बात बतलानी है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ आयेगा, यहाँ आयेगा। वहाँ शुद्ध उपयोग है और यह '**सुद्धसंपओगादो**' यह शुभराग है। अभी आयेगा। अभी अपने चला नहीं। यह शब्द '**सुद्धसंपओगादो**' ऐसा शब्द है और वहाँ '**सुद्धसंपओगजुदो**' शब्द है। अर्थात् शुद्ध उपयोग सहित वहाँ है। यह '**सुद्धसंपओगादो**' अर्थात् देव-गुरु-शास्त्र जो शुद्ध है, उनके ऊपर लक्ष्य गया तो शुभ उपयोग है। यहाँ १६५ में। वहाँ '**सुद्धसंपओगजुदो**' अर्थात् शुद्ध उपयोग है। और शब्द में अन्तर है। वहाँ '**सुद्धसंपओगजुदो**' और यहाँ '**सुद्धसंपओगादो**' ऐसा शब्द है। अभी आयेगा।

गाथा - १६५

अण्णाणादो णाणी जदि मण्णदि सुद्धसंपओगादो।
हवदि त्ति दुक्खमोक्खं परसमयरदो हवदि जीवो।।१६५।।

शुभभक्ति से दुखमुक्त हो जाने यदि अज्ञान से।
उस ज्ञानी को भी परसमय ही कहा है जिनदेव ने।।१६५।।

अन्वयार्थ :- [शुद्धसंप्रयोगात्] शुद्धसम्प्रयोग से (शुभ भक्तिभाव से), [दुःखमोक्षः भवति] दुःखमोक्ष होता है। [इति] ऐसा, [यदि] यदि [अज्ञानात्] अज्ञान के कारण; [ज्ञानी] ज्ञानी [मन्यते] [1]माने, तो वह [परसमयरतः जीवः] परसमयरत जीव [भवति] है। ['अर्हंतादि के प्रति भक्ति-अनुरागवाली मन्दशुद्धि से भी क्रमशः मोक्ष होता है' इस प्रकार यदि अज्ञान के कारण (-शुद्धात्मसंवेदन के अभाव के कारण, रागांश के कारण) ज्ञानी को भी (मन्द पुरुषार्थवाला) झुकाव वर्ते, तो तब तक वह भी सूक्ष्म परसमय में रत है।]

टीका :- यह, सूक्ष्म परसमय के स्वरूप का कथन है।

सिद्धि के साधनभूत ऐसे अर्हंतादि भगवन्तों के प्रति भक्तिभाव से [2]अनुरंजित चित्तवृत्ति वह यहाँ 'शुद्धसम्प्रयोग' है। अब, [3]अज्ञानलव के आवेश से यदि ज्ञानवान भी 'उस शुद्धसम्प्रयोग से मोक्ष होता है' ऐसे अभिप्राय द्वारा खेद प्राप्त करता हुआ, उसमें (शुद्धसम्प्रयोग में) प्रवर्ते, तो तब तक वह भी [4]रागलव के सद्भाव के कारण [5]'परसमयरत' कहलाता है। तो फिर निरंकुश रागरूप क्लेश से कलंकित ऐसी अन्तरंग वृत्तिवाला इतर जन क्या परसयमरत नहीं कहलाएगा? (अवश्य कहलाएगा ही।)[6] ॥१६५॥

---

१. मानना=झुकाव करना; आशय रखना; आशा रखना; इच्छा करना; अभिप्राय करना।
२. अनुरंजित=अनुरक्त; रागवाली; सराग।
३. अज्ञानलव=किंचित् अज्ञान; अल्प अज्ञान। ४. रागलव=किंचित् राग; अल्प राग।
५. परसमयरत=परसमय में रत; परसमयस्थित; परसमय की ओर झुकाववाला; परसमय में आसक्त।
६. इस गाथा की श्री जयसेनाचार्यदेवकृत टीका में इस प्रकार विवरण हैंः—कोई पुरुष

गाथा-१६५ पर प्रवचन

१६५।

अण्णाणादो णाणी जदि मण्णदि सुद्धसंपओगादो।
हवदि त्ति दुक्खमोक्खं परसमयरदो हवदि जीवो।।१६५।।

अमृतचन्द्राचार्य ने तो अस्थिरता का दोष लिया है और जयसेनाचार्य ने दोनों लिये हैं। **टीका :- यह, सूक्ष्म परसमय के स्वरूप का कथन है।** १६५ की टीका। यहाँ लेना है कि जब तक सम्यग्दर्शन-ज्ञान होने पर भी चारित्र की पूर्ण शुद्धि न हो, तब तक वह साक्षात् मोक्ष का कारण नहीं होता। तो उस चारित्र में जितनी परसमय प्रवृत्ति है... वह शुभ रत्नत्रय भी परसमयप्रवृत्ति हुई। स्वपरप्रत्यय राग हुआ। उसे यहाँ '**सुद्धसंपओगादो**' कहा गया है। देव-गुरु-शास्त्र की अपेक्षा से। नौ तत्त्व की श्रद्धा आदि आगे लेंगे। **सूक्ष्म परसमय के स्वरूप का कथन है।** क्या कहते हैं? शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र अन्दर होने पर भी सूक्ष्म शुभराग, शुभराग को सूक्ष्म परसमय कहा गया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। सम्यग्दृष्टि। यहाँ सूक्ष्म लिया है। और अमृतचन्द्राचार्य में यह लिया ही नहीं। वह अज्ञान का अर्थ अल्प ज्ञान और कम ज्ञान लिया है। जयसेनाचार्य की टीका में सूक्ष्म समय का अर्थ राग, स्थूल का अर्थ मिथ्यात्व (लिया है)। स्थूल परसमय, ऐसे दोनों लिये हैं। यहाँ अपने अमृतचन्द्राचार्य का (लेते हैं)। बाद में नीचे लेंगे।

निर्विकार-शुद्धात्मभावनास्वरूप परमोपेक्षासंयम में स्थित रहना चाहता है, परन्तु उसमें स्थित रहने को अशक्त वर्तता हुआ, कामक्रोधादि अशुभ परिणाम के वंचनार्थ अथवा संसारस्थिति के छेदनार्थ जब पंच परमेष्ठी के प्रति गुणस्तवनादि भक्ति करता है, तब वह सूक्ष्म परसमयरूप से परिणत वर्तता हुआ सराग सम्यग्दृष्टि है; और यदि वह पुरुष शुद्धात्मभावना में समर्थ होने पर भी, उसे (शुद्धात्मभावना को) छोड़कर 'शुभोपयोग से ही मोक्ष होता है' ऐसा एकान्त माने, तो वह स्थूल परसमयरूप परिणाम द्वारा अज्ञानी मिथ्यादृष्टि होता है।

सूक्ष्म परसमय के स्वरूप का कथन है। भगवान आत्मा अपने शुद्ध श्रद्धा और चारित्र, ज्ञान स्वभाव के आश्रय से हुए होने पर भी, जितना व्यवहार का विकल्प रहता है, वह विकल्प सूक्ष्म परसमय है। परसमय अर्थात् विभावपरिणति है। वह विभावपरिणति है। स्वसमय स्वभावपरिणति है। परसमय है, उतनी विभावपरिणति है। मिथ्यादृष्टि, ऐसा नहीं यहाँ, हों! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। इतना जरा परसमय में राग में जुड़ान है, उतना भी परालम्बी भाव परसमय में कहा गया है। परालम्बी भाव कहने में आया है। उतना भी उसे बन्ध का ही कारण है। है सम्यग्दृष्टि, है मुनि छठवें गुणस्थान में। छठवें गुणस्थान में तीन कषाय का अभाव होने पर भी जितनी पंच महाव्रत के विकल्प आदि परसमय की प्रवृत्ति है, उतना उसे बन्ध का कारण है। यह बतलाना है। समझ में आया?

देखो! '**सुद्धसंपओगादो**' लिया न, इसकी व्याख्या करते हैं। **सिद्धि के साधनभूत....** देखो भाषा! मुक्ति के निमित्तभूत। मुक्ति के उपादानभूत तो अपना शुद्ध आत्मा, परन्तु निमित्तभूत अरहन्तादि सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ देव, सिद्ध, पंच परमेष्ठी, वे सिद्धि के साधनभूत निमित्तभूत है। क्यों? कि जिन्हें सम्यग्दर्शन होता है, उन्हें तो ऐसे सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का निमित्त है। दूसरे कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र उसकी श्रद्धा में नहीं आते। जब तक कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की श्रद्धा का राग है, तब तक तो मिथ्यादृष्टि है। सम्यग्दृष्टि को, धर्मात्मा को पंच परमेष्ठी ही मुक्ति में निमित्तसाधन गिनने में आये हैं। समझ में आया?

ऐसे **सिद्धि के साधनभूत....** ऐसे। सिद्धि अर्थात् मुक्ति के निमित्तभूत साधन। व्यवहारसाधन, हों! व्यवहार निमित्त है न। **ऐसे अर्हंतादि के भगवन्तों के प्रति...** ओहो! पंच परमेष्ठी, परमेश्वर के **प्रति भक्तिभाव से...** भक्तिभाव से **अनुरंजित चित्तवृत्ति...** अनुरंजित अर्थात् अनुरक्त, रागवाली, सराग प्रवृत्ति—वृत्ति, **वह यहाँ 'शुद्धसम्प्रयोग' है।** यहाँ शुद्धसंप्रयोग है अर्थात् शुभउपयोग है। समझ में आया? देव-गुरु शुद्ध है न, उनका लक्ष्य संप्रयोग—शुद्ध (देव-गुरु) की ओर का योग—जुड़ान, वह शुभराग है।

यहाँ शुभराग की बात चलती है। (प्रवचनसार की) ११वीं गाथा में जो आया था वह, '**सुद्धसंपओगजुदो**' शुद्ध उपयोग (था)। '**धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपओगजुदो णिव्वाण लहई।**' '**धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि शुभउपयोगजुदो स्वर्ग लहई।**' ११वीं गाथा ऐसा कहा। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, आचार्यों ने संन्तों ने, दिगम्बर मुनियों ने बात इतनी स्पष्ट कर दी है कि कहीं गड़बड़ी रही नहीं। महान सन्त कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पूज्यपादस्वामी, समन्तभद्राचार्य आदि अनेक आचार्यों, सन्तों ने, धर्म का राजमार्ग जैसा है, वैसा खोलकर कह दिया है, उसमें कुछ कमी नहीं है। देखो! भगवान की भक्ति का भाव, भगवान आचार्य कहते हैं—वह भी शुभभाव है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, शुद्ध तो भगवान कहा न। अरहन्तादि भगवान शुद्ध है न। उस शुद्ध की ओर का जुड़ान, वह शुभराग है। ऐसा है न? '**सुद्धसंपओगादो**' ऐसा शब्द है न। शुद्ध की ओर का प्रयोग, लक्ष्य। वह शुभ हुआ। जोड़ना। शुद्ध तो वह है। उसमें जुड़ान। वह तो शुद्धसंप्रयोग है न। शुद्धसंप्रयोग है। जो सच्चे देव-गुरु हैं, उनकी ओर भक्तिभाव का—राग का जुड़ान हो गया। उसका नाम '**सुद्धसंपओगादो**' कहने में आता है। '**सुद्धसंपओगजुदो**' नहीं, '**सुद्धसंपओगादो**' प्रयोगवाला। समझ में आया? लो, वे कहते हैं कि नहीं, अरिहन्त की भक्ति से तो निर्जरा है। परद्रव्य के अवलम्बन से भी निर्जरा है। देखो, बहुत चला है। धवल में ऐसा पाठ है। अरे! भगवान! सुन तो सही, भाई! परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य रहे तो स्वद्रव्य का उतना आश्रय तो रहा नहीं और स्वद्रव्य के आश्रय बिना, संवर-निर्जरा कभी उत्पन्न नहीं होती। परद्रव्य की ओर झुकाव है, उतना विकल्प है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार की ओर का झुकाव, वह पापभाव है। सुदेव, सुगुरु की ओर का झुकाव, वह शुभराग पुण्यभाव है। परन्तु परद्रव्य की ओर का झुकाव, वह शुद्धभाव नहीं होता। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि है। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को मानता है कि यह

मेरा कल्याण करेंगे, वह तो गृहीत मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा, निर्ग्रन्थ सन्त मुनि चारित्र की प्रधानतावाले मुनि और भगवान ने कहे हुए अनेकान्त, स्व से है और पर से नहीं, ऐसे अनेकान्त शास्त्र की भक्ति, शुभभाव है। इसके अतिरिक्त कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र की भक्ति मिथ्यादृष्टि का अशुभराग है। यह मिथ्यादृष्टिपना है, राग भले कोई मन्द हो। परन्तु मिथ्यादृष्टिपना है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध उपयोग में नहीं रहता। परिणति तो है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उपयोग नहीं। शुद्ध परिणति तो है। तीन कषाय के अभाव की शुद्ध परिणति है। पंचम गुणस्थान में दो कषाय के अभाव की शुद्ध परिणति है। परन्तु शुद्ध उपयोग में नहीं तो ऐसा शुभराग आ जाता है। समझ में आया? शुद्ध परिणति भिन्न है, फिर शुद्ध उपयोग को भी परिणति कहते हैं। परन्तु अकेली परिणति है, उसे शुद्ध उपयोग नहीं कहते।

मुमुक्षु : परिणति तो हमेशा होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हमेशा होती है। चौथे गुणस्थान में जितने मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का नाश हुआ, उतनी शुद्धपरिणति कायम (होती ही है)। निद्रा हो, भोग हो, युद्ध हो उतनी शुद्धपरिणति हमेशा रहती है। और पंचम गुणस्थान में जितनी शुद्धपरिणति (और) दो कषाय का अभाव है वह... भोग हो, व्यापार-धन्धा बड़ा सागर-समुद्र में जहाज का करता हो और निद्रा हो तो भी शुद्धपरिणति कायम रहती है। और छठवें गुणस्थानवाले (मुनि) आहार करते हों, जब थोड़ी निद्रा आ जाती हो, तब भी शुद्धपरिणति तो कायम रहती है।

मुमुक्षु : वही संवर, निर्जरा का कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वही संवर, निर्जरा का कारण है। समझ में आया? ओहोहो! भाई! अभी तो इसने मार्ग अन्तर से निरालम्बी बात क्या है, स्वावलम्बन क्या है, इसका विवेक करना मुश्किल पड़ता है। तो उसके अन्दर घुसना, चिदानन्दमूर्ति है, उसके

अनुभव की दृष्टि तो महान प्रयत्न से प्राप्त होती है। ऐसे साधारण प्रयत्न से वह प्राप्त नहीं होती।

तो कहते हैं, जो सिद्धि के... भाषा कैसी ली है आचार्य महाराज ने! ओहोहो! **'सिद्धिसाधनीभूतेषु'**। सिद्धि का निमित्त है, ऐसे पंच परमेष्ठी महा भगवन्तों के **प्रति भक्तिभाव से अनुरंजित...** देखो! चित्तवृत्ति। उसमें यह आया न। कषाय अनुरंजित लेश्या। गोम्मटसार में आती है लेश्या की व्याख्या। यहाँ अनुरंजित चित्तवृत्ति कहा है। समझ में आया? **भक्तिभाव से अनुरंजित...** अनुरक्त, रागवाली, सराग चित्तवृत्ति है। देखो! वह चित्तवृत्ति है, **वह यहाँ 'शुद्धसम्प्रयोग' है।** इसका नाम शुद्धसंप्रयोग कहने में आया है। इसका नाम शुभराग कहने में आया है।

अब, अज्ञानलव के आवेश से... अज्ञान शब्द से यहाँ मिथ्यात्व नहीं लेना। जानपना कम है, अल्प ज्ञान है। **अज्ञानलव के आवेश से यदि ज्ञानवान भी...** सम्यग्ज्ञानी भी इस शुद्धसम्प्रयोग से मोक्ष होता है, ऐसे अभिप्राय द्वारा **खेद प्राप्त करता हुआ,...** मान्यता में नहीं, हों! खेद। राग में रुकता है, उसमें प्रवर्तता है। **तब तक वह भी रागलव के सद्भाव के कारण 'परसमयरत' कहलाता है।** जब तक मुनि भी छठवें गुणस्थान में और पाँचवाँ गुणस्थानवाला (श्रावक) शुद्धसंप्रयोग में टिकता है कि मोक्ष होता है... मोक्ष अभिप्राय में नहीं, हों! अस्थिरता से ऐसा होता है। ऐसा जब तक रहता है तो उसके द्वारा खेद प्राप्त करता हुआ। छठवें गुणस्थान और पाँचवें गुणस्थानवाला भी उसमें प्रवर्ते, तब तक वह भी रागलव (अर्थात्) किंचित् राग, अल्प राग। लव है न, लव (अर्थात्) थोड़ा। **सद्भाव के कारण 'परसमयरत' कहलाता है।** परसमय में रत अर्थात् परिणति। एकाकार लीन, ऐसा यहाँ नहीं लेना। परसमय की प्रवृत्ति। परसमय में एकाकार हो गया है, ऐसा नहीं। ज्ञाता-दृष्टा होने पर भी, पाँचवें, छठवें गुणस्थान में ज्ञाता-दृष्टा की भूमिका में रहता होने पर भी जितना राग में एकाकार हुआ अस्थिरता के कारण से, अस्थिरता का दोष है, हों! वह चारित्रदोष है। मिथ्यात्व का दोष नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इतनी अस्थिरता होती है। पर्याय में इतनी अस्थिरता है।

परसमयस्थित, उतना राग में परसमयस्थित हुआ न! परसमय की ओर झुकाववाला। रत की व्याख्या इतनी। पर की ओर इतना झुकाव हुआ न। परसमय में आसक्त। इतना विकल्प में आसक्त हुआ। रुचि नहीं। दृष्टि उसके ऊपर नहीं। दृष्टि, ज्ञाता-दृष्टा और मैं अखण्ड हूँ, उसके ऊपर दृष्टि है और निर्मल परिणति भी साथ में है। परन्तु साथ में इतना, देव-गुरु-शास्त्र आदि, पंच परमेष्ठी के प्रति भक्ति का विकल्प गया तो उतना परसमय में झुकाव हुआ तो उसे परसमयरूप आसक्ति कहा जाता है। क्यों, अमुलखचन्दजी! समझ में आया? इनकार नहीं करते। वहाँ बहुत चलेगा। तुम्हारा कौन सा गाँव? अशोकनगर। आहाहा! विवाद।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : खेद है। राग है न! इतनी आकुलता है, आकुलता है। इतनी आकुलता है न, बन्ध का कारण है, वह तो आकुलता है। मोक्ष का कारण, वह अनाकुलता है। राग मन्द आकुलता शुभ; अशुभराग तीव्र आकुलता। आकुलता तो दोनों आकुलता है, दुःख है। शुभराग भी दुःख है।

मुमुक्षु : अज्ञानलव....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अज्ञानलव अर्थात् अल्प ज्ञान। पहले कहा न। अल्प ज्ञान। ख्याल नहीं, ऐसे ज्ञान अटका नहीं विशेष में, थोड़े में अटक गया तो उसे ज्ञान अल्प है तो राग आता है, ऐसा।

मुमुक्षु : अल्प ज्ञान....

पूज्य गुरुदेवश्री : अल्प ज्ञान अर्थात् ज्ञान की कमी। विपरीत ज्ञान, ऐसा नहीं। ज्ञान की कमी वहाँ लेना। समझ में आया?

तो फिर निरंकुश रागरूप क्लेश से कलंकित ऐसी अन्तरंग वृत्तिवाला इतर जन क्या परसयमरत नहीं कहलाएगा? जब इतना शुभराग भी परसमय है, निरंकुश राग, अशुभराग, पापराग, विषयराग, भोगराग, इज्जतराग, कीर्तिराग, अपने बड़प्पन का राग, अपनी महत्ता का राग—वह तो निरंकुश राग है। समझ में आया? क्लेश से कलंकित। क्लेश, अशुभराग क्लेश से कलंकित है। **ऐसी अन्तरंग वृत्तिवाला....** अन्तरंग परिणतिवाला।

यहाँ अन्तरंग परिणति कहनी है। **ईतर जन...** मुनि जैसे भी शुद्धपरिणति होने पर भी शुभराग में अनुरंजित हुए तो परसमय कहने में आया, तो निरंकुश राग (अर्थात्) अकेला धन्धा, राग, भोग, विषय, इज्जत-कीर्ति का राग निरंकुश राग है, पापराग है। ऐसे क्लेश से कलंकित **अन्तरंग वृत्तिवाला इतर जन क्या परसयमरत नहीं कहलाएगा? (अवश्य कहलाएगा ही।)** लो। समझ में आया? शुभ, साथ में अशुभ को तीव्र क्लेश कहकर (ऐसा कहा कि) वह तो परसमय है ही।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। ऐसे परिणाम लेना अस्थिरता का। श्रद्धा नहीं लेना। यहाँ श्रद्धा की बात नहीं है। यह जयसेनाचार्य नीचे लेंगे। अमृतचन्द्राचार्य ने तो इतना (कहते हैं), इतने लक्ष्य में वहाँ रुक जाता है। इतना अभिप्राय अर्थात् वहाँ अभिप्राय अर्थात् श्रद्धा आदि नहीं परन्तु उस प्रकार के शुभपरिणाम हुए न, उस जाति के शुभ हैं, इतना परसमय है।

मुमुक्षु : ....अर्थात् परिणाम?

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणाम, अस्थिरता के परिणाम। समझ में आया?

अब नीचे कहते हैं। पाँच, नीचे नोट है। 'इस गाथा की जयसेनाचार्यकृत टीका में इस प्रकार विवरण है:—कोई पुरुष निर्विकार-शुद्धात्मभावनास्वरूप परमोपेक्षासंयम में स्थित रहना चाहता है।' निर्विकार शुद्धात्मभावनास्वरूप परम उपेक्षासंयम। यह विकल्प है न, यह अपदत्तसंयम हो गया। यह परम उपेक्षासंयम। 'स्थित रहना चाहता है परन्तु उसमें स्थित रहने को असक्त वर्तता हुआ...' स्वरूप में लीन होना चाहता है। भाव, चाहता है, इसका अर्थ भावना। 'परन्तु उसमें स्थिरत रहने को अशक्त वर्तता हुआ...' अपने कारण से, हों! अपनी निर्बलता से शुद्ध स्वभाव में निर्विकार परमोपेक्षासंयम में स्थित रहने की अशक्ति है।

'कामक्रोधादि अशुभ परिणाम के वंचनार्थ...' देखो भाषा। अशुभभाव के वंचनार्थ। अशुभभाव से बचने के लिये। वंचना—यह ठग न जाये, उससे बचने के लिये। यह तो कथनपद्धति की व्यवहारशैली है। समझ में आया? ऐसा विकल्प आता है या नहीं कि

अशुभ न हो। ऐसा। बाकी तो उस काल में शुभ आनेवाला है, तब अशुभ वंचनार्थ उस शुभभाव को कहा गया है। क्रमबद्ध में तो ऐसा भाव आनेवाला ही है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुभ नहीं आता। परन्तु उसके विकल्प में जरा ऐसा आता है न कि यह अशुभ ठीक नहीं, इतना। आया है, वह आ गया है, परन्तु उस भूमिका के योग्य वह ठीक नहीं तो अशुभ से बचने के लिये। एक बात। 'अथवा संसारस्थिति के छेदनार्थ...' देखो! संसारस्थिति (छेदनार्थ), इसका अर्थ क्या? कि शुभराग में पुण्य और पाप की स्थिति घट जाती है। समझ में आया? क्या (कहा)? संसारस्थिति जो लम्बी है न, वह संसार है। तो शुभभाव में पुण्य और पाप की स्थिति घटती है, इसका नाम संसारस्थिति के छेदनार्थ कहा है। स्थिति, हों! कर्म की मर्यादा—काल है वह।

मुमुक्षु : संवर नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : संवर नहीं। वह स्थिति घटती है। शुभभाव में भी इतनी ताकत तो है कि जो पुण्य और पाप की स्थिति लम्बी हो, वह घट जाती है। बहुत घट जाती है। पुण्य की स्थिति है, परन्तु यह पाप की स्थिति घटती है। पुण्य का रस (अनुभाग) बढ़ जाता है। पुण्य का रस (अनुभाग) बढ़ जाता है। यहाँ पाप की स्थिति घटती है। पुण्य की स्थिति भी थोड़ी बढ़ती है। परन्तु यहाँ पाप की स्थिति घटी न, इस अपेक्षा से संसारस्थिति घटी, ऐसा कहा गया है।

मुमुक्षु : पाप का संवर....

पूज्य गुरुदेवश्री : पाप का संवर व्यवहार से है, वह यथार्थ में नहीं। यहाँ तो सम्यग्दृष्टि की बात है, हों! तो पाप का संवर है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। द्रव्यसंग्रह में आया है। आता है न द्रव्यसंग्रह में? अशुभभाव निवृत्ति, शुभभाव प्रवृत्ति। परन्तु यह सम्यग्दृष्टि की बात है। अकेले अज्ञानी को शुभ में प्रवृत्ति और अशुभ से निवृत्ति है ही नहीं। उसे तो अकेला मिथ्यात्व और आस्रव है।

यहाँ संसार लम्बी स्थिति पाप की है, उतनी घटती है, उतना लेना, हों! पुण्य की नहीं। 'जब पंच परमेष्ठी के प्रति गुणस्तवनादि रूप भक्ति करता है...' देखो! गुणस्तवन।

कोई कहता है न, भगवान का स्मरण किया, उसमें राग क्या आया? समझ में आया? ऐसा रेकार्डिंग छप गया है कि भगवान के गुण स्मरण करते हैं, गुण स्मरण करे, उसमें राग क्या आया? वह अपने गुण-गुणी का भेद करता है तो राग आया तो भगवान के गुण स्मरण में राग आये बिना नहीं रहता। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो गुण और स्तवन आदि में सब लेना। सिद्ध का, अरिहन्त आदि का स्मरण करता है। पंच परमेष्ठी लिये न! पाँचों लिये। साधु भी लिये हैं।

पाँचों ही परमेष्ठी भगवन्त है। ओहोहो! भावलिंगी साधु, भावलिंगी उपाध्याय, भावलिंगी आचार्य। पहले दो तो केवली हैं। गुणस्तवन आदि, स्मरण आदि, भक्ति आदि। समझ में आया? भक्ति करते हैं, उनके लेख करता हो बहुमान का, वह भी भक्ति का भाव है। आता है न? आचार्य कहते हैं, ... मार्ग की प्रभावना के लिये मैं यह शास्त्र रचता हूँ। यह शुभराग है। शास्त्र लिखा, वह मार्ग की प्रभावना के लिये यह किया है। वह भी शुभराग है। मेरा मन वहाँ खटक-खटक होता था कि टीका हो, टीका हो, टीका हो। ऐसा मन वहाँ लगा रहता था तो यह टीका हो गयी। पंचास्तिकाय में ऐसा लिखा है, मेरा मन वहाँ ही लगता था। अमृतचन्द्राचार्य लिखते हैं। यह उनकी टीका नहीं, उनक स्पष्टीकरण नहीं। मन वहाँ बारम्बार जाता था तो विकल्प आया। वह पुण्यबन्ध का कारण शुभ उपयोग है, इतना परसमय है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वहाँ का वहाँ लगता है। बारम्बार विकल्प आया करता था। नहीं उसमें? इसमें है या नहीं? टीका में इसमें है या नहीं? इसमें-इसमें। देखो! कहाँ है? **परमागम की ओर के अनुराग के वेग से जिसका मन अति चलित होता था...** १७३ गाथा की टीका में बीच में है। लाईन की है। १७३ है या नहीं? उसमें छठी लाईन लेना। यह हिन्दी है न हिन्दी, तो २६७ पृष्ठ। **(—मार्ग की प्रभावना के लिये ही) परमागम की ओर के अनुराग के वेग से जिसका मन अति चलित होता था...** देखो! ऐसी टीका हो, टीका हो। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, हों! समझ में आया? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का ऐसा पाठ है तो उसका स्पष्टीकरण हो, ऐसा मन में बारम्बार विकल्प आया करता था।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लिखेंगे... बहुत जोर दिया जाए ऐसा नहीं अभी। कहो, समझ में आया? चार का इन्होंने बहुत किया है, अब पाँचवाँ धीरे-धीरे होगा।

परमागम की ओर के अनुराग के वेग से जिसका मन अति चलित होता था, ऐसे मैंने... देखो! **ऐसे मैंने यह 'पंचास्तिकायसंग्रह' नामक सूत्र कहा...** समझे न? अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं और कुन्दकुन्दाचार्य का हृदय भी अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि उनके मन भी बारम्बार ऐसा होता था कि पंचास्तिकाय बनो, पंचास्तिकाय बनो—ऐसा विकल्प आया करता था। पंचास्तिकाय शब्दों में शब्द के कारण से बन गया। हमारे कारण से नहीं। यह बाद में लिया है। बाद में लेंगे, देखो! यह अन्दर कहा, अब बाद में लिया, देखो पीछे। **अपनी शक्ति से जिन्होंने वस्तु का तत्त्व (—यथार्थ स्वरूप) भलीभाँति कहा है...** पीछे है। २६८ पृष्ठ पर श्लोक है। **श्लोकार्थः—अपनी शक्ति से जिन्होंने वस्तु का तत्त्व (—यथार्थ स्वरूप) भलीभाँति कहा है...** शब्दों ने कहा है, मैंने नहीं। **ऐसे शब्दों से...** है लक्ष्मीचन्दजी? **यह समय की व्याख्या...** देखो! यह समय। **(—अर्थसमय का व्याख्यान अथवा पंचास्तिकायसंग्रह की टीका) की है। स्वरूपगुप्त (—अमूर्तिक ज्ञानमात्र स्वरूप में गुप्त) अमृतचन्द्रसूरि का (उसमें) किंचित् भी कर्तव्य नहीं है।** मेरा तो उसमें किंचित् भी कर्तव्य नहीं है। यह शब्दों में स्वपर वार्ता कहने की सामर्थ्य है, उससे बन गयी है। यह टीका मुझसे बनी नहीं है। बनी है और (तो भी) बनी नहीं कहते हैं?

मुमुक्षु : ....परन्तु पुद्‌गल से बनी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुद्‌गल से बनी है, मुझसे बनी ही नहीं। भाषा अपनी पर्याय से होती है। आत्मा को विकल्प आया, इसलिए भाषा है? बिल्कुल झूठ है।

मुमुक्षु : निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध का अर्थ क्या?

मुमुक्षु : उसके योग से....

पूज्य गुरुदेवश्री : योग से बोलने में आता है। हुआ है, ऐसा नहीं। हुआ हो तो निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध नहीं रहा, कर्ताकर्म सम्बन्ध हो गया।

मुमुक्षु : महाराज! जैसे आपकी....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बोलने में ऐसा आता है। यह तो बोलने में आता है। उसकी योग्यता है, ऐसा भाषा में निमित्त पड़ता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही कार्य उसे (उपादान के) कारण से होता है। तब निमित्त कहा जाता है। सोनगढ़ में आये तो यह पर्याय वहाँ प्रगट होती है, ऐसा नहीं है। वही पर्याय उस समय में प्रगट होने की योग्यता है तो वाणी को निमित्त कहा जाता है। निमित्त तब कहा जाता है। उससे हुई हो तो निमित्त कहाँ रहा? वह तो कर्ता हो गया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह कार्य होता है, तब ही निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

१६५। अहो! अपने चलता है न यह फुटनोट। 'तब वह सूक्ष्म परसमयरूप परिणत वर्तता हुआ सराग सम्यग्दृष्टि है।' देखो! सराग सम्यग्दृष्टि का अर्थ, सम्यग्दृष्टि तो वीतरागी ही है, परन्तु राग के उपचार से लक्ष्य करके सराग सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। यह जयसेनाचार्य ने कहा है।... सराग सम्यग्दृष्टि? सम्यग्दृष्टि के दो भाग करते हो तुम। एकदम स्वसमय की अपेक्षा से कथन है न! स्वसमय की अपेक्षा से कथन है तो उसमें ऐसा ही कथन आता है। सराग सम्यग्दृष्टि अर्थात् मिथ्यादृष्टि नहीं। निश्चयसम्यग्दृष्टि है, परन्तु वह चारित्रदोष का राग आया, इतनी अपेक्षा से उसे उपचार करके सम्यग्दृष्टि को सराग कहा है।

'और यदि वह पुरुष शुद्धात्मभावना में समर्थ होने पर भी उसे (—शुद्धात्मा को) छोड़कर शुभोपयोग से ही मोक्ष होता है।' यहाँ लेना 'ऐसा एकान्त माने...' कि शुभ उपयोग से होगा, विकल्प करते-करते होगा ही, क्या नहीं होगा। हमारे कहाँ... है।

वह राग से होता है, शुभ है न, हमारे कहाँ दूसरा कोई स्वार्थ है? ऐसा माने 'तो वह स्थूल परसमयरूप परिणाम द्वारा अज्ञानी मिथ्यादृष्टि होता है।' समझ में आया? सूक्ष्म में अस्थिरता का दोष है, स्थूल में मिथ्यादृष्टि का दोष है। उससे यदि मोक्ष माने तो अज्ञानी मिथ्यादृष्टि होता है। जयसेनाचार्य ने दो लिये हैं, अमृतचन्द्राचार्य ने एक ही लिया है। क्योंकि चारित्र की अल्पता बतलानी है न? चारित्र में अल्पता है तो इतना विकल्प जुड़ता है तो सूक्ष्म परसमय हो गया। अस्थिरता का दोष हुआ। उसे छोड़कर जब निर्मल स्वसमय होगा, तब मोक्ष पायेगा। ऐसा अमृतचन्द्राचार्य ने लिया है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

नोंध — गाथा - १६६, १६७ पर प्रवचन उपलब्ध नहीं हैं।

श्रावण कृष्ण ९, सोमवार, दिनांक - ३१-०८-१९६४, गाथा-१६८, १६९ प्रवचन-१५

पंचास्तिकाय। मोक्षमार्ग विस्तार का अधिकार है। अन्त में (१६७ गाथा में) कहा, **अर्हंतादिकविषयक भी रागरेणु (—अर्हंतादि के ओर की भी रागरज) क्रमशः दूर करनेयोग्य है।** इसकी सन्धि १६८ में लेते हैं। देखो! अरिहन्त, शास्त्र आदि का जो राग, वह भी क्रमशः गुणस्थान योग राग घटाने योग्य है। कहो, सेठी! उस राग से धर्म नहीं होता। पंच परमेष्ठी की भक्ति, शास्त्र का बहुमान, प्रतिमा के दर्शन, भक्ति, पूजा, यात्रा इत्यादि। वह राग क्रमशः गुणस्थानानुसार—चौथे गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी का गया तो अप्रत्याख्यान... आदि का शुभराग आया। पाँचवें में उससे कम आया, राग का रस मन्द, उससे छठवें में अधिक मन्द और फिर क्रमशः घटाकर स्वरूप की वीतरागता प्रगट करना। रागलव भी दोषकारक है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है।

(अब) १६८ (गाथा)।

गाथा - १६८

धरिदुं जस्स ण सक्कं चित्तुब्भामं विणा दु अप्पाणं।
रोधो तस्स ण विज्जदि सुहासुहकदस्स कम्मस्स।।१६८।।

चित्त भ्रम से रहित हो निःशंक जो होता नहीं।
हो नहीं सकता उसे संवर अशुभ अर शुभ दुःख का।।१६८।।

अन्वयार्थ :- [यस्य] जो [चित्तोद्भ्रामं विना तु] (राग के सद्भाव के कारण) चित्त के भ्रमण रहित [आत्मानम्] अपने को [धर्तुम् न शक्यम्] नहीं रख सकता, [तस्य] उसे [शुभाशुभकृतस्य कर्मणः] शुभाशुभ कर्म का, [रोधः न विद्यते] निरोध नहीं है।

टीका :- यह, रागलवमूलक दोषपरम्परा का निरूपण है (अर्थात् अल्प राग जिसका मूल है, ऐसी दोषों की संतति का यहाँ कथन है)। यहाँ (इस लोक में) वास्तव में अर्हंतादि के ओर की भक्ति भी रागपरिणति के बिना नहीं होती। रागादिपरिणति होने से, आत्मा [१]बुद्धिप्रसार रहित (-चित्त के भ्रमण से रहित) अपने को किसी प्रकार नहीं रख सकता; और बुद्धिप्रसार होने पर (-चित्त का भ्रमण होने पर), शुभ तथा अशुभकर्म का निरोध नहीं होता। इसलिए इस अनर्थसंतति का मूल रागरूप क्लेश का विलास ही है।

भावार्थ :- अर्हंतादि की भक्ति भी रागरहित नहीं होती। राग से चित्त का भ्रमण होता है; चित्त के भ्रमण से कर्मबन्ध होता है। इसलिए इन अनर्थों की परम्परा का मूल कारण राग ही है[२] ॥१६८॥

---

१. बुद्धिप्रसार=विकल्पों का विस्तार; चित्त का भ्रमण; मन का भटकना; मन की चंचलता।

२. इस गाथा की श्री जयसेनाचार्यदेव विरचित टीका में निम्नानुसार विवरण दिया गया है:—मात्र नित्यानन्द जिसका स्वभाव है ऐसे निज आत्मा को जो जीव नहीं भाता, उस जीव को माया-मिथ्या-निदानशल्यत्रयादिक समस्तविभावरूप बुद्धिप्रसार रोका नहीं जा सकता और वह न रुकने से (अर्थात् बुद्धिप्रसार का निरोध नहीं होने से) शुभाशुभकर्म का संवर नहीं होता; इसलिए ऐसा सिद्ध हुआ कि समस्त अनर्थपरम्पराओं का रागादिविकल्प ही मूल है।

गाथा-१६८ पर प्रवचन

धरिदुं जस्स ण सक्कं चित्तुब्भामं विणा दु अप्पाणं।
रोधो तस्स ण विज्जदि सुहासुहकदस्स कम्मस्स।।१६८।।

टीका। देखो, अन्तिम गाथायें हैं। थोड़ा राग भी पंच परमेष्ठी की भक्ति का राग, पूजा का, स्मरण का, वह **रागलवमूलक दोषपरम्परा का निरूपण है...** सेठी! पहले से सब उल्टा है। पहले आये थे, उससे अभी सब विरुद्ध है। राग से कुछ लाभ होगा, राग से कुछ लाभ—संवर, निर्जरा होगी। व्यवहार राग करते-करते कुछ होगा या नहीं? नहीं। वह तो दोषपरम्परा का निरूपण है। **(अल्प राग जिसका मूल है, ऐसी दोषों की संतति...)** देखो! दोषों की सन्तति का वह राग मूल है। ओहो! ज्ञानी को राग आता है, वह परम्परा मोक्ष का कारण लिखा है और यहाँ फिर ऐसा क्या लिखा? ऐ... देवीलालजी! आगे भी आयेगा। अब बाद की गाथा में आयेगा कि राग परम्परा दूरतर, परन्तु पाठ में दूरतर है। तो उसका परम्परा (अर्थ किया है)। दूरतर अर्थात् आगे जाने पर मोक्ष होगा। अभी नहीं होगा, ऐसा है।

मुमुक्षु : आगे तो होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : आगे इससे नहीं होगा। इससे (राग से) नहीं होता। वह तो इसका अभाव करके होता है।

यहाँ तो सीधी बात की है ज्ञानी को भी। यह ज्ञानी की बात चलती है, हों! छठवें गुणस्थान में, चौथे, पाँचवें में गौणरूप से भी उसकी बात चलती है। थोड़ा भी **राग जिसका मूल है, ऐसी दोषों की परम्परा...** ओहो! एक ओर कहते हैं कि तीर्थंकरप्रकृति परम्परा मुक्ति का कारण है। शास्त्र में आता है। समकित मोहनीय की प्रकृति परम्परा मोक्ष का कारण आता है। व्यवहाररत्नत्रय परम्परा मोक्ष का कारण है अथवा स्वपरप्रत्यय राग, वह परम्परा मोक्ष का करण है। यहाँ कहते हैं कि वह स्वपरप्रत्यय विकल्प जो राग है, वह दोष की परम्परा का कारण है। ओहोहो! समझ में आया? राजमलजी! यह पण्डितों को तैयार होना चाहिए यहाँ। ओहो! पहले यहाँ स्पष्ट कर दिया, फिर कहे, वह

तो व्यवहार का अभाव करके निश्चय पूर्ण शुद्धि होगी, उसकी बात यहाँ की है।

यहाँ तो कहते हैं कि इतना शुभराग... आयी न सब बात। अरिहन्त के प्रति, मुनियों के प्रति, आया या नहीं? १६० में। वह सब (राग) परिहार करनेयोग्य है। अन्वयार्थ में है। टीका में नहीं लिया, अन्वयार्थ में है न? **अर्हंत, सिद्ध, चैत्य,...** अर्थात् भगवान की प्रतिमा। १६६ का अन्वयार्थ। १६६ गाथा के शब्दों का अन्वयार्थ। १६६ समझते हो न? मित्रसेनजी! १६६ का अन्वयार्थ। टीका नहीं, अन्वयार्थ / शब्दार्थ। **अर्हंत, सिद्ध, चैत्य (—अर्हंतादि की-पंच परमेष्ठी की प्रतिमा), प्रवचन (शास्त्र),...** यह भी विवाद चलता है या नहीं? पंच परमेष्ठी की प्रतिमा होती है या नहीं? शास्त्र में तो पंच परमेष्ठी की प्रतिमा होती है। भावलिंगी सन्त मुनि हों, उनकी भी होती है। भावलिंगी सन्त। समझ में आया? **प्रवचन (शास्त्र), मुनिगण और ज्ञान के प्रति भक्ति...** इतने बोल लिये। यह सब शुभराग है। इस शुभराग को यहाँ १६८ में कहते हैं कि दोष की परम्परा का मूल है। ओहो! समझ में आया? दोष की परम्परा का मूल है। उसी राग को फिर मोक्ष का परम्परा कारण कहेंगे। सेठी! यह तो कथन की पद्धति है। पहले यह सिद्ध करके फिर परम्परा कारण कहेंगे कि राग का अभाव करके (मोक्ष होगा)। श्रावक को भी कहा न? प्रवचनसार में। उसका शुभराग तो धर्म का कारण है। शुभराग ही धर्म का कारण है, मुक्ति का कारण है, ऐसा प्रवचनसार में लिया है। श्रावक के लिये। मुनि को परम्परा दु:ख का कारण और श्रावक के लिये सुख का कारण? वह तो तीव्र राग घटाने के लिये श्रावक को ऐसा मन्दराग भक्ति का, देव-गुरु-शास्त्र का, षट् कर्म का आता है, इस अपेक्षा से वहाँ व्यवहार से ऐसा कहा कि श्रावक को शुभभाव मुक्ति का कारण है। किसी जगह परम्परा कारण कहा। श्रावक को भी व्यवहाररत्नत्रय आदि शुभराग परम्परा कारण कहा। यहाँ कहा कि दोष का मूल कारण है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो विकल्प उस भूमिका में आता है, परन्तु है तो दोष की परम्परा का मूल है। धीरे-धीरे कहते हैं। आवश्यक का अर्थ व्यवहार से आवश्यक कहने में आता है। अवश्य आता है न, उस भूमिका में पाँचवें, चौथे गुणस्थान आदि में

भगवान के दर्शन, पूजा, सेवा, संयम आये बिना नहीं रहते। भूमिका के योग्य आते ही हैं, होते हैं। व्यवहारनय से करता है, ऐसा भी कहा जाता है। करता है, ऐसा भी व्यवहारनय से कहा जाता है। वास्तव में तो आते हैं। यह आते हैं, उन्हें यहाँ कहते हैं... आहाहा!

मुमुक्षु : दोष है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोष की परम्परा का मूल है, दोष है—ऐसा नहीं। दोष तो वर्तमान सिद्ध किया।

मुमुक्षु : इसका क्या फायदा?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, फिर लाभ होगा या नहीं? अभी तो करता है। यह स्पष्टीकरण आचार्य महाराज करते हैं।

प्रभु! **रागलवमूलक...** थोड़ा भी राग है, वह दोष की परम्परा का मूल है। उसमें आत्मा की शान्ति का मूल है, ऐसा नहीं है। पहले इसका निर्णय करना चाहिए। निर्णय यथार्थ हुए बिना उसे सम्यग्दर्शन का अनुभव नहीं होता। समझ में आया? देखो! **यहाँ (इस लोक में) वास्तव में अर्हंतादि के ओर की भक्ति भी....** अर्हंतादि के और कहा न? अर्हंतादि की अपेक्षा रखकर **भक्ति भी रागपरिणति के बिना नहीं होती।** राग की परिणति ली है, देखो! राग की परिणति है वह, पर्याय है राग। समझ में आया? एक समय में वह राग... कल चला था न? एक समय में तो राग तादात्म्यरूप है। एक समय में राग पर्याय में तद्रूप है। स्वभाव की दृष्टि से राग को संयोगभाव कहा जाता है।

यहाँ तो कहा, ज्ञानी को राग की परिणति है, उसकी पर्याय में है। पर में नहीं, पर से नहीं। राजारामजी! समझ में आया? पण्डितजी! यह प्रश्न उठा था न! तुम्हारे यहाँ बहुत उठता है। यहाँ तो कहा, एक समय में राग तो तादात्म्य है आत्मा के साथ। पर्यायदृष्टि से, हों! स्वभावदृष्टि से—नित्य दृष्टि से वह स्वभाव के साथ तादात्म्य नहीं है, वह संयोगभाव है। निमित्त से उत्पन्न हुआ तो संयोगभाव है। त्रिकाल स्वभाव की दृष्टि से नित्यानन्द की दृष्टि से विकार संयोगभाव है और उसके अस्तित्व में जब स्वीकार करना है तो उसकी पर्याय में ही राग अनित्य तादात्म्यरूप से एक समय में उत्पन्न होता

है। समझ में आया ? ... उसकी पर्याय में ही राग अनित्य तादात्म्यरूप से एक समय में उत्पन्न होता है। समझ में आया ? इतनी अपेक्षा न समझे तो...

एक ओर यहाँ पंचास्तिकाय में आया कि राग स्वयं से स्वयं के कारण से कर्म होकर अपने में उत्पन्न होता है। उस राग को संयोगीभाव कहा तो वह राग कहीं परमाणु नहीं है। राग कोई वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श की चीज़ नहीं है। परन्तु राग स्थूल है, स्वभाव सूक्ष्म शान्त आनन्द है। त्रिकाल आनन्द सूक्ष्म चिदानन्द प्रभु है तो उस राग को स्थूल कहा है। समयसार में (कहा है)। स्थूल शुभराग। अशुभराग भी स्थूल और शुभराग भी स्थूल। हेमराजजी ! पुण्य-पाप अधिकार में। सामायिक ग्रहण करता है, परन्तु इतना राग भी छोड़कर निवृत्त अनुभव न करे तो वह भी मुक्ति का कारण नहीं है। मुक्ति में नहीं जायेगा। तो वहाँ शुभ परिणाम को भी स्थूल (कहा है)। यह यहाँ कहा, यह उसकी रागपरिणति है। आहाहा ! समझ में आया ? ज्ञानी को, (परन्तु) यहाँ छठवें गुणस्थान से मुख्य लिया है। गौणरूप से चौथे, पाँचवें में भी आया है।

तो कहते हैं, मुनि सन्त कुन्दकुन्दाचार्य आदि, भगवान की भक्ति करने निकले थे, यात्रा करने निकले थे। सुना है या नहीं ? गिरनार, जहाँ वाद हुआ था और सरस्वती को बुलवा दिया था। गये थे, दो सम्प्रदाय... आता है, राग आता है। भक्ति का, यात्रा का आता है। परन्तु है वह राग परिणति, विकार परिणति, मलिन परिणति बिना नहीं होता। राग मलिन परिणति बिना भक्ति नहीं होती। आहाहा ! हमारे तो वीतरागभाव है, भगवान के पास हम गये थे। हमारे कोई राग-बाग नहीं, भगवान की भक्ति है। परन्तु वह भगवान की भक्ति, वही राग परिणति है। समझ में आया ? कहो।

मुमुक्षु : मुक्ति प्राप्त करनी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुक्ति प्राप्त करनी है तो क्या राग से मुक्ति प्राप्त होती है ? ऐसा कहते हैं, हों ! तुम कहते हो ऐसा। हम (संवत्) १९९६ में जूनागढ़ गये थे। एक श्वेताम्बर थे। वे कहे कि हमारे कहाँ मुक्ति... नाम क्या कहा ? हमारे कहाँ राग चाहिए, हमारे तो भगवान की भक्ति से वीतरागता ही चाहिए। परन्तु भगवान की भक्ति, वही राग है। चाहिए है क्या ? समझ में आया ? तो दूसरे ने और ऐसा लिखा है कि भगवान की

भक्ति में तो गुणस्मरण है। उसमें कषाय कहाँ आयी? ऐसा लिखा है। धन्नालालजी! ऐसा लिखा (बोला) है टेप रिकार्डिंग में। भगवान की भक्ति में तो गुणस्मरण है, उसें राग कहाँ आया? परन्तु वह राग ही है, कहाँ आया क्या? वह कषाय की लव है। आहाहा! पराश्रित—पर पदार्थ आश्रित है। पराधीन परद्रव्य के आश्रय से (हुआ है)। भले मिथ्यात्व नहीं परन्तु है राग की परिणति दोषरूप है।

यह वीतरागमार्ग है। समझ में आया? वीतरागमार्ग में राग का कण भी बन्ध का कारण है। नहीं तो वीतराग, इतना राग छोड़कर वीतराग किसलिए हुए? राग छोड़कर वीतराग किसलिए हुए? अल्पज्ञ छोड़कर सर्वज्ञ क्यों हुए? भगवान की आज्ञा में अल्पज्ञ और राग छोड़कर सर्वज्ञ और वीतराग होना, ऐसी आज्ञा है। समझ में आया? तो इतना भी राग... देखो! कितना स्पष्ट करते हैं। फिर परम्परा... परम्परा इसके साथ ले लेना। यह अज्ञानी की बात नहीं है।

मुमुक्षु : 'दूरतर' अन्त में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्त में, दूरतर कहेंगे न! यह तो दूरतर का अर्थ किया है अमृतचन्द्राचार्य ने। पाठ में तो दूरतरं है। १७० गाथा। '**दूरतरं णिव्वाणं**'। १७० में है। '**सपयत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोइस्स**' देखो! '**दूरतरं णिव्वाणं**' दूरतर होता है। आगे जाकर मोक्ष जायेगा। राग से नहीं। आगे जाएगा। परन्तु राग का अभाव करके, राग अभी है, मोक्ष अब बाद में जायेगा। राग का अभाव करके जायेगा। समझ में आया? इसका अमृतचन्द्राचार्य ने दूरतरं का अर्थ परम्परा मोक्ष का कारण लिया है। मोक्षहेतु, परन्तु परम्परा से। देखो! **साक्षात् मोक्षहेतुपने का अभाव होने पर भी परम्परा से मोक्षहेतुपने का सद्भाव दर्शाया है।** १७०। यहाँ दर्शाया है कि राग दोष की परम्परा का मूल है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु राग चलता है, तब तक दोष ही चलता है, ऐसा। जहाँ तक राग चलेगा, तब तक दोष ही चलेगा, ऐसा। समझ में आया? राग का अभाव करे तब तो दोष की परम्परा टूट गयी। परन्तु राग भी जब तक चलेगा, तब तक राग की

परम्परा है। चौथे गुणस्थान में राग तीन कषाय का है। पाँचवें में दो कषाय का है, छठवें में एक कषाय का है। राग का दोष की परम्परा ही राग है, ऐसा। वह राग अभाव का कारण नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। राग राग का अभाव करने का कारण नहीं। राग की परम्परा तो राग... राग... राग... राग... राग दोष परम्परा का कारण है, ऐसा सिद्ध करना है। ऐसी वस्तु की स्थिति ऐसी है। कहो, ईश्वरचन्दजी! समझ में आया? बहुत गड़बड़ी करते हैं हों, बाहर में। एकान्त है, स्याद्वाद लो। क्यों डालचन्दजी! अरे... भगवान! प्रभु! स्याद्वाद किसमें लगत है? जिसमें हो उसमें लगता है या न हो उसमें लगता है? राग में बन्ध का कारण है, उसमें मोक्ष का (कारण) कहाँ से (आवे)? यह तो बोलने में आता है। पण्डितजी! देखो यहाँ!

मुमुक्षु : तीर्थंकरगोत्र जो है, वह तो परम्परा....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीर्थंकरगोत्र क्या है? जिस भाव से बँधा, उस भाव का अभाव करेगा, तब तो तीर्थंकरप्रकृति का पाक आयेगा। किससे मोक्ष हुआ? अपने से हुआ। यह चली थी, उस समय, बहुत वर्ष पहले। (संवत्) २००२ के वर्ष। अठारह वर्ष हुए, साढ़े अठारह। मगसिर शुक्ल-११, व्याख्यान हुआ था, तब खलबलाहट हुई थी पण्डितों में। अरे..! ऐसा कैसे कहते हो? २००२ के मगसिर शुक्ल-११। फिर बारस का व्याख्यान हुआ है न? वस्तुविज्ञानसार। वह बारस का व्याख्यान है। ११ का सवेरे का व्याख्यान हुआ। पण्डित बैठे थे। एकान्त है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह बन्ध का कारण है, मोक्ष का कारण बिल्कुल नहीं। वह यह हुआ। उसमें यह राग नहीं आया? जब तक यह राग रहता है, तब तक दोष की परम्परा का कारण है। भाई! यह उसका यह राग नहीं आया? तीर्थंकरभाव का राग उसमें नहीं आया? तीर्थंकरपना जब तक बँधता है, बँधता है या नहीं? आठवें गुणस्थान तक बँधता है। चौथे, पाँचवें में बँधता है तो अभी नरक में भी श्रेणिक राजा को तीर्थंकरगोत्र बँधता है। बँधता है या नहीं? भले संक्लेश परिणाम हो, तो भी बँधता है।

मुमुक्षु : निरन्तर।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, निरन्तर प्रकृति, ध्रुव प्रकृति कायम बँधती है। भले

संक्लेश परिणाम हो, रौद्रध्यान हो परन्तु तीर्थंकरगोत्र जब से शुरु हुआ, (निरन्तर) बँधता है, आठवें गुणस्थान तक। जब श्रेणी माँडेगा तब बन्ध होगा। फिर उसका पूर्ण बन्ध, बन्द होगा। बन्ध, बन्द होगा। बन्ध का बन्द पूरा होगा। बन्ध रुक जायेगा, बन्द हो जायेगा। तब तो केवलज्ञान हो जायेगा। अपनी क्षपकश्रेणी से, अपने स्वरूप मे पुरुषार्थ से। और बन्ध पूरा हुआ, पश्चात् उस प्रकृति का फल तेरहवें में आया। केवलज्ञान होने के बाद प्रकृति का फल आता है। नहीं, वह तीर्थंकर प्रकृति का फल ही तेरहवें में आता है। केवलज्ञान होने के बाद प्रकृति का फल आता है। क्या भोगना है? उससे क्या होता है? आहाहा! लोगों को ऐसा लगता है... आहाहा! जिसे तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह तो राग का आदर नहीं करता। उसकी अचिन्त्य महिमा उसे नहीं है। उतना भी राग आया, बन्ध होगा, स्वर्ग में जाना पड़ेगा। मनुष्यभव होगा, दो भव होंगे। तीर्थंकर हुए बिना केवल(ज्ञान) नहीं पावेगा। तो दो भव होंगे। समझ में आया? तो वे कहते हैं कि मोक्ष होगा। यह कहते हैं कि दो भव होंगे। डालचन्दजी! दो भव बिना नहीं जाये। तीर्थंकरपने का बन्ध पड़ा तो स्वर्ग में जायेगा। पहले नरक का आयुष्य बँध गया हो तो, श्रेणिक राजा की भाँति (नरक में जाता है)। परन्तु वह तो भव करना पड़ा। राग परम्परा दोष का कारण है और जिसे राग नहीं आया, उस भव में, तोड़कर केवलज्ञान पायेगा, मोक्ष में जायेगा। तीर्थंकर हुए बिना मोक्ष में जायेगा। समझ में आया? ऐ... जेठमलजी!

मुमुक्षु : परम्परा दोष का कारण हो तो राग लम्बावे तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह राग लम्बाता ही है, ऐसा यहाँ कहते हैं। तीर्थंकर जैसा राग पड़ा हो, वह राग लम्बाता ही है। देखो! कहाँ तक लम्बाता है? आठवें गुणस्थान तक लम्बाता है, बन्ध होता है। ओहोहो! वीतराग की श्रेणी। चिदानन्द द्रव्य आश्रय वस्तु... ओहोहो! उसकी महिमा है, कोई राग आया, उसकी महिमा नहीं। राग से कोई केवलज्ञान पाये हैं, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : सप्तम गुणस्थान में तो अभेद निर्विकल्पदशा हो जाती है, उसमें राग लम्बाने का कहाँ प्रश्न कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ भी राग है। अबुद्धिपूर्वक है या नहीं? अबुद्धिपूर्वक का आठ कर्म का बन्ध होता है या नहीं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, है न! इतना दोष है। आया किसलिए? आता है किसलिए? वीतरागस्वरूप स्वभाव है आत्मा। यह कहते हैं, देखो!

अर्हंतादि के ओर की भक्ति भी रागपरिणति के बिना नहीं होती। कोई कहता है कि हम भगवान के दर्शन करते हैं, हमारे वीतराग परिणति है। झूठ है। अपने स्वभाव के अवलम्बन से जितनी परिणति हुई है, उतनी परिणति शुद्ध है। चौथे गुणस्थान में मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी का अभाव होकर शुद्ध परिणति हुई, उतनी शुद्ध है। पाँचवें में दो कषाय टालकर शुद्ध परिणति हुई, उतनी शुद्ध है। मुनि को तीन का अभाव करके हुई, उतनी शुद्ध परिणति है और मुनियों को भी साथ में राग आया, उस राग की परिणति बिना भक्ति नहीं होती। यहाँ ऐसा तो सिद्ध करना है। ताराचन्दजी! ओहोहो!

वास्तव में... देखो, शब्द वापस ऐसा लिया है न। '**इह खलु**' यह न? '**इह खल्वर्हदादिभक्तिरपि न रागानुवृत्तिमन्तरेण भवति**' '**खलु**' निश्चय से। इसका अर्थ किया है '**खलु**'। वास्तव में पंच परमेष्ठी परद्रव्य है। तो परद्रव्य के ओर की अपेक्षा से भक्ति भी राग की परिणति—विकार की अवस्था बिना नहीं होती। समझ में आया? ज्ञानी की पर्याय में राग परिणति होती है। जड़ में नहीं, जड़ से नहीं। वह उदयभाव है, जीवतत्त्व है। लो। ओहोहो! वह पाँच तत्त्व कहे न? पण्डितजी! दूसरा अध्याय, तत्त्वार्थसूत्र। उपशम, क्षयोपशम। उदय स्वतत्त्व है। स्वतत्त्व में है तो स्वतत्त्व है। किस अपेक्षा से? उसकी सीमा में राग होता है। उसके असंख्य प्रदेश की सीमा में राग होता है। वह राग कहीं पर में नहीं होता। दोपहर में चलता है, वह अलग बात है। तुम्हारे निश्चय, व्यवहार में। वहाँ वह राग स्वभाव के कारण से (होता नहीं), संयोगभाव है। संयोगीभाव है, स्वभावभाव नहीं। निकाल डालने की वस्तु है। जैसे जड़कर्म संयोग है, ऐसा ही विकार संयोगी है। किस अपेक्षा से? त्रिकाल शुद्ध ज्ञायकभाव की अपेक्षा से विकार को संयोग कहा। निकल जाता है तो पुद्गल जैसे निकल जाता है, यह भी निकल जाता है। समझ पुद्गल ही है, जा। यह अपना स्वभाव नहीं। परन्तु कोई पहले से यह निर्णय किये बिना (माने) कि राग परिणति पुद्गल की है, अपनी नहीं, अपने में नहीं होती, तो उस

संयोगीभाव को स्वभाव से भिन्न नहीं कर सकता। पहले राग की परिणति मुझमें मेरे कारण से परपदार्थ की ओर, देव-गुरु-शास्त्र की ओर लक्ष्य होता है तो होती है। समझ में आया? उसे छोड़कर स्वच्छन्द करना, उसकी यहाँ बात नहीं है। वह भी राग है तो खाओ, पीयो, अशुभराग करो, यह बात यहाँ नहीं है। ले, वह भी राग परिणति है। राग परिणति है, तो खाना-पीना भोग की राग परिणति नहीं? वह पाप परिणति है। समझ में आया? व्यापार-धन्धे आदि की राग परिणति नहीं? राग परिणति बिना व्यापार-धन्धा होता है? राग परिणति अशुभ परिणति बिना भोग होता है? अशुभ राग परिणति बिना खाने में ऐसा (राग होता है)? क्रिया जड़ की है। परन्तु दूधपाक, पूड़ी ऐसे चढ़ावे, तो राग परिणति बिना वह होता है? वह अशुभराग परिणति है। ऐई..! व्यापार करे न, भले जवाहरात का करे, हीरा का करे। तो वह पाप परिणति बिना करता है यह?

मुमुक्षु : कमाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी कमाता नहीं। कमाता हो तो उसमें क्या हुआ? कमाने के बाद धर्मादा में दे। धर्मादा का अर्थ क्या? उस समय कदाचित् राग की मन्दता हो तो लक्ष्मी में से राग मन्द करे तो पुण्य बँध जाये। लक्ष्मी मिली है तो उससे पुण्य होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह कहा। अन्दर निर्बलता है तो हुए बिना रहता नहीं, ऐसा कहते हैं। यह कहा है न वहाँ मोक्षमार्गप्रकाशक में। तुम कहते हो, ऐसा प्रश्न किया है। अशुभ तो आये बिना रहता नहीं, शुभ तो हम करते हैं तो होता है, अपने आप कैसे आवे? इसलिए राग न करे... परन्तु वह राग आता है, आये बिना रहता नहीं। भूमिका क्या वीतराग हो गयी है? अशुभ टालने के लिये ऐसे कथन आते हैं—अशुभ वंचनार्थ। वास्तव में तो उस समय में वैसी ही परिणति आने की योग्यता है, कथन व्यवहार के, अनेक प्रकार की कथनी चलती है। पण्डितजी! अशुभ वंचनार्थ। वह तो अनेक प्रकार से ऐसे विकल्प आते हैं न। ऐसा शुभ हो, अशुभ न हो। ऐसा। बाकी तो शुभपरिणति उस काल में आनेवाली है, वही आती है। वह कोई लाने से आती है?

समझ में आया? परन्तु है। राग परिणति बिना पंच परमेष्ठी की भक्ति, पूजा, दान इत्यादि मुनि स्मरण, शास्त्र प्रेम आदि राग परिणति बिना नहीं होता।

रागादिपरिणति होने से,... यह रागादि की परिणति होने से। प्रेम आया न? प्रेम आया, हर्ष आया इत्यादि। **आत्मा बुद्धिप्रसार रहित (-चित्त के भ्रमण से रहित) अपने को किसी प्रकार नहीं रख सकता;...** देखो! बुद्धिप्रसार (अर्थात्) विकल्पों का विस्तार, चित्त का भ्रमण। छठवें गुणस्थान में भी जितना पंच महाव्रत का विकल्प आया, वह चित्त का भ्रमण है। चित्त राग में भ्रमता है। स्वरूप में नहीं स्थिर होता। आहाहा! बुद्धिप्रसार है न? विकल्पों का फैलाव, चित्त का भ्रमण, मन का भटकना, मन की चचंलता। इतने तो अर्थ किये। अरे! भगवान की भक्ति में और मन की चंचलता कहाँ आयी? तब क्या आत्मा की स्थिरता आयी? समझ में आया? यह अशुभ चंचलता पाप की बहुत है, उसे घटाने के लिये इतनी शुभ चंचलता आती है, परन्तु है बुद्धि का प्रसार, विकल्प का विस्तार। उसमें निर्विकल्पता नहीं है। समझ में आया?

बुद्धिप्रसार रहित (-चित्त के भ्रमण से रहित).... ऐसा कहते हैं कि चित्त भ्रमता नहीं और राग आया, ऐसा होता नहीं। चित्त का संग किये बिना शुभराग होता ही नहीं। स्वभाव के संग से नहीं होता, ऐसा कहते हैं। अन्दर चित्त-मन है, उसके संग से शुभराग की परिणति उठती है, भगवान के ऊपर जाती है। समझ में आया? चित्त का संग छूट जाये और राग हो, ऐसा नहीं होता। असंग भगवान आत्मा के संग में पड़े और राग रहे, ऐसा नहीं होता और चित्त के संग में जाए और वीतराग परिणति हो, ऐसा नहीं होता। चित्त है, उसका संग किया तो शुभराग परिणति भक्ति में होती है। समझ में आया? आहाहा! असंग परमात्मा अपना निज स्वरूप जितनी चित्त के संग में भक्ति आदि होती है, वह सब राग की परिणति है।

मुमुक्षु : भावमन?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मन, भावमन। समझ में आया? द्रव्यमन है, उसके साथ संयोग करता है। भावमन में राग कैसे होता है? कि द्रव्यमन का संग करता है तो (होता है)। द्रव्यमन का संग करे तो। परद्रव्य का लक्ष्य करता है तो भक्ति उत्पन्न होती है, वह चित्त है, वह द्रव्यमन है। विकल्प है, वह भावमन है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ठीक कहा। बुद्धिप्रसार—बुद्धि का विस्तार अर्थात् विकल्प का विस्तार। पण्डितजी ने तो अर्थ किया है। कल भी लिया था भाई! नहीं? जयसेनाचार्य का पंचास्तिकाय का। आता है या नहीं? जयसेनाचार्य में। समझ में आया? बुद्धि आती है। उदय, बुद्धि, शुभ और अशुभ। यह आता है या नहीं? समझ में आया? समयसार में। समयसार में आता है, कर्ताकर्म अधिकार में आता है, जयसेनाचार्यदेव की टीका में चार बोल अधिक हैं। १६ हैं, फिर चार बोल हैं—बुद्धि, उदय, शुभ और अशुभ सब राग है। बुद्धि का अर्थ यहाँ यह है। केवलज्ञान को भी बुद्धि कहते हैं शास्त्र में। यहाँ तो प्रसार है। संकोच नहीं, बुद्धि का प्रसार है, राग का विस्तार है। आहाहा! फैलाव है।

बुद्धिप्रसार रहित (-चित्त के भ्रमण से रहित) अपने को किसी प्रकार नहीं रख सकता;.... किसी प्रकार से रख नहीं सकता। स्वरूप में लीन हो और भगवान की भक्ति का विकल्प उठे, ऐसा है ही नहीं। ओहोहो! यह तो वीतरागमार्ग ऐसा कहे, हों! दूसरे को तो ऐसे शोर बोल जाये। राग चित्त के संग बिना उत्पन्न नहीं होता। परद्रव्य पर लक्ष्य जाता है, भक्ति तो राग है। **और बुद्धिप्रसार होने पर (-चित्त का भ्रमण होने पर),...** देखो! **शुभ तथा अशुभकर्म का निरोध नहीं होता।** देखो! शुभभाव हुआ, उसमें शुभकर्म तो बँधता है, साथ में मोहनीय आदि भी चारित्रमोहनीय और ज्ञानावरणीय भी अशुभ बँधता है। दो से बँधता है। मित्रसेनजी! यह निर्णय करना पड़ेगा। वहाँ गड़बड़ी है लोगों में।

मुमुक्षु : राग के साथ ज्ञान की पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान तो निर्मल है, जितनी अपनी पर्याय में है, उतनी तो शुद्धता है। उसके साथ राग आया। चारित्र की एक पर्याय में दो भाग है, चारित्र की एक पर्याय में दो भाग है। जितना कषाय का अभाव हुआ, उतनी शुद्ध है, जितना राग आया, उतनी अशुद्ध है। एक समय में एक पर्याय के दो भाग।

मुमुक्षु : पण्डित कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डित नहीं, यहाँ भगवान कहते हैं। समझ में आया?

आत्मा के सम्यग्दर्शन—ज्ञानसहित जितना एक, दो, तीन कषाय का अभाव हुआ, उतनी चारित्रपर्याय निर्मल शुद्ध वीतरागी पर्याय है और जितना राग, उतनी विकारी है। एक पर्याय में दो भाग—वीतराग और राग। आहाहा! जैनदर्शन....

मुमुक्षु : डोरी निकाली होगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, डोरी निकाली है। जितना अन्तर्मुख हुआ, उतना निर्मल; जितना बहिर्मुख रहा, उतना राग। वेदान्त आदि को तो यह ऐसा लगता है.... यह वेदान्त के साथ... अरे... भाई! तुझे वेदान्त की... एक पर्याय आयी, ऐसी तो अनन्त पर्याय अनन्त गुण की है। उसमें कितने ही गुण में दो भाग। जितना स्वद्रव्य का आश्रय, उतना आनन्द; जितना परद्रव्य—आश्रय, उतना दुःख। यह आनन्द की पर्याय में दो भाग हैं। एक आनन्द और एक दुःख। एक पर्याय में दो भाग—आनन्द और दुःख। शान्ति और अशान्ति चारित्र की अपेक्षा से। जितनी स्थिरता उतनी शान्ति, (जितनी अस्थिरता उतनी अशान्ति), एक पर्याय में दो भाग। ओहोहो! स्वाद अकेला आनन्द का है, दृष्टि की अधिकता में। परन्तु निर्बलता है, उसका भी स्वाद अन्दर है, कर्मचेतना का, कर्मफलचेतना का। उसका स्वामी नहीं, वह अलग बात है, परन्तु वेदन में है। ज्ञानी छठवें गुणस्थान तक कर्मफलचेतना (वेदता है)। यह राग है, उसमें हर्ष का वेदन है, विकारवेदन है। यह दृष्टि का विषय चले तब (ऐसा कहा जाता है कि) अकेली ज्ञानचेतना का (वेदन है)। समझ में आया? दोपहर में यह चलता है। दृष्टि कहे, अकेला... वेदन-फेदन है ही नहीं कुछ। ज्ञान की अधिकता और दृष्टि की अधिकता बतलाने के लिये (बात है)। रागादि दुःख है, उसे गौण करके कहा है। यहाँ साथ में लेना है। ज्ञानप्रधान कथन है। समझ में आया? जितनी शान्ति है, उतनी चारित्र की एक पर्याय में वीतरागता है। जितना रागलव उत्पन्न हुआ, उसी पर्याय में मलिनता है। उसे कर्मफलचेतना कहो, कर्मचेतना कहो। राग हुआ, वह कर्मचेतना और कर्मफलचेतना तथा जितनी स्वरूप की स्थिरता, उतनी ज्ञानचेतना और शुद्ध कर्म और शुद्ध कर्मफलचेतना।

मुमुक्षु : क्षेत्र अपेक्षा से भाग नहीं, भाव अपेक्षा से भाग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षेत्र अपेक्षा से भाग है। वास्तव में तो असंख्य प्रदेश में है

परन्तु दृष्टि की अपेक्षा से विकार का क्षेत्र बाहर गिना है। बाकी ज्ञान की अपेक्षा से उसके क्षेत्र में है, स्वक्षेत्र में है। असंख्य प्रदेश में है। समझ में आया? असंख्य प्रदेश में स्व सीमा में दुःख और सुख दोनों हैं। स्व सीमा में शान्ति और अशान्ति दोनों हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बात आयी न! समयसार में पीछे नहीं लिया? '**कषायकलिरेकतः**' ऐसे देखो तो कषाय दिखती है, ऐसे देखो तो अकषाय दिखती है। उसकी अपनी पर्याय में है। पर के साथ की बात नहीं है। वह तो दृष्टि का एकदम जोर देना हो तो एक भाव का अधिकरूप से आनन्द का वेदन है, दुःख का वेदन ज्ञानी को नहीं है। यह (स्वभाव की) अधिकता से (और) राग की गौणता करके मुख्यता की अपेक्षा से कथन है। उसे सर्वथा कथन नहीं समझ लेना। समझे? जितना तीन कषाय का राग है, चौथे गुणस्थन में, उतना दुःख है। पंचाध्यायी में नहीं कहा? एक जगह कहा है। ज्ञानी भी दुःख से छूटा नहीं। पंचाध्यायी में गाथा आती है। असंख्य प्रदेश में दुःख है। चोट लगती है, ऐसा लिखा है। भाई! पंचाध्यायी में गाथा है। पंचाध्यायी ने तो भारी काम लिया है। समकिती भी उससे बचा नहीं। जैसे यह वा होता है न वा, तुम्हारे वा था? क्या था तुम्हारे? वा था? लो, इन सेठिया को वा था। शास्त्र कहता है, समकिती को भी सन्धि वा हुआ है। जितना राग है, उतना पूरे असंख्य प्रदेश में सन्धि-सन्धि में दुःख है। यह असंख्य प्रदेश सांधे हैं, यह नहीं। यह तो (जड़ है)। असंख्य प्रदेश है, प्रदेश-प्रदेश में आत्मा के अन्दर जब तक पूर्ण वीतरागता न हो, (तब तक) आकुलता है, आकुलता तब तक है—दुःख है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर इतना पूर्ण अनन्त है। अनन्त होगा केवली में। केवल (ज्ञान) हो जायेगा तो अरिहन्त हो जायेगा। बारहवें गुणस्थान में पूर्ण हो जायेगा, तेरहवें में अनन्त (ज्ञान) हो जायेगा। यहाँ सुख का अंश है। चौथे में सुख का अंश है। पाँचवें में विशेष, छठवें में विशेष, सातवें में विशेष, आठवें में विशेष, ग्यारहवें तक। बारहवें में पूर्ण। समझ में आया? परन्तु जितना अंश है, उसमें दूसरा अंश राग का-दुःख का भी

है। आहाहा! वह भी बचता नहीं, ऐसा पाठ है, हों! एक श्लोक में। जैसे सन्धि वा में (होता है), उसी प्रकार उसे भी दु:ख—आकुलता होती है। आकुलता को टालना और निराकुलता पूर्ण प्रगट करना, वही ज्ञानी का साध्य है। समझ में आया?

(-चित्त का भ्रमण होने पर), शुभ तथा अशुभकर्म का निरोध नहीं होता। देखो! यहाँ तो शुभभाव से शुभ भी बँधता है और अशुभ भी बँधता है। उसी समय है या नहीं? ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय बँधता है या नहीं? अन्तराय और चारित्रमोह। शुभभाव से चारित्रमोह भी बँधता है। ओहोहो! एक ओर कहे कि सम्यग्दृष्टि को बन्ध नहीं है, सम्यग्दृष्टि को आस्रव नहीं है। प्रसिद्ध हो कि मिथ्यात्व, वह संसार है। कल आया या नहीं? दोपहर में। सवेरे यह। अपेक्षा बदलती है। काल बदलता है, इसलिए ऐसा नहीं। समझ में आया? वह तो दृष्टि अकेला द्रव्यस्वभाव पूर्ण स्वभाव अनन्त गुणरूप परम पवित्रता का अनन्तगुण, परम पवित्र धाम एकरूप है, ऐसी जहाँ दृष्टि हुई, द्रव्य मुक्त है तो दृष्टिवन्त भी मुक्त है। यह दर्शनप्रधान की बात है। परन्तु उसकी पर्याय-पर्याय जब देखी जाये तो दसवें गुणस्थान तक राग है, वहाँ तक दु:ख है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। समझ में आया?

शुभ तथा अशुभकर्म का निरोध नहीं होता। ओहोहो! सन्तों की उग्रता, सन्तों की वीर्य की उग्रता। अरे! हमको यह शास्त्र की भक्ति का विकल्प आया। लिखने का विकल्प आया है, वह हो, परन्तु है तो दु:ख। उससे शुभाशुभ बँधते हैं। आहाहा! चौथे में बन्ध और आस्रव नहीं। एक दृष्टि से है। ... हमको भी शुभाशुभ बँधते हैं। आहाहा! पर्याय में कमी है, उतना बन्ध है। सर्वथा नहीं, ऐसा नहीं। सर्वथा बन्धरहित भगवान केवलज्ञानी है। अकषाय भाव हुआ। समझ में आया? नया बन्ध भले बारहवें में न पड़े, परन्तु अभी ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय पड़े हैं, उतनी अन्दर भावबन्ध की पर्याय नयी न पड़े, परन्तु इतना भावबन्ध लम्बाता है। असंख्य समय, बारहवें गुणस्थान में द्रव्यबन्ध है तो यहाँ भावबन्ध भी स्वयं से है न! नहीं तो तीन बारहवें में तीन कर्म कैसे रहे? ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय कैसे रहे? यहाँ भावबन्ध की परिणति

नयी-नयी उत्पन्न होती है। नया बन्ध पड़ता है कषाय से, वह नहीं। परन्तु इतना भावबन्ध न हो तो भावमुक्ति हो जाये। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **इसलिए...** ओहोहो! **इस अनर्थसंतति का मूल...** समकिती के छठवें गुणस्थान के राग को (कहा)। ओहोहो! अपेक्षा का ज्ञान न समझे (तो गड़बड़ होती है)। एक ओर (ऐसा कहे), चौथे गुणस्थान में ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु है। एक (ओर) कहते हैं कि छठवें गुणस्थान में भक्ति का राग **अनर्थसंतति का मूल रागरूप क्लेश का विलास ही है।** समझ में आया? अरे... भाई! भोग वह कहीं निर्जरा का हेतु है? चौथे गुणस्थान में भोग निर्जरा का हेतु हो तो यह तो कहते हैं, छठवें गुणस्थान में हमको भगवान की भक्ति आदि, शास्त्र की रुचि, शास्त्र की प्रभावना का भाव—विकल्प आया, वह विकल्प भी अनर्थसंतति है। प्रयोजनभूत शुद्ध परिणति उसमें नहीं है। इतनी अनर्थसंतति का मूल रागरूप क्लेश का विलास है। वह रागरूप क्लेश का विलास है। भगवान चैतन्य का विलास नहीं। चैतन्य का विलास अनाकुल आनन्द की लहरें उसमें नहीं। आहाहा! मुनि भी पुकार करते हैं, देखो! समझ में आया? साक्षात् निश्चित हो गया है कि एकाध भव में मुक्ति-केवलज्ञान लेनेवाले हैं, परनतु यह राग है। राग चलेगा, वह अनर्थपरम्परा है। राग में से अर्थपरम्परा हो जायेगी, अर्थ अर्थात् स्वपदार्थ की शुद्धि होती है, ऐसा नहीं है। ओहो! गजब भाई! **अनर्थसंतति का मूल रागरूप क्लेश का विलास ही है।** क्या? रागरूप क्लेश का विलास ही है। किसका? अनर्थसंतति का मूल। रागरूप क्लेश का विलास अनर्थसंतति का मूल। ओहोहो! कथनपद्धति भी कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य (की) अलौकिक बात! वीतरागपना खड़ा करना है न! जब तक वीतरागता न हो, तब तक मुक्ति नहीं, केवल (ज्ञान) नहीं। बारहवें में वीतरागता होती है, तब केवल (ज्ञान) होता है। राग रहे और राग से केवल(ज्ञान) परम्परा से हो, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, घातिया बँधते हैं न! घाति की बात की। पहले घाति कहा न? ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय और चारित्रमोह। चार कहे, चार पड़ते हैं, रस पड़ता है, स्थिति पड़ती है, बन्ध पड़ता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... तो क्या हुआ ? सूक्ष्मता वीतरागता में विघ्न करनेवाला राग का ज्ञान होने पर उसे प्रमोद आना चाहिए कि ओहो ! इतना भी राग मुझे नुकसानकारक है। इतना भी छेदकर स्थिर होऊँगा तब मुझे शान्ति की पूर्णता प्राप्त होगी। उसमें तो वीर्य की स्फुरणा है। वीर्य की स्फुरणा की वृद्धि है, आघात नहीं।

भावार्थ :— अर्हंतादि की भक्ति भी रागरहित नहीं होती। राग से चित्त का भ्रमण होता है;... चित्त भटकता है। **चित्त के भ्रमण से कर्मबन्ध होता है। इसलिए इन अनर्थों की परम्परा का मूल कारण राग ही है।** देखो ! चित्त का भ्रमण, रागरहित भक्ति नहीं, राग से चित्त का भ्रमण, भ्रमण से कर्मबन्ध और अनर्थ की परम्परा इस कारण से, लो ! नीचे अर्थ किया है। जयसेनाचार्य ने। यह दूसरे अर्थ में है। वहाँ मिथ्यात्वसहित में लिया है।

'मात्र नित्यानन्द जिसका स्वभाव है...' नोट (फुटनोट)। 'मात्र नित्यानन्द जिसका स्वभाव है, ऐसे निज आत्मा को...' देखो ! आत्मा का स्वभाव मात्र नित्यानन्द प्रभु सहजानन्द प्रभु, परमानन्द प्रभु उसका स्वभाव है। नित्य आनन्दकन्दरस से भरपूर भगवान ऐसा जिसका, 'जिसका स्वभाव है, ऐसे निज आत्मा को जो जीव भाता नहीं...' जो जीव ऐसे नित्यानन्द की एकाग्रता नहीं करता। भाता अर्थात् भावना नहीं करता। समझ में आया ? ऐसे भाता नहीं 'उस जीव को माया-मिथ्या-निदानशल्यत्रयादिक...' शल्य त्रयादिक। माया, मिथ्या और निदानशल्य त्रयादिक 'समस्त विभावरूप बुद्धिप्रसार नहीं रोका जा सकता...' समझ में आया ? जितने प्रमाण में अपना स्वभाव भाता नहीं, उतने प्रमाण में, सर्वथा नहीं भाता उसे मिथ्यात्व, माया और निदान तीनों शल्य रोकी नहीं जा सकती। मिथ्यात्व टलने के बाद जितनी माया और थोड़ा राग रहा है, वह भी दुःख का कारण है। उसे टाला नहीं जा सकता। निज आत्मा को जीव भाता नहीं तो समस्त विभावरूप बुद्धिप्रसार रोका नहीं जा सकता। वह नहीं रोकने से, बुद्धि का विकल्प के विस्तार का निरोध नहीं होने से 'शुभाशुभकर्म का संवर नहीं होता। इसलिए ऐसा सिद्ध हुआ कि समस्त अनर्थपरम्पराओं का रागादिविकल्प ही मूल है।' समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो अपने चलता है, वह ज्ञान में अस्थिरता ली है। जयसेनाचार्य ने तीनों लिये हैं। मिथ्यात्व सहित भी स्वरूप का भान नहीं, उसे भी राग परम्परा अनर्थ का कारण है। और मिथ्यात्व जाने के बाद भी राग रहा, वह भी अनर्थ का कारण है। जितनी आत्मा की भावना नहीं, उतनी राग की परम्परा दु:ख का कारण है। मिथ्यादृष्टि को तो आत्मा की भावना बिल्कुल नहीं। सम्यग्दृष्टि की आत्मभावना दर्शन अपेक्षा से जितनी शुद्ध हुई, उतनी है। पंचम गुणस्थान में दूसरा कषाय टला, उतनी भावना है। छठवें में तीन कषाय का अभाव हुआ, उतनी भावना है। परन्तु अभी भावना बाकी है तो राग रहता है, ऐसा कहना है। समझ में आया? यह १६८ गाथा हुई।

गाथा - १६९

तम्हा णिव्वुदिकामो णिस्संगो णिम्ममो य हविय पुणो।
सिद्धेसु कुणदि भत्तिं णिव्वाणं तेण पप्पोदि।।१६९।।

निःसंग निर्मम हो मुमुक्षु सिद्ध की भक्ति करें।
सिद्धसम निज में रमन कर मुक्ति कन्या को वरें।।१६९।।

अन्वयार्थ :- [तस्मात्] इसलिए [निवृत्तिकामः] मोक्षार्थी जीव [निस्सङ्गः] निःसंग [च] और, [निर्ममः] निर्मम [भूत्वा पुनः] होकर, [सिद्धेषु भक्ति] सिद्धों की भक्ति (-शुद्धात्मद्रव्य में स्थिरतारूप पारमार्थिक सिद्धभक्ति) [करोति] करता है, [तेन] इसलिए वह [निर्वाणं प्राप्नोति] निर्वाण को प्राप्त करता है।

टीका :- यह, रागरूप क्लेश का [१]निःशेष नाश करनेयोग्य होने का निरूपण है।

रागादिपरिणति होने पर चित्त का भ्रमण होता है और चित्त का भ्रमण होने पर कर्मबन्ध होता है ऐसा (पहले) कहा गया, इसलिए मोक्षार्थी को कर्मबन्ध का मूल ऐसा जो चित्त का भ्रमण उसके मूलभूत रागादिपरिणति का एकान्त निःशेष नाश करनेयोग्य है। उसका निःशेष नाश किया जाने से, जिसे [२]निःसंगता और [३]निर्ममता प्रसिद्ध हुई है, ऐसा वह जीव शुद्धात्मद्रव्य में विश्रान्तिरूप पारमार्थिक सिद्धभक्ति धारण करता हुआ [४]स्वसमयप्रवृत्ति की प्रसिद्धिवाला होता है। उस कारण से वह जीव कर्मबन्ध का निःशेष नाश करके सिद्धि को प्राप्त करता है॥१६९॥

---

१. निःशेष=सम्पूर्ण; किंचित् शेष न रहे ऐसा।
२. निःसंग=आत्मतत्त्व से विपरीत ऐसा जो बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रहण उससे रहित परिणति, सो निःसंगता है।
३. रागादि-उपाधिरहित चैतन्यप्रकाश जिसका लक्षण है, ऐसे आत्मतत्त्व से विपरीत मोहोदय जिसकी उत्पत्ति में निमित्तभूत होता है, ऐसे ममकार-अहंकारादिरूप विकल्पसमूह से रहित निर्मोहपरिणति, सो निर्ममता है।
४. स्वसमयप्रवृत्ति की प्रसिद्धिवाला=जिसे स्वसमय में प्रवृत्ति प्रसिद्ध है ऐसा। [जो जीव रागादिपरिणति का सम्पूर्ण नाश करके निःसंग और निर्मम हुआ है, उस परमार्थ-सिद्धभक्तिवन्त जीव ने स्वसमय में प्रवृत्ति सिद्ध की है, इसलिए स्वसमयप्रवृत्ति के कारण वही जीव कर्मबन्ध का क्षय करके मोक्ष को प्राप्त करता है, अन्य नहीं।]

गाथा-१६९ पर प्रवचन

१६९।

तम्हा णिव्वुदिकामो णिस्संगो णिम्ममो य हविय पुणो।
सिद्धेसु कुणदि भत्तिं णिव्वाणं तेण पप्पोदि।।१६९।।

देखो! यहाँ 'सिद्ध' शब्द लिया है, अपना स्वरूप।

टीका :— यह, रागरूप क्लेश का निःशेष नाश करनेयोग्य होने का निरूपण है। लो, यह रागरूप क्लेश का विस्तार अन्त में कहा था न? उसका निःशेष नाश करनेयोग्य होने का कथन है। **रागादिपरिणति होने पर चित्त का भ्रमण होता है...** यह पूर्व की बात याद की है। **चित्त का भ्रमण होने पर कर्मबन्ध होता है, ऐसा (पहले) कहा गया,...** १६८ में। **इसलिए मोक्षार्थी को कर्मबन्ध का मूल, ऐसा जो चित्त का भ्रमण....** लो, कर्मबन्ध का मूल, ऐसा चित्त का भ्रमण। आत्मद्रव्यस्वभाव कर्मबन्ध का मूल नहीं है। राग कर्मबन्ध का मूल है। आत्मभगवान मोक्ष का मूल है। स्वभाव मोक्ष का मूल है, राग बन्ध का मूल है। समझ में आया?

मोक्षार्थी को कर्मबन्ध का मूल, ऐसा जो चित्त का भ्रमण उसके मूलभूत रागादिपरिणति का एकान्त निःशेष नाश करनेयोग्य है। एकान्त से नाश करनेयोग्य है। कथंचित् रखनेयोग्य और कथंचित् नाश करनेयोग्य, (ऐसा) उसमें लगा दो अनेकान्त? एकान्त से निःशेष नाश करनेयोग्य है। किंचित् राग रखनेयोग्य नहीं है। आहाहा! यह वीतरागमार्ग को शोभता है। अज्ञानी को यह शोभता नहीं। वीतराग... आहाहा! बिल्कुल राग आता है, हो! यह पंचम काल के मुनि हैं, पंचम काल के प्राणी को कहते हैं। पंचम काल के मुनि हैं, कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य। अरे.. आत्मा! तेरी निर्मल दृष्टि में ऐसा ले कि राग का कण आता है शुभ, वह भी नाश करनेयोग्य है। नाश किये बिना तुझे पूर्ण की प्राप्ति नहीं होती। ऐसा पहले उसमें मोक्ष की प्रतीति आना चाहिए। समझ में आया? **एकान्त निःशेष नाश...** दो शब्द लगाये हैं। एकान्त से सर्व निःशेष नाश।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नाश राग।

मुमुक्षु : नाश करने में भाव क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग, राग। राग नाश करनेयोग्य है, इसका अर्थ वीतराग स्वभाव की ओर ढलने से राग का नाश हो जाता है। यह भाव आया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु नाश हुआ न यह। राग... स्वभाव का आश्रय जहाँ हुआ, तो राग की उत्पत्ति नहीं हुई। यह तो पहले से कहा है। कथन पद्धति तो यह आती है, दूसरी कहाँ आती है। अमृतचन्द्राचार्य स्वयं कहते हैं। राग का नाश करना। नाश का अर्थ वीतराग स्वद्रव्य का पूर्ण आश्रय करके राग की उत्पत्ति न होना, उसे राग का नाश किया, ऐसा कहने में आता है। यह तो पहले बहुत बार कहा है। यह तो बहुत बार कहा परन्तु कथन पद्धति तो ऐसी ही चलती है। आचार्य.... ऐसी चलती है। पद्धति कैसी चले? समझ में आया?

एकान्त निःशेष नाश करनेयोग्य है। इसका अर्थ (यह कि) राग रखनेयोग्य नहीं और राग उत्पन्न करनेयोग्य नहीं। अपने स्वभाव का लक्ष्य करने से वीतरागपर्याय की उत्पत्ति होती है तो उसे राग उत्पन्न नहीं होता, राग एकान्त से नाश करनेयोग्य है, ऐसा कहने में आया है। कथनपद्धति व्यभिचारी है। कथन की दूसरी पद्धति क्या करे? प्रत्येक समय ऐसा कहे... समझ में आया? कि आत्मा के आश्रय से राग उत्पन्न ही नहीं होता। यह बारम्बार कहे तो कथन की पद्धति नहीं चलती। समझ में आया? धन्नालालजी! रागादि परिणति का... इसका अर्थ राग उत्पन्न करनेयोग्य नहीं। हेय है तो नाश करनेयोग्य है और संवर, निर्जरा और मोक्ष उत्पाद करनेयोग्य है। तो उपादेय गिनकर उत्पन्न करनेयोग्य है, ऐसा कहा। राग हेय है तो नाश करनेयोग्य है, ऐसा कहा। ध्रुव स्वभाव आश्रय करनेयोग्य रहा। समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञायकस्वभाव ध्रुव आश्रय करनेयोग्य रहा। संवर, निर्जरा, मोक्ष उत्पन्न करनेयोग्य हैं। उत्पाद, व्यय, ध्रुव तीनों हैं या नहीं? तो एक समय में तीनों किस प्रकार घटित करना? द्रव्यस्वभाव त्रिकाल है, वह आश्रय करनेयोग्य है। संवर, निर्जरा, मोक्ष उपादेय है। क्यों? उत्पन्न करनेयोग्य है, इस

अपेक्षा से उपादेय है। मैं उत्पन्न करूँ, यह बात नहीं। परन्तु उत्पन्न करनेयोग्य है तो उपादेय है और राग-द्वेष आदि भाव नाश करनेयोग्य है, इसलिए हेय है। समझ में आया? हेय करूँ, ऐसा नहीं है। शब्द तो क्या कहे? संवर में उत्पन्न करूँ, ऐसा नहीं है। द्रव्यस्वभाव के आश्रय से संवर, निर्जरा और मोक्ष उत्पन्न हो जाता है। परन्तु वह उत्पन्न करनेयोग्य है तो उसे उपादेय कहा है। और स्वभाव के आश्रय से राग उत्पन्न नहीं होता तो राग नाश करनेयोग्य है। हेय करके नाश करनेयोग्य कहने में आया है। यह उत्पाद, व्यय, ध्रुव की सन्धि है। समझ में आया? ओहोहो!

उसका निःशेष नाश किया जाने से, जिसे... देखो! **निःशेष नाश किया जाने से, जिसे निःसंगता....** (निःसंग अर्थात्) 'आत्मतत्त्व से विपरीत ऐसा जो बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह, उससे रहित परिणति...' निःसंग हो जाती है। राग जितना गया तो आत्मा निःसंग होता है। अकेला संग बिना का। **निर्ममता...** 'रागादि उपाधिरहित चैतन्यप्रकाश जिसका लक्षण है...' चैतन्यप्रकाश जिसका लक्षण है, ऐसे आत्मतत्त्व से विपरीत मोहोदय जिसकी उत्पत्ति में निमित्तभूत होता है..' कौन? मोह। 'ऐसे ममकार-अहंकारादिरूप विकल्पसमूह से रहित निर्मोहपरिणति वह निर्ममता है।' निःसंग हुआ स्वभाव में, निर्ममत्व हुआ पर से। **उसका निःशेष नाश किया जाने से,...** प्रसिद्ध होकर, राग का नाश करने से निःसंगता, निर्ममता प्रसिद्ध हुई, इसका नाम वीतरागता है।

ऐसा वह जीव... अब कहते हैं, देखो! दो बातें कीं। नाश करनेयोग्य कहा, निःसंगता, निर्ममता प्रसिद्ध उत्पन्न हुई, कहा। **ऐसा वह जीव शुद्धात्मद्रव्य में विश्रान्तिरूप पारमार्थिक सिद्धभक्ति धारण करता हुआ...** यह सिद्धभक्ति पाठ में है परन्तु सिद्ध (अर्थात्) वह सिद्ध नहीं। समझ में आया? पाठ में यह लिया है, हों! '**सिद्धेसु कुणदि भत्ति**' परन्तु सिद्ध शब्द से यह आत्मा। अपना सिद्धसमान सर्वगुणसम्पन्न ऐसा भगवान शुद्धात्मद्रव्य में विश्रान्ति... विश्रान्ति... विश्रान्ति... थकान उतारी। राग की उत्पत्ति की थकान थी, दुःख था। यह विश्रान्ति लेने से दुःख गया, शान्ति हुई। ओहोहो!

शुद्धात्मद्रव्य में विश्रान्तिरूप पारमार्थिक सिद्धभक्ति... देखो! पारमार्थिक सिद्धभक्ति। सिद्ध भगवान के गुण गाये, वह तो व्यवहारभक्ति है। सिद्ध भगवान की

भक्ति तो पहले आयी। अरिहन्त सिद्ध में नहीं आया? यह तो पहले आया। नाम लिया था या नहीं उसमें? अरिहन्त, सिद्ध। १६६ में। अरिहन्त और सिद्ध तो लिये थे। वहाँ तो राग लिया था। और यहाँ सिद्ध की भक्ति में तो वीतरागता ली है। यह सिद्धभक्ति है। समझ में आया? अपना आत्मा शुद्धात्मद्रव्य में विश्रान्तिरूप पारमार्थिक सिद्धभक्ति धारण करता है। सिद्धभक्ति परमार्थ से धारण करता है। लो! मुनियों की आती है न आहार लेते समय? सिद्धभक्ति नहीं आती? दूसरी कौन सी आती है? भक्ति आती है। सिद्धभक्ति दीक्षा लेते समय। दो भक्तियाँ कुछ करते हैं उस समय। वह सिद्धभक्ति तो भगवान की भक्ति है, विकल्पवाली है। समझे? आहार के समय करते हैं। **स्वसमयप्रवृत्ति की प्रसिद्धिवाला होता है।** लो! तब आत्मा स्वसमय की प्रवृत्ति अन्दर। देखो! प्रवृत्ति। शुद्ध की परिणतिरूपी प्रवृत्ति, (उसकी) प्रसिद्धिवाला होता है। **उस कारण से वह जीव कर्मबन्ध का निःशेष नाश करके सिद्धि को प्राप्त करता है।** लो, मुक्ति ले ली। ठेठ तक। अन्तिम गाथायें हैं न? उतना राग भी नाश करके मुक्ति प्राप्त होती है। फिर थोड़ा भाग लेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १७०

सपयत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोइस्स।
दूरतरं णिव्वाणं संजमतवसंपउत्तस्स।।१७०।।

तत्त्वार्थ अर जिनवर प्रति जिसके हृदय में भक्ति है।
संयम तथा तप युक्त को भी दूरतर निर्वाण है।।१७०।।

अन्वयार्थ :- [संयमतपःसम्प्रयुक्तस्य] संयमतपसंयुक्त होने पर भी, [सपदार्थ तीर्थंकरम्] नव पदार्थों तथा तीर्थंकर के प्रति [अभिगतबुद्धेः] जिसकी बुद्धि का झुकाव वर्तता है और [सूत्ररोचिनः] सूत्रों के प्रति जिसे रुचि (प्रीति) वर्तती है, उस जीव को, [निर्वाणं] निर्वाण [दूरतरम्] दूरतर (विशेष दूर) है।

टीका :- यहाँ, अर्हंतादि की भक्तिरूप परसमयप्रवृत्ति में साक्षात् मोक्षहेतुपने का अभाव होने पर भी परम्परा से मोक्षहेतुपने का [1]सद्भाव दर्शाया है।

जो जीव वास्तव में मोक्ष के लिये उद्यमी चित्तवाला वर्तता हुआ, अचिन्त्य संयमतपभार सम्प्राप्त किया होने पर भी परमवैराग्यभूमिका का आरोहण करने में समर्थ ऐसी [2]प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की होने से, 'धुनकी को चिपकी हुई रुई' के न्याय

१. वास्तव में तो ऐसा है कि—ज्ञानी को शुद्धाशुद्धरूप मिश्र पर्याय में जो भक्ति-आदिरूप शुभ अंश वर्तता है, वह तो मात्र देवलोकादि के क्लेश की परम्परा का ही हेतु है और साथ ही साथ ज्ञानी को जो (मन्दशुद्धिरूप) शुद्ध अंश परिणमित होता है, वह संवरनिर्जरा का तथा (उतने अंश में) मोक्ष का हेतु है। वास्तव में ऐसा होने पर भी, शुद्ध अंश में स्थिर संवर-निर्जरा-मोक्षहेतुत्व का आरोप उसके साथ के भक्ति-आदिरूप शुभ अंश में करके उन शुभभावों को देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति की परम्परा सहित मोक्षप्राप्ति के हेतुभूत कहा गया है। यह कथन आरोप से (उपचार से) किया गया है, ऐसा समझना। [ऐसा कथंचित् मोक्षहेतुत्व का आरोप भी ज्ञानी को ही वर्तनेवाले भक्ति-आदिरूप शुभभावों में किया जा सकता है। अज्ञानी को तो शुद्धि का अंशमात्र भी परिणमन में नहीं होने से यथार्थ मोक्षहेतु बिलकुल प्रगट ही नहीं हुआ है—विद्यमान ही नहीं है तो फिर वहाँ उसके भक्ति आदिरूप शुभभावों में आरोप किसका किया जाये ?]

से, नव पदार्थों तथा अर्हंतादि की रुचिरूप (प्रीतिरूप) परसमयप्रवृत्ति का परित्याग नहीं कर सकता, वह जीव वास्तव में साक्षात् मोक्ष को प्राप्त नहीं करता किन्तु देवलोकादि के क्लेश की प्राप्तिरूप परम्परा द्वारा उसे प्राप्त करता है॥१७०॥

श्रावण कृष्ण १०, मंगलवार, दिनांक - ०१-०९-१९६४, गाथा-१७०, प्रवचन-१६

सपयत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोइस्स।
दूरतरं णिव्वाणं संजमतवसंपउत्तस्स।।१७०।।

इसकी टीका। देखो, यह पंचास्तिकाय की अन्तिम गाथायें हैं। यहाँ कहते हैं कि **यहाँ, अर्हंतादि की भक्ति....** अरिहन्त की भक्ति और नौ पदार्थ की रुचि, उसमें शास्त्र का प्रेम, (उसकी) रुचि, उसे ओर बुद्धि का झुकाव, वह परसमयप्रवृत्ति है। समझ में आया? इतना रागलव (-थोड़ा) है, विकल्प का भाग है। अर्हंतादि, सिद्ध आदि, पंच परमेष्ठी आदि... टीका में आयेगा। **भक्तिरूप परसमयप्रवृत्ति में साक्षात् मोक्षहेतुपने का अभाव...** क्योंकि राग है, तो उससे मोक्ष का कारण नहीं होता। **होने पर भी परम्परा से मोक्षहेतुपने का सद्भाव दर्शाया है।** कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है कि '**दूरतरं णिव्वाणं**'

---

२. प्रभुशक्ति= प्रबल शक्ति; उग्रशक्ति; प्रचुर शक्ति। [जिस ज्ञानी जीव ने परम उदासीनता को प्राप्त करने में समर्थ ऐसी प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की वह ज्ञानी जीव कदाचित् शुद्धात्मभावना को अनुकूल, जीवादिपदार्थों का प्रतिपादन करनेवाले आगमों के प्रति रुचि (प्रीति) करता है; कदाचित् (जिस प्रकार कोई रामचन्द्रादि पुरुष देशान्तरस्थित सीतादि स्त्री के पास से आए हुए मनुष्यों को प्रेम से सुनता है, उनका सन्मानादि करता है और उन्हें दान देता है उसी प्रकार) निर्दोष-परमात्मा तीर्थंकरपरमदेवों के और गणधर-देव-भरत-सगर-राम-पाण्डवादि महापुरुषों के चरित्रपुराण शुभ धर्मानुराग से सुनता है तथा कदाचित् गृहस्थ-अवस्था में भेदाभेदरत्नत्रयपरिणत आचार्य-उपाध्याय-साधु के पूजनादि करता है और उन्हें दान देता है—इत्यादि शुभभाव करता है। इस प्रकार जो ज्ञानी जीव शुभराग को सर्वथा नहीं छोड़ सकता, वह साक्षात् मोक्ष को प्राप्त नहीं करता परन्तु देवलोकादि के क्लेश की परम्परा को पाकर फिर चरम देह से निर्विकल्पसमाधिविधान द्वारा विशुद्धदर्शन-ज्ञानस्वभाववाले निजशुद्धात्मा में स्थिर होकर उसे (मोक्ष को) प्राप्त करता है।]

'**दूरतरं णिव्वाणं**' जिसे रागभाव इतना लव बाकी है, उसे शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र की परिणति भी है। परन्तु इतने राग के कारण से '**दूरतरं णिव्वाणं**' बहुत आगे (-दूर) राग को टालकर केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष होगा। जब तक राग है, तब तक स्वर्ग में जायेगा और क्लेश—देव के सुख का क्लेश भोगेगा। ओहोहो!

मुमुक्षु : परम्परा से मोक्ष तो होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परम्परा, इससे कहाँ कहा? राग अभी है, उसे तो साक्षात् पुण्यबन्ध ही है। परन्तु परम्परा अर्थात् बाद में राग टालकर जब पूर्ण वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा होगा, तब मोक्ष होगा। यह परम्परा, '**दूरतरं**' का अर्थ ही परम्परा लिया है।

मुमुक्षु : ऊपर ऐसा ही कहते हैं कि सिद्धपद अर्थात् परम्परा, इसलिए उसके कर्ता....

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे नहीं होता। होता है तो राग के अभाव से। सब गड़बड़ यहाँ है। देखो न नीचे अर्थ किया है। उसका ही है न यह? नीचे है, देखो!

सद्भाव दर्शाया है। इसके नीचे नोट है। **वास्तव में तो ऐसा है कि—ज्ञानी को...** अर्थात् शुद्धस्वभाव का अनुभव सम्यग्दर्शन दृष्टि हुई है, उसको **शुद्धाशुद्धरूप मिश्र पर्याय...** होती है। जब तक केवलज्ञान न हो, वहाँ तक पूर्ण शुद्धपर्याय उसे नहीं होती। **जो भक्ति-आदिरूप शुभ अंश वर्तता है,...** उसमें जो भक्ति, शास्त्र की रुचि, शास्त्र का प्रेम, ऐसा जो **शुभ अंश वर्तता है, वह तो मात्र देवलोकादि के...** देवलोक आदि। स्वर्ग और वहाँ से मनुष्य होगा, वह पुण्य का फल है। वह राग बाकी रहा, उसका फल है।

देवलोकादि के क्लेश की परम्परा का ही हेतु है... देखो! अन्दर में लिखा है कि मोक्ष का परम्परा हेतु है। यह तो पहले आ गया न? यह तो पहली बात आ गयी है। परम्परा से अनर्थ का हेतु, यह तो आ गया न पहले? १६८ में। वहाँ यह बात सिद्ध करके यहाँ जब तक स्वरूप की स्वसमय की परिणति पूर्ण शुद्ध नहीं, तब तक वहाँ राग आता है, वह राग छोड़कर फिर भविष्य में केवलज्ञान और मोक्ष को प्राप्त करेगा। अभी तो राग का, पुण्यबन्ध का ही कारण है। कहो, समझ में आया? **देवलोकादि के...** अथवा उस देवलोक में से निकलकर चक्रवर्ती इत्यादि **क्लेश की परम्परा का ही हेतु**

है... शुभराग। **और साथ ही साथ ज्ञानी को जो (मन्दशुद्धिरूप)....** तीव्र शुद्धि हो तो केवलज्ञान हो जाये। **(मन्दशुद्धिरूप) शुद्ध अंश परिणमित होता है,...** अन्तर में निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र जितने अंश में वीतराग परिणति निर्विकल्प है, **वह संवर-निर्जरा का तथा (उतने अंश में) मोक्ष का हेतु है।**

वास्तव में ऐसा होने पर भी, शुद्ध अंश में स्थित उन शुभ भावों को देवलोकादि के.... संवर, निर्जरा, मोक्षहेतुत्व का आरोप। देखो! शुद्ध अंश में जितनी शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और लीनता हुई है, उस **शुद्ध अंश में स्थिर संवर-निर्जरा-मोक्षहेतुत्व का आरोप उसके साथ के भक्ति-आदिरूप शुभ अंश में करके....** समझ में आया? **उन शुभ भावों को देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति की परम्परा सहित....** देखो! **उन शुभ भावों को देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति की परम्परा सहित मोक्षप्राप्ति के हेतुभूत कहा गया है।** साथ में राग रहा है, उस शुद्ध अंश का उसमें आरोप दिया। शुद्ध अंश ही मोक्ष का मार्ग है। तो मोक्षमार्ग का आरोप देकर परम्परा मोक्ष का हेतु है, ऐसा कहने में आया है। नहीं तो है तो वह परम्परा क्लेश का ही कारण। आहाहा! यह बहुत बड़ी गड़बड़ चलती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : कब से चलती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अनादि से चलती है। परन्तु यह तो बाहर आयी इसलिए अभी (चलती दिखती है), नहीं तो ऐसा का ऐसा अन्ध चलता था।

देखो! **यह कथन आरोप से (उपचार से) किया गया है...** राग से मुक्ति परम्परा (होती है), यह आरोप अर्थात् उपचार से कहा गया है। **(ऐसा कथंचित् मोक्षहेतुत्व का आरोप भी ज्ञानी को ही वर्तनेवाले...)** सम्यग्दृष्टि को पंचम गुणस्थान में धर्मात्मा, मुनि आदि हैं, उन्हें **भक्ति-आदिरूप शुभ भावों में किया जा सकता है।** जिसकी दृष्टि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से निर्मल हुई है, उसके साथ भक्ति आदि के राग में यह आरोप से कहा गया है। यह कथन समझ में आया?

अज्ञानी को तो शुद्धि का अंशमात्र भी परिणमन में नहीं होने से.... लो, प्रश्न करते थे न भाई सवेरे? वे लोग कहते हैं कि हमारे सीधे शुद्ध में जाना? पहले अभी हम

अशुद्ध में शुभ तो करें। परन्तु पहले यहाँ निर्मल दृष्टि करने की बात चलती है। समझ में आया? यह शुभभाव जो है, वह राग है, बन्ध का कारण है। मेरे सम्यग्दर्शन का वह विषय नहीं। समझ में आया? ऐसी अपनी शुद्ध स्वभाव की दृष्टि में शुभराग बन्ध का कारण माने बिना अपने स्वभाव की सच्ची दृष्टि उसे नहीं होती। तो यहाँ दृष्टि के विषय की बात है। लोग यह प्रश्न करते हैं। लो, सीधे हमारे शुद्ध में चले जाना? सीधे क्या कहते हैं? सीधे। सीधे शुद्ध उपयोग में चले जाना?

देख भाई! इसमें दो बात है कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पहले निश्चय तो दर्शन में ऐसा होना चाहिए कि जितना शुभराग आता है, वह बन्ध का ही कारण है। यह शुभ उपयोग छूटता नहीं। दृष्टि में से छूटता है कि बन्ध का कारण है, मोक्ष का कारण नहीं। एक बार दृष्टि में से छूटता है। फिर तो शुद्ध उपयोग होगा, तब शुभभाव छूट जायेगा। बात समझ में आयी? डालचन्दजी! दो बातें हुई कि पहले तो दृष्टि में से छुटकारा करना कि जितना विकल्प पुण्यबन्ध का कारण है, वह बन्धरूप है, मोक्ष में बिल्कुल कारण नहीं। ऐसी निर्मल दृष्टि किये बिना उसकी भूमिका कभी आगे बढ़ेगी नहीं। और वह शुभोपयोग टलेगा कब? टलने के दो प्रकार हुए। समझ में आया? कौन से दो प्रकार? कि एक तो शुभराग मुक्ति का कारण नहीं, ऐसी दृष्टि करना।

मुमुक्षु : पहले श्रद्धा में से निकले।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धा में से निकल गया शुभराग बन्ध का कारण। और फिर शुभराग, जब शुद्ध उपयोग होगा, तब शुभराग उत्पन्न नहीं होगा। यह चारित्र की अपेक्षा से बात है। समझ में आया? भाई! राजमलजी!

निकालने की बात दो प्रकार से है। यहाँ कहा न कि अज्ञानी को जो रागादि आते हैं, उनमें तो आरोपित कथन भी नहीं किया जाता। क्योंकि शुद्ध परिणति और श्रद्धा, ज्ञान तो है नहीं। राग से धर्म मानता है, संवर-निर्जरा मानता है, विकल्प से मोक्ष मानता है, उसमें शुद्धि, शुभराग में शुद्धि है - ऐसा मानता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। उसे तो शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान की परिणति का अभाव है। समझ में आया? तो ऐसे जीव को जो शुभराग है, उसमें मोक्ष का व्यवहार से आरोप आता है, वह आरोप भी उसे होता नहीं। क्योंकि दृष्टि में, राग बन्ध के कारण का निषेध नहीं है। बराबर है?

मुमुक्षु : पहले .... बन्ध का कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा निर्णय किये बिना उसकी निर्णय दृष्टि सच्ची नहीं होती। समझ में आया? भाई! यह सवेरे बात करते थे कि क्या हमारे (सीधे शुद्ध में आ जाना)? ऐसी बात चलती थी। ऐसा कहते थे कि सीधे-सीधे जाना? पहले श्रद्धा तो करे। श्रद्धा में से तो निकाल डाले कि राग पुण्यबन्ध का कारण है, वह मुक्ति का, संवर-निर्जरा का बिल्कुल कारण नहीं। ऐसा होने पर भी, शुभभाव होने पर भी, दृष्टि में से श्रद्धा छोड़ना, यह पहली बात है। माँगीरामजी! समझ में आया? और तब तक शुभराग टलेगा नहीं। कब टलेगा? जब शुद्धोपयोग के आचरण में लीन होगा, तब शुभराग उत्पन्न नहीं होता, तब शुभराग टलेगा, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? ईश्वरचन्दजी! दो प्रकार से शुभराग का छेदन (होता है)।

मुमुक्षु : एक श्रद्धा और चारित्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक श्रद्धा में से छेदन पहले करना। श्रद्धा में छेदन किये बिना उसकी सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञान सच्चा होता नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है। यह तो आता है, नहीं, दौलतरामजी में? 'परिणति... करी...' आता है या नहीं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हो, होता है। जब तक शुद्ध उपयोग न हो, तब तक शुभराग की परिणति होती है, परन्तु दृष्टि में बन्ध का कारण जब तक न ले, तब तक उसकी दृष्टि सम्यक् नहीं है। समझ में आया? मित्रसेनजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लोग ऐसा कहते हैं, लो! हमारे छोड़ देना? छोड़ने का कहाँ प्रश्न है? छोड़ने के दो प्रकार। छोड़ देने के दो प्रकार। शुभभाव बन्ध का कारण है, राग है, परम्परा से उसे देवलोक का दुःख मिलेगा। दुःख ही है, हों! वहाँ धूल नहीं। देखो! क्लेश की परम्परा का हेतु है। वह क्लेश परम्परा की प्राप्ति है। वहाँ क्लेश है।

ऐसा पहले श्रद्धा में से, राग बन्ध का कारण है और मोक्ष का कारण नहीं, ऐसा निकाले बिना उसकी श्रद्धा सच्ची नहीं होती। और फिर शुभराग का टलना, वह तो अपने में शुद्ध आचरण में शुद्ध उपयोग लगे, तब शुभराग की उत्पत्ति नहीं होती। उसने शुभराग आचरण में से निकाला। पहले श्रद्धा में से निकाला था। पश्चात् आचरण में से निकाला। ऐसे निकालने की दो पद्धति हैं।

मुमुक्षु : निकालने की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : रखने की तो बात है ही नहीं।

मुमुक्षु : श्रद्धा में रखने की?

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धा में भी रखने की बात है नहीं और आचरण जब तक न हो, तब तक होता है, परन्तु रखने की बात नहीं है। यह तो अपनी निर्बलता से शुद्ध उपयोग पुरुषार्थ (की कमी) से होता नहीं, स्वयं के कारण से, हों! पर के कारण से नहीं। अपने पुरुषार्थ की निर्बलता से अन्दर शुद्ध उपयोग की लीनता का चारित्र नहीं होता तो शुभराग अवश्य होता है। परन्तु रखने का है, यह बात नहीं है। आता है और व्यवहार से उपादेय कहने में आता है, परन्तु परमार्थ से दृष्टि में जब तक उसे उपादेय मानेगा, तब तक मिथ्यादृष्टि रहेगा। एक भी भूमिका चढ़ेगा नहीं। और टलेगा कब? ऐसे तो नहीं टलेगा। जब तक शुद्धोपयोग नहीं जमे, चारित्र में शुद्ध उपयोग न हो, तब तक शुभ उपयोग टलता तो नहीं। समझ में आया? तो दूसरा उपाय शुद्ध उपयोग होकर शुभराग टलता है, यह दूसरा उपाय चारित्र का है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **अज्ञानी को तो शुद्धि का अंशमात्र भी परिणमन में नहीं होने से....** क्योंकि वह तो राग को ही धर्म मानता है। उसकी दृष्टि राग के ध्येय में है। वह तो मिथ्यादृष्टि है। उसके शुभराग में तो आरोप भी नहीं दिया जाता कि यह मोक्ष का परम्परा कारण है। ऐसा आरोप भी उसमें नहीं है। **यथार्थ मोक्षहेतु बिलकुल प्रगट ही नहीं हुआ है—विद्यमान ही नहीं है....** अज्ञानी को तो। **तो फिर वहाँ उसके भक्ति आदिरूप शुभ भावों में आरोप किसका किया जाये?** समझ में आया? माल नहीं तो बारदान किसका कहना? माल हो तो कहे कि भाई! यह शुभराग है, परम्परा मोक्ष के कारण का आरोप

इसमें दिया जाता है। समझ में आया? जब शुद्ध उपयोग होगा, तब टल जायेगा। परन्तु वर्तमान में तो अशुभ टलता है, इस अपेक्षा से उसे-शुभ को परम्परा मोक्ष के कारण का आरोप दिया है। कहो, समझ में आया?

जो जीव वास्तव में मोक्ष के लिये उद्यमी चित्तवाला वर्तता हुआ,... यह पाठ की टीका चलती है अब। पाठ में है न? '**सपयत्थं तित्थयरं संजमतवसंपउत्तस्स**' १७० गाथा का दूसरा पद है। **जो जीव वास्तव में....** हों! खरेखर—यथार्थ में **मोक्ष के लिये उद्यमी चित्तवाला वर्तता हुआ,...** अपने स्वभावसन्मुख दृष्टि, ज्ञान और संयमसहित वर्तता हुआ **अचिन्त्य संयमतपभार सम्प्राप्त किया होने पर भी...** देखो! मुनिपने की बात करते हैं न? अपने **मोक्ष के लिये उद्यमी चित्तवाला...** अपने शुद्ध स्वभाव के प्रति प्रयत्न-उद्यमवाला। शुद्ध चिदानन्दस्वभाव पूर्ण आनन्द मैं पूर्ण हूँ, ऐसा चित्त का पुरुषार्थ जो आत्मा की ओर ढलता है, झुकता है, ऐसे **चित्तवाला वर्तता हुआ,...** देखो! अपने पुरुषार्थ से वर्तता हुआ, ऐसा कहा है। कोई कर्म मन्द पड़े, तो अपने स्वभाव सन्मुख का पुरुषार्थ वर्तता है, ऐसा है नहीं।

अचिन्त्य संयमतपभार.... भाषा इतनी, देखो! **अचिन्त्य संयमतपभार....** स्वरूप की स्थिरता में इन्द्रिय, छहकाय की हिंसा का त्याग, संयम अन्दर में, स्वरूप में सम्यग्दर्शनपूर्वक संयम और तप। प्रतपन इति तपः। आत्मा की पर्याय, जैसे सोना / स्वर्ण को गेरु लगाने से सोना ओपता—शोभता है, उसी प्रकार आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र की इतनी निर्मलता हो कि जिसमें आत्मा ओपे अर्थात् शोभ उठता है, ऐसी दशा को तप कहते हैं। समझ में आया? **अचिन्त्य संयमतपभार....** ऐसा लिया है न? इसलिए यह विकल्प अनशन, ऊनोदरी या ऐसा कोई तप-बप यथार्थ है नहीं। अचिन्त्य संयम, अचिन्त्य तप ऐसा भार अर्थात् सम्प्राप्त, उस दशा को प्राप्त, ऐसा लेना। **होने पर भी परमवैराग्यभूमिका का आरोहण करने में समर्थ...** परमवैराग्यभूमिका आरोहण करने में समर्थ **ऐसी प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की होने से,...** देखो, भाषा! आहाहा!

मुमुक्षु : वैराग्यभूमिका है परन्तु परमवैराग्यभूमिका।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वैराग्य है, संयम है, तप है, स्वभाव सन्मुख पुरुषार्थ की दृष्टि आदि का अनुभव है। तथापि परमवैराग्यभूमिका का आरोहण। इस विकल्प से भी

छूटकर शुद्ध उपयोग में रमना, अन्दर में परम उदास हो जाना, परमवैराग्यभूमिका। देखो! वैराग्य भूमिका शुद्ध उपयोग दशा। उसके **आरोहण करने में समर्थ...** ऐसे आरोहण करने में समर्थ **ऐसी प्रभुशक्ति....** भाषा ऐसी है। **उत्पन्न नहीं की होने से,...** देखो! अपने कारण से परमवैराग्य में जानेवाली शक्ति प्रगट नहीं की होने से। कर्म के कारण से नहीं। है या नहीं इसमें?

परमवैराग्यभूमिका का आरोहण करने में समर्थ ऐसी प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की होने से,.... नीचे। **प्रभुशक्ति= प्रबल शक्ति;...** शुद्ध उपयोग में रमना। एकदम परम वैराग्यमार्ग। दर्शनशुद्धि सहित पर से, विकल्प से बिल्कुल उदास होकर वीतराग परिणति में जम जाना, इसका नाम परमवैराग्यभूमिका कहने में आता है। इसमें **प्रभुशक्ति= प्रबल शक्ति; उग्रशक्ति; प्रचुर शक्ति। (जिस ज्ञानी जीव ने परम उदासीनता को प्राप्त करने में समर्थ ऐसी प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की...** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होने पर भी शुभराग वर्तता है तो परमवैराग्य उदासीनदशा नहीं है। समझ में आया? सच्चा सम्यग्दर्शन, सच्चा संयम, सच्चा तप इतना होने पर भी छठवें गुणस्थान में भी जब ऐसा राग आया तो परमवैराग्य भूमिका में आरोहण करने में असमर्थ है। **उत्पन्न नहीं की...** ऐसी बात है। अपनी प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की। कर्म के कारण—संज्वलन की तीव्रता के कारण छठवें गुणस्थान में राग का रहना है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है, परन्तु यहाँ छठवें में है, तब तक इतनी शक्ति नहीं। यहाँ छठवें की बात करनी है न! छठवें में राग है तो शुद्ध उपयोग की प्रभुशक्ति इतनी प्रगट नहीं की। छठवें में कहाँ की है? सातवें में जाये, तब प्रबल शक्ति प्रगट की है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भले आवे, तथापि यहाँ तीव्रता सातवें में रहने का पुरुषार्थ, उसकी यहाँ उग्रता की बात करते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : प्रभुशक्ति उत्पन्न करे....

पूज्य गुरुदेवश्री : ईश्वरशक्ति—अपने परमेश्वर की शक्ति स्वभावसन्मुख ढलने की।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रभुत्वशक्ति, परमेश्वरशक्ति कहकर। परम पुरुषार्थरूपी प्रभुत्वशक्ति। जो अपने स्वभाव की ओर ढले, राग से छूटकर, ऐसी शक्ति प्रगट न की होने से रागभाग रहता है, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? कहा न? प्रभुशक्ति, प्रबलशक्ति, उग्रशक्ति, प्रचुर शक्ति उत्पन्न नहीं की। यदि प्रभुशक्ति उत्पन्न करे तो सातवाँ गुणस्थान उपयोग शुद्ध वीतरागता हो जाये। तो छठवें गुणस्थान में मुनि संयम, तप, सम्यग्दर्शन सहित होने पर भी राग के लव में नौ तत्त्व की श्रद्धा में, शास्त्र के प्रेम में, अरिहन्त की भक्ति, तीर्थंकर की रुचि का प्रेम रह जाता है तो स्वरूप की उग्र पुरुषार्थ की शक्ति रुक जाती है। समझ में आया? यह राग में रुकी है। अपनी ही कमजोरी है, ऐसा बताते हैं।

मुमुक्षु : उत्पन्न की हुई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्पन्न की नहीं। प्रभुशक्ति स्वभाव में उत्पन्न करनेयोग्य, की नहीं।

मुमुक्षु : की नहीं तो करनी चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : करनी चाहिए परन्तु की नहीं। छठवें गुणस्थान में इतनी है नहीं। छठवें गुणस्थान में इतना राग है तो प्रभुशक्ति उत्पन्न की नहीं, ऐसा कहते हैं। प्रभुत्व सामर्थ्य ईश्वर शक्ति। स्वरूप में ढल जाना, ऐसी ईश्वरशक्ति। परमेश्वरशक्ति, प्रभुशक्ति। आत्मा प्रभु, उसकी प्रभुत्वशक्ति, परमेश्वरशक्ति, उग्ररूप से अपने में ढलना, ऐसा प्रगट किया नहीं तो शुभराग में जुड़ान रहता है। कहो, समझ में आया? यहाँ कर्म की बात की ही नहीं। कर्म का तीव्र उदय रहा, इसलिए छठवाँ गुणस्थान आया और मन्द हो जाये तो सातवें में चला जायेगा। गोम्मटसार में ऐसा निमित्त से कथन है। ऐसा नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, छठवें-सातवें की मुख्य बात है। चौथे-पाँचवें में ऐसा है। चौथे-पाँचवें में भी जितना राग में आता है, उतनी प्रभुत्वशक्ति रुक गयी है। उग्र प्रभु का

पुरुषार्थ पाँचवें गुणस्थानयोग्य प्रभुता नहीं तो चौथा रहता है। सातवें के योग्य प्रभुता नहीं तो छठवें में रहता है। समझ में आया? सातवें के योग्य प्रभुत्वशक्ति का पुरुषार्थ नहीं तो पाँचवें में ही रहे और सातवें के योग्य प्रभुशक्ति का पुरुषार्थ नहीं तो छठवें में रहता है। स्वयं के कारण से ही रहता है। उसमें आता है न कहीं भाई, क्या? ज्ञान... आता है कि भाई छठवें में जाते हैं, वह इस कारण से पुरुषार्थ की मन्दता है, इसलिए आते हैं। दीपचन्दजी। दीपचन्दजी में आता है।

मुमुक्षु : ज्ञानदर्पण।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानदर्पण में। वहाँ कहा है, कोई ऐसा कहता है कि छठवें गुणस्थान में संज्वलन का तीव्र राग आया इसलिए आये, मन्द हुआ तो सातवें में आये। झूठ बोलते हैं। ऐसा लिखा है उसमें। पाठ ऐसा नहीं। समझ में आया? यह ज्ञानदर्पण में है। दीपचन्दजी ने बनाया है न, यहाँ से लिया है।

अपने यहाँ छठवें गुणस्थान की मुख्य बात है। चौथे-पाँचवें में भी जितना राग रहता है, उतनी-उतनी प्रभुशक्ति की पुरुषार्थ की कमी है। दूसरा कोई कारण नहीं कि चारित्रमोह अवरोधक है, इसलिए मैं रुक गया हूँ। वह तो निमित्त का कारण है। अपनी परमेश्वरशक्ति उग्र पुरुषार्थ नहीं तो चौथे गुणस्थान में अव्रत में रुका है। समझ में आया? उग्र पुरुषार्थ नहीं, सातवें के योग्य पुरुषार्थ पहले होना चाहिए, तो पाँचवें में रुका है और उग्र पुरुषार्थ तीव्र नहीं तो छठवें में राग में रुका है। बस! यह बात है। राजमलजी! है इसमें? देखो! प्रभुशक्ति अपनी शक्ति से, अपने वीर्य के कारण। पर का कारण नहीं। पर का तो निमित्त का ज्ञान कराने की बात है।

मुमुक्षु : इतनी अधिक सरल बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहते थे, कल आया था। ओहोहो! इतनी सरल बात है और अरे..! स्वीकार तो करो। इतनी उपादान-निमित्त की बात सरल है। आया था कल। निमित्त से होता है, ऐसी बात... आहाहा! अरे..! भगवान! आहाहा! निमित्त तो, प्रभु! वह तो अपनी पर्याय का पुरुषार्थ का काल है, इसलिए होता है, तब निमित्त सामने है, इसलिए उसे निमित्त कहा जाता है। इसके अतिरिक्त दूसरी चीज़ आत्मा में नहीं,

भाई! तुझे खबर नहीं, क्या करे? समझ में आया? भगवान भी इतना सामर्थ्यवान है न वह भी?

मुमुक्षु : प्रभुशक्ति....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रभुशक्ति उसकी है। प्रभु से भी माने नहीं। प्रभुत्वशक्ति की उल्टी गति साक्षात् परमेश्वर की भी मानता नहीं। यह तो व्यवहारचारित्र... व्यवहारचारित्र चिल्लाहट मचाते हैं, हों! अरे! भगवान! व्यवहारचारित्र कब होता है? प्रभु! इसकी खबर नहीं। यह व्यवहारचारित्र ऐसा कि गणधरों ने पालन किया, तीर्थंकरों ने पालन किया, कुन्दकुन्दाचार्य ने पालन किया। प्रभु! राग का पालन मुनि को होता है? यहाँ तो कहते हैं कि हमारी शक्ति मन्द है, इसलिए हमारे पंच महाव्रत के राग में हम रुक गये हैं। पाले क्या? पालन करना, रक्षा करनी है इसकी? व्यवहारनय से अशुभराग नहीं तो शुभराग पालता है, पंच महाव्रत पालता है, अट्ठाईस मूलगुण पालता है, ऐसा व्यवहारनय से कहने में आता है। समझ में आया? आहाहा! अरे! वीतरागमार्ग में राग को पालना, पोषण करना? पंपाळवो कहते हैं तुम्हारे? पोषण करना। होता अवश्य है और व्यवहार से ऐसा भी कहने में आता है। शुद्ध दृष्टिपूर्वक शुभराग व्यवहार उसका निमित्त देव-गुरु-शास्त्र है। व्यवहार से उपादेय है, ऐसा भी कहा जाता है। परन्तु निश्चय में उपादेय नहीं, ऐसा निर्णय किये बिना व्यवहार से उपादेय का आरोप भी उसे नहीं आता। आहाहा! क्या कहा? कहो, समझ में आया?

प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की वह ज्ञानी जीव कदाचित् शुद्धात्मभावना को अनुकूल,... देखो! धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि छठवें गुणस्थानवाले मुख्य (और) गौण पाँचवें-चौथेवाले। **शुद्धात्मभावना को अनुकूल, जीवादिपदार्थों का....** अनुकूल का अर्थ क्या? निमित्त। निमित्त को अनुकूल कहते हैं और नैमित्तिक को अनुरूप कहते हैं। निमित्त को अनुकूल कहते हैं, नैमित्तिक को अनुरूप कहते हैं। जैसे घड़ा बनने में निमित्त कुम्हार अनुकूल है और घड़े की पर्याय निमित्त को अनुरूप है। समझ में आया? क्या? घड़ा बनता है, उसकी पर्याय में कुम्हार अनुकूल कहने में आया है। वह निमित्त है, इसलिए अनुकूल कहा। और वह निमित्त में घड़े की पर्याय अनुरूप है। स्वयं से बनी है, वह निमित्त को अनुरूप है। उसका जो निमित्त है, उसे यह नैमित्तिक अनुरूप है। समझ में आया? नैमित्तिक

को अनुरूप कहते हैं और निमित्त को अनुकूल कहते हैं। बस यह व्याख्या। यह समयसार की ८६ गाथा। समयसार की ८६वीं गाथा में यह व्याख्या है। लिखा है न?

तो यहाँ अनुकूल शब्द का अर्थ ऐसा लेना कि **कदाचित् शुद्धात्मभावना को अनुकूल,...** अनुकूल का अर्थ निमित्त। और अनुकूल का अर्थ उससे वृद्धि होती है, ऐसा नहीं। **जीवादिपदार्थों का प्रतिपादन करनेवाले...** समझ में आया? यह अनुकूल है उसमें। यह तो बहुत व्याख्या हो गयी, ८६वीं गाथा में से नहीं? यह आया, देखो। ८६ (गाथा, समयसार) **कुम्हार घड़े की उत्पत्ति में अनुकूल...** कुम्हार घड़े के सम्भव को—सम्भव अर्थात् उत्पत्ति को **अनुकूल अपने व्यापारपरिणाम को—जो कि अपने से अभिन्न है और अपने से अभिन्न परिणतिमात्र क्रिया से किया जाता है उसे—करता हुआ प्रतिभासित होता है...** कुम्हार उसकी पर्याय का कर्ता प्रतिभासित हो।

परन्तु घड़ा बनाने के अहंकार से भरा हुआ होने पर भी (वह कुम्हार) अपने व्यापार के अनुरूप... कुम्हार की निमित्तता घट की पर्याय है, उसमें अनुकूल और उसे अनुरूप वह पर्याय है। घट की पर्याय निमित्त को अनुरूप है। देखो! **भरा हुआ होने पर भी (वह कुम्हार) अपने व्यापार के अनुरूप ऐसे मिट्टी के घट-परिणाम को—जो कि मिट्टी से अभिन्न है और मिट्टी से अभिन्न परिणतिमात्र क्रिया से किया जाता है उसे—करता हुआ प्रतिभासित नहीं होता...** प्रतिभासित नहीं होता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिट्टी की पर्याय—घट की पर्याय। घट की पर्याय, यह निमित्त को अनुरूप है। यह पहले कहा था न! समझ में आया? यह रोटी बनती है रोटी। दडा नहीं करते ऐसे? होता है न फुलका? कपड़ा है, वह निमित्त अनुकूल और उसे अनुरूप दड़ा होना वह निमित्त को अनुरूप ही है। रोटी ऐसे फूलती है न? वह निमित्त को अनुकूल। निमित्त को अनुकूल कहते हैं और नैमित्तिक को अनुरूप, निमित्त को अनुरूप कहते हैं। निमित्त को वह अनुरूप है, निमित्त को वह अनुरूप है। उससे अनुरूप बना है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह ८६ गाथा है इसमें। कर्ता प्रतिभासित नहीं होता, प्रतिभासित नहीं होता, कहते हैं। कर्ता प्रतिभासित नहीं होता।

मुमुक्षु : निमित्त-नैमित्तिक?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त अनुकूल, नैमित्तिक को निमित्त अनुकूल, निमित्त को नैमित्तिक अनुरूप। समझ में आया? यह तो बहुत बार आ गया है, आत्मधर्म में सब बात आ गयी है।

यह यहाँ कहा कि अनुकूल। कौन अनुकूल? सम्यग्दृष्टि ज्ञानी चारित्रवन्त आदि को निमित्तरूप से जीवादि पदार्थ का प्रतिपादन करनेवाले आगम, उसकी प्रीति, वह विकल्प उसे अनुकूल है, निमित्त है। कुगुरु, कुशास्त्र का वाँचन आदि उसे अनुकूल नहीं। इस अपेक्षा से यहाँ अनुकूल कहने में आया है। कहो, समझ में आया? **जीवादिपदार्थों का प्रतिपादन करनेवाले आगम....** अर्थात् कि नौ पदार्थ, छह द्रव्य, पंचास्तिकाय (कहे)। दूसरे आगम नहीं अज्ञानी के कि जिसमें एक ही द्रव्य कहा है और एक ही आत्मा है। जो **जीवादिपदार्थों का प्रतिपादन करनेवाले आगमों के प्रति रुचि (प्रीति)....** क्योंकि वह नौ तत्त्व, छह द्रव्य का विकल्प ही शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान को अनुकूलरूप निमित्त है। दूसरे अनुकूल निमित्त नहीं। कहो, समझ में आया?

कदाचित् (जिस प्रकार कोई रामचन्द्रादि पुरुष देशान्तरस्थित सीतादि स्त्री के पास से आए हुए... लो, सीताजी के पास से आये हुए। बहुत प्रेम है न, यह दृष्टान्त में बताया है। **मनुष्यों को प्रेम से सुनता है,...** क्या है सीताजी का (समाचार)? क्या करती हैं वहाँ? रावण के वन में रहती है। वहाँ क्या करती है? लाये यह बात। सीताजी कैसे है? प्रेम से वह बात सुनता है। **उनका सन्मानादि करता है...** आओ... आओ... आओ। परदेश से वह आया हो स्त्री की खबर लेकर। परदेश में। यहाँ तो गाँव का हरिजन हो या चमार हो। परन्तु क्या आया? अरे...! भाई! सेठसाहेब! आपकी पत्नी के समाचार लाया हूँ। मैं बहुत दिनों से खोज करता हूँ। आपका स्थान मिलता नहीं था। ओहोहो! आओ... आओ... यहाँ तो सामने भी देखता न हो गाँव में। आज मेरे यहाँ भोजन करना, हों! क्या है? बाई ने ऐसा कहा है—आपकी पत्नी है, उसने ऐसा (कहलवाया है)। यह दृष्टान्त देते हैं, हों! **उनका सन्मानादि करता है और उन्हें दान देता है....** यहाँ भोजन करना, हों! आज यहाँ करना। अरे! नहीं, नहीं बापू! मैं तो चमार हूँ। भले चमार हो तो नीचे बैठना। यहाँ जीमना है। कोई बाधा नहीं।

उसी प्रकार... यह तो दृष्टान्त हुआ। **निर्दोष-परमात्मा तीर्थंकरपरमदेवों के और गणधर-देव-....** गणधरदेव, उनका चारित्र, भगवान का चारित्र पुराण। भरत राजा का महापुराझा **सगर (चक्रवर्ती)-राम-पाण्डवादि महापुरुषों के चरित्रपुराण...** वह भगवान के घर से आयी हुई बात है। समझ में आया? प्रतिनिधि है, ऐसा एक बार कहा था। हम तो भगवान के प्रतिनिधि हैं। भगवान ऐसा कहते हैं, यह शास्त्र लेकर हम आये हैं। सुनो! समझ में आया? ऐसी... आती है। यह द्रौपदी के अधिकार में। **चरित्रपुराण शुभ धर्मानुराग से सुनता है...** देखो! सम्यग्दृष्टि मुनि, श्रावक या चौथे गुणस्थान में तीर्थंकर परमदेव की बात! ओहो! तीन लोक के नाथ परमात्मा कहाँ से आये? कहाँ जन्मे? कहाँ केवलज्ञान पाये? कैसी दिव्यध्वनि? ऐसे पुराण सुनता है। गणधरदेव के पुराण सुनता है, चक्रवर्ती, राम, पाण्डव आदि महापुरुषों के धर्मानुराग से सुनता है। देखो! धर्मानुराग से। ओहो! भगवान परमात्मा। हमारे भी पूर्ण होना है। ऐसे परमात्मा की बात सुनाओ, क्या है?

कदाचित्... अब जरा यहाँ विशेष लेते हैं। **गृहस्थदशा में...** गृहस्थदशा में इतनी बात। अब विशेष यहाँ विशिष्टता है। **भेदाभेदरत्नत्रयपरिणत आचार्य-उपाध्याय-साधु के पूजनादि करता है...** अब विशिष्टता यहाँ है। पाठ में जयसेनाचार्य की टीका में 'भेदाभेदरत्नत्रय भावनारता' शब्द पड़ा है। 'भेदाभेदरत्नत्रय भावनारता' परन्तु इसका अर्थ ऐसा है कि भेदाभेदरत्नत्रय परिणत। यहाँ क्या विशिष्टता है? छठवें गुणस्थान में भेदाभेदरत्नत्रय परिणत दशा है, ऐसा सिद्ध किया है। अभेदरत्नत्रय बाद में होगा। (ऐसा नहीं) 'भावनारता' शब्द में फिर पण्डितजी ने भेदाभेदरत्नत्रय भावना। भावना विकल्प नहीं। बहुत जगह आता है। भावना अर्थात् परिणति, एकाग्रता है। उसमें रता अर्थात् लीन है। तो यहाँ क्या सिद्ध करना है? कि मुनि छठवें गुणस्थान में भेद व्यवहाररत्नत्रय और अभेद निश्चयरत्नत्रय परिणत। भाई! यह छठवें गुणस्थान में अभेदरत्नत्रयपरिणत है यहाँ। यहाँ परिणति कहा है या नहीं? 'भावनारता' कहा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विकल्प उठता है, वह व्यवहार। निश्चयपरिणति वह अभेद। पूर्ण भले सातवें में होती है। परन्तु यहाँ विशिष्टता क्या है? उसका पूजन आदि

करते हैं और दान देते हैं। तो दान कब दे? कि विकल्प में आये, आहार लेने खड़े हों तब न? परन्तु साथ में छठवाँ-सातवाँ आता है। समझ में आया? ....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भावना का यह एक ही अर्थ है। भावना कहो या परिणत कहो। भावना का अर्थ कहीं विकल्प नहीं। यह तो पण्डितजी ने स्पष्टीकरण स्पष्ट करने के लिये किया है। कोई भावना का अर्थ ऐसा ले लेवे कि भावना करते हैं... भावना करते हैं। समझे? ऐसा नहीं है।

भेदाभेद व्यवहाररत्नत्रय, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नौ तत्त्व के भेद की श्रद्धा, शास्त्र की रुचि इत्यादि भेद व्यवहाररत्नत्रय और आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान अभेदरत्नत्रय **परिणत आचार्य-उपाध्याय-साधु के पूजनादि करता है और उन्हें दान देता है—** जरा उसमें ऐसा भी ले सकते हैं... यह आया था न भाई? कि पंच महाव्रत प्रमत्त-अप्रमत्त दशा में। आया था न? प्रमत्त-अप्रमत्तदशा में पंच महाव्रत, ऐसा आया था न? इसी प्रकार कोई यहाँ भेदाभेदरत्नत्रय परिणत अर्थात् अभेद सातवें में हो जाता है, भेद यहाँ, ऐसे परिणत दोनों में, उसे दान देता है, तब भले उसे विकल्प हो। समझ में आया? परन्तु वह छठवें-सातवें में...

मुमुक्षु : घड़ीक में आ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यहाँ अभेदरत्नत्रय का सातवाँ गुणस्थान आता है, छठवें में भी भेदरत्नत्रय होने पर भी, अभेदरत्नत्रय में जाना है तो अभेदरत्नत्रय की भावना, ऐसा कहने में आता है। क्या?

मुमुक्षु : गृहस्थ अवस्था में....

पूज्य गुरुदेवश्री : गृहस्थ अवस्था में ऐसे पुरुषों को दान देता है, ऐसा कहना है।

मुमुक्षु : गृहस्थ अवस्था में भेदाभेद....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। 'गृहस्थदशा में' इतना रखना। वहाँ रुक जाना। कहाँ?

मुमुक्षु : गृहस्थ अवस्था में।

पूज्य गुरुदेवश्री : रुक जाना। अब यह गृहस्थदशा में गृहस्थ क्या करता है, यह लेना। **भेदाभेदरत्नत्रयपरिणत आचार्य-उपाध्याय-साधु के पूजनादि करता है...** कौन? गृहस्थदशा में गृहस्थ।

मुमुक्षु : ....दोनों को लागू पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। उनको दोनों को। अब यह गृहस्थ को अकेले को लागू पड़ता है। मुनि तो कहीं आहारदान देते नहीं। तो पहले यह सामान्य बात की थी। नौ तत्त्व की रुचि, भगवान की भक्ति आदि सुनना। वह तो दोनों को है। यह दान और पूजन करना, वह तो एक को—गृहस्थ को (होता है)। समझ में आया?

आचार्य-उपाध्याय-साधु के पूजनादि करता है... भक्ति, स्तवन **और उन्हें दान देता है...** भेदाभेदरत्नत्रयपरिणत मुनियों को कौन दान देता है? गृहस्थ अवस्था में रहे हुए श्रावक। **इत्यादि शुभभाव करता है।** देखो! शुभभाव करता है। व्यवहारनय से तो ऐसा ही आता है या नहीं? उसका परिणमन है न? स्वयं की पर्याय में शुभभाव परिणमन है तो शुभभाव करता है, ऐसा कहने में आता है। कर्तृत्वबुद्धि से मैं करूँ, ऐसी श्रद्धा की अपेक्षा से करता नहीं। परन्तु ज्ञान की अपेक्षा से परिणमन है तो ज्ञान जानता है कि मुझमें परिणमन है तो शुभ को करता है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? भारी अटपटी बात!

मुमुक्षु : ....परिणमन होता है और कर्ता नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणमन होता है, परन्तु मैं करूँ, ऐसी बुद्धि नहीं है। दृष्टि में उसकी पर्याय पर बुद्धि नहीं है। परन्तु पर्याय में परिणमन तो उसका ही है। समझ में आया? शुभराग तो परिणमन जीव का ही है। चौथे में हो, पाँचवें में हो, छठवें में हो, कोई जड़ का नहीं है। वह तो स्वभाव की दृष्टि से राग को संयोगीभाव कहा, वह स्वभाव में तन्मय नहीं। तीन काल—तीन लोक में अपना जो शुद्ध स्वभाव है, उसमें राग तन्मय नहीं, इस अपेक्षा से संयोगभाव कहा है। बाकी तो उसकी पर्याय में अनित्य तादात्म्य, अनित्य तादात्म्य, नित्य स्वभाव में तादात्म्यरूप नहीं। समझ में आया? ओहोहो!

इसका कहा समझ में आया भाई! जैसे वह प्रमत्त-अप्रमत्त। बस, भाई! अर्थात्

छठवें में कदाचित् न ले अभेद में। क्योंकि जैसे वह प्रमत्त-अप्रमत्त में पाँच महाव्रत आदि लिये हैं, तो वैसे यह भेद-अभेद में इसका लेना, ऐसा कहते हैं। भले अभेद सातवें में आवे और ... तो आहारदान। और उसमें भी अभेद तो आ जाता है न? आहारदान के समय भी मुनि को सातवाँ गुणस्थान अभेद आ जाता है। तो साधारण बात करके भेदाभेदरत्नत्रयपरिणत...

मुमुक्षु : इकट्ठा करके भेदाभेद....

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, करके मुनि को आहार देता है, पूजा करता है, ऐसा कहा गया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परिणति तो है यहाँ। यहाँ तो वह अभेदरत्नत्रय का सवाल आवे न? अभेदरत्नत्रय का सवाल आवे, तब सप्तम गुणस्थान आता है और यहाँ...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : न कहा जाता ऐसा। छठवें में अभेदरत्नत्रय परिणत सातवें की अपेक्षा से नहीं कहा जाता।

मुमुक्षु : ....परिणतिवाला कहा जाता है। भेदरत्नत्रय...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध परिणति है। अभेदरत्नत्रय को भी साथ में क्यों लिया? इस अपेक्षा से लिया कि जैसे प्रमत्त-अप्रमत्त एक साथ आते हैं न साथ में? तो प्रमत्त-अप्रमत्त के योग्य पंच महाव्रत आदि लिये। हैं तो पंच महाव्रत छठवें में। इसी प्रकार भेदाभेदरत्नत्रय जीव। इसका अर्थ कि क्षण में अभेद आता है, क्षण में भेद आता है। तो परिणत उसे कहा जाता है। अभेद की अपेक्षा से सातवाँ, भेद की अपेक्षा से यहाँ छठवाँ। शुद्ध परिणति होने पर भी।

दान देता है—इत्यादि शुभभाव करता है। यहाँ छठवें गुणस्थानवाले आदि मुनि को गृहस्थ जो दान देता है तो शुभभाव करता है। **इस प्रकार जो ज्ञानी जीव शुभराग को सर्वथा नहीं छोड़ सकता,...** देखो! सम्यग्दृष्टि चौथे, पाँचवें, छठवें में **शुभराग को सर्वथा नहीं छोड़ सकता, वह साक्षात् मोक्ष को प्राप्त नहीं करता परन्तु देवलोकादि के**

क्लेश की परम्परा को पाकर... शुभभाव से तो स्वर्ग का सुख मिलेगा (कि) जो क्लेश है। समझ में आया? **परम्परा को पाकर...** वहाँ भी ऐसा कहा है प्रवचनसार में, कि पुण्य और पाप दोनों में जो भेद मानता है, एक नहीं मानता, वह घोर अपार संसार में भटकेगा। हिडंती। दोनों एक समान बन्ध है। पुण्यभाव हो या पाप हो। न माने तो घोर संसार हिडंती। समझ में आया? भेद है। व्यवहार से भेद है। परमार्थ से भेद नहीं। शुभकषाय और तीव्र कषाय की अपेक्षा से भेद है। बन्ध की अपेक्षा से बिल्कुल भेद नहीं। ऐसा न माने और पुण्य से कुछ लाभ होता है, पाप से नुकसान होता है, ऐसा माने तो दृष्टि विपरीत है। वहाँ घोर संसार लिया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हो। नरक में सुखी रहता है, वह तो दृष्टि की अपेक्षा से सुखी है। अशुभराग और शुभराग की अपेक्षा से सुखी नहीं। वह तो जितना राग टला है, उस अपेक्षा से सुखी है। विषय का जितना राग रहा, उस अपेक्षा से तो दुःखी है। नरक में भी दुःखी है और स्वर्ग में भी दुःखी है। जबकि यह तो आत्मा की शान्ति की मुख्यता लेनी हो तो नरक में भी गटागटी। (ऐसा) आता है या नहीं? यह तो शुद्धता की अपेक्षा की मुख्यता से गटागटी (कहा है)। बाकी वहाँ नरक में भी दुःख है। तीन कषाय है, वह राग है, विकार है, आकुलता है। भगवान अनाकुल के ओर की शक्ति उतनी प्रबल नहीं तो रुकता है। दूसरे के कारण से है नहीं। ओहोहो! श्रेणिक राजा तीर्थंकर होनेवाले हैं (उनको) दुःख तो है, तीन कषाय का दुःख है। समझ में आया?

मुमुक्षु : परम्परा का शब्दार्थ करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा अर्थात् राग छोड़कर फिर शुद्ध हो जायेगा। परम्परा यह एक के बाद एक। राग पहले अशुभ छूटा, फिर शुभ छोड़कर शुद्ध हो जायेगा।

मुमुक्षु : करते-करते होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं...नहीं... नहीं। करते-करते की बात ही कहाँ है? कहा न! अशुभ छोड़ा और शुभ हुआ, शुभ छोड़कर शुद्ध हो जाएगा। यह आरोप दिया है। परम्परा का अर्थ व्यवहार है। यहाँ व्यवहार की ही बात है न! परम्परा निश्चय की कहाँ है? निश्चय में तो साक्षात् होता है।

फिर चरम देह से निर्विकल्पसमाधिविधान.... देखो! छठवें-सातवें का ... समझे? छठवें की क्रिया है या सातवें की क्रिया है। उसमें राग तो रहा है। पुण्यबन्ध हो गया। गये वहाँ देवलोकादि (में)। देवलोकादि का अर्थ क्या? देवलोक में गया, वहाँ भी चक्रवर्ती आदि पद अरे..! तीर्थंकर हो तो भी इतना राग जब तक गृहस्थाश्रम में अव्रतरूप से रहे हैं, इतना भी राग दु:ख है। तीर्थंकरों को भी अव्रतरूप से रहना, इतना आकुलता का दु:ख है। **निर्विकल्पसमाधिविधान द्वारा...** देखो!

मुमुक्षु : इसका नाम परम्परा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परम्परा। पहले शुभराग को छोड़कर **चरम देह से निर्विकल्प...** विकल्परहित **निर्विकल्पसमाधिविधान द्वारा विशुद्धदर्शन-ज्ञानस्वभाववाले...** विशुद्ध दर्शन-ज्ञानस्वभाववाले **निजशुद्धात्मा में स्थिर होकर...** देखो ऐसा। राग में अस्थिरता थोड़ी थी, वह छूट गयी। **विशुद्धदर्शन-ज्ञानस्वभाववाले निजशुद्धात्मा में स्थिर होकर उसे (मोक्ष को) प्राप्त करता है।** अस्थिरता है, उसे छोड़कर स्थिर होकर प्राप्त करेगा, इस अपेक्षा से परम्परा कहा गया है। अस्थिरता को छोड़कर करेगा। समझ में आया? अरे! भगवान!

मुमुक्षु : परम्परा सन्तति?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ, सन्तति कहो। परम्परा क्लेश की सन्तति, आया न इसमें? दोष की सन्तति नहीं आया? १६८। **रागलवमूलक दोष परम्परा का निरूपण...** आया या नहीं? अनर्थसन्तति, देखो! यह १६८ की अन्तिम लाईन। **यह अनर्थसन्तति का मूल रागरूप क्लेश का विलास ही है।** टीका का अन्तिम शब्द। देखो! यह शुभराग तो अनर्थसन्तति का मूल रागरूप क्लेश का विलास है। परन्तु यहाँ आरोप करके (कहा)। ज्ञानी के राग की वहाँ बात की है। यही यहाँ ज्ञानी के राग की परम्परा का आरोप देकर बात की है।

मुमुक्षु : छोड़ देना।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ देना, यह अपेक्षा से। यह बात पहले निश्चित कर दी है या नहीं? ज्ञानी का राग भी अनर्थ की सन्तति है। राग... राग... राग... राग... राग... समझ में आया?

क्या कहते हैं? देखो! **परमवैराग्यभूमिका का आरोहण करने में समर्थ ऐसी प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की होने से,...** उत्पन्न नहीं की होने से। अपना उग्र पुरुषार्थ करके वीतराग सप्तम भूमिका के योग्य दशा उत्पन्न नहीं की होने से **'धुनकी को चिपकी हुई रुई'...** यह न्याय पहले आ गया था। पिंजण पिंजण कहते हैं न? **'धुनकी को चिपकी हुई रुई' के न्याय से, नव पदार्थों...** देखो! लो, यहाँ नौ पदार्थ विकल्प की श्रद्धावाले लिये हैं, हों! नौ पदार्थ स्वपरविकल्प। **अर्हंतादि की रुचिरूप (प्रीतिरूप)....** पंच परमेष्ठी की रुचिरूप प्रीति। लो, वे कहे, नहीं। ज्ञानी को सबकी रुचि है। ऐसा लिखा है। रुचि क्या? यहाँ तो परसमय राग की रुचि की अपेक्षा से रुचि कहा है। वहाँ दृष्टि की अपेक्षा से है, ऐसी राग की रुचि ज्ञानी को है?

मुमुक्षु : रुचि अर्थात् तो परसमय हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं; वह रुचि अर्थात् राग। परन्तु यह तो वे कहते हैं न कि व्याख्या में आया था न कि ज्ञानी को राग की रुचि नहीं। तो कहे, नहीं। ज्ञानी को सबकी रुचि है। ऐसा आया है सामने लेख।

यहाँ कहते हैं कि **अर्हंतादि की रुचिरूप (प्रीतिरूप) परसमयप्रवृत्ति का परित्याग नहीं कर सकता,...** समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। निश्चय। स्वरूप निश्चय से ऐसा है। परन्तु अपूर्ण है। भार अर्थात् बोझा ऐसा नहीं लेना वहाँ। ऐसी स्थिरता इतनी छठवें गुणस्थान के योग्य संयम और तप हो गया है, ऐसा। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....परसमय है?

मुमुक्षु : .... दो नम्बर की गाथा में।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं। वह तो अकेला मिथ्यात्व स्थूल परसमय। यह सूक्ष्म परसमय। पहले से चला आया है न? यह सूक्ष्म परसमय की बात चलती है। सम्यग्दर्शन-

ज्ञान-चारित्रपूर्वक जितना राग है, उतनी सूक्ष्म परसमयप्रवृत्ति है। उतना टल जाये तो अकेले परमात्मा मोक्षदशा अथवा सातवें गुणस्थानयोग्य आदि मोक्षमार्ग हो जायेगा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तो वहाँ स्थूल मिथ्यादृष्टि है। जयसेनाचार्य का भी आ गया अपने। उसे मिथ्यादृष्टि कहा। पहले आ गया न? ... आया न? माया, निदान (मिथ्या) शल्य आदि। उसमें भी आया, देखो! मिथ्यात्वसहित हो तब तो स्थूल-स्थूल परसमय है। उसे धर्म मान ले, राग से मोक्ष मान ले तो मिथ्यादृष्टि का स्थूल परसमय है। राग से नहीं मानना। समझ में आया? यह तीन है न—माया, निदान, मिथ्यात्व?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है। उसमें मिथ्यादृष्टि को ही लिया है। है न उसमें?

'माया, मिथ्या, निदान, शल्य त्रय आदि समस्त विभावरूप... रोका नहीं जा सकता।' समझ में आया? जयसेनाचार्य की टीका में। यह तो आ गया है। अपने यहाँ व्याख्यान में स्पष्टीकरण आ गया है। राग से परमार्थ धर्म माननेवाले, वे मिथ्यात्व परसमय—स्थूल परसमय है और राग से मुक्ति नहीं माननेवाले, (तथापि) परिणति में अस्थिरता है, वह सूक्ष्म परसमय है। अकेला स्वसमय पूर्ण वहाँ राग का लव नहीं रहता। समझ में आया? आहाहा!

वास्तव में साक्षात् मोक्ष को प्राप्त नहीं करता... लो! नौ पदार्थों, अरिहन्तादि। अब यहाँ परम्परा करेगा, इसलिए ऐसा अर्थ लेते हैं लोग। समझे? व्यवहार समकित है, वह सब नौ पदार्थ की श्रद्धा। यह चौथे, पाँचवें, छठवें में परम्परा करेगा। वह तो निर्विकल्प दृष्टि की ज्ञानदशा बापू! आत्मा के अनुभव बिना सम्यग्दर्शन होता ही नहीं। अकेली श्रद्धा, श्रद्धा, माने, वह श्रद्धा कहाँ है श्रद्धा? समझ में आया? स्वविषय अन्तर में दृष्टि में आये बिना वह अनन्त काल की परिणति पलटे बिना राग की एकताबुद्धि अनन्त काल की है, उसमें नौ तत्त्व कि यह... यह... यह... (धारणा में लिया), यह तो अनादि काल की श्रद्धा है। राग से छूटकर निर्विकल्प ज्ञायकमूर्ति अकेला चैतन्य है, ऐसा वेदन अनुभव में आये बिना निश्चय चौथा गुणस्थान होता नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह मूल रकम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मूल रकम है। मूल रकम में विवाद उठा। नौ तत्त्व की श्रद्धा करो, श्रद्धा करो, अमुक करो। यहाँ तो कह देंगे बहुत कलश टीकाकार तो। यह जीव का विचार आदि भी बन्ध का ही कारण है। विचार शब्द से विकल्प लेना, हों, वहाँ। विचार तो कहीं निर्विकल्प हो गया? राग आत्मा का, यह आत्मा... यह आत्मा... यह आत्मा... बन्ध का कारण है। विकल्प का स्थान स्वभाव में कहाँ है? यह, यह नहीं—ऐसा वस्तु में कहाँ है? वस्तु में तो अकेला ज्ञायक है। यह आत्मा, (ऐसा) विकल्प उठा। यह नहीं, यह भी विकल्प है, बन्ध का कारण है। समझ में आया?

कहते हैं कि **परसमयप्रवृत्ति का परित्याग नहीं कर सकता,...** अर्थात् सूक्ष्म हो सूक्ष्म। **वह जीव वास्तव में साक्षात् मोक्ष को प्राप्त नहीं करता...** साक्षात् वर्तमान एकदम केवलज्ञान प्राप्त नहीं करता। **किन्तु देवलोकादि के क्लेश की प्राप्तिरूप...** शुभराग से बीच में देवलोकादि मिलेंगे, चक्रवर्तीपद मिलेगा, तीर्थंकरपद मिले तो भी राग है न उतना? दो भव हुए या नहीं? एक स्वर्ग में गया और वहाँ से एक मनुष्य में आयेगा। तो राग की परम्परा उसमें आयी या नहीं? दो भव हुए। वह राग बन्ध है, वह मुक्ति का कारण है ही नहीं।

देखो! **देवलोकादि के क्लेश की...** आदि शब्द है न? **प्राप्तिरूप परम्परा द्वारा उसे प्राप्त करता है।** पश्चात् राग का जब अभाव करेगा, अस्थिरता छोड़ेगा, स्थिरता करेगा, तब प्राप्त करेगा। लो, १७० गाथा हुई। कहो, समझ में आया?

अब विशेष। पहले इस राग को अनर्थसन्तति का कारण कहा था। बीच में दूरतरं कहकर परम्परा कहा, अब और यह साक्षात् मोक्ष के अन्तराय का कारण है, ऐसा बताते हैं। समझ में आया? (यह) राग बीच में आता है, अन्तराय है, साक्षात् मोक्ष के तो अन्तराय का कारण है।

१७१ (गाथा)।

अरहंतसिद्धचेदियपवयणभत्तो परेण णियमेण।
जो कुणदि तवोकम्मं सो सुरलोगं समादियदि।।१७१।।

टीका :- यह, मात्र अर्हंतादि की भक्ति जितने राग से उत्पन्न होनेवाला... अर्हंत आदि की भक्ति। समझ में आया ? स्पष्टीकरण नहीं अन्दर ? अन्दर नहीं, नहीं ? शब्द का स्पष्टीकरण नहीं। पहले अन्वयार्थ लो, अन्वयार्थ लो इसमें है। नीचे नहीं है।

अन्वयार्थ :- जो (जीव), अर्हंत,... की भक्ति, **सिद्ध,...** भगवान की भक्ति। वह परसिद्ध लेना। पहले में स्वसिद्ध आया था। यह चैत्य लेना। अर्हंतादि पाँच भगवान की प्रतिमायें **और प्रवचन (शास्त्र) के प्रति भक्तियुक्त प्रवर्तता हुआ...** देखो ! यह भगवान के शास्त्र के प्रति भक्ति, वह भी राग है। ... लेना। अर्हंतादि पाँच भगवान की प्रतिमायें और प्रवचन / शास्त्र इनके प्रति भक्तियुक्त वर्तता है। देखो ! यह भगवान के शास्त्र के प्रति भक्ति, वह भी राग है। आहाहा !

के प्रति भक्तियुक्त प्रवर्तता हुआ, परम संयम सहित... भले परम संयमसहित हो। **तपकर्म (-तपरूप कार्य) करता है...** इच्छानिरोध से अमृत का अनुभव विशेष करता हो, **वह देवलोक को संप्राप्त करता है।** इतने शुभराग से स्वर्ग में जायेगा। यह अन्तराय करनेवाला ... है। यह बात विशेष कहेंगे... अन्तराय का कारण। स्वयं अन्तराय।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

श्रावण कृष्ण ११, बुधवार, दिनांक - ०२-०९-१९६४, गाथा-१७१-१७२, प्रवचन-१७

मोक्षमार्ग का विस्तार। इसमें अब १७१ और अन्त में १७२ कहकर इसका योगफल पूरा करेंगे। १६४ गाथा से शुरु किया है कि मोक्षमार्ग बन्ध और मोक्ष दोनों का कारण है। मोक्षमार्ग है, वह दोनों—बन्ध का भी कारण है और मोक्ष का भी कारण है।

मुमुक्षु : एक का एक भाव?

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्षमार्ग। एक का एक भाव नहीं, मोक्षमार्ग। निश्चयमोक्षमार्ग है, वही यथार्थ मोक्ष का कारण है। व्यवहारमोक्षमार्ग है, वह बन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : .... मोक्ष का कारण क्यों कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से कहा। निमित्त देखकर व्यवहार कहा, यह बात बहुत आ गयी है। १६४ से शुरु हुआ है। समझ में आया? देखो न! १६४ में ऐसा कहा कि मोक्षमार्ग है, वह '**बंधो व मोक्खो वा**'।

मुमुक्षु : उससे बन्ध होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बराबर है, उससे बन्ध होता है। परन्तु मोक्षमार्ग से बन्ध होता है न! किस मोक्षमार्ग से? परन्तु यह लिखा नहीं। एक ही भाव से बन्ध और एक ही भाव से मोक्ष ऐसा होता है? ऐसा नहीं होता, कभी तीन काल में। मोक्षमार्ग कहना और बन्ध भी कहना और मोक्ष का कारण भी कहना तो दो प्रकार का मोक्षमार्ग हुआ। एक व्यवहारमोक्षमार्ग, एक परमार्थ निश्चय अभेद रत्नत्रयमोक्षमार्ग। व्यवहारमोक्षमार्ग बन्ध का कारण है। वह तो यहाँ चला है। इस कारण तो यहाँ बात की है।

देखो, १६४ में यह आया। १६५ में यह आया। यह १६४ की बात हुई। १६५ में ऐसा आया कि **रागलव के सद्‌भाव के कारण परसमयरत कहा जाता है।** यह आया। परसमयरत है उतना। जितना व्यवहार पराश्रित... व्यवहार पराश्रित है, तो वहाँ मोक्षमार्ग निश्चय है, वह स्वाश्रित है। स्वाश्रित से मुक्ति यथार्थ होती है और व्यवहारमोक्षमार्ग आरोप से कहा है, उससे बन्ध होता है। तो वहाँ बन्ध लिया और मोक्ष लिया।

यहाँ क्या लिया, देखो १६५ में। **रागलव के सद्भाव के कारण परसमयरत कहा जाता है।** शुभभाव व्यवहारमोक्षमार्ग भी स्व और परहेतु प्रत्यय जो राग उत्पन्न हुआ है, वह परसमय रत कहने में आया है, १६५ में। और १६६ में **सर्वत्र राग की कणिका भी परिहारयोग्य है,...**

मुमुक्षु : मोक्षमार्ग....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह नहीं। क्योंकि वह परसमय प्रवृत्ति का कारण है। यह तो योगफल लिया अन्त में। अब १६७ में (ऐसा कहा), कि रागरेणु अल्प भी छोड़नेयोग्य है। क्यों? यह अन्तिम बात, अन्त में शब्द लिखा है। **अर्हंतादिक विषयक भी रागरेणु क्रमशः दूर करनेयोग्य है।** अन्तिम लाईन। समझ में आया? और १६८ में तो उसे अनर्थसंतति का मूलकारण कहा। समझ में आया? **अनर्थसन्तति का मूल रागरूप क्लेश का विलास ही है।** यह कहा। तो वह छोड़नेयोग्य है, ऐसा उसमें आ गया। और १६९ में अकेले अपने स्वभाव से मुक्ति होती है, यह बात कही। निर्वाण लिया न? सिद्धभक्ति ली न सिद्ध? अपने स्वभाव के आश्रय से ही श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, निर्विकल्प अभेदरत्नत्रय परिणति से ही वह मुक्ति हुई है, यह १६९ में स्पष्टीकरण किया। १७० में यह स्पष्ट किया... समझ में आया? परम्परा हेतु कहा। उसे यहाँ परम्परा हेतु कहने में आया। क्योंकि राग टलकर क्रम-क्रम से शुद्ध उपयोग होगा, तब मोक्ष होगा।

गाथा - १७१

अरहंतसिद्धचेदियपवयणभत्तो परेण णियमेण।
जो कुणदि तवोकम्मं सो सुरलोगं समादियदि।।१७१।।

अरहंत-सिद्ध-जिनवचन सह जिनप्रतिमाओं के भजन को।
संयम सहित तप जो करें वे जीव पाते स्वर्ग को।।१७१।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो (जीव), [अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनभक्तः] अर्हंत, सिद्ध, चैत्य (—अर्हंतादि की प्रतिमा) और प्रवचन (-शास्त्र) के प्रति भक्तियुक्त वर्तता हुआ, [परेण नियमेन] परम संयम सहित [तपःकर्म] तपकर्म (-तपरूप कार्य), [करोति] करता है, [सः] वह [सुरलोकं] देवलोक को [समादत्ते] सम्प्राप्त करता है।

टीका :- यह, मात्र अर्हंतादि की भक्ति जितने राग से उत्पन्न होनेवाला जो साक्षात् मोक्ष का अन्तराय उसका प्रकाशन है।

जो (जीव) वास्तव में अर्हंतादि की भक्ति के आधीन बुद्धिवाला वर्तता हुआ [1]परमसंयमप्रधान अतितीव्र तप तपता है, वह (जीव), मात्र उतने रागरूप क्लेश से जिसका निज अन्तःकरण कलंकित (-मलिन) है; ऐसा वर्तता हुआ, विषयविषवृक्ष के [2]आमोद से जहाँ अन्तरंग (-अन्तःकरण) मोहित होता है ऐसे स्वर्गलोक को— जो कि साक्षात् मोक्ष को अन्तरायभूत है उसे—सम्प्राप्त करके, सुचिरकाल पर्यन्त (-बहुत लम्बे काल तक) रागरूपी अंगारों से दह्यमान हुआ अन्तर में सन्तप्त (-दुःखी, व्यथित) होता है॥१७१॥

गाथा-१७१ पर प्रवचन

अब कहा १७१ में।

अरहंतसिद्धचेदियपवयणभत्तो परेण णियमेण।
जो कुणदि तवोकम्मं सो सुरलोगं समादियदि।।१७१।।

---

१. परसंयमप्रधान = जिसमें उत्कृष्ट संयम मुख्य हो ऐसा।
२. आमोद = (१) सुगन्ध; (२) मौज।

इसकी **टीका :- यह, मात्र अर्हंतादि की भक्ति जितने राग से उत्पन्न होनेवाला जो साक्षात् मोक्ष का अन्तराय, उसका प्रकाशन है।** देखो! साक्षात् मोह का अन्तराय है। क्यों देवीलालजी! राग है, राग है। पहले श्रद्धा में तो उसे हेय मानना चाहिए। फिर क्रमश: दूर होता है, यह बताया। और यहाँ कहा अरहन्त, सिद्ध, प्रतिमा, प्रवचन—इतना है न अन्दर? **अर्हंत, सिद्ध, चैत्य (—अर्हंतादि की प्रतिमा) और प्रवचन (-शास्त्र) के प्रति भक्तियुक्त वर्तता हुआ,** इतने राग से उत्पन्न होनेवाला जो साक्षात् मोक्ष का अन्तराय, उसका प्रकाशन है। समझ में आया? लो, उसे व्यवहार से मोक्षमार्ग कहना और साक्षात् मोक्ष का तो अन्तराय कहना।

मुमुक्षु : तो ही उसे व्यवहार कहा जाये न।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो व्यवहार कहलाये न! व्यवहार पराश्रित होता है, निश्चय स्वाश्रित होता है, यह महासिद्धान्त है। तो स्वाश्रित जो मोक्षमार्ग हुआ, वह तो वास्तव में मोक्ष का कारण है। पराश्रित मोक्ष का कारण जो कहा आरोप से, वास्तव में बन्ध का ही कारण है। समझ में आया?

जो (जीव) वास्तव में अर्हंतादि की भक्ति के... तब कोई कहते हैं कि ऐसा भक्ति का बारम्बार कथन आवे तो हम छोड़ देंगे। छोड़ देने की कहाँ बात है यहाँ? तीव्र छोड़े। यह परिणाम तो आते हैं, इसे बन्ध का कारण जानना। फिर श्रद्धा और निर्मल सम्यग्दर्शन बिना चारित्र की शुद्धि आगे वृद्धि होती नहीं। यह बात कहते हैं। छोड़े क्या? वह तो परिणाम क्रमसर आनेवाले हों, वे आये बिना रहते नहीं। समकिती, मुनि को भी आते हैं। परन्तु उसका फल क्या है और उसका स्वरूप क्या है, यह ख्याल में-दृष्टि में लेनेयोग्य है, ऐसा बताते हैं।

वास्तव में अर्हंतादि की भक्ति के आधीन... यह सब लेना प्रतिमा आदि। **बुद्धिवाला वर्तता हुआ... भक्ति के आधीन बुद्धिवाला वर्तता हुआ....** ऐसा। है न? **परमसंयमप्रधान अतितीव्र तप तपता है,...** भले वह परमसंयमप्रधान जिसमें ऐसा तप करता हो मुनिपने का। मुनिपने की व्याख्या है न? यह सच्चा संयम आदि है, हों! सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित। **मात्र उतने रागरूप क्लेश से जिसका निज अन्त:करण कलंकित**

(-मलिन) है... भाषा देखो! इतना राग। अरहन्तादि की भक्ति, प्रवचन की भक्ति, प्रतिमा की भक्ति, सिद्ध परमात्मा की भक्ति। **उतने रागरूप क्लेश से जिसका निज अन्तःकरण...** देखो! अन्तर परिणाम मलिन-कलंकित है, ऐसा वर्तता हुआ **विषयविषवृक्ष के आमोद से जहाँ अन्तरंग (-अन्तःकरण) मोहित होता है, ऐसे स्वर्गलोक को—** ऐसा। स्वर्गलोक कैसा है? कि विषयविषवृक्ष के आमोद। वहाँ तो विषयरूपी जहर का वृक्ष है।

मुमुक्षु : मजा आता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : आमोद, उसे ऐसा आमोद है, सुगन्ध है, मौज है ऐसी। विषयरूपी जहर के वृक्ष का आमोद है वहाँ। आत्मा के अमृत का आमोद नहीं। यह बताते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : आमोद का फल कड़वा स्वाद देता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कड़वा ही देता है-आकुलता।

मुमुक्षु : उस सुगन्ध को आमोद लिखते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कैसी? विषयविषवृक्ष के आमोद। विषय के वृक्ष के फल का आमादे—सुगन्ध, उसकी मौज, राग की मौज है। जहर की मौज है वहाँ। आहाहा! जहाँ शुभभाव को जहर कहा, वहाँ पुण्यपरिणाम के फल में राग आये बिना अनुभव करता है। तो अशुभभाव तो जहर ही है। विषयराग तो जहर है। समझ में आया?

मुमुक्षु : जहर और फिर आमोद?

पूज्य गुरुदेवश्री : आमोद अर्थात् जहर का आमोद—जहर की सुगन्ध।

जहाँ अन्तरंग मोहित होता है.... देखो! ऐसे मजे में जिसका अन्तःकरण मोहित होता है। पुण्यपरिणाम से विषयविषवृक्ष फल, उसमें मोहित होता है। **ऐसे स्वर्गलोक को—** देखो, ऐसा स्वर्गलोक। **जो कि साक्षात् मोक्ष को अन्तरायभूत है...** देखो! ऐसे स्वर्गलोक को **सम्प्राप्त करके...** ऐसा लेना अन्त में। **जो कि साक्षात् मोक्ष को अन्तरायभूत है...** स्वर्ग में तो साक्षात् आत्मा के परमानन्द का वहाँ अन्तराय पड़ता है। परमानन्द में

जाना और पूर्णानन्द की प्राप्ति करना, वह धर्मशाला में—इस स्वर्ग में नहीं है। समझ में आया? रास्ता काटते-काटते रात पड़ गयी और किसी धर्मशाला में रह गया। समझ में आया? इसी प्रकार यहाँ रास्ता काटते-काटते राग रह गया तो वहाँ आगे रात में रहना पड़ा, वह विषयवृक्ष के आमोद में वह स्वर्गलोक दु:खरूप है।

मुमुक्षु : रात रहकर वापस छोड़कर चला जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़कर चला जाता है। सवेरे छोड़कर चला जानेवाला है, वहाँ। सवेरा हो, चला जानेवाला है। क्या करे? पच्चीस कोस जाने का था और पन्द्रह-सोलह कोस ही मुश्किल से काम किया बैल ने। रात पड़ गयी। भाई, करो रुकावट। सवेरे यहाँ से निकल जाना है और थोड़ा मार्ग पूरा करना है। इसी प्रकार अपना स्वभाव आनन्द मार्ग मोक्ष का, उसे करते.... करते... करते... रागलव रह गया। राग के पुण्य से, जैसे रात्रि में पड़ाव डालता है, वैसे स्वर्ग में सम्यग्दृष्टि का पड़ाव हुआ है।

मुमुक्षु : वास्तव में तो मोक्ष का अन्तराय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तराय है, यह कहा न! समझ में आया? आहाहा! ओहो! अपने परम आनन्द में रहना, उसमें इतना चला था, राग आया था, उसका फल तो विषयविषवृक्ष है। उसकी मजा है, वह जहर का मजा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मजा जहर का है। आकुलता है। एक व्यक्ति कहता था हमारे यहाँ। महाराज! तुम पुण्य को किसलिए (ऐसा कहते हो)? इतना स्वर्ग में सुख तो पायेगा, भोगेगा, और फिर मोक्ष जायेगा। पुण्य से स्वर्ग का सुख तो थोड़ा निश्चिन्तता से भोगेगा। लो! नागलपुर का था एक। बोटाद। अन्त में गये थे, उस ओर गये तब। इसे अभी लगा है। कितने वर्ष से सामायिक, प्रौषध और प्रतिक्रमण (करते थे)। सलोत। वह गुजर गये भाई केशवलाल थे न! महाराज! तुम कहते हो... वे सब पुराने बोटाद के भक्त कहलाते हैं, बोटाद संघाड़ा के। इसलिए वे कहें, परन्तु महाराज! तुम पुण्य का निषेध करते हो क्रिया का, परन्तु इससे स्वर्ग का सुख तो मिलेगा न। और फिर सुख भोगकर पश्चात् मोक्ष जायेगा। नरक में जायेगा, कहा, वहाँ से पशु में। जिसे विषयसुख का प्रेम है, वह तो मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : ....गुणस्थानवर्ती का भाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह छठवें की बात यहाँ चलती है। मुख्यरूप से छठवें की।

मुमुक्षु : स्वामित्व का....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वामित्व का अभाव है, परन्तु पुण्यबन्ध आ गया है न? बन्ध हो जाता है न? स्वामित्व का भले अभाव हो। श्रद्धा में आदर नहीं, परन्तु अस्थिरता में आया है या नहीं? चारित्र की अपेक्षा से आया है। पुण्यबन्ध है, छठवें गुणस्थान में कुन्दकुन्दाचार्य को है। वह अपनी बात भी साथ में करते हैं। अरे..! यह राग आया। यह राग है भक्ति आदि का। पुण्यबन्ध होगा। स्वर्ग में जाना पड़ेगा। समझ में आया? पद्मनन्दी आचार्य भी भक्ति करते-करते अन्त में यह कहते हैं। अहो! महाराज! इस आत्मा के आनन्द के समक्ष हमें स्वर्ग और स्वर्ग के कारण का क्या आदर है? क्योंकि खबर है कि हम पंचम काल के मुनि हैं तो हमारे राग तो है, पुण्यबन्ध हो जायेगा और स्वर्ग में ही अवतार होगा।

यहाँ से निषेध करते जाते हैं। यह विषय नहीं, यह विषय नहीं। यह हमारा आनन्द नहीं, हों! हमारा आनन्द तो हमारे पास है। परन्तु पंचम काल में हमारी शक्ति मन्द है तो इतना जरा राग आता है। वह व्यवहार का आश्रय लिया, राग आया, पुण्यबन्ध होगा। छठवें गुणस्थान की बात है मूल है यहाँ। छठवें गुणस्थान में सन्त कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य महामुनि... समझ में आया? परमसंयमप्रधान, महासंयमी तीन कषाय का अभाव है, छठवें गुणस्थान में विराजमान हैं। हजारों बार छठा-सातवाँ जिन्हें आता है। साक्षात् चैतन्यमूर्ति। परन्तु इतना भी हमारा राग है। अन्तिम गाथा है या नहीं? करते... करते... करते... करते... ओहो! हमारे ज्ञान में ख्याल है कि इतना राग भी विषय का विषवृक्ष है, (उसके फल में) वहाँ जहर के आनन्द में जाना पड़ेगा। समझ में आया? अभी से निषेध करते हैं। यह नहीं... नहीं... नहीं... यह सुख हमारा नहीं। सुख हमारे पास है। हम पूर्ण कर सके नहीं, इसलिए यह स्वर्ग के सुख में अवतार लेना पड़ा। समझ में आया?

यह छठवें गुणस्थान में भी जिनका राग अरहन्तादि में है तो अन्तःकरण मलिन,

कलंकित है। आये बिना रहता नहीं। जब तक वीतरागता न हो, सम्यग्दृष्टि, ज्ञानी, चारित्रवन्त को भी पंच परमेष्ठी की भक्ति, स्तवन, गुणस्मरण इत्यादि आता तो है। शास्त्र लिखना, यह भी भक्ति कहते हैं। कहते हैं न आगे? '**मग्गप्पभावणट्ठं**' १६३ में है या नहीं भाई? क्या है १६३ में, देखो न! मैंने यह मार्ग की प्रभावना के लिये यह लिखा है। ऐसा? १७३ में है, देखो! '**मग्गप्पभावणट्ठं**' अपनी बात करते हैं। अपनी, निज की। १७३। अन्तिम १७३-७३। अन्तिम (गाथा)। '**मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिप्पचोदिदेण मया।**' प्रवचन की भक्ति से प्रेरणा से मैंने यह किया है। देखो, यहाँ बात तो अपनी करते हैं। १७३ गाथा। हिन्दी में २६६ पृष्ठ। २६६ पृष्ठ। १७३ गाथा। '**मग्गप्पभावणट्ठं**' है न? '**पवयणभत्ति**' प्रेरणा से। प्रवचन की भक्ति की प्रेरणा से मैंने '**मया**' किया है। मुझे राग है, शुभराग है। समझ में आया? १७३ गाथा। मूल श्लोक, मूल श्लोक। '**भणियं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं सुत्तं॥**' देखो! मेरी प्रवचन की भक्ति की प्रेरणा से मैंने यह बनाया है। मार्ग की प्रभावना के लिये। मेरे मार्ग की प्रभावना तो अन्दर वीतरागभाव विशेष है, परन्तु जरा बाहर की प्रभावना का विकल्प आया तो यह बन गया। इसमें पुण्य बँधेगा। समझ में आया? और स्वर्ग के क्लेशरूपी सामग्री में अथवा क्लेश का सुख भोगने वहाँ जाना पड़ेगा। समझ में आया?

मुमुक्षु : भगवान के वचन के सारभूत है यह।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। मुनि। आहाहा! छठवें गुणस्थान में विराजमान और हजारों बार सातवें में आते हैं, छठवें में जाते हैं। परन्तु हमारे आयुष्य का बन्ध राग में पड़ेगा (तो) यह स्वर्ग में ही जाना पड़ेगा। समझ में आया?

ऐसा मोहित हुआ। मोहित शब्द से चारित्र का मोहित है, हों! अस्थिरता। दृष्टि से मोह हुआ, ऐसा नहीं। क्या कहा? यह छठवें गुणस्थानवाले मुनि भी स्वर्ग में जायेंगे तो विषयसुख से महामोह से अन्तरंग मोहित होता है। अन्तर में उतनी आसक्ति उन्हें होगी। वहाँ चौथा गुणस्थान है। यहाँ छठवाँ था, सातवाँ था। देह छूटकर वहाँ चौथा—सम्यग्दर्शन रह गया।

'मोहित होता है...' देखो! हमको भी इतना मोह से वहाँ स्वर्ग में राग आयेगा।

पंचम काल के मुनि को केवलज्ञान नहीं, मुक्ति नहीं तो राग बँधकर वहाँ जायेंगे और मोहित होते हैं। इतनी विषय में आसक्ति अशुभराग की आती है। उसे मोहित कहा है। मिथ्यादृष्टि की बात यहाँ नहीं है, सम्यग्दृष्टि की बात है। आहाहा! क्षायिक समकित हो, छठवें गुणस्थान में किसी को (हो)। परन्तु यह तो पंचम काल के मुनि हैं। परन्तु अप्रतिहत क्षायिक है। क्षयोपशम है परन्तु अप्रतिहत है। इस क्षयोपशम में से क्षायिक होकर केवलज्ञान लेनेवाले हैं कुन्दकुन्दाचार्य। समझ में आया?

कहते हैं कि अरे! राग का फल (जो) स्वर्ग का सुख, (वह) जहर है। उसमें मोहित होता है। **जो कि साक्षात् मोक्ष को अन्तरायभूत है...** निषेध... निषेध करते जाते हैं। आहाहा! अरे! इतना काल वहाँ स्वर्ग में रहना पड़ेगा, वह हमारे मुक्ति के प्रयास में विघ्न है। इतना अन्तराय है। ओहोहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... नहीं, पुरुषार्थ की कमी है। कर्म का जोर कहाँ है? ठीक है न? ऐसा कि इतनी झंखना है और राग नहीं टलता तो कर्म की प्रेरणा—जोर है या नहीं? बिल्कुल नहीं। कहा था न पहले, यह प्रभुत्वशक्ति। यह तो पहले लिया ७० में। हमारी प्रभुत्वशक्ति हमने इतनी प्रगट नहीं की, इस कारण से है। बहुत लोगों को... टीका तो ऐसी है। सर्वज्ञ की वाणी साक्षात्! समझ में आया? हमारी परमवैराग्यभूमिका में प्रभुत्वशक्ति उत्पन्न न की होने से। हमने परम वैराग्य वीतरागभाव में हमारी ईश्वरशक्ति हमने इतनी प्रगट नहीं की। इस कारण से हमारे में इतना राग रह जाता है, इस कारण से स्वर्ग में जाना पड़ेगा। सामान्य बात करते हैं परन्तु अपनी बात भी उसमें करते हैं। ऐसी सन्धि बहुत है। भावपाहुड़ में ऐसा है, मोक्षपाहुड़ में ऐसा है। शैली ही ऐसी है। पद्मनन्दी आचार्य भी जहाँ पूरा करते हैं वहाँ ऐसा कहते हैं, अरे! स्वर्ग में जाना पड़ेगा। आलोचना में नहीं? आलोचना में भी स्वर्ग की बात अन्तिम गाथा में करते हैं। आलोचना अधिकार है न? अन्त में वे कहते हैं, अरे...! स्वर्ग में वहाँ दु:ख है, राग है। ऐसा है। वह हमें नहीं चाहिए। जगत का सुख तीन काल में नहीं चाहिए।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होओ। क्योंकि आता तो है, परन्तु वर्तमान उसकी चाहना नहीं। वहाँ भी दृष्टि से चाहना तो है ही नहीं, परन्तु अस्थिरता से मोहित होता है। क्लेश भोगना पड़ेगा। कहो, समझ में आया? सम्प्राप्त करके। किसे? स्वर्गलोक को सम्प्राप्त करके। कैसा है स्वर्गलोक? **जो कि साक्षात् मोक्ष को अन्तरायभूत है...** स्वर्ग में भी पुरुषार्थ करके, चारित्र करके वीतराग हो, ऐसी योग्यता नहीं है। समझ में आया? पुण्य का फल बहुत है। तो उसमें—विषय में समकिती की वृत्ति भी जाती है। समझ में आया?

बहुत पानी होता है न! नदी का पानी बहुत बहता हो, उसमें कोई बीज रोपे तो बीज का वृक्ष बढ़ता नहीं, उगता नहीं। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि गये, परन्तु अकेले पुण्य का फल वहाँ स्वर्ग में है। उसमें चारित्र का बीज नहीं उगता। समझ में आया? और पाप करके नरक में गये, सम्यग्दृष्टि कोई। वहाँ भी क्षार जमीन है। जैसे क्षार जमीन में वृक्ष नहीं उगता, उसी प्रकार वहाँ पाप करके गये तो वहाँ चारित्र नहीं है। यहाँ पुण्य करके गये तो यहाँ भी (स्वर्ग में भी) चारित्र नहीं है। समझ में आया? स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... तथापि इतना राग तो छठवें गुणस्थान में मुनि को रहता है तो क्लेश भोगना पड़ेगा।

सुचिरकाल पर्यंत... देखो, भाषा अब ली है। क्योंकि वहाँ तो पल्योपम, सागरोपम (आयुष्य है)। एक पल्योपम में असंख्य अरब वर्ष जाते हैं। एक दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम होता है। पहले स्वर्ग में गये हों तो दो सागर में जाते हैं। दो सागर। दो सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति। एक सागरोपम में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम और एक पल्योपम में असंख्य अरब वर्ष। सुचिरकाल। अरे! इतना अधिक काल स्वर्ग में **पर्यन्त (-बहुत लम्बे काल तक) रागरूपी अंगारों से...** आहाहा! यह कहे कि बहुत काल का सुख मिला। वे कहते हैं कि अरे..! रागरूपी अंगारों में वहाँ सिंक जायेगा। अस्थिरता। सम्यग्दृष्टि कहता है, हों! सम्यग्दृष्टि को भी वहाँ रागरूपी अंगारों में सिंकना पड़ेगा।

मुमुक्षु : पश्चाताप....

पूज्य गुरुदेवश्री : पश्चाताप हो, परन्तु राग है तो क्या करे? पश्चाताप करे इतना और राग मन्द हो, परन्तु राग मन्द होता है या नहीं? पुण्य का फल बहुत आया।

सुचिरकाल लिया है और मुनि को तो... समझ में आया? बहुत स्थिति होती है। श्रावक भी सम्यग्दृष्टि हो तो वह भी पल्योपम सागरोपम में जाता है वहाँ स्वर्ग में। पंचम गुणस्थानवाले सम्यग्दृष्टि ज्ञानी, राग बाकी रहता है तो स्वर्ग में जाते हैं। मुनि भी स्वर्ग में जाते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह राग की मन्दता अपेक्षा से ठीक कहा है। शास्त्र में पूज्यपादस्वामी (ने) समाधिशतक में कहा है कि सम्यग्दृष्टि को अव्रतादि से पाप से नरक में जाना, इसकी अपेक्षा व्रतादि के परिणाम से स्वर्ग में जाना वह, जैसे धूप में बैठे हुए प्राणी को दुःख है और धूप में से आगे चलकर वड़ के वृक्ष में उसे छाया है। इस अपेक्षा से वहाँ व्यवहार से कहा है। समाधिशतक में है। समझ में आया?

एक मनुष्य को गाँव से दूर जाना है तो बीच में धूप आयी तो धूप में बैठा है। किसी मनुष्य की राह देखकर। वाट को क्या कहते हैं? वाट देखकर, राह देखकर। कोई तीसरा व्यक्ति आनेवाला हो, उसकी राह देखकर वह मनुष्य धूप में बैठा हुआ था और एक मनुष्य राह देखते हुए एक वृक्ष था, आगे थोड़ा चलना पड़ा तो वहाँ बैठा। जब वह मनुष्य आया तो वहाँ से चलकर वह साथ में गया। और धूप में बैठे हुए मनुष्य को आताप-दुःख सहन करना पड़ा। उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि को शुद्ध उपयोग की राह देखनी है। जहाँ तक शुद्ध उपयोग न आवे, तब तक जो अशुभ में रहे तो आताप का दुःख है। ऐसा नरक आदि का दुःख भोगना पड़ेगा। समझ में आया? और वह धूप में से निकलकर जरा व्रत आदि शुभभाव आता है, पंचम गुणस्थान के योग्य, मुनि को छठवें गुणस्थान के योग्य शुभभाव आता है। ऐसा वहाँ व्यवहार से उसे वृक्ष की छाया कहा है। समाधिशतक, पूज्यपादस्वामी।

मुमुक्षु : मोक्षपाहुड़ में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मोक्षपाहुड़ में है। परन्तु इतनी छाया में आया। वह नरक के दुःख की अपेक्षा यह सुख (अच्छा) इतना व्यवहार से लिया। अव्रत करके नरक में जाना। सम्यग्दृष्टि की बात है, हों! सम्यग्दर्शन बिना अव्रत का त्याग करे और व्रत हो जाये ऐसा कभी बनता नहीं। ओहोहो! समझ में आया?

मुमुक्षु : वह तीव्र है, यह मन्द दु:ख...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मन्द दु:ख है। बस है तो दु:ख। परन्तु मन्द है। तो वहाँ से निकलकर मनुष्य होगा और जब शुद्धोपयोग प्राप्त करेगा, तब मोक्ष होगा। तो शुद्ध उपयोग की दोनों को राह है। राह तो दोनों शुद्धोपयोग की देखते हैं, परन्तु एक अशुभभाव में रहता है और शुभभाव में रहता है, इतना अन्तर है। धूप और छाया, धूप और छाया की (उपमा) दी गयी है।

मुमुक्षु : स्वर्गलोक के अंगारों से....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ उग्र पुरुषार्थ करना। पंचम काल में इतना पुरुषार्थ हो नहीं सकता कि स्वर्ग में न जाये। समकिती स्वर्ग में ही जाता है। दूसरे भव में नहीं जाता। सम्यक्त्व होने के जो आयुष्य बँधती है तो स्वर्ग की ही बँधती है। पहले आयुष्य बँध गया हो और सम्यक्त्व बाद में हो तो नरक में, पशु में भी जाता है जुगलिया आदि में। परन्तु समकित होने के बाद वैमानिक देव का ही आयुष्य बँधता है। दूसरा आयुष्य नहीं।

मुमुक्षु : यह पंचम काल का दोष है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पंचम काल का नहीं, अपने पुरुषार्थ का दोष है। पुरुषार्थ की कमी है, इतने दोष के कारण स्वर्ग के सुख में अर्थात् कि परमार्थ से दु:ख में जाता है। देखो! भाषा कैसी ली है। समझ में आया?

सुचिरकालपर्यन्त... असंख्य अरब वर्ष। ओहोहो! जिसके एक पल्योपम में असंख्य तो मोक्ष जाते हैं दुनिया में से। क्या? उसका एक पल्योपम का आयुष्य हो तो ढाई द्वीप में से एक पल्योपम में असंख्य जीव मुक्ति पाते हैं। बराबर है? क्योंकि छह महीने आठ समय में छह सौ आठ मुक्ति पाते हैं, तो एक पल्योपम में असंख्य जीव मनुष्य क्षेत्र से केवलज्ञान पाकर मोक्ष जाते हैं। इतना काल हमारे वहाँ रहना पड़ेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देखो! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जाते ही है। छह महीने आठ समय में छह सौ आठ (जीव)

केवलज्ञान पाकर मोक्ष / सिद्ध होते ही हैं। तो एक पल्योपम में दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम में एक सागरोपम। उसमें तो असंख्य (जीव) ढाई द्वीप में से मोक्ष चले जाते हैं।

अरे! **सुचिरकाल पर्यन्त रागरूपी अंगारों से दह्यमान हुआ....** देखो न भाषा! यहाँ से (निषेध) करते जाते हैं। आहाहा! यह शुभराग आया, उसका नकार; यह बन्ध का फल आया, उसका भी नकार। और उस समय में राग आयेगा अशुभ दाह्य, उसका भी नकार। आहाहा! समझ में आया? **अन्तर में सन्तप्त होता है।** देखो! अन्तरंग में सुखी नहीं होता। अन्तरंग में दु:खी, व्यथित व्यथा-व्यथा, वह पाप का भाव विषय की व्यथा भोगता है समकित दृष्टि भी। फिर वहाँ से मनुष्य होकर जब चारित्र प्राप्त करके शुद्धोपयोग प्राप्त करेगा, तब केवलज्ञान प्राप्त करेगा। लो, यह १७१ हुई।

अब १७२। थोड़ी शुरु करते हैं। फिर कल से तो बन्द है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अगला ठीक है।

मुमुक्षु : बाद में तो अन्तिम दिन।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं ... तक पहुँचे ऐसा नहीं है। आधा घण्टा तो हो गया।

गाथा - १७२

तम्हा णिव्वुदिकामो रागं सव्वत्थ कुणदु मा किंचि।
सो तेण वीदरागो भविओ भवसायरं तरदि।।१७२।।

यदि मुक्ति का है लक्ष्य तो फिर राग किंचित् ना करो।
वीतरागी बन सदा को भवजलधि से पार हो।।१७२।।

अन्वयार्थ :- [तस्मात्] इसलिए, [निर्वृत्तिकामः] मोक्षाभिलाषी, जीव [सर्वत्र] सर्वत्र [किञ्चित् रागं] किंचित् भी राग, [मा करोतु] न करो; [तेन] ऐसा करने से [सः भव्यः] वह भव्य जीव [वीतरागः] वीतराग होकर [भवसागरं तरति] भवसागर को तरता है।

टीका :- यह, साक्षात्मोक्षमार्ग के सार-सूचन द्वारा शास्त्रतात्पर्यरूप उपसंहार है (अर्थात् यहाँ साक्षात्मोक्षमार्ग का सार क्या है, उसके कथन द्वारा शास्त्र का तात्पर्य कहनेरूप उपसंहार किया है।)

साक्षात्मोक्षमार्ग में अग्रसर सचमुच वीतरागता है। इसलिए वास्तव में [1]अर्हंतादिगत राग को भी, चन्दनवृक्षसंगत अग्नि की भाँति, देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति द्वारा अत्यन्त अन्तर्दाह का कारण समझकर, साक्षात् मोक्ष का अभिलाषी महाजन सभी की ओर से राग को छोड़कर, अत्यन्त वीतराग होकर, जिसमें उबलती हुई दुःख-सुख की कल्लोलें उछलती हैं और जो कर्माग्नि द्वारा तप्त, खलबलाते हुए जलसमूह की अतिशयता से भयंकर है, ऐसे भवसागर को पार उतरकर, शुद्धस्वरूप परमामृतसमुद्र को अवगाह कर, शीघ्र निर्वाण को प्राप्त करता है।

— विस्तार से बस हो। जयवन्त वर्ते वीतरागता जो कि साक्षात्मोक्षमार्ग का सार होने से शास्त्रतात्पर्यभूत है।

---

१. अर्हंतादिगत राग = अर्हंतादि की ओर का राग; अर्हंतादिविषयक राग; अर्हंतादि का राग।[जिस प्रकार चन्दनवृक्ष की अग्नि भी उग्ररूप से जलाती है, उसी प्रकार अर्हंतादि का राग भी देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति द्वारा अत्यन्त अन्तरंग जलन का कारण होता है।]

तात्पर्य द्विविध होता है : [१]सूत्रतात्पर्य और शास्त्रतात्पर्य। उसमें, सूत्रतात्पर्य प्रत्येक सूत्र में (प्रत्येक गाथा में) प्रतिपादित किया गया है; शास्त्रतात्पर्य अब प्रतिपादित किया जाता है :—

सर्व [२]पुरुषार्थों में सारभूत ऐसे मोक्षतत्त्व का प्रतिपादन करने के लिये जिसमें पंचास्तिकाय और षड्द्रव्य के स्वरूप के प्रतिपादन द्वारा समस्त वस्तु का स्वभाव दर्शाया गया है, नव पदार्थों के विस्तृत कथन द्वारा जिसमें बन्ध-मोक्ष के सम्बन्धी (स्वामी), बन्ध-मोक्ष के आयतन (स्थान) और बन्ध-मोक्ष के विकल्प (भेद) प्रगट किए गए हैं, निश्चय-व्यवहाररूप मोक्षमार्ग का जिसमें सम्यक् निरूपण किया गया है तथा साक्षात् मोक्ष के कारणभूत परमवीतरागपने में जिसका समस्त हृदय स्थित है—ऐसे इस यथार्थ [३]पारमेश्वर शास्त्र का, परमार्थ से वीतरागपना ही तात्पर्य है।

सो इस वीतरागपने का व्यवहार-निश्चय के [४]अविरोध द्वारा ही अनुसरण किया जाए तो इष्टसिद्धि होती है, परन्तु अन्यथा नहीं (अर्थात् व्यवहार और निश्चय की सुसंगतता रहे इस प्रकार वीतरागपने का अनुसरण किया जाए तभी इच्छित की सिद्धि होती है, अन्य प्रकार से नहीं होती)।

(उपरोक्त बात विशेष समझाई जाती है:—)

अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण प्राथमिक जीव व्यवहारनय

---

१. प्रत्येक गाथासूत्र का तात्पर्य, सो सूत्रतात्पर्य है और सम्पूर्ण शास्त्र का तात्पर्य, सो शास्त्रतात्पर्य है।

२. पुरुषार्थ=पुरुष-अर्थ; पुरुष-प्रयोजन। [पुरुषार्थ के चार विभाग किए जाते हैं : धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष; परन्तु सर्व पुरुष-अर्थों में मोक्ष ही सारभूत (तात्त्विक) पुरुष-अर्थ है।]

३. पारमेश्वर=परमेश्वर के; जिनभगवान के; भागवत; दैवी; पवित्र।

४. छठवें गुणस्थान में मुनियोग्य शुद्धपरिणति निरन्तर होना तथा महाव्रतादिसम्बन्धी शुभभावों का यथायोग्यरूप से होना, वह निश्चयव्यवहार के अविरोध का (सुमेल का) उदाहरण है। पाँचवें गुणस्थान में उस गुणस्थान के योग्य शुद्धपरिणति निरन्तर होना तथा देशव्रतादिसम्बन्धी शुभभावों का यथायोग्यरूप से होना, वह भी निश्चय-व्यवहार के अविरोध का उदाहरण है।

से [१]भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन लेकर [२]सुख से तीर्थ का प्रारम्भ करते हैं (अर्थात् सुगमता से मोक्षमार्ग की प्रारम्भभूमिका का सेवन करते हैं)। जैसे कि— '(१) यह श्रद्धेय (श्रद्धा करनेयोग्य) है, (२) यह अश्रद्धेय है, (३) यह श्रद्धा करनेवाला है और (४) यह श्रद्धान है; (१) यह ज्ञेय (जाननेयोग्य) है, (२) यह अज्ञेय है, (३) यह ज्ञाता है और (४) यह ज्ञान है; (१) यह आचरणीय (आचरण करनेयोग्य) है, (२) यह अनाचरणीय है, (३) यह आचरण करनेवाला है और (४) यह आचरण है;'—इस प्रकार (१) कर्तव्य (करनेयोग्य), (२) अकर्तव्य, (३) कर्ता और (४) कर्मरूप विभागों के अवलोकन द्वारा जिन्हें कोमल उत्साह उल्लसित होता है ऐसे वे (प्राथमिक जीव) धीरे-धीरे मोहमल्ल को (रागादि को) उखाड़ते जाते हैं; कदाचित् अज्ञान के कारण (-स्वसंवेदनज्ञान के अभाव के कारण) मद (कषाय) और प्रमाद के वश होने से अपना आत्म-अधिकार (आत्मा में अधिकार) शिथिल हो जाने पर अपने को न्यायमार्ग में प्रवर्तित करने के लिए वे प्रचण्ड दण्डनीति का प्रयोग करते हैं; पुनः पुनः (अपने आत्मा को) दोषानुसार प्रायश्चित्त देते हुए वे सतत उद्यमवन्त वर्तते हैं; और [३]भिन्नविषयवाले श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र के द्वारा (-आत्मा से भिन्न जिसके विषय हैं ऐसे भेदरत्नत्रय द्वारा) जिसमें संस्कार आरोपित होते जाते हैं

१. मोक्षमार्ग प्राप्त ज्ञानी जीवों को प्राथमिक भूमिका में, साध्य तो परिपूर्ण शुद्धतारूप से परिणत आत्मा है और उसका साधन व्यवहारनय से (आंशिक शुद्धि के साथ-साथ रहनेवाले) भेदरत्नत्रयरूप परावलम्बी विकल्प कहे जाते हैं। इस प्रकार उन जीवों को व्यवहारनय से साध्य और साधन भिन्न प्रकार के कहे गए हैं।(निश्चयनय से साध्य और साधन अभिन्न होते हैं।)

२. सुख से=सुगमता से, सहजरूप से, कठिनाई बिना।[जिन्होंने द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप के श्रद्धानादि किए हैं, ऐसे सम्यग्ज्ञानी जीवों को तीर्थसेवन की प्राथमिक दशा में (मोक्षमार्गसेवन की प्रारम्भिक भूमिका में) आंशिक शुद्धि के साथ-साथ श्रद्धानज्ञानचारित्र सम्बन्धी परावलम्बी विकल्प (भेदरत्नत्रय) होते हैं, क्योंकि अनादि काल से जीवों को जो भेदवासना से वासित परिणति चली आ रही है, उसका तुरन्त ही सर्वथा नाश होना कठिन है]।

३. व्यवहार-श्रद्धानज्ञानचारित्र के विषय आत्मा से भिन्न है; क्योंकि व्यवहारश्रद्धान का विषय नव पदार्थ हैं, व्यवहारज्ञान का विषय अंग-पूर्व हैं और व्यवहारचारित्र का विषय आचारादिसूत्रकथित मुनि-आचार हैं।

ऐसे भिन्नसाध्यसाधनभाववाले अपने आत्मा में—धोबी द्वारा शिला की सतह पर पछाड़े जानेवाले, निर्मल जल द्वारा भिगोए जानेवाले और क्षार (साबुन) लगाए जानेवाले मलिन वस्त्र की भाँति—थोड़ी-थोड़ी [१]विशुद्धि प्राप्त करके, उसी अपने आत्मा को निश्चयनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव के अभाव के कारण, दर्शनज्ञानचारित्र का समाहितपना (अभेदपना) जिसका रूप है, सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर की निवृत्ति के कारण (-अभाव के कारण) जो निस्तरंग परमचैतन्यशाली है तथा जो निर्भर आनन्द से समृद्ध है, ऐसे भगवान आत्मा में विश्रान्ति रचते हुए (अर्थात् दर्शनज्ञान-चारित्र के ऐक्यस्वरूप, निर्विकल्प परमचैतन्यशाली तथा भरपूर-आनन्दयुक्त ऐसे भगवान आत्मा में अपने को स्थिर करते हुए), क्रमशः समरसीभाव समुत्पन्न होता जाता है, इसलिए परम वीतरागभाग को भाव को प्राप्त करके साक्षात् मोक्ष का अनुभव करते हैं।

[अब केवलीव्यवहारावलम्बी (अज्ञानी) जीवों का प्रवर्तन और उसका फल कहा जाता है :—]

परन्तु जो केवलव्यवहारावलम्बी (मात्र व्यवहार का अवलम्बन करनेवाले) हैं, वे वास्तव में [१]भिन्नसाध्यसाधनभाव के अवलोकन द्वारा निरन्तर अत्यन्त खेद पाते

---

१. जिस प्रकार धोबी पाषाणशिला, पानी और साबुन द्वारा मलिन वस्त्र की शुद्धि करता जाता है, उसी प्रकार प्राक्पदवीस्थित ज्ञानी जीव भेदरत्नत्रय द्वारा अपने आत्मा में संस्कार को आरोपण करके उसकी थोड़ी-थोड़ी शुद्धि करता जाता है, ऐसा व्यवहारनय से कहा जाता है। परमार्थ ऐसा है कि उस भेदरत्नत्रयवाले ज्ञानी जीव को शुभभावों के साथ जो शुद्धात्मस्वरूप का आंशिक आलम्बन वर्तता है, वही उग्र होते-होते विशेष शुद्धि करता जाता है। इसलिए वास्तव में तो, शुद्धात्मस्वरूप का आलम्बन करना ही शुद्धि प्रगट करने का साधन है और उस आलम्बन की उग्रता करना ही शुद्धि की वृद्धि करने का साधन है। साथ रहे हुए शुभभावों को शुद्धि की वृद्धि का साधन कहना, वह तो मात्र उपचार कथन है। शुद्धि की वृद्धि के उपचरितसाधनपने का आरोप भी उसी जीव के शुभभावों में आ सकता है कि जिस जीव ने शुद्धि की वृद्धि का यथार्थ साधन (—शुद्धात्मस्वरूप का यथोचित आलम्बन) प्रगट किया हो।

१. वास्तव में साध्य और साधन अभिन्न होते हैं। जहाँ साध्य और साधन भिन्न कहे जायें वहाँ 'यह सत्यार्थ निरूपण नहीं है किन्तु व्यवहारनय द्वारा उपचरित निरूपण किया है'—

हुए, (१) पुनःपुनः धर्मादि के श्रद्धानरूप अध्यवासन में उनका चित्त लगता रहने से, (२) बहुत श्रुत के (द्रव्यश्रुत के) संस्कारों से उठनेवाले विचित्र (अनेक प्रकार के) विकल्पों के जाल द्वारा उनकी चैतन्यवृत्ति चित्त-विचित्र होती है, इसलिए और (३) समस्त यति-आचार के समुदायरूप तप में प्रवर्तनरूप कर्मकाण्ड की धमाल में वे अचलित रहते हैं इसलिए, (१) कभी किसी को (किसी विषय की) रुचि करते हैं, (२) कभी किसी के (किसी विषय के) विकल्प करते हैं और (३) कभी कुछ आचरण करते हैं; दर्शनाचरण के लिए—वे कदाचित् प्रशमित होते हैं, कदाचित् संवेग को प्राप्त होते हैं, कदाचित् अनुकम्पित होते हैं, कदाचित् आस्तिक्य को धारण करते हैं, शंका, कांक्षा, विचिकित्सा और मूढ़दृष्टिता के उत्थान को रोकने के लिये नित्य कटिबद्ध रहते हैं, उपबृंहण, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना को भाते हुए बारम्बार उत्साह को बढ़ाते हैं; ज्ञानाचरण के लिये—स्वाध्यायकाल का अवलोकन करते हैं, बहु प्रकार से विनय का विस्तार करते हैं, दुर्धर उपधान करते हैं, भलीभाँति बहुमान को प्रसारित करते हैं, निह्नवदोष को अत्यन्त निवारते हैं, अर्थ, व्यंजन और [1]तदुभय की शुद्धि में अत्यन्त सावधान रहते हैं; चारित्राचरण के लिये—हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्म और परिग्रह की सर्वविरतिरूप पंच महाव्रतों में तल्लीन वृत्तिवाले रहते हैं, सम्यक् योगनिग्रह जिनका लक्षण है (-योग का बराबर निरोध करना, जिनका लक्षण है), ऐसी गुप्तियों में अत्यन्त उद्योग रखते हैं; ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेप और उत्सर्गरूप समितियों में प्रयत्न को अत्यन्त जोड़ते हैं; तपाचरण के लिये—अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश में सतत् उत्साहित रहते हैं, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, व्युत्सर्ग, स्वाध्याय और ध्यानरूप [2]परिकर द्वारा निज अन्तःकरण को अंकुशित रखते हैं; वीर्याचरण के लिये—कर्मकाण्ड में सर्व शक्ति द्वारा [3]व्यापृत रहते हैं; ऐसा करते हुए कर्मचेतनाप्रधानपने के

ऐसा समझना चाहिए। केवलव्यवहारावलम्बी जीव इस बात की गहराई से श्रद्धा न करते हुए अर्थात् 'वास्तव में शुभभावरूप साधन से ही शुद्धभावरूप साध्य प्राप्त होगा' ऐसी श्रद्धा का गहराई में सेवन करते हुए निरन्तर अत्यन्त खेद प्राप्त करते हैं।

१. तदुभय=उन दोनों (अर्थात् अर्थ तथा व्यंजन दोनों)

२. परिकर=समूह; सामग्री।

३. व्यापृत=रुके; गुँथे; लगे; मशगूल; मग्न।

कारण—यद्यपि अशुभकर्मप्रवृत्ति का उन्होंने अत्यन्त निवारण किया है तथापि—शुभकर्मप्रवृत्ति को जिन्होंने बराबर ग्रहण किया है ऐसे वे, सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर से पार उतरी हुई दर्शनज्ञानचारित्र की ऐक्यपरिणतिरूप ज्ञानचेतना को किंचित् भी उत्पन्न न करते हुए, बहुत पुण्य के भार से [१]मंथर हुई चित्तवृत्तिवाले वर्तते हुए, देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति की परम्परा द्वारा अत्यन्त दीर्घ काल तक संसारसागर में भ्रमण करते हैं। कहा भी है कि—[२]चरणकरणप्पहाणा ससमयपरमत्थमुक्कावावारा। चरणकरणस्स सारं णिच्छयसुद्धं ण जाणंति॥ [अर्थात् तो चरणपरिणामप्रधान हैं और स्वसमयरूप परमार्थ में व्यापाररहित हैं, वे चरणपरिणाम का सार जो निश्चयशुद्ध (आत्मा) उसे नहीं जानते।][३]

[अब केवलनिश्चयावलम्बी (अज्ञानी) जीवों का प्रवर्तन और उसका फल कहा जाता है:—]

---

१. मंथर=मन्द; जड़; सुस्त।

२. इस गाथा की संस्कृत छाया इस प्रकार है:—चरणकरणप्रधानाः स्वसमयपरमार्थमुक्त-व्यापाराः। चरणकरणस्य सारं निश्चयशुद्धं न जानन्ति॥

३. श्री जयसेनाचार्यदेवकृत तात्पर्यवृत्ति-टीका में व्यवहार-एकान्त का निम्नानुसार स्पष्टीकरण किया गया है :—

जो कोई जीव विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभाववाले शुद्धात्मतत्त्व के सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप निश्चयमोक्षमार्ग से निरपेक्ष केवलशुभानुष्ठानरूप व्यवहारनय को ही मोक्षमार्ग मानते हैं, वे उसके द्वारा देवलोकादि के क्लेश की परम्परा प्राप्त करते हुए संसार में परिभ्रमण करते हैं; किन्तु यदि शुद्धात्मानुभूतिलक्षण निश्चयमोक्षमार्ग को माने और निश्चयमोक्षमार्ग का अनुष्ठान करने की शक्ति के अभाव के कारण निश्चयसाधक शुभानुष्ठान करें, तो वे सराग सम्यग्दृष्टि हैं और परम्परा मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस प्रकार व्यवहार-एकान्त के निराकरण की मुख्यता से दो वाक्य कहे गये।

[यहाँ जो 'सराग सम्यग्दृष्टि' जीव कहे, उन जीवों को सम्यग्दर्शन तो यथार्थ ही प्रगट हुआ है परन्तु चारित्र-अपेक्षा से उन्हें मुख्यतः राग का अस्तित्व होने से 'सराग सम्यग्दृष्टि' कहा है, ऐसा समझना। और उन्हें जो शुभ अनुष्ठान है, वह मात्र उपचार से ही 'निश्चयसाधक (-निश्चय के साधनभूत)' कहा गया है, ऐसा समझना।]

अब, जो केवलनिश्चयावलम्बी हैं, सकल क्रियाकर्मकाण्ड के आडम्बर में विरक्त बुद्धिवाले वर्तते हुए, आँखों को अधमुँदा रखकर कुछ भी स्वबुद्धि से अवलोक कर [१]यथासुख रहते हैं (अर्थात् स्वमतिकल्पना से कुछ भी भास की कल्पना करके इच्छानुसार—जैसे सुख उत्पन्न हो वैसे-रहते हैं।), वे वास्तव में [२]भिन्नसाध्यसाधनभाव को तिरस्कारते हुए, अभिन्नसाध्यसाधनभाव को उपलब्ध न करते हुए, अन्तराल में ही (-शुभ तथा शुद्ध के अतिरिक्त शेष तीसरी अशुभदशा में ही), प्रमादमदिरा के मद से भरे हुए आलसी चित्तवाले वर्तते हुए, मत्त (उन्मत्त) जैसे, मूर्च्छित जैसे, सुषुप्त जैसे, बहुत घी-शक्कर खीर खाकर तृप्ति को प्राप्त हुए (-तृप्त हुए) हों ऐसे, मोटे शरीर के कारण जड़ता (-मन्दता, निष्क्रियता) उत्पन्न हुई हो ऐसे, दारुण बुद्धिभ्रंश से मूढ़ता हो गई हो ऐसे, जिसका विशिष्टचैतन्य मुँद गया है, ऐसी वनस्पति जैसे, मुनीन्द्र की कर्मचेतना को [३]पुण्यबन्ध के भय से न अवलम्बते हुए और परम नैष्कर्म्यरूप ज्ञानचेतना में विश्रान्ति को प्राप्त नहीं होते हुए, (मात्र) व्यक्त-अव्यक्त प्रमाद के आधीन वर्तते

---

१. यथासुख=इच्छानुसार; जैसे सुख उत्पन्न हो वैसे; यथेच्छरूप से। [जिन्हें द्रव्यार्थिकनय के (निश्चयनय के) विषयभूत शुद्धात्मद्रव्य का सम्यक् श्रद्धान या अनुभव नहीं है तथा उसके लिए उत्सुकता या प्रयत्न नहीं है, ऐसा होने पर भी जो निज कल्पना से अपने में किंचित् भास होने की कल्पना करके निश्‍चिंतरूप से स्वच्छन्दपूर्वक वर्तते हैं। 'ज्ञानी मोक्षमार्गी जीवों को प्राथमिक दशा में आंशिक शुद्धि के साथ-साथ भूमिकानुसार शुभभाव भी होते हैं'-इस बात की श्रद्धा नहीं करते, उन्हें यहाँ केवलनिश्चयावलम्बी कहा है।]

२. मोक्षमार्गी ज्ञानी जीवों को सविकल्प प्राथमिक दशा में (छठवें गुणस्थान तक) व्यवहारनय की अपेक्षा से भूमिकानुसार भिन्नसाध्यसाधनभाव होते हैं अर्थात् भूमिकानुसार नव पदार्थों सम्बन्धी, अंगपूर्व सम्बन्धी और श्रावक-मुनि के आचार सम्बन्धी शुभभाव होते हैं।—यह बात केवलनिश्चयावलम्बी जीव नहीं मानता अर्थात् (आंशिक शुद्धि के साथ की) शुभभाववाली प्राथमिक दशा को वे नहीं श्रद्धते और स्वयं अशुभ भावों में वर्तते होने पर भी अपने में उच्च शुद्ध दशा की कल्पना करते स्वच्छन्दी रहते हैं।

३. केवलनिश्चयावलम्बी जीव पुण्यबन्ध के भय से डरकर मन्दकषायरूप शुभभाव नहीं करते और पापबन्ध के कारणभूत अशुभभावों का सेवन तो करते रहते हैं। इस प्रकार वे पापबन्ध ही करते हैं।

हुए, प्राप्त हुए हलके (निकृष्ट) कर्मफल की चेतना के प्रधानपनेवाली प्रवृत्ति जिसे वर्तती है, ऐसी वनस्पति की भाँति, केवल पाप को ही बाँधते हैं। कहा भी है कि:—
[१] णिच्छयमालम्बंता णिच्छयदो णिच्छयं अयाणंता। णासंति चरणकरणं बाहरिचरणालसा केई॥ [अर्थात् निश्चय का अवलम्बन लेनेवाले परन्तु निश्चय से (वास्तव में) निश्चय को नहीं जाननेवाले कई जीव बाह्य चरण में आलसी वर्तते हुए चरणपरिणाम का नाश करते हैं।][२]

---

१. इस गाथा की संस्कृत छाया इस प्रकार हैं:—निश्चयमालम्बन्तो निश्चयतो निश्चयमजानन्तः। नाशयन्ति चरणकरणं बाह्यचरणालसाः केऽपि॥

२. श्री जयेसनाचार्यदेवरचित टीका में (व्यवहार-एकान्त का स्पष्टीकरण करने के पश्चात् तुरन्त ही) निश्चयएकान्त का निम्नानुसार स्पष्टीकरण किया गया है:—

और जो केवलनिश्चयावलम्बी वर्तते हुए रागादिविकल्परहित परमसमाधिरूप शुद्ध आत्मा को उपलब्ध नहीं करते होने पर भी, मुनि को (व्यवहार से) आचरनेयोग्य षड्-आवश्यकादिरूप अनुष्ठान को तथा श्रावक को (व्यवहार से) आचरनेयोग्य दानपूजादिरूप अनुष्ठान को दूषण देते हैं, वे भी उभयभ्रष्ट वर्तते हुए, निश्चयव्यवहार-अनुष्ठानयोग्य अवस्थान्तर को न जानते हुए पाप को ही बाँधते हैं (अर्थात् केवल निश्चय-अनुष्ठानरूप शुद्ध अवस्था से भिन्न ऐसी जो निश्चय-अनुष्ठान और व्यवहारअनुष्ठानवाली मिश्र अवस्था उसे न जानते हुए पाप को ही बाँधते हैं); परन्तु यदि शुद्धात्मानुष्ठानरूप मोक्षमार्ग को और उसके साधकभूत (व्यवहारसाधनरूप) व्यवहाररमोक्षमार्ग को माने, तो भले चारित्रमोह के उदय के कारण शक्ति का अभाव होने से शुभ-अनुष्ठानरहित हों तथापि—यद्यपि वे शुद्धात्मभावनासापेक्ष शुभ-अनुष्ठानरत पुरुषों जैसे नहीं हैं तथापि—सराग सम्यक्त्वादि द्वारा व्यवहारसम्यग्दृष्टि हैं और परम्परा से मोक्ष प्राप्त करते हैं।—इस प्रकार निश्चय-एकान्त के निराकरण की मुख्यता से दो वाक्य कहे गये।

[यहाँ जिन जीवों को 'व्यवहारसम्यग्दृष्टि' कहा है, वे उपचार से सम्यग्दृष्टि हैं, ऐसा नहीं समझना। परन्तु वे वास्तव में सम्यग्दृष्टि हैं, ऐसा समझना। उन्हें चारित्र-अपेक्षा से मुख्यतः रागादि विद्यमान होने से सराग सम्यक्त्वाले कहकर 'व्यवहारसम्यग्दृष्टि' कहा है। श्री जयेसनाचार्यदेव ने स्वयं ही १५०-१५१वीं गाथा की टीका में कहा है कि—जब यह जीव आगमभाषा से कालादिलब्धिरूप और अध्यात्मभाषा से शुद्धात्माभिमुख परिणामरूप स्वसंवेदनज्ञान को प्राप्त करता है, तब प्रथम तो वह मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियों के उपशम और क्षयोपशम द्वारा सराग-सम्यग्दृष्टि होता है।]

[अब निश्चय-व्यवहार दोनों का [१]सुमेल रहे इस प्रकार भूमिकानुसार प्रवर्तन करनेवाले ज्ञानी जीवों को प्रवर्तन और उसका फल कहा जाता है :—]

परन्तु जो, अपुनर्भव के (मोक्ष के) लिये नित्य उद्योग करनेवाले [२]महाभाग भगवन्तों, निश्चय-व्यवहार में से किसी [३]एक का ही अवलम्बन न लेने से (-केवलनिश्चयावलम्बी या केवलव्यवहारावलम्बी न होने से) अत्यन्त मध्यस्थ वर्तते हुए, शुद्धचैतन्यरूप आत्मतत्त्व में विश्रान्ति के [४]विरचन की अभिमुख (उन्मुख) वर्तते हुए, प्रमाद के उदय का अनुसरण करती हुई वृत्तिका निवर्तन करेवाली (टालनेवाली) क्रियाकाण्डपरिणति को माहात्म्य में से वारते हुए (-शुभ क्रियाकाण्ड-परिणति हठरहित सहजरूप से भूमिकानुसार वर्तती होने पर भी अंतरंग में उसे माहात्म्य नहीं देते हुए), अत्यन्त उदासीन वर्तते हुए, यथाशक्ति आत्मा को आत्मा से आत्मा में संचेतते (अनुभवते) हुए नित्य उपयुक्त रहते हैं, वे (-वे महाभाग भगवन्तों), वास्तव में स्वतत्त्व में विश्रान्ति के अनुसार क्रमशः कर्म का संन्यास करते हुए (-स्वतत्त्व में स्थिरता होती जाये तद्नुसार शुभभावों को छोड़ते हुए), अत्यन्त निष्प्रमाद वर्तते हुए, अत्यन्त निष्कम्पमूर्ति होने से जिन्हें वनस्पति की उपमा दी जाती है तथापि जिन्होंने कर्मफलानुभूति अत्यन्त निरस्त (नष्ट) की है ऐसे, कर्मानुभूति के प्रति निरुत्सुक वर्तते हुए, केवल (मात्र) ज्ञानानुभूति से उत्पन्न हुए तात्त्विक आनन्द से अत्यन्त भरपूर वर्तते हुए, शीघ्र संसारसमुद्र को पार उतरकर, शब्दब्रह्म के शाश्वत फल के (-निर्वाणसुख के) भोक्ता होते हैं ॥१७२॥

---

१. निश्चय=व्यवहार के सुमेल की स्पष्टता के लिये पृष्ठ २५८ की द्वितीय, टिप्पणी देखें।

२. महाभाग=महापवित्र; महागुणवान; महाभाग्यशाली।

३. मोक्ष के लिये नित्य उद्यम करनेवाले महापवित्र भगवन्तों को (-मोक्षमार्गी ज्ञानी जीवों को) निरन्तर शुद्धद्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप का सम्यक् अवलम्बन वर्तता होने से उन जीवों को उस अवलम्बन की तरतमतानुसार सविकल्प दशा में भूमिकानुसार शुद्धपरिणति तथा शुभपरिणति का यथोचित सुमेल (हठरहित) होता है, इसलिए वे जीव इस शास्त्र में (२५८वें पृष्ठ पर) जिन्हें केवलनिश्चयावलम्बी कहा है, ऐसे केवलनिश्चयावलम्बी नहीं हैं तथा (२५९वें पृष्ठ पर) जिन्हें केवलव्यवहारावलम्बी कहा है ऐसे केवलव्यवहारावलम्बी नहीं हैं।

४. विरचन=विशेषरूप से रचना; रचना।

गाथा-१७२ पर प्रवचन

१७२।

तम्हा णिव्वुदिकामो रागं सव्वत्थ कुणदु मा किंचि।
सो तेण वीदरागो भविओ भवसायरं तरदि।।१७२।।

किसी स्थान में सर्वत्र राग मत करो, महाजन! महाजन कहेंगे अन्दर। हे महाजन! हे आत्मा! महापुरुष जिस रास्ते चले, उस रास्ते चलनेवाले '**सव्वत्थ कुणदु मा किंचि रागं**' सर्वत्र राग न करो। प्रभु! आप किसलिए राग करते हो—ऐसा कोई कहे तो सामने? अरे! भगवान! सुन तो सही प्रभु! यह तो कहेंगे कि हमको मार्ग की प्रभावना की प्रेरणा हुई। हमारा मन उसमें लगा रहता था। है न? उसमें है या नहीं? १७३ में है या नहीं यह? लगा रहता है। है न यह?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। २६४ पृष्ठ पर है न यह। शुरुआत देखो। २६५? २६४। **परमागम के प्रति अनुराग के वेग से जिसका मन अति चलित होता था...** देखो! यह आया २६७ पृष्ठ हिन्दी पर बीच में छठवीं लाईन, पाँचवीं। **(मार्ग की प्रभावना के लिये ही), परमागम के प्रति अनुराग के वेग से...** हमको बारम्बार विकल्प आता था। प्रवचनसार, समयसार, पंचास्तिकाय की टीका हो, ऐसा विकल्प अमृतचन्द्राचार्य को बारम्बार आता था। **परमागम के प्रति अनुराग के वेग से जिसका मन अति चलित होता था...** देखो! मैं जाननेवाला हूँ, परन्तु उसमें चलित होता था। टीका हो... टीका हो... टीका हो... ऐसा मन में (होता था)। यह मार्ग की प्रभावना हो, इसका स्पष्टीकरण हो ऐसा बारम्बार विकल्प आया करता था। देखो! मुनि। अमृतचन्द्राचार्य अपने लिये कहते हैं। छठवें गुणस्थान में विराजमान हैं। हमारा मन बारम्बार, इस पुस्तक की टीका हो, यह टीका हो, यह शास्त्र का स्पष्टीकरण हो, ऐसा मन बारम्बार शुभराग में चलायमान होता था। आता है या नहीं? जब तक वीतराग न हो, तब तक ऐसा भाव आता है।

ऐसा मैंने यह 'पंचास्तिकायसंग्रह' नाम का सूत्र कहा— देखो! **चलित होता**

था ऐसा मैंने... मेरा मन ऐसा चलित होता था शुभराग में टीका करने के लिये। इसलिए मैंने यह किया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वीतराग न हो, तब मुनि को ऐसा राग आता है, परन्तु कहते हैं कि अरेरे! यह राग सुचिरकाल तक स्वर्ग में जाना और जिसका मन अन्त:तप्त होगा। आहाहा! निषेध... निषेध... निषेध... समझ में आया? अब अन्तिम योगफल करते हैं।

टीका :- यह, साक्षात्मोक्षमार्ग के सार-सूचन द्वारा... देखो! **साक्षात्मोक्षमार्ग के सार-सूचन द्वारा...** यह व्यवहारमोक्षमार्ग परम्परा, ऐसा ले न इसमें से। यह साक्षात् मोक्षमार्ग। परम्परा अर्थात् निमित्त। **साक्षात्मोक्षमार्ग के सार-सूचन द्वारा...** ओहो! साक्षात् मोक्षमार्ग का सार, उसके सूचन द्वारा **शास्त्रतात्पर्यरूप...** पंचास्तिकाय आदि पूरे शास्त्र के तात्पर्यरूप **उपसंहार है...** पूरे शास्त्र का सार क्या है? चारों अनुयोग का सार क्या है? पंचास्तिकाय का सार क्या है? समयसार का, प्रवचनसार का, अष्टपाहुड़ का सार—यह चार अनुयोग का सब कथन लिया, परन्तु इसका सार—शास्त्रतात्पर्य (क्या) है।

(अर्थात् यहाँ साक्षात्मोक्षमार्ग का सार क्या है, उसके कथन द्वारा शास्त्र का तात्पर्य कहनेरूप उपसंहार किया है।) साक्षात्मोक्षमार्ग में अग्रसर सचमुच वीतरागता है। लो! सार क्या है? साक्षात्मोक्षमार्ग में अग्रेसर। अग्रेसर-मुख्य वास्तव में वीतरागपना है। वीतरागपना पूरे शास्त्र का सार है। वहाँ राग आया, मुनि को बताया, पाँचवें गुणस्थान में राग बताया, चौथे गुणस्थान के योग्य भी राग बताया, मुनि के योग्य पंच महाव्रत आदि का राग आता है, ऐसा बताया, (परन्तु सबका) सार वीतरागता है। उसका तो ज्ञान कराया। समझ में आया?

साक्षात्मोक्षमार्ग में अग्रसर सचमुच वीतरागता है। पूरा जैनदर्शन, जैनशासन का सार वीतरागता है। समझ में आया? राग करना, वह कहीं शास्त्र का तात्पर्य और वीतरागता का सार नहीं है। **इसलिए वास्तव में अर्हंतादिगत राग को भी,...** देखो! '**रागं सव्वत्थ कुणदु मा किंचि।**' ऐसा पाठ है न अन्दर? उसके साथ मिलाया। १७१-७० के साथ। **वास्तव में अर्हंतादिगत राग...** अरिहन्त, सिद्ध, प्रतिमा, शास्त्र का प्रेम, भक्ति, पूजा इत्यादि। **राग को भी, चन्दनवृक्ष....** नीचे (फुटनोट में) लिया है। **अर्हंतादिगत**

राग = **अर्हंतादि की ओर का राग;...** उस ओर का राग। **अर्हंतादिविषयक राग;...** सम्बन्धी राग। अर्हंतादि सम्बन्धी राग।

अर्हंतादि का राग। (जिस प्रकार चन्दनवृक्ष की अग्नि भी उग्ररूप से जलाती है,... सूखड़ की अग्नि, चन्दन सूखड़ की अग्नि। **(जिस प्रकार चन्दनवृक्ष की अग्नि भी उग्ररूप से जलाती है, उसी प्रकार अर्हंतादि का राग भी देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति द्वारा अत्यन्त अन्तरंग जलन का कारण होता है।)** अत्यन्त ज्वलन, अन्तरंग ज्वलन का कारण। जले... जले... जले... विकल्प से। आहाहा! छठवाँ गुणस्थान लेकर तो जा सकते नहीं। देव की स्थिति में चौथा गुणस्थान रास्ते में हो गया। स्वर्ग में जाते हैं वहाँ मार्ग में ही चौथा गुणस्थान हो गया। चौथे गुणस्थान की वहाँ उत्पत्ति हुई। तो कहते हैं कि अरे रे! यह पुण्य के फल में ज्वलन होगी। वहाँ संसार का सुख, स्वर्ग का सुख ज्वलन-ज्वलन दाह होगी। बळतरा को क्या कहते हैं? ज्वलन। आहाहा!

चन्दनवृक्षसंगत अग्नि की भाँति,... लो! है तो चन्दनवृक्ष, परन्तु लगी है अग्नि। वहाँ घी लिया था। समझ में आया? घी तो है शीतल। इसी प्रकार है तो यह चन्दनवृक्ष सुगन्धी। आमोद लिया था न वह आमोद। सुगन्ध भले है परन्तु देखो सुगन्ध जलती अग्नि है। अग्नि है सूखड़ की। सूखड़ की अग्नि रखते हैं न लोग, नहीं पारसी? बहुत कायम रखते हैं। पारसी लोग उनकी अगियारी हो न मन्दिर, वहाँ सूखड़ को कायम सुलगाते हैं, चौबीसों घण्टे। बारह मास अग्नि रखते हैं। वे अग्नि के दर्शन करते हैं। यह सूखड़ की लकड़ी है, देखो। मुम्बई की सूखड़ की लकड़ी। यह भी मुम्बई की है। जादूगरी लकड़ी। वे कहते हैं न कि जादूगरी है। द्वेष से कहते हैं। और लोगों को बात पूरी विरोध पड़ गयी। क्या करे? जिसकी जैसी पात्रता हो तत्प्रमाण होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ले गया था एक।

इसलिए देवलोक में **चन्दनवृक्षसंगत अग्नि की भाँति, देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति द्वारा....** लो, यह देवलोक के क्लेश की। आदि में देवलोक में से निकलकर

कोई समकिती चक्रवर्ती हो। समझ में आया ? तीर्थंकर भी हो। परन्तु जब तक संसार है, तब तक वह शुभभाव आता है, वह क्लेश है।

मुमुक्षु : सूखड़ की....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यहाँ आदि शब्द है न ? स्वर्ग और मनुष्य दोनों। दो भव आदि होते हैं। स्वर्ग में से निकलकर मनुष्य होगा, चक्रवर्ती का राज (मिले)। सम्यग्दृष्टि आराधक है तो अच्छे पुण्य में ही उपजेगा। दूसरे में उपजता नहीं। राजा, महाराजा, कोई अरबोंपति के यहाँ ही उसका जन्म होता है। दूसरी जगह जन्म नहीं होता। वह आता है न वह ? रत्नकरण्ड श्रावकाचार में नहीं ? कीर्ति ... छह बोल।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ वह। सम्यग्दृष्टि है तो उसे ऐसा पुण्य है कि स्वर्ग में से भी निकलकर ऋद्धि, कीर्ति महा, वहाँ ही उसका जन्म होगा। रंक के घर में सम्यग्दृष्टि अवतरित नहीं होता। पहले प्राप्त किया हो। प्राप्त करने के बाद स्वर्ग में जायेगा। यह छह बोल है। तेजो, ऋद्धि इत्यादि आता है न ? विद्या, बहु पराक्रम, महाराजा जैसा दिखाई दे, बड़े इन्द्र जैसा, ऐसे कुल में सम्यग्दृष्टि का अवतार होता है। साधारण गरीब कुल में अवतरित नहीं होता। परन्तु कहते हैं कि वहाँ जलेगा। उस सामग्री की ओर लक्ष्य जायेगा, उतना क्लेश... क्लेश... क्लेश... सम्यग्दृष्टि को भी क्लेश भोगना पड़ेगा। आहाहा!

लो! एक ओर ज्ञानी को क्लेश है ही नहीं। अकेला आनन्द का भोक्ता है। यहाँ भी इतना कहना है कि भाई! इतनी कर्मचेतना उत्पन्न होती है। वह कर्मचेतना और कर्मफलचेतना। महामुनि जो बालब्रह्मचारी हो, परन्तु उन्हें इतना राग था कि स्वर्ग में गये तो करोड़ों इन्द्राणियाँ (हों) और वहाँ से निकलकर ऐसे पुण्य में अवतरित होंगे।

कहो, एक व्यक्ति प्रश्न करता था कि यह शास्त्र में ऐसा क्यों लिखा ? यहाँ ब्रह्मचर्य पालन करे और उसे वहाँ इन्द्राणी मिले। अरे! सुन तो सही! ब्रह्मचर्य का फल इन्द्राणी आदि है ? वह तो राग है। देखो! बड़ा पण्डित कहता था श्वेताम्बर का। अभी है। उसने प्रश्न किया ७२ के वर्ष। ७२ क्या (संवत्) १९९२। यहाँ १९९२ के वर्ष में हीराभाई के मकान में। १९९२... २८ वर्ष हुए। एक पण्डित है श्वेताम्बर का। वह आये,

उन्होंने प्रश्न किया कि ऐसा कैसे लिखा है कि शास्त्र में कि ब्रह्मचर्य पालन करे, ज्ञानी हो, वह मरकर स्वर्ग में जाये, वहाँ इन्द्राणी मिले। सुन तो सही, कहा। आत्मा का धर्म शुरु कर दिया सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और अभी पूर्ण हुआ नहीं तो उसका बन्ध पड़ेगा, वह कहाँ जायेगा? वह गधे में जायेगा? वह नरक में जायेगा? कहाँ जायेगा? समझ में आया? उसे शुभराग रहा तो स्वर्ग में ही जायेगा। और स्वर्ग में से निकलकर भी वह महान उत्तमकुल में ही अवतरित होगा। महान ऋद्धि, समृद्धि आदि ऐसे कुल में जन्मता है। आहा! बात सच्ची, कहा। वह ब्रह्मचर्य का फल नहीं। जितना राग बाकी रहा, उसका वह फल है। तो उसने स्वीकार किया, हों! कि ऐसा हमको समझाना नहीं आता। परन्तु समझानेवाले तुम उल्टे, शास्त्र की श्रद्धा नहीं होती कि शास्त्र में क्या कहते हैं। देखो! शास्त्र में ऐसा लिखा है कि यहाँ धर्म पालन करे, वहाँ इन्द्राणी मिले—ऐसा कहा है शास्त्र में? धर्म का फल इन्द्राणी कहा है शास्त्र में? यह (संवत्) १९९२ के वर्ष की बात है। उनके मकान में। समझ में आया? है या नहीं वासुदेव? नहीं आये। समझ में आया?

यह स्वर्ग आदि मिलता है, वह धर्म का फल नहीं है। बाकी रहे हुए राग का फल है। ताराचन्दजी! सम्यक् साधन किया, सम्यग्दर्शन प्रगट किया, ज्ञान हुआ, आंशिक शान्ति हुई। अब पूर्ण नहीं हुआ तो देह छूट गया आयुष्य पूरा हुआ तो। जायेगा कहाँ? वह कहाँ जन्मेगा? क्या वह नरक में जायेगा? पशु में जायेगा? मनुष्य में नहीं जाये (क्योंकि) पुण्य बहुत है। सम्यग्दृष्टि को पुण्य बहुत होता है। सत्यभूमिका में पुण्य बहुत होता है। देव, गुरु, शास्त्र की भक्ति, प्रभावना, वांचन, श्रवण, मनन, कीर्तन बहुत आते हैं सम्यग्दृष्टि को। क्षायिक समकिती हो, उसे भी (ऐसा होता है)। उस समय केवलज्ञान न हो, तब ऐसा राग आता है तो वह वैमानिक में जन्मेगा और उसकी स्थिति थोड़ी नहीं होगी, उसकी स्थिति बड़ी होगी। और वहाँ से निकलकर बड़ा चक्रवर्ती या बड़ा तीर्थंकर या बड़ा बलदेव आदि होकर केवलज्ञान लेगा।

मुमुक्षु : ब्रह्मचर्य के दो भाग—....

पूज्य गुरुदेवश्री : ब्रह्मचर्य के दो भाग नहीं। ब्रह्म अर्थात् आत्मा के आनन्द का जितना (वेदन) करना है, उससे तो संवर-निर्जरा ही है। जितनी अपने पुरुषार्थ की

कमी रही, राग विकल्प रह गया, उतने विकल्प का फल स्वर्ग मिलेगा, मिलेगा और मिलेगा। परन्तु जाये कहाँ? केवल (ज्ञान) है नहीं। यह परिणाम है नहीं नरक जाने के योग्य। तो कहाँ भव? आयुष्य पूरा हो गया। जायेगा कहाँ? धर्मचन्दजी! समझ में आया?

एक पण्डित थे, उन्होंने कहा। तुमने शास्त्र की बात कही। बात तो तुम्हारी सच्ची, अब सच्ची लगती है। अवतरित कहाँ होगा? कहा। पूर्ण धर्म हुआ नहीं और धर्म की शुरुआत हो गयी। दृष्टि, ज्ञान इत्यादि। अब देह छूट गयी। आयुष्य पूरा हो गया। अब कहाँ जाना इसे? चार गति में कहाँ जन्मेगा यह? यह नरक में नहीं जायेगा, मनुष्य में नहीं आयेगा, पशु नहीं होगा, भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष में नहीं जायेगा। वैमानिक में भी देवीरूप से नहीं जायेगा। समझ में आया? आराधक पुण्य है। सत्यभूमिका में बाँधा हुआ पुण्य है। उस पुण्य से अच्छे स्वर्ग में जायेगा। परन्तु दुःख है। वीतरागता प्राप्त नहीं की, इतना वहाँ राग के फल का दुःख है। समझ में आया?

देवलोकादि के क्लेश की.... आदि है न? तो उत्तम मनुष्य लेना। **क्लेश की प्राप्ति द्वारा अत्यन्त अन्तर्दाह का कारण समझकर,...** देखो! **अत्यन्त अन्तर्दाह का कारण समझकर,...** अन्तर्दाह सुलगती है। पहले गर्म घी का कहा था। जला हुआ घी। गर्म घी डाले तो फफोले पड़ जायें, फोड़े पड़ जायें। गर्म पानी छिड़के और यह घी छिड़के, इसमें अन्तर क्या? पानी तो अभी पतला होता है परन्तु घी जरा जड़ा होता है तो चिपट जाता है। गर्म धगधगता चिपट जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : जब तक यहाँ .... वहाँ तक जला ही करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : जला करे।

तो कहते हैं कि **अन्तर्दाह का कारण समझकर, साक्षात् मोक्ष का अभिलाषी महाजन....** आहाहा! देखो! **साक्षात् मोक्ष का अभिलाषी महाजन....** अरे! महाजन! अरे! महाजन! महाजन। उसे महाजन कहते हैं। हे महापुरुष! ऐसा नहीं कहते? यह महाजन कहते हैं। यह **साक्षात् मोक्ष का अभिलाषी महाजन सभी की ओर से राग को छोड़कर,...** सबके प्रति का। यह कहते थे न पहले। अर्हंतादि के प्रति का, अर्हंतादि के प्रति का राग। आया था न नीचे नोट में? तो यहाँ कहा कि **सभी की ओर से...** समझ में आया?

राग को छोड़कर,... आहाहा! पहले श्रद्धा में राग को तो छोड़ा है, परन्तु अब अस्थिरता के राग को छोड़कर ऐसा पुरुषार्थ करने की बात है। **अत्यन्त वीतराग होकर,...** अत्यन्त वीतराग होकर। अत्यन्त वीतराग का अर्थ? छठवें गुणस्थान में आंशिक वीतराग तो है। तीन कषाय का नाश हुआ, उतना वीतराग तो है। परन्तु जरा राग आता है, उसे छोड़कर अत्यन्त... आहाहा! अकेले ज्ञाता-दृष्टा के आनन्द का ध्यान।

जिसमें उबलती हुई दुःख-सुख की कल्लोलें उछलती हैं... किसमें? भवसागर। यह भवसागर। पूरे भवसागर से तिर जा, ऐसा कहते हैं। कैसा है भवसागर? जिसमें उबलती हुई दुःख-सुख की कल्लोलें। उबलती हुई ऐसे। यह गुजराती में है। दुःख के। यह दुःख-सुख की कल्लोलें। सुख अर्थात् कल्पना। यह कल्पना में सुख माना और कल्पना में दुःख माना, उसकी बात है। यह तो पूरे भवसागर की बात करते हैं न? पूरा भवसागर। **जिसमें उबलती हुई...** उछलती, सुलगती हुई अग्नि। भवसागर तो ऐसा है, पूरा भवसागर। **दुःख-सुख की कल्लोलें उछलती हैं...** सुख शब्द से (आशय) यह संसार की कल्पना का सुख, हों! आत्मा का आनन्द कहाँ है वहाँ भवसागर में?

और जो कर्माग्नि द्वारा तप्त,... है। कर्म की अग्नि से जला हुआ भवसागर है। चारों गतियाँ। ओहोहो! समझ में आया? अभी **खलबलाते हुए जलसमूह की अतिशयता से भयंकर है,...** खलबल खलबल जलसमूह। समुद्र लेना है न भवसागर? कैसा है? खलबलाते हुए **कर्माग्नि द्वारा तप्त, खलबलाते हुए जलसमूह की...** अपने यहाँ चावल पकाते हैं न चावल? उसका पानी होता है न? उसमें बुलबुले पड़ते हैं। खदबदाहद होती है। चावल पकावे तो। ऐसा भवसागर **कर्माग्नि द्वारा तप्त, खलबलाते हुए जलसमूह की...** खलबलाहट। चौरासी में अवतार। चक्रवर्तीपद में हो, वासुदेवपद में हो, बलदेव पद में हो, इन्द्रपद में हो।

जलसमूह की... यह साथ में लेना। **कर्माग्नि द्वारा तप्त,...** क्या? **खलबलाते हुए जलसमूह की...** खलबल... खलबल... जैसे वे चावल सिंकते हैं, वैसे इस भवसागर में आत्मा दुःख में सिंकता है। ओहोहो! जैसे यह शक्करकन्द होता है न शक्करकन्द, नहीं? क्या कहते हैं? अग्नि में बाफते हैं न? वैसे जलहलती अग्नि में भवसागर में आत्मा जलता है। आहा! शान्तसागर प्रभु! ओहोहो!

एक आया था कल कि धूल के ढ़ेर में जैसे स्फटिक की मूर्ति पड़ी हो। धूल के ढ़ेर में, ढ़ेर में। इसी प्रकार धूल के ढ़ेर में भगवान पूरा स्फटिक आनन्दकन्द पड़ा है। यह श्लोक में आया था कहीं। समझ में आया? धूल का ढ़ेर होता है न धूल का? उसमें स्फटिक। दिखता है अन्दर धूल जैसा। अन्दर घुसती नहीं। इसी प्रकार यह धूल का ढ़ेर है, ढ़ेर-ढ़ेर। भगवान चैतन्य आनन्द की स्फटिक मूर्ति पड़ी है। चैतन्यप्रकाश और आनन्द की मूर्ति इस धूल के ढ़ेर में भिन्न पड़ी है। समझ में आया? उसकी श्रद्धा-ज्ञान करके उसमें रमना, वही मोक्ष का मार्ग है। बन्धन से छूटकर अन्दर पूरा पड़ा है।

देखो! ऐसी **अतिशयता से...** वापस ऐसा। **कर्माग्नि द्वारा तप्त, खलबलाते हुए जलसमूह की अतिशयता से....** जोर पूरा समुद्र में पानी का जोर होता है या नहीं? ऐसे खलबलाहटवाले जल का। ओहोहो! कहाँ एकेन्द्रिय, कहाँ निगोद, कहाँ ईयळ, कहाँ कीड़ी, कहाँ हाथी, कहाँ मगरमच्छ, कहाँ स्वर्ग का देव, चारों ओर खलबलाहट... खलबलाहट दु:ख है। समझ में आया? **ऐसे भवसागर को पार उतरकर,...** हे महाजन! वीतरागी होकर... आहाहा! अपने को भी सम्बोधते हैं। अपने को भी सम्बोधते हैं कि हे महाजन! अब तू पार हो जा, पार हो जा, इस भवसागर से पार हो जा। क्या लेना? देखो, सामने लेते हैं। दु:ख के सामने लेते हैं। पार उरतकर....

भवसागर को पार उतरकर, शुद्धस्वरूप परमामृतसमुद्र को अवगाह कर,... देखो! यह भवसागर दु:ख का समूह लिया है। शुद्ध स्वरूप परमामृत समुद्र। ओहो! चैतन्य वस्तु अरूपी गुणधन, गुणधन गुण का पिण्ड, वह चैतन्य अमृत शुद्ध स्वरूप परमामृत समुद्र। वह तो परम अमृत का स्वरूप आत्मा है। मरना नहीं (ऐसा) अमृत है। पूर्णामृत चैतन्यसुख ऐसा पूर्ण ठसाठस। चैतन्य स्फटिक रत्न जैसा। ठसाठस जैसे स्फटिक में जैसी सफेदाई और चमक भरी है, वैसे पूरे आत्मा में परम अमृत आनन्दसागर अन्दर भरपूर पड़ा है। राजमलजी! देवीलालजी! क्या है यह? वह संसारसागर बताया, भगवान अमृतसागर बताया। समझ में आया? ओहो! नाम आ गया अमृतचन्द्र आचार्य। शुद्धस्वरूप, यह तो आ गया है। यह सामने बताया न, दु:ख के सामने।

शुद्धस्वरूप परमामृतसमुद्र को अवगाह कर,... प्रवेश कर, प्रवेश कर उसमें। ऐसा कहते हैं। जैसे समुद्र में प्रवेश करते हैं या नहीं? समुद्र में प्रवेश करे तो मोती के

ढ़ेर मिल जाते हैं। उसी प्रकार चैतन्यप्रभु महासागर अमृत का महासागर छलाछल डोलता है, अन्दर झूलता है। उसमें प्रवेश कर। अवगाह कर, प्रवेश कर, अवगाह कर। निमित्त में से हटकर, विकल्प से हटकर महासमुद्र आनन्द प्रभु पड़ा है, उसमें अवगाह कर। आहाहा! प्रवेश कर।

(प्रवेश) कर **शीघ्र निर्वाण को प्राप्त करता है।** लो! योगफल लिया। वीतरागभाव प्राप्त करके अल्पकाल में वह परमामृतरूपी समुद्र भगवान आत्मा ऐसे निर्वाण को प्राप्त करता है। **विस्तार से बस हो। जयवन्त वर्ते वीतरागता...** आहाहा! जयवन्त वर्तो वीतरागपना **जो कि साक्षात्‌मोक्षमार्ग का सार होने से शास्त्रतात्पर्यभूत है।** जहाँ-जहाँ कहना है, वहाँ-वहाँ रागरहित रुचि और रागरहित स्थिरता, यही शास्त्र का कहने का आशय है। पूरे शास्त्र में विकार की रुचि छोड़कर, विकार की अस्थिरता छोड़कर, स्वभाव की रुचि करके, स्वभाव में स्थिर होना, यही पूरे शास्त्र का वीतराग तात्पर्य है। यह एक ही तात्पर्य है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ५, शुक्रवार, दिनांक - ११-०९-१९६४, गाथा-१७२, प्रवचन-१८

... इसमें मोक्षमार्ग के विस्तार का कथन चलता है। इसमें अन्तिम गाथा है। १७३। अन्तिम सार है। परन्तु १७२, वह अपने चलता था। आठ दिन पहले छोड़ दिया था। १७२ गाथा। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज, इसमें मोक्षमार्ग क्या है? निश्चयमोक्षमार्ग क्या है? व्यवहार क्या है? उसकी सन्धि क्या है? उसका यहाँ वर्णन करते हैं। १७२ पाठ।

तम्हा णिव्वुदिकामो रागं सव्वत्थ कुणदु मा किंचि।
सो तेण वीदरागो भविओ भवसायरं तरदि।।१७२।।

इसकी **टीका :- यह, साक्षात्‌मोक्षमार्ग के सार-सूचन द्वारा...** आत्मा का (वीतरागभाव) साक्षात् मोक्षमार्ग है, उसके सूचन द्वारा **शास्त्रतात्पर्यरूप उपसंहार है...** शास्त्र का तात्पर्य वीतरागभाव है। वीतरागभाव पूरे शास्त्र का तात्पर्य है। क्या कहा? द्रव्यानुयोग हो, चरणानुयोग हो, कथानुयोग हो या करणानुयोग हो। सब शास्त्र का तात्पर्य वीतरागभाव है। अर्थात् संयोग-निमित्त और रागविकार और एक समय की पर्याय की उपेक्षा करके—उसे छोड़कर अपने त्रिकाल ज्ञायकभाव की ओर झुकाव, उसकी दृष्टि, उसका ज्ञान और चारित्र, वह पूरे शास्त्र का वीतरागभाव तात्पर्य है।

राग व्यवहार से (कथन) आता है, शास्त्र का तात्पर्य नहीं है। अपना स्वरूप एक समय में पूर्ण ज्ञायक एकरूप स्वभाव, उस ओर के झुकाव से जो दृष्टि होती है, उस ओर झुकने से जो ज्ञान की पर्याय होती है और उस ओर झुकने से जो चारित्र की अरागी पर्याय होती है, उन तीनों को वीतरागभाव कहा जाता है। वह वीतरागभाव सम्पूर्ण शास्त्र का तात्पर्य है। **(अर्थात् यहाँ साक्षात्‌मोक्षमार्ग का सार क्या है, उसके कथन द्वारा शास्त्र का तात्पर्य कहनेरूप उपसंहार किया है।)**

साक्षात्‌मोक्षमार्ग में अग्रसर सचमुच वीतरागता है। भगवान की वाणी में—पूरे शास्त्र में संयोग, राग और एक समय की पर्याय का आश्रय छोड़कर, त्रिकाली ज्ञायकभावरूप से (मौजूद है), उसकी अपेक्षा लेकर अपनी पर्याय में जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागदशा होती है, उसे सब शास्त्र का तात्पर्य कहा गया है। समझ

में आया? **साक्षात्मोक्षमार्ग में अग्रसर सचमुच वीतरागता है।** समझ में आया? अपना स्वभाव एक समय में पूर्ण ज्ञायक और आनन्द आदि एक शुद्धरूप है, उसका अवलम्बन करके, पर का विषय छोड़कर और देव-गुरु-शास्त्र इत्यादि को भी विषय करना, उसमें राग आता है। समझ में आया? उस राग का भी लक्ष्य छोड़कर, पर का आश्रय छोड़कर स्वआत्मा को विषय बनाकर, अपनी पर्याय में वीतराग दृष्टि, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी चारित्र प्रगट करना, यह पूरे शास्त्र की दिव्यध्वनि का सार है। सेठ! समझ में आया? सूक्ष्म बात है। पूरा पंचास्तिकाय नहीं, परन्तु समस्त शास्त्रों का तात्पर्य कहते हैं। समझ में आया?

किसी जगह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, शास्त्र का-जिनवाणी का प्रेम... जिनवाणी का प्रेम, यह आ गया १७१ में। देव अरिहन्त की भक्ति, सिद्ध भगवान की भक्ति, प्रवचन-वाणी—जिनवाणी का प्रेम और भगवान की प्रतिमा आदि की पूजा का राग, वह सब शुभराग है। समझ में आया? राग है। यह पहले आ गया है। अब यहाँ अभी कहेंगे। **इसलिए वास्तव में अर्हंतादिगत राग को भी,...** है शब्द? अर्हंतादिगत, अर्हंतादिगत। अर्हंत आदि यह १७१ में ले लिया है। १७१ (गाथा)। एक पृष्ठ पहले। अर्हंत, सिद्ध, चैत्य, प्रवचन भक्त। १७१ में है। मूल गाथा के अन्वयार्थ में है। अरिहंत परमेश्वर की भक्ति, वह भी शुभराग है। समझ में आया? और सिद्ध भगवान की भक्ति, वह भी शुभ विकल्प / राग है और अर्हंतादि की प्रतिमा, अरिहंत, सिद्ध की मूर्ति की भक्ति, वह भी एक राग है। और प्रवचन के प्रति भक्ति। १७१ में है। १७१ गाथा का शब्दार्थ देखो। **अर्हंत, सिद्ध, चैत्य और प्रवचन के प्रति भक्तियुक्त वर्तता हुआ,...** यह राग है। समझ में आया? यह जिनवाणी का प्रेम भी राग है। आहाहा! भगवान की पूजा, भक्ति करना, वह भी राग है। यात्रा करना आदि का विकल्प उठता है, वह भी एक शुभराग है। वह राग आता है, परन्तु उस राग को भी **चन्दनवृक्षसंगत अग्नि की भाँति...** देखो! नीचे नोट है।

अर्हंतादिगत राग = अर्हंतादि की ओर का राग; अर्हंतादिविषयक... अर्थात् अर्हंत शब्द से सिद्ध, प्रवचन, भक्ति का राग, **अर्हंतादि का राग।(जिस प्रकार चन्दनवृक्ष की अग्नि भी उग्ररूप से जलाती है,...)** यह चन्दनवृक्ष की अग्नि। पहले घी का दृष्टान्त दिया था कि उष्ण घी जलाता है, उसी प्रकार यह शुभराग भी आत्मा की शान्ति को

जलाता है। समझ में आया? **(उसी प्रकार अर्हंतादि का राग भी देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति द्वारा अत्यन्त अन्तरंग जलन का कारण होता है।)** राग आता है। जब तक वीतराग न हो, तब तक आत्मा की दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता आंशिक होने पर भी भगवान की पूजा, भक्ति, प्रवचन का प्रेम, जिनवाणी का प्रेम होता है, परन्तु वह राग का फल, चन्दनवृक्ष की अग्नि जैसे जलाती है, वैसे राग से पुण्यबन्ध होता है और देवलोक के विषय की अग्नि जलायेगी। देवलोक के विषय उसमें मिलेंगे। आहाहा! ताराचन्दजी! यह लिखा है न? देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति। क्लेश। राग है न? वह पुण्य है। तो वर्तमान में भी क्लेश है और उसके फल में स्वर्ग और चक्रवर्ती आदि का पद मिलेगा ज्ञानी को, वह भी वहाँ क्लेश है। इतना राग के फल में उसका जुड़ान होता है, उतना क्लेश है।

अत्यन्त अन्तरंग जलन का कारण होता है। ज्वलन का कारण है। अन्दर जलता है। जैसे चन्दन की अग्नि, अग्नि भी जलाती है, वैसे पुण्य राग, भगवान की भक्ति का राग भी वर्तमान में भी ज्वलन है और भविष्य में फल ज्वलन का ही कारण होता है। आता है, (वह) दूसरी बात है, परन्तु वह मोक्षमार्ग है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

तो **अर्हंतादिगत राग...** अर्थात् पाँच बोल लिये थे वे। अरिहन्त, सिद्ध, प्रतिमा, प्रवचन आदि भक्ति। वह **चन्दनवृक्षसंगत अग्नि की भाँति, देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति...** क्लेश प्राप्त होगा। **अत्यन्त अन्तर्दाह का कारण समझकर,...** वह दाह का कारण है। दुनिया अभी बड़ा भाग त्यागी और पण्डित लगभग यह क्रियाकाण्ड जो राग दया, दान, भक्ति, पूजा को ही धर्म मानता है। शरीर की क्रिया को धर्म (मनाता है)। लो! जीवित शरीर से धर्म होगा। अमरचन्दभाई! आया था न, प्रश्न आया था वहाँ जयपुर में। आहाहा!

भाई! यह सम्यग्दर्शन, ज्ञान अपने शुद्ध आत्मा का आश्रय करके हुए, जब तक (पूर्ण) वीतराग पर्याय में न हो, तब तक ऐसा भाव अशुभ से बचने—अशुभवंचनार्थ—ऐसा शुभभाव भक्ति आदि का आता है। परन्तु है पुण्यबन्ध का कारण। जिनवाणी का प्रेम, आगम का प्रेम, आगम की भक्ति, वह भी शुभभाव है। परद्रव्य है, आगम भी परद्रव्य है, वाणी परद्रव्य है, प्रतिमा परद्रव्य है, अरिहन्त परद्रव्य है, सिद्ध परद्रव्य है।

समझ में आया ? तो जितना परद्रव्य के प्रति राग, ज्ञानी को—समकिती को, मुनि को भी आता है, परन्तु है राग बन्ध का कारण। और उसके फल में स्वर्गादि चक्रवर्ती के पद में बलदेव आदि पद में क्लेश है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी सुख नहीं, यही कहते हैं यहाँ। सुख कितना है वहाँ ? यहाँ सुख कितना तुमको ? कहो, समझ में आया ?

देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति द्वारा अत्यन्त अन्तर्दाह का कारण समझकर,... देखो ! ज्ञानी को—धर्मी को इसे समझना चाहिए। आता अवश्य है, होता अवश्य है। जब तक (पूर्ण) वीतराग पर्याय दशा में न प्रगट हो, तब तक सम्यग्दर्शन, ज्ञानपूर्वक चारित्र की रमणता है, ऐसे मुनियों को भी ऐसा राग आता है। परन्तु वह राग बन्ध का कारण है। संवर-निर्जरा का कारण नहीं। शोभालालभाई !

मुमुक्षु : वर्तमान पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र की भक्ति।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग है न।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह राग, वह क्लेश है। राग, वही आकुलता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यहाँ कहा न पहले ? कि जब तक वीतरागदशा न हो, तब तक आये बिना नहीं रहता। भगवान की भक्ति तो ठीक, परन्तु यह वाणी का प्रेम भी राग है। यह सुनने का प्रेम है, वह भी राग है। इसलिए न आवे, ऐसा नहीं; होता अवश्य है परन्तु तो भी वह रागरूपी आकुलता है। उसका बन्ध पुण्य है और उसके फल में देवलोक की या चक्रवर्ती की, बलदेव की ऋद्धि क्लेशरूप (वेदन में आती है), उस ऋद्धि में लक्ष्य जायेगा तो क्लेश होगा, वहाँ कहीं भोग में सुख नहीं है। समझ में आया ?

तब कोई कहता है कि परन्तु तब किसलिए करते हो? परन्तु वह आये बिना रहता नहीं। पूर्ण वीतराग न हो, तब तक बीच में ऐसा राग भक्ति आदि का आये बिना रहता नहीं। जिनवाणी का प्रेम हो। ऐसा भी कहा जाता है कि जिनवाणी से ज्ञान होता है। ऐसा कहा जाता है परन्तु है नहीं। जिनवाणी परवस्तु है। जैसे प्रतिमा परवस्तु है, साक्षात् अरिहन्त हों तो भी परवस्तु है। उनकी भी भक्ति का भाव—राग उठता है, वह शुभराग है। यह कहा न १७१ में। अरिहन्त, सिद्ध, प्रतिमा आदि, भगवान का नाम स्मरण करना णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... यह सब शुभभाव है, राग है। समझ में आया?

कहते हैं कि आता है, उसका फल क्या है? कि उसका फल बन्ध है। आहाहा! उसकी पहले दृष्टि ऐसी निर्मल करना चाहिए कि वह राग करते-करते मेरा कल्याण हो जायेगा, (ऐसा नहीं है)। ज्ञानी को राग आता है तो वह समझता है कि इतनी मेरी चारित्र की कमजोरी है तो ऐसा राग आता है। जिनवाणी माता, समयसार शास्त्र आदि का श्रवण करना, प्रेम करना, वह सब शुभभाव विकल्प है। क्योंकि वह परद्रव्य है। समझ में आया? इसलिए पढ़ना नहीं, ऐसा नहीं, वापस वहाँ।

मुमुक्षु : परन्तु आपने ऐसा कहा कि उसमें क्लेश....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह राग है न? राग आये बिना रहता नहीं। पाप का राग क्यों आता है घर में? उस नटु को सम्हालने के लिये सिर फोड़कर इतने वर्ष हुए तो भी अभी, श्वास चढ़े तो भी इकट्ठे जाना उसके साथ कोर्ट में। यह पाप राग आता है या नहीं?

मुमुक्षु : पापराग आवे उसमें तो क्लेश है ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस पुण्यराग में भी क्लेश-मन्द क्लेश है। अशुभराग, वह तीव्र क्लेश है, मन्दराग, वह मन्द क्लेश है। वीतरागता आत्मा में प्रगट हो, उतनी अनाकुलता आनन्द है। ऐसी वस्तु का इसे यथार्थ निर्णय तो करना या नहीं? निर्णय किये बिना इसे सम्यग्दर्शन कहाँ से होगा? और सम्यग्दर्शन बिना आत्मा का मोक्ष कभी नहीं होता।

मुमुक्षु : राग....

पूज्य गुरुदेवश्री : अब यह क्लेश कहा न, क्या सुना? राग स्वयं क्लेश है, राग वर्तमान आकुलता है। स्त्री, पुत्र का राग तो पाप आकुलता है। यहाँ तो पंच परमेष्ठी का

प्रेम और जिनवाणी का प्रेम भी मन्द राग आकुलता है। यह कहा।

अर्हंतादिगत राग... आदि शब्द है न! भगवान की वाणी सुनना, श्रवण—ऐसा विकल्प आता है, परन्तु वह विकल्प है, परद्रव्य जिसका विषय है। स्वद्रव्य को विषय बनाकर ज्ञान, दर्शन, चारित्र जितने प्रगट होते हैं, उतना शुद्ध है। यह शुद्ध है, वह संवर-निर्जरा है। और परद्रव्य का विकल्प उठता है, उतना आस्रव और बन्ध है। आहाहा! ऐसे सम्यक् यथार्थ नौ तत्त्व की श्रद्धा का ठिकाना नहीं। आस्रव, बन्ध के कारण को धर्म माने, धर्म के कारण को पर के आश्रय से होता है, ऐसा माने, वह तो सब तत्त्व की भूल है। बराबर है देवीलालजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन लग जाये? कौन करता है? वह तो बननेयोग्य होगा, तब राग आये बिना रहेगा नहीं। और मन्दिर-बन्दिर कौन रागवाला बना सकता है? कौन कहता है? यह पुस्तक कौन बना सकता है? पुस्तक कहीं आत्मा बना सकता है? जिनवाणी की रचना, वाणी की रचना भी पुद्गल से होती है; आत्मा से नहीं।

मुमुक्षु : कोई बनायेगा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बनाता है, वह बनायेगा नहीं? खरगोश के सींग समझे न? क्या कहते हैं? खरगोश। सींग को कोई काटेगा नहीं। परन्तु है कहाँ (कि) उसे काटे? इसी प्रकार वाणी की रचना अक्षर एक बनता है, एक अक्षर। भग-वान। भ—तो एक अक्षर में अनन्त परमाणु का स्कन्ध है और एक-एक स्कन्ध में अनन्त परमाणु है। एक-एक परमाणु अपनी पर्याय से अक्षर बनता है। क्या वाणी को जीव बना सकता है?

मुमुक्षु : यह हिम्मतभाई ने नहीं बनाया साहित्य?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। हिम्मतभाई को व्यवहार से बतलाया जाता है। कहाँ गये मोहनभाई? समझ में आया? यह अन्तिम आता है न, इसमें आया है या नहीं? नहीं आया, इसमें नहीं। इसमें... इसमें। यह देखो अन्दर है १७३। १७३ गाथा में। २६७ पृष्ठ। उसमें २६७। उसमें देखो, चौथी लाईन है।

(-मार्ग की प्रभावना के लिये ही), परमागम की ओर के अनुराग के वेग से

जिसका मन अति चलित होता था, ऐसे मैंने यह 'पंचास्तिाकायसंग्रह' नाम का सूत्र कहा— समझ में आया ? और फिर अन्तिम श्लोक है, देखो ! अन्तिम श्लोक, २६८ पृष्ठ २६८ पृष्ठ। **अपनी शक्ति से जिन्होंने वस्तु का तत्त्व (-यथार्थस्वरूप) भलीभाँति कहा है ऐसे शब्दों ने...** है ? शब्दों ने पुस्तक बनायी है, मैंने नहीं। मैंने पुस्तक बनायी, ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। आहाहा ! समझ में आया ? देखो ! **अपनी शक्ति से जिन्होंने वस्तु का तत्त्व....** अर्थात् यथार्थ स्वरूप **भलीभाँति कहा है ऐसे....** जिन्होंने अर्थात् इन शब्दों ने। **शब्दों ने यह समय की व्याख्या की है;... (अर्थसमय का व्याख्यान अथवा पंचास्तिकायसंग्रह शास्त्र की टीका)....** शब्दों ने की है। **स्वरूपगुप्त (-अमूर्तिक ज्ञानमात्र स्वरूप में गुप्त) अमृतचन्द्रसूरि का (उसमें) किंचित् भी कर्तव्य नहीं है।** समझ में आया ?

शब्द तो वाणी है, अक्षर उठते हैं, वे जड़ में से उठते हैं। क्या आत्मा शब्द बना सकता है ? जैसे ईश्वर जगत का कर्ता, ऐसा माने और यह ऐसा माने कि मैंने वाणी बनायी। सब मिथ्यादृष्टि एक वर्ग में हैं। वाणी जड़ है, अनन्त परमाणु के स्कन्ध की अवस्था है। वह स्कन्ध की अवस्था में पुद्गल की पर्याय हुई है। क्या आत्मा से हुई है ? आहाहा ! भाई ! जिनवाणी तो रखो, भगवान की दिव्यध्वनि भगवान ने बनायी। भगवान अरूपी केवलज्ञानघन है। क्या वाणी के कर्ता वे हैं ? वाणी तो जड़ है। अनन्त परमाणु की राशि-पिण्ड है, उससे वह पर्याय होती है। क्या आत्मा से होती है ? समझ में आया ? भारी कठिन भाई यह जगत को। कठिन है। देखो ! मैं कठिन कहूँ तो वह भी कठिन कहे।

मुमुक्षु : सच्चा गले उतारने का....

पूज्य गुरुदेवश्री : गले उतरे परन्तु यह उतरे ऐसा है। परमाणु है या नहीं ? अक्षर, वाणी क्या है ?

मुमुक्षु : परन्तु पहले ऐसा माने, यह शब्द अपने आप....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने आप होते हैं ये।

मुमुक्षु : बोला जाता है या नहीं अपने आप ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह श्वास किसके कारण चलती है ? देखो, यह अन्दर। लोग

ऐसा कहते हैं कि श्वास जीव का सगा नहीं है। ऐसा नहीं कहते ? श्वास कितना चलता है देखो तुम्हारे। चलता है तो ऐसे-ऐसे चले। तुम्हारा भाव है यह करने का ? श्वास परमाणु का पिण्ड है। मरते हुए दृष्टान्त नहीं देते बहुत बार ? मृत्यु का काल आता है, तब श्वास यहाँ नाभि से छूट जाता है। नाभि से श्वास की गति एक दोरा, दो दोरा ऊपर हट जाती है। तो ख्याल में आता है कि हट गयी। नीचे नहीं उतार सकता। घर छोड़ दिया— श्वास ने घर छोड़ दिया। क्या आत्मा श्वास का कर्ता है ? आहाहा ! यह श्वास की क्रिया जड़ के अनन्त रजकण के स्कन्ध की क्रिया-पर्याय है। ख्याल आवे कि घर छोड़ दिया। श्वास नीचे नहीं बैठता। ऊपर-ऊपर (चलता है)। समझ में आया ? लोगों में ऐसा कहते हैं कि भाई ! श्वास जीव का सगा नहीं है। तो सगा कौन है ? नहीं कहते ? तुम्हारे भी कहते होंगे कुछ। क्या कहते हैं तुम्हारे हिन्दी में ?

मुमुक्षु : श्वास .... रिश्ता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, रिश्ता नहीं-नाता नहीं। श्वास के साथ तेरा सम्बन्ध नहीं। किसके साथ तुझे सम्बन्ध है ? श्वास तो कायम चलता है, भाषा तो कभी-कभी बोली जाती है। यह कायम चलता है, वह भी तेरा कर्तव्य नहीं तो वाणी तेरा कर्तव्य कहाँ से हुआ ?

मुमुक्षु : बात गले उतरनी चाहिए न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : गले उतरे ऐसी बात है यह। जड़ है या चैतन्य वाणी ? और जड़ है, उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रुव अपने में बनता है या नहीं ? निमित्त क्या करे ? निमित्त कर्ता हो तो निमित्त रहता नहीं। उस समय परमाणु का स्कन्ध-पिण्ड अपनी पर्याय में भाषायोग्य उत्पन्न होता है। पूर्व की वर्गणा की पर्याय का व्यय, भाषा का उत्पाद, परमाणु की ध्रुवता। एक समय में परमाणु में उत्पाद, व्यय, ध्रुव एक समय में होते हैं, वे आत्मा से नहीं।

मुमुक्षु : अपने विचार प्रमाण स्कन्ध....

पूज्य गुरुदेवश्री : विचार प्रमाण नहीं आते। वे उनके कारण से आते हैं।

मुमुक्षु : आते हैं उनके कारण से....

पूज्य गुरुदेवश्री : विचारे कुछ और बोला जाये कुछ। नहीं होता यहाँ ?

मुमुक्षु : वह तो कभी ऐसा बनता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो वह कभी, इसलिए इसका अर्थ यह हो गया कि तुम्हारे विचार प्रमाण भाषा नहीं निकलती। कहो, अभी इतने वर्ष में निर्णय करना है अभी ?

मुमुक्षु : यह तो जरा....

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा-जरा क्या परन्तु अब कहाँ तक अब ?

मुमुक्षु : आत्मा के भाव के साथ सम्बन्ध....

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ सम्बन्ध नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अब निर्णय किया। अभी तक अभी मुँडाया है कुछ।

मुमुक्षु : भाव जैसे होते हैं, वैसी शब्दरचना उसके कारण से....

पूज्य गुरुदेवश्री : शब्द उसके कारण से होते हैं। शब्द की रचना आत्मा विकल्प करे, राग करे तो होती है, (ऐसा) तीन काल में नहीं और उसका ज्ञान करे कि ऐसा बोलना चाहिए, इसलिए बोला जाता है, ऐसा नहीं। भारी जगत की बात विवाद।

यहाँ तो कहते हैं कि जीव और जड़ दो भिन्न हैं या नहीं ? तो भिन्न, भिन्न का क्या करे ? यहाँ तो कहते हैं, वह तो बाहर रहे भगवान, भगवान की वाणी कहने में आती है। वाणी भगवान ने की ही नहीं। वाणी वाणी से निकली है। भगवान तो निमित्त कहने में आते हैं। निमित्त का अर्थ ? उन्होंने रची नहीं तो निमित्त कहने में आते हैं। वे रचनेवाले हों तो उन्हें निमित्त नहीं कहा जाता, (तब) तो कर्ता कहा जाये। समझ में आया ? भारी अभिमान! भाषा का अभिमान, देह की क्रिया का अभिमान। मैंने किया... मैंने किया... मैंने किया... कहते हैं कि यह बात तो पर रही, परन्तु यह भगवान परद्रव्य है, उनकी वाणी भी परद्रव्य है, प्रतिमा परद्रव्य है, यात्रा सम्मेदशिखर, गिरनार परद्रव्य है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परद्रव्य तो पहले से कहा अब यह तो। पहले तो यह कहा कि

भाई! स्त्री-पुत्र के लिये वहाँ कोर्ट में जाता है तो अकेला पाप है। परद्रव्य के आश्रय से वहाँ पाप है और यह देव-गुरु-शास्त्र के आश्रय से जो उत्पन्न होता है, वह पुण्यराग है। मन्द कषाय है परन्तु है राग। समझ में आया? कितने ही ऐसा बना देते हैं कि सम्मेदशिखर के दर्शन करे तो संसार का नाश हो जाता है। मिथ्या है।

मुमुक्षु : एक बार वन्दे जो कोई....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, एक बार वन्दे। वन्दे तो शुभभाव है। उसमें क्या आया? मोक्ष-बोक्ष कहाँ से होगा? सम्मेदशिखर क्या, साक्षात् अरिहन्त के दर्शन समवसरण में अनन्त बार किये और कल्पवृक्ष के फूल, हीरा के थाल और मणिरत्न के दीपक। हो, होते हैं। वह क्रिया पर से होती है, भाव अपने में होता है, परन्तु वह भाव शुभविकल्प राग है। वह संवर-निर्जरा है या मुक्ति का कारण है, ऐसा नहीं है। ओहोहो! कहो, यहाँ तो यह बात अब छोटे-छोटे लड़के भी समझते हैं यहाँ तो। समझ में आया?

देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति द्वारा अत्यन्त अन्तर्दाह का कारण समझकर, साक्षात् मोक्ष का अभिलाषी महाजन... अरे! महाजन! हे धर्मात्मा! वह **सभी की ओर से राग को छोड़कर,...** स्त्री, पुत्र, परिवार का राग तो छोड़ दिया। अब यहाँ देव, गुरु और शास्त्र, वाणी का राग है, उसे भी छोड़कर स्थिर हो, ऐसा बताना है। समझ में आया? (शुभ) राग छोड़कर अशुभ राग कर, ऐसा नहीं कहना है। परन्तु वह शुभराग छोड़कर शुद्ध में रमे तो मुक्ति होगी; नहीं तो मुक्ति होगी नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

साक्षात् मोक्ष का अभिलाषी महाजन... महाजन। आत्मा को कहते हैं, हे महाजन! हे बड़े आत्मा! **सभी की ओर से राग को छोड़कर,...** यह तो साक्षात् मोक्षमार्ग बतलाना है न? तो **सभी की ओर से राग को छोड़कर,...** यह जिनवाणी, आगम, प्रतिमा, देव और गुरु के प्रति का राग है, वह बहिर् विषय का राग है। समझ में आया? यह भजन-बजन करना, भक्ति करना, ऐसा करना, वह सब शुभराग है। क्रिया तो जड़ से होती है, आत्मा से नहीं। यह ढोलक-बोलक बजता है, वीणा बजती है, वह आत्मा से नहीं। उसमें भक्ति का राग आता है, उतना शुभराग है, परन्तु वह राग बन्ध का कारण है, ऐसा इसे निर्णय करना चाहिए। वह राग करते-करते सम्यग्दर्शन हो जाएगा और राग करते-करते केवलज्ञान हो जाएगा, ऐसा तीन काल-तीन लोक में वस्तु में नहीं है। समझ में

आया? भारी शोर मचाते हैं लोग कि अरर! ऐसे शुभराग (करते हैं)। परन्तु यह निर्णय तो कर। शुभराग को... भाई! पहले दृष्टि में तो छोड़नेयोग्य है, ऐसा निर्णय तो कर। ज्ञान में और दृष्टि में वह राग आदरणीय नहीं है। आता है, होता है, उपादेय नहीं है। उपादेय तो अन्दर शुद्ध चैतन्यमूर्ति की श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र उपादेय है। समझ में आया? ऐसी जब निर्णय की भूमिका भी सच्ची न करे तो कभी उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा!

अरे! महाजन! ओहो! आचार्य ने देखो न कैसा शब्द प्रयोग किया है! समझ में आया? ...महाजन! **सभी की ओर से राग को छोड़कर,...** भगवान आत्मा अकेला निर्मल निर्विकल्प एकरूप वस्तु, एकरूप वस्तु त्रिकाल शुद्ध का लक्ष्य करके, उसे उग्ररूप से विषय बनाओ और परद्रव्य का राग का विषय छोड़ दे। यहाँ तो पूर्ण साक्षात् मोक्षमार्ग बतलाना है न, साक्षात् मोक्षमार्ग। समझ में आया? **अत्यन्त वीतराग होकर,...** अत्यन्त वीतराग होकर। इतना भी राग छोड़कर अन्दर स्वरूप में अन्तर वीतराग होकर **जिसमें उबलती हुई दुःख-सुख की कल्लोलें उछलती हैं...** जिसमें उबलती हुई। पानी उकलता हो न पानी, पानी? चावल पकाते हैं न चावल? पानी में खदबद खदबद होती है न, पैसा पड़े ऐसा पानी। उकलता पानी कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह पानी। **उबलती हुई दुःख-सुख की कल्लोलें उछलती हैं और जो कर्माग्नि द्वारा तप्त, खलबलाते हुए जलसमूह की अतिशयता से भयंकर है, ऐसे भवसागर को पार उतरकर,...** भवसागर कैसा है? कि सुलगते हुए सुख-दुःख की कल्लोलें। दुःख सुख। सुख अर्थात्? आत्मा का सुख नहीं। यह कल्पना (कि) हमको पैसा मिला, स्त्री है और यह धूल मिली उसमें जो कल्पना होती है कि हम सुखी हैं, वह सुख भी दुःख का कल्लोल है।

मुमुक्षु : फैसला कर दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : फैसला।

यह **दुःख-सुख की कल्लोलें उछलती हैं...** कल्पना में दुःख-सुख की कल्पना उछलती है **और जो कर्माग्नि द्वारा तप्त,...** भवसागर है। कर्मरूपी अग्नि लगी है। राग-

द्वेष... राग-द्वेष... राग-द्वेष... **खलबलाते हुए...** खलबल... खलबल... **जलसमूह की अतिशयता से भयंकर है,...** खलबलाहटवाले ऐसे जल का समूह, ऐसी अग्नि **ऐसे भवसागर को पार उतरकर,...** आहाहा! स्वर्ग में भी क्लेश, नरक में भी क्लेश, सेठाई में क्लेश, रंकाई में क्लेश, चक्रवर्तीपद में क्लेश, स्त्री के संग में क्लेश, भगवान के संग में जाकर वाणी सुनी, वह भी राग का क्लेश। आहाहा! समझ में आया? आता है, वह दूसरी बात है। जब तक पूर्ण केवलज्ञान और वीतराग न हो, तब तक आये बिना रहता नहीं। यह भी अभी कहेंगे। परन्तु है वह राग बन्ध का कारण। ऐसा इसे निर्णय करना चाहिए। वहाँ से दृष्टि हटाकर स्वरूप में स्थिर होगा, तब केवलज्ञान प्राप्त करेगा। इसके अतिरिक्त प्राप्त नहीं करेगा। समझ में आया?

शुद्धस्वरूप परमामृतसमुद्र को अवगाह कर,... देखो! यह भवसागर तो राग है। इस राग को छोड़कर भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप परमामृतसमुद्र। भगवान आत्मा एकरूप त्रिकाल, परम अमृतसमूह। परम अतीन्द्रिय अमृत का स्वरूप ढ़ेर है आत्मा नित्यानन्द, अवगाहन कर-प्रवेश कर, जैसे समुद्र में जाता है तो मोती मिलते हैं। यह मोती नहीं? नीचे मोती पड़े हों। उसी प्रकार भगवान आत्मा अमृत का समुद्र, शुद्ध स्वरूप परम अमृत के समुद्र को अवगाहकर अन्तर्मुख प्रवेश कर, अन्तर में प्रवेश कर **शीघ्र निर्वाण को प्राप्त करता है।** वह शीघ्र अर्थात् अल्पकाल में केवलज्ञान प्राप्त करके मुक्ति होती है। वह राग से छूटकर स्वरूप में स्थिरता करता है, तब मुक्ति होती है। जब तक राग रहता है, सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को, चारित्रवन्त को भी जितना राग रहता है, वहाँ तक उसे देवलोकादि के क्लेश में जाना पड़ेगा। वहाँ से निकलकर जब राग छोड़ेगा, तब केवलज्ञान प्राप्त करेगा। समझ में आया?

विस्तार से बस हो। आचार्य महाराज कहते हैं, विस्तार से बस होओ। यह ९०० वर्ष पहले की टीका है। अमृतचन्द्राचार्य। दो हजार वर्ष पहले की यह गाथा है। महा जैनदर्शन नहीं परन्तु वस्तुदर्शन का सार। जगत का दर्शन, उसका सार। जैनदर्शन कोई बाह्य में नहीं रहता। जैनदर्शन अपनी पर्याय में भावश्रुतज्ञान की परिणति रागरहित होना, उसका नाम जैनशासन है। आहाहा! समझ में आया? जैनशासन। यह १५वीं गाथा में कहा है न, समयसार।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं ॥१५॥

जिसने अपने आत्मा को कर्मबन्ध से रहित, विकार से रहित, भेद से रहित, अनेक पर्याय का भंग उठते हैं, उससे रहित एकरूप, कषाय अग्नि विकल्प से भी रहित एकरूप ऐसे अपने आत्मा को जो अन्तर में प्रतीति, अनुभव में देखता है, उसने पूरा जैनशासन देखा। समझ में आया? आहाहा! यह १५वीं गाथा में आया। '**पस्सदि जिणसासणं सव्वं**' भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा है। समयसार - १५वीं। समझ में आया?

तो कहते हैं, अरे! आत्मा! विस्तार से अब बस होओ। जयवन्त वर्तें वीतरागता। **साक्षात्मोक्षमार्ग का सार होने से शास्त्रतात्पर्यभूत है।** साक्षात्मोक्षमार्ग का सार होने से शास्त्र का तात्पर्य फल वीतरागता है। यह पूरे शास्त्र का सार अर्थात् मक्खन है। अब **तात्पर्य द्विविध होता है :** तात्पर्य अर्थात् सार दो प्रकार के हैं। एक **सूत्रतात्पर्य...** यह नीचे। **प्रत्येक गाथासूत्र का तात्पर्य, सो सूत्रतात्पर्य है...** प्रत्येक गाथा में क्या कहना है, यह वहाँ से जानना, यह सूत्रतात्पर्य और पूरे शास्त्र में क्या कहना है, यह जानना, वह (शास्त्रतात्पर्य) वीतरागता।

सूत्रतात्पर्य और शास्त्रतात्पर्य। उसमें, सूत्रतात्पर्य प्रत्येक सूत्र में (प्रत्येक गाथा में) प्रतिपादित किया गया है;.... समझ में आया? और **शास्त्रतात्पर्य अब प्रतिपादित किया जाता है :—** बतलाना है वीतराग। परन्तु जब तक पूर्ण वीतराग न हो, तब तक सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा निश्चय होने पर भी उसे व्यवहार का राग कैसा आता है, ऐसे निश्चय और व्यवहार को अविरोध सिद्ध करना। समझ में आया? यह गाथा बड़ी है। बहुत दिन तक चलेगी। बहुत लम्बी गाथा है।

सर्व पुरुषार्थों में सारभूत... देखो! सर्व पुरुष। पुरुष अर्थात्? अर्थ। पुरुष अर्थ— पुरुष प्रयोजन। **पुरुषार्थ के चार विभाग किए जाते हैं : धर्म,...** अर्थात् पुण्य का पुरुषार्थ, **अर्थ,...** अर्थात् लक्ष्मी का पुरुषार्थ, **काम,...** अर्थात् भोग का पुरुषार्थ, **मोक्ष...** अर्थात् वीतराग होने का पुरुषार्थ। **परन्तु सर्व पुरुष-अर्थों में मोक्ष ही सारभूत (तात्त्विक) पुरुष-अर्थ है।** आत्मा का प्रयोजन मोक्ष का सार प्रयोजन है। लक्ष्मी का पुरुषार्थ राग

का, पाप का, भोग का पुरुषार्थ पाप के—दोनों अशुभ हैं और पुण्य का पुरुषार्थ, वह शुभ है। और तीसरा वीतराग का पुरुषार्थ वह मोक्ष है। समझ में आया? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म शब्द से यहाँ पुण्य लेना। राग की मन्दता पुण्य है, उसे यहाँ व्यवहारधर्म कहा जाता है। और लक्ष्मी है, वह पुण्य का फल है, उस अर्थ की प्राप्ति करना, वह पाप पुरुषार्थ है। और भोग लेना, वह भी पाप पुरुषार्थ है। दोनों पाप है, एक पुण्य है, मोक्ष वीतरागता है। समझ में आया? मोक्ष पुरुषार्थ करना, वही वास्तव में जीव का प्रयोजनभूत अर्थ है।

सर्व पुरुषार्थों में सारभूत ऐसे मोक्षतत्त्व का प्रतिपादन करने के लिये... मोक्ष तत्त्व का प्रतिपादन करने के हेतु से, हों! **जिसमें पंचास्तिकाय...** भगवान ने पंचास्तिकाय वर्णन किया। पंचास्तिकाय समझे? एक काल के अतिरिक्त जीव, पुद्गल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश। **और षड्द्रव्य...** उसमें काल आ गया। **षड्द्रव्य के स्वरूप के प्रतिपादन द्वारा समस्त वस्तु का स्वभाव दर्शाया गया है,...** यह पंचास्तिकाय में भगवान की वाणी से समस्त पंचास्तिकाय, षट्द्रव्य, नौ तत्त्व यह सब कहे हैं।

नव पदार्थों के विस्तृत कथन द्वारा जिसमें... यह छह के नौ। **जिसमें बन्ध-मोक्ष के सम्बन्धी (स्वामी),...** बताया। बन्ध का स्वामी अज्ञानी राग, द्वेष आदि। मोक्ष का स्वामी वीतरागी देव इत्यादि। **बन्ध-मोक्ष के आयतन (स्थान)...** भाव बताये। यह बन्ध का भाव विकारभाव, मोक्ष का भाव निर्विकार बतलाया। **बन्ध-मोक्ष के विकल्प (भेद) प्रगट किए गए हैं,...** बन्ध के भेद मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग। मोक्ष का भेद निश्चय और व्यवहार। समझ में आया? अथवा मोक्ष का द्रव्य और भाव दो (भेद)। द्रव्यमोक्ष और भावमोक्ष। कर्म का छूटना वह द्रव्यमोक्ष और वीतरागपना प्राप्त होना केवलज्ञान, वह भावमोक्ष है। समझ में आया? **बन्ध-मोक्ष के आयतन (स्थान)....** नाम भाव बताये। बन्ध-मोक्ष के भेद बतलाये।

निश्चय-व्यवहाररूप मोक्षमार्ग का जिसमें सम्यक् निरूपण किया गया है... अब आया। भगवान के शास्त्र में पंचास्तिकाय आदि शास्त्र में निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग, जिसमें सम्यक् निरूपण किया गया है। देखो, अब व्यवहार आया। मोक्षमार्ग का कथन दो प्रकार का है। मोक्षमार्ग तो एक ही है—निश्चयमोक्षमार्ग। परन्तु

कथन दो प्रकार के आते हैं। अपने शुद्ध स्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और लीनता, वह निश्चयमोक्षमार्ग यथार्थ है। साथ में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, भक्ति, नौ तत्त्व की श्रद्धा, ग्यारह अंग का ज्ञान आदि और पंच महाव्रत के परिणाम, उस व्यवहारमोक्षमार्ग को निमित्त देखकर व्यवहारमोक्षमार्ग का आरोप दिया गया है। समझ में आया?

निश्चय-व्यवहाररूप मोक्षमार्ग का जिसमें सम्यक् निरूपण किया गया है... निरूपण। सम्यक् निरूपण किया गया है। सच्चा स्वरूप व्यवहार का क्या, निश्चय का क्या, यह कहा गया है। **तथा साक्षात् मोक्ष के कारणभूत परमवीतरागपने में जिसका समस्त हृदय स्थित है**—लो! निश्चय और व्यवहारमोक्षमार्ग की कथनी की, प्ररूपणा की, परन्तु **साक्षात् मोक्ष के कारणभूत परमवीतरागपने में जिसका समस्त हृदय...** यह भगवान के ज्ञान की वाणी में साक्षात् वीतरागता भरी है। उसका हृदय वीतराग है। समझ में आया? हार्द-हार्द कहते हैं न? क्या लिखा है? हृदय-हृदय। पूरे शास्त्र का हृदय विकल्प और निमित्त से हटकर अपने स्वभाव में दृष्टि, ज्ञान और लीनता करना, वह समस्त शास्त्र का हृदय है। वह समस्त शास्त्र का हृदय है। राग कराना है नहीं, राग आता है, उसका ज्ञान कराना है। समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, नौ तत्त्व की श्रद्धा भेदवाली, पंच महाव्रत के परिणाम मुनि को आते हैं। आते हैं, उसका ज्ञान कराना है। परन्तु (राग) रखना है, ऐसा नहीं कहना है। समझ में आया?

मोक्ष के कारणभूत परमवीतरागपने में... क्या कहा? मोक्ष का कारण वीतरागता कहा। मोक्ष का कारण, शुभराग वह मोक्ष का कारण नहीं। **जिसका समस्त हृदय स्थित है—ऐसे इस यथार्थ पारमेश्वर शास्त्र का,...** देखो! यह पारमेश्वर शास्त्र है। परमेश्वर शास्त्र, जिन भगवान का शास्त्र, भागवत शास्त्र, दैवी शास्त्र, पवित्र शास्त्र। इतने विशेषण शास्त्र के दिये। यह भागवत है, यह भागवत वाँचन होता है। अन्य में कहते हैं न, भागवत पुराण। वीतराग भगवान का भागवत, वीतराग भगवान की वाणी परमेश्वर दैवी शास्त्र, दैवी शास्त्र, पवित्र शास्त्र। शास्त्र को भी पवित्र कहा गया है। **इस यथार्थ पारमेश्वर शास्त्र का, परमार्थ से वीतरागपना ही तात्पर्य है।** कर-करके वीतरागपना ही करना, यह इसका तात्पर्य है। यहाँ तक तो ठीक।

अब कहते हैं, **सो इस वीतरागपने का व्यवहार-निश्चय के...** देखो! इसमें व्यवहार पहला शब्द लिया है। अर्थात् किसी को तर्क ऐसा हो कि पहले व्यवहार और निश्चय बाद में। अपने अर्थ भी इनकी ओर से करना चाहिए न! पहले लिया था, उसमें निश्चय और व्यवहार। कहाँ? दूसरी लाईन में। **निश्चय-व्यवहाररूप मोक्षमार्ग का जिसमें सम्यक् निरूपण किया गया है....** समझ में आया? यहाँ लिया कि **वीतरागपने का व्यवहार-निश्चय के अविरोध द्वारा....** निश्चय और व्यवहार परस्पर सापेक्ष विरोधरहित होना चाहिए। समझ में आया? अब स्पष्टीकरण बाद में करेंगे। अविरोध नीचे (फुटनोट) में है न? अविरोध में (अंक २) किया है, देखो! जरा समझने के लिये।

वीतरागपने का व्यवहार-निश्चय के अविरोध द्वारा ही अनुसरण किया जाए तो इष्टसिद्धि होती है, परन्तु अन्यथा नहीं (अर्थात् व्यवहार और निश्चय की सुसंगतता रहे...) सुमेल। **इस प्रकार वीतरागपने का अनुसरण किया जाए, तभी इच्छित की सिद्धि होती है, अन्य प्रकार से नहीं होती)।** अब नीचे दो। **'छठवें गुणस्थान में...'** जरा यह निश्चय-व्यवहार की सन्धि करते हैं। मुनिदशा होती है तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान अनुभवपूर्वक वीतरागता, तीन कषाय का अभाव, ऐसी छठवें गुणस्थान में मुनिदशा होती है। यह दृष्टान्त देते हैं। **मुनियोग्य शुद्धपरिणति निरन्तर होना....** निश्चय साध्य नहीं, निश्चयमोक्षमार्ग नहीं छठवें में। परन्तु शुद्ध परिणति जो अभेद साधन है, वह तो कायम निश्चय रहा हुआ है। क्या कहते हैं? साध्य तो निश्चयमोक्षमार्ग सातवाँ गुणस्थान है। उसका छठवें गुणस्थान में साध्य (वह) निश्चयमोक्षमार्ग... साधन स्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और शान्ति की स्थिरता, वह उसका साधन है। जितनी शुद्धि प्रगट हुई, वह साधन और सातवाँ गुणस्थान साध्य। यह निश्चय साध्यसाधन है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....मोक्षमार्ग।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्षमार्ग का कारण हुआ, साधन हुआ। मोक्षमार्ग यहाँ सातवें में लेते हैं। शुद्ध उपयोग सातवें में होता है, यहाँ यह बात लेनी है। यहाँ परिणति जितनी शुद्ध हुई, सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और तीन कषाय के अभाव की परिणति है, वह साध्य (रूप) निश्चयमोक्षमार्ग योग्य सातवाँ गुणस्थान है, उसका साधन। समझ में आया?

आहाहा! और **शुद्धपरिणति निरन्तर होना तथा महाव्रतादिसम्बन्धी शुभभावों का यथायोग्यरूप से होना,...** मुनि को अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प, अहिंसा, सत्य, अचौर्य का विकल्प उस भूमिका में होता है। समझ में आया? **यथायोग्यरूप से होने पर भी...** शुभभाव आते हैं... परिणति शुद्ध है और पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण का राग आया, वह शुभ है।

अब यह समझने की बात यहाँ से आयी। **वह निश्चयव्यवहार के अविरोध का (सुमेल का) उदाहरण है।** सुमेल। सुमेल का अर्थ? कि जहाँ अपने स्वभाव की दृष्टि, ज्ञान और लीनता हुई, वह निश्चय साध्य का साधन। निश्चय साध्य शुद्ध उपयोग सातवाँ गुणस्थान, उसका वह साधन वह निश्चय। उसके साथ पंच महाव्रतादि अट्ठाईस मूलगुण का राग आवे, वह व्यवहार। वहाँ ऐसा ही राग आता है, दूसरा राग आवे नहीं। छठवें गुणस्थान में वस्त्र-पात्र लेने का राग नहीं आता। (यदि आवे) तो गुणस्थान रहता नहीं। अध:कर्मी—उसके लिये बनाया हुआ आहार लेने का विकल्प नहीं। ऐसा शुभराग अट्ठाईस मूलगुण का, एक बार आहार लेना, खड़े-खड़े आहार लेना, यह सब विकल्प है, शुभभाव है। यह निश्चय के साथ, निश्चय साधन के साथ ऐसे व्यवहार के साधन की सुसंगता / मिलान है। दूसरे राग की तीव्रता आदि उसके साथ सुसंगत-सुमेल नहीं है। समझ में आया?

फिर से। यहाँ वीतरागपना व्यवहार-निश्चय के अविरोध द्वारा लिखा है तो अविरोध का अर्थ क्या? कि सुसंगत मिलान बराबर निश्चय-व्यवहार का। तो उसका अर्थ क्या? अपने आत्मा में जितना स्वद्रव्य ज्ञायकमूर्ति का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान और लीनता है, वह तो निश्चय साधन है। शुद्धपरिणति निश्चयसाधन है। किसका? सप्तम गुणस्थान के योग्य निश्चयमोक्षमार्ग का और उस साधन के साथ अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प मुनि को होता है। वस्त्र-पात्र लेने का, अध:कर्मी (आहार) आदि लेने का या भोग का विकल्प, ऐसा होता नहीं। तो ऐसी भूमिका में कषाय की मन्दता उस प्रकार की है, वह निमित्तरूप है, तो उपादान की शुद्ध परिणति निश्चय के साथ व्यवहार की राग मन्दता, व्यवहार साधन, इन दोनों की ऐसी सुसंगती होनी चाहिए। समझ में आया? कोई कहे कि हमको छठवें गुणस्थान की शुद्ध परिणति तो प्रगट हुई है, परन्तु भाव हमें

अभी भोग का, वस्त्र लेने का, पात्र लेने का, हमारे लिये बनाया हुआ आहार लेने का भाव हमें आता है और है, वह हमारा व्यवहार है। तो वह व्यवहार है नहीं। वह सुमेल नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जैसे केसर होती है न, केसर? तो केसर का निमित्त डिब्बा भी कठोर होना चाहिए। थैली में केसर नहीं रहती। कोथला समझते हो? बारदान—बोरी। उसमें केसर नहीं रहती। वह तो चूरा होकर निकल जाये। दाना रह सके, नारियल बोरी में रह सकते हैं। केसर रहे? तो डिब्बा भी केसर के अनुकूल सुसंगत डिब्बे का निमित्त है। डिब्बा कहो, बरणी कहो, वह निमित्त का सुसंगत ऐसा ही होता है। इसी प्रकार निश्चय आत्मा, अपने आत्मा के स्वआश्रय से दृष्टि, ज्ञान, लीनता थोड़ी हुई, वह निश्चय—साधन निश्चय। उसके साथ सुसंगत अट्ठाईस मूलगुण का होना, नौ तत्त्व की श्रद्धा-भेद का होना, छह द्रव्य की भेदवाली श्रद्धा होना, पंच महाव्रत के परिणाम होना, भगवान ने कहे हुए शास्त्र का व्यवहार ज्ञान होना, इतना निमित्त निश्चय के साथ सुसंगत है। दूसरा निमित्त सुसंगत नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

इसी प्रकार पाँचवें गुणस्थान के योग्य भी, पाँचवें गुणस्थान के योग्य श्रावक को अपने शुद्ध स्वभाव की दृष्टि और जितनी शान्ति, स्थिरता प्रगट हुई—शुद्ध परिणति, उसके साथ निमित्त बारह व्रत का विकल्प, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का विकल्प, इतना यह पंचम गुणस्थान के अनुकूल निमित्तरूप व्यवहार है। व्यवहार से अनुकूल हों, निश्चय से नहीं। निश्चय और व्यवहार की सन्धि का इतना सुमेल सुसंगति है, दूसरी सुसंगति नहीं। हम सच्चे श्रावक हुए हैं और अब हम कुगुरु को मानते हैं, हनुमान को मानते हैं। सबके पैर छूते हैं और सब हमारे देव हैं, ऐसा विकल्प है, वह यहाँ अनुकूल निमित्त है ही नहीं है। उसे अनुकूल निमित्त इतना विकल्प में कि सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, बारह व्रत के विकल्प, ऐसा भास, वही उसमें अनुकूल निमित्त व्यवहार की सुसंगति, निश्चय की परिणति के साथ इतनी सुसंगति है। समझ में आया? ताराचन्दजी! ओहोहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार से मैत्री, निश्चय से विरुद्ध। यहाँ व्यवहार से बात चलती है न? समझ में आया? निश्चय अपनी शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान के साथ जितना अनुकूल देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि का विकल्प, पंच महाव्रत का विकल्प निमित्त है तो अनुकूल व्यवहार से कहा गया है। व्यवहार से मैत्री कही गयी है। निश्चय से मैत्री नहीं। वह राग है। आत्मा के स्वभाव की परिणति अराग है। आहाहा! समझ में आया? समझने की चीज़ है, उसे समझे नहीं, श्रद्धा करे नहीं और उसमें धर्म हो गया, लो, धर्म हो गया हमारे। मैं शुद्ध हूँ, मैं शुद्ध हूँ, धर्म हो गया। क्या शुद्ध है? शुद्ध तो त्रिकाल एकरूप आत्मा है। उसका अन्तर अवलम्बन करके श्रद्धा, ज्ञान और लीनता जितनी अरागी होती है, उतना तो शुद्ध साधन है, शुद्ध साधन है। उस साधन के साथ, देखो! एक समय में दो साधन हैं। एक समय में दो साधन हैं। साध्य सातवें गुणस्थान के योग्य निश्चयमोक्षमार्ग। साधन एक समय में दो है। परन्तु दोनों साधन का भाव-अन्तर है। निश्चय साधन शुद्धदशा, व्यवहारसाधन राग। तो दोनों का काल साधन का एक है, दो के साधन का काल एक है। दो के भाव में अन्तर है। समझ में आया? साध्य सातवाँ है। तो साध्य का स्वामी भिन्न है। सातवें गुणस्थानवाला स्वामी है। निचलेवाले का साधन का स्वामी छठा गुणस्थान, सातवें का स्वामी सप्तम गुणस्थान है। और साध्य है अखण्ड त्रिकाल तीन की एकता, वह भाव है, नीचे शुद्ध परिणति अपूर्ण, समझ में आया? ऐसा भाव। दोनों के भाव में अन्तर है। यह बाद में आयेगा अब।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों में अन्तर है। क्या अन्तर है, यह विशेष (कल आयेगा), समय हो गया है।

यह बात कहते हैं न कोई कि साधन का स्वामी दूसरा, साध्य का स्वामी दूसरा, काल दूसरा, भाव दूसरा। ऐसा है नहीं है। इसका स्पष्टीकरण विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ६, शनिवार, दिनांक - १२-०९-१९६४, गाथा-१७२, प्रवचन-१९

(पृष्ठ) २५६ हिन्दी। **(उपरोक्त बात विशेष समझाई जाती है:—)** क्या कहते हैं ? सब शास्त्र का सार तो वीतरागता है। वीतरागता प्रगट करना, यह सब शास्त्र का हार्द अर्थात् हृदय है। परन्तु यह वीतरागता व्यवहार और निश्चय का सुसंगतपना, सुसंगत। निश्चय और व्यवहार का एक-दूसरे के साथ यथार्थ मिलान—मेल कैसा होता है ? ऐसा यदि (मेल) हो तो इष्टसिद्धि होती है। नहीं तो इष्टसिद्धि नहीं होती। यह बात विशेष समझाते हैं।

अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण... अनादि काल का आत्मा है, उसे अभेदपना भी अनन्त काल में कभी हुआ नहीं। आत्मा अखण्ड आनन्द और ज्ञान चैतन्यमूर्ति, उसके स्वरूप में अनादि से कभी अभेदपना पूर्ण हुआ नहीं। समझ में आया ? तो **अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण प्राथमिक जीव व्यवहारनय से...** प्राथमिक का अर्थ छठवें गुणस्थानवाले मुख्यरूप से (और) गौणरूप से चौथे और पाँचवें (गुणस्थानवाले) सम्यग्दृष्टि जीव... मिथ्या भेद अनादि काल से टला नहीं। सम्यग्दर्शन हुआ, आत्मा का भान हुआ, शुद्ध चैतन्य ज्ञायक मैं आनन्द हूँ—ऐसी दृष्टि, ज्ञान और लीनता आंशिक हुई होने पर भी, अनादि काल की भेदवासित (अर्थात्) अभी राग की वासनावाली बुद्धि है। वह ज्ञानी को भेदवासना अभी टली नहीं। समझ में आया ? **अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण प्राथमिक जीव...** प्राथमिक अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान और शुद्धता का अंश थोड़ा चारित्र का प्रगट हुआ है, उसे यहाँ प्राथमिक जीव कहा गया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भेदज्ञान कहाँ कहा ? भेदवासित बुद्धि कही है। अर्थ दो बार किये। भेदज्ञान होने पर भी, भेदवासित बुद्धि सर्वथा नहीं टली, ऐसा बीच में कहा था। समझ में आया ?

फिर से। अपने कहाँ इसमें पुनरुक्ति में कुछ दोष नहीं लगता। बारम्बार बात

आवे। आत्मा एक समय में शुद्ध चैतन्य पूर्ण ज्ञायकभाव हूँ, ऐसी स्वाश्रय दृष्टि हुई और कितनी ही स्वआश्रय लीनता, चारित्र की निर्मल पर्याय भी हुई। तथापि अनादि काल की जो वासना जो राग का बिल्कुल अभाव करके स्थिर होना चाहिए, ऐसी वासना टली नहीं। सेठी! यहाँ तो शब्द-शब्द में ध्यान रखनेयोग्य है। एक शब्द आड़ा-टेढ़ा हो तो उसमें...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं न। वह यह कहा कि आत्मा में ज्ञान, दर्शन, चारित्र में जितनी अस्थिरता है, वह अस्थिरता अनादि काल की है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को भी वह वासना अनादि काल की है। वह वासना नयी नहीं है। पहले कभी पूर्ण अभेद हो गया और फिर वासना हुई, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

अनादि काल से भेदवासित.... ज्ञान की पर्याय में पूर्ण अभेद होना चाहिए, वह सम्यग्दृष्टि जीव को या श्रावक जीव को या मुनि की छठवें गुणस्थान की भूमिकावाले को यह राग का भेद-भाग उसमें रहता है। ज्ञान में स्थिरता नहीं तो भेदवासित भेद पड़ते हैं। सर्वथा अभेद हुआ नहीं। दृष्टि प्रमाण अभेद हुए है। मैं ज्ञायक हूँ, मैं चैतन्य द्रव्य हूँ, वस्तु हूँ—ऐसा पर्याय में पर्यायवान द्रव्य को दृष्टि में लेकर अभेद दृष्टि जितना... दृष्टि पूरतुं को क्या कहते हैं? दृष्टि के प्रमाण में तो अभेद हुआ है और ज्ञान की अपेक्षा से भी जितना अन्तर में एकाकार हुआ, उतना अभेद हुआ है। स्थिरता भी जितनी रागरहित हुई, उतना अभेद हुआ है। परन्तु ज्ञान की पर्याय सर्वथा अभेद होकर केवलज्ञान हो जाये, ऐसा अभेदपना हुआ नहीं, तो ज्ञानी को भी रागवासित, भेदवासित बुद्धि है। समझ में आया? पूर्ण अभेद नहीं हुआ, वहाँ तक तो भेदवासित अनादि की बुद्धि है। मिथ्यात्व है, यह बात यहाँ नहीं कहना। मिथ्यात्व जाने के बाद भी भेद की वासना का रागभाव, ज्ञान की पूर्णता का अभावभाव, ज्ञान की पूर्णता का अभावभाव, चारित्र की पूर्णता का अभावभाव (वर्तता है), उतना भेदभाव अभी उसे भी रहता है। कठिन बात!

तो कहते हैं कि **अनादि काल से भेदवासित...** हों! भेदज्ञान, ऐसा शब्द नहीं। भेदज्ञान दूसरी बात है और भेदवासित बुद्धि दूसरी बात है। अभी राग से, पुण्य-पाप की वृत्ति उठती है, उससे मैं भिन्न हूँ—ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान और आंशिक लीनता शुद्धि की

हुई है तथापि पूर्ण शुद्धता नहीं तो राग की वासना, ज्ञान की अपूर्णता, ऐसी भेदवासित भंग-भाग बुद्धि रह गयी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कमी है।

अनादि काल से भेदवासित... भेद की गन्ध, ज्ञान की पूर्णता का अभाव पर्याय में इतनी अपूर्णता की गन्ध है। देवीलालजी! भाई! विषय ऐसा है। सवेरे और दोपहर में ऐसा विषय है जरा, उपयोग में जरा लक्ष्य रखे तो बात समझे बिना रहे नहीं। इसके ख्याल में तो आता है न कि क्या कहा जाता है?

मुमुक्षु : ....लाभ हो... बराबर समझाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहेंगे अभी व्यवहार से लाभ नहीं, परन्तु ऐसी भेदवासित बुद्धि है तो ऐसा विकल्प आये बिना रहता नहीं। स्व-पर (हेतु) प्रत्यय आत्मा का अशुद्ध उपादान, निमित्त पर लक्ष्य जाता है। ऐसा विकल्प राग अभी बाकी है। ज्ञानी को भी सम्यग्दर्शन स्वभाव के आश्रय से हुआ, '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**' एक समय में पूर्ण ज्ञायकभाव, स्वभावभाव एक समय में पूर्ण अभेद है, ऐसी दृष्टि हुई। ज्ञान भी स्वसंवेदन सम्यक् हुआ और जहाँ स्वभाव के आश्रय से थोड़ी लीनता भी, शुद्धता भी प्रगट हुई। उसे यहाँ थोड़ी भेदवासना रह गयी है तो **अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण प्राथमिक जीव...** छठवें गुणस्थानवाले मुख्यरूप से (और) गौणरूप से पाँचवें और चौथे गुणस्थानवाले, उन्हें यहाँ प्राथमिक जीव गिनने में आया है। समझ में आया? आहाहा!

व्यवहारनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन लेकर... ध्यान रखना इसमें बड़ी विपरीतता होती है। लोगों में ऐसा अर्थ करके। **प्राथमिक जीव...** पाँचवें गुणस्थान और छठवें गुणस्थान के योग्य शुद्धता प्रगट हुई होने पर भी अशुद्धता का, स्व-पर के निमित्तवाला विकल्प अर्थात् राग, वह साधन और शुद्धता पूर्ण, वह साध्य—ऐसा विकल्प छठवें गुणस्थान में, पाँचवें गुणस्थान में आता है। उसे राग आता है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा अथवा श्रद्धा करनेयोग्य... भी कहेंगे। श्रद्धा करनेयोग्य है और यह श्रद्धा

करनेयोग्य नहीं है और यह जाननेयोग्य है और यह नहीं जाननेयोग्य है, यह आचरनेयोग्य है, यह नहीं आचरनेयोग्य है—ऐसी रागवासित बुद्धि, राग की गन्ध की बुद्धि उत्पन्न होती है। उसे यहाँ आत्मा शुद्ध मोक्षपर्याय प्रगट करे, वह साध्य, उसका विकल्प उठता है, उसे भिन्न साधन कहकर, शुद्धि से विकल्प भिन्न है, भिन्न साधन कहकर भिन्न साध्य (कहा है)। राग साधन है और निर्मल पूर्ण (पर्याय) साध्य है। ऐसा विकल्प उसे प्रथम भूमिका में आता है। राजमलजी! बराबर समझना, हों! यह १७२ गाथा भी ऐसी है। ऐसा अटपटा अर्थ करते हैं लोग। समझते नहीं।

बापू! यह वस्तु कोई भिन्न है। यह अन्तर वस्तु कोई बाह्य सामग्री से नहीं मिलती। समझ में आया? छह खण्ड का राजा हो तो भी क्षायिक समकित प्राप्त करता है। बाह्य सामग्री कहीं उसे (अवरोध) नहीं करती, तथा बाह्य सामग्री उसे सहायता नहीं करती। अन्तर में वस्तु स्वरूप चैतन्यज्योति अखण्ड आनन्द की अभेद मूर्ति प्रभु में दृष्टि लगाकर चक्रवर्तीपद में भी क्षायिक सम्यग्दर्शन मिलता है, प्राप्त करता है।

और सम्यग्ज्ञान की कणिका, आत्मा का ध्यान करके, आत्मा का ज्ञान करके ज्ञान की कणिका जगती है और स्वरूपाचरण भी सम्यग्दृष्टि को छह खण्ड के राज्य में पड़ा हो तो भी स्वरूपाचरण का अर्थात् अनन्तानुबन्धी का अभाव होकर स्वरूप-आचरण की शान्ति भी उसके पास है। और पंचम गुणस्थान में उससे विशेष स्वरूप-आचरण की स्थिरता का, शुद्धता का अंश प्रगट हुआ है और छठवें गुणस्थान में मुनि के स्वरूप-आचरण की शुद्धि का विशेष स्थिरता का भाव प्रगट हुआ है। तथापि अभी रागभाग है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का राग। समझ में आया? शास्त्र को जानने का राग, यह जाननेयोग्य है, यह नहीं जाननेयोग्य है—ऐसे विकल्प की वासना मुनि को भी छठवें गुणस्थान में भिन्न साधनरूप से राग को साधन कहा; शुद्ध स्वभाव पूर्ण प्राप्त है, उसे साध्य कहा। समझ में आया? परन्तु वह साधन है, वह भिन्नसाध्य-साधनभाव का अवलम्बन लेकर, उस समय अभिन्नसाध्यसाधन भी है। क्या कहा? अर्थ करते हैं, हों! ऐसे के ऐसे शब्द नहीं पढ़ते हैं।

अभिन्नसाध्यसाधन का अर्थ कि चौथे गुणस्थान में, पाँचवें में, छठवें में जितना

स्वभाव शुद्ध चैतन्य है, उसके अवलम्बन से जितनी निर्मल परिणति पर्याय प्रगट हुई है, वह साधन निश्चय साधन है। और शुद्धता पूर्ण हो या सातवें गुणस्थान के योग्य हो, वह साध्य है। तो शुद्धता साधन और शुद्ध पूर्ण साध्य, इसे अभिन्न साधनसाध्य कहते हैं। अपूर्ण शुद्धता, वह साधन; पूर्ण शुद्धता, वह साध्य। शुद्धता की अपेक्षा से दोनों को अभिन्न साध्यसाधन कहा गया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभिन्न साधन... साध्य तो पूर्ण है। परन्तु जितनी पर्याय की शुद्धि हुई, उतना अभिन्न साधन है।

मुमुक्षु : साध्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पूर्ण कहा न! पहले कहा न, चौथे गुणस्थान में भी पूर्ण साध्य मोक्ष अथवा सातवाँ गुणस्थान। वह साध्य तीनों को एक ही है। पूर्ण कहा। सातवें गुणस्थान में अभेद हो जाता है, वह शुद्ध साध्य है। मोक्ष हो, केवलज्ञान हो, वह भी चौथे गुणस्थान में साध्य है। समझ में आया? इस साध्य में ध्येय जो प्रगट करना है, वह शुद्ध है।

मुमुक्षु : लक्ष्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : लक्ष्य नहीं। यहाँ पूर्ण पर्याय करने की बात है। पूर्ण शुद्ध की पर्याय प्रगट करना, वह साध्य है और अपने शुद्ध स्वभाव का आश्रय लेकर जितनी शुद्धता प्रगट हुई है, वह शुद्ध साध्य का साधन है। जरा सूक्ष्म बात है। अभी बहुत गड़बड़ चलती है।

मुमुक्षु : अनन्तानुबन्धी के अभाव से....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्तानुबन्धी का अभाव और मिथ्यात्व का अभाव। दोनों के अभाव से जितनी शुद्धता प्रगटी है, वह साध्य का निश्चय साधन है। शुद्ध पूर्ण साध्य का निश्चय साधन है और विकल्प उठता है देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि का, वह भिन्न साध्यसाधन है। क्योंकि साध्य शुद्ध है, और विकल्प राग भिन्न है तो उसे भिन्न साध्यसाधन

कहा गया है। बात अटपटी है। पुस्तक है या नहीं? देखो! देखो, उसमें इस पाठ का अर्थ ही दूसरे प्रकार का है। शान्ति से सुनो, धीरज से समझो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से कहते हैं। यहाँ तो एकदम नहीं लेते।

आत्मा जो है, वह एक समय में शुद्ध पूर्ण द्रव्यस्वभाव है। एक बात। पर्याय में अशुद्धता है, पर्याय में अशुद्धता है। दो बात। अब, जब पर्याय में अशुद्धता है तो पर्याय ने जब द्रव्य का आश्रय किया, सम्यग्ज्ञान की पर्याय, सम्यक्श्रद्धा की पर्याय ने त्रिकाल द्रव्य का आश्रय किया तो पर्याय में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चौथे गुणस्थान में स्वरूप-आचरण की शुद्धि प्रगट हुई। वह शुद्धि प्रगट हुई, वह संवर-निर्जरा है। वह शुद्धि प्रगट हुई वह निश्चयसाधन है। साध्य जो पूर्ण शुद्ध है, वह साध्य, उसका साधन निश्चयसाधन है और साथ में विकल्प उठता है—देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का, नौ तत्त्व के भेद की श्रद्धा का, पंच महाव्रत का राग, श्रावक को पंचम (गुणस्थान) योग्य बारह व्रत का राग और चौथे गुणस्थान में भक्ति आदि व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, उसे भिन्न साधन कहा। साध्य तो शुद्ध, साध्य शुद्ध और निश्चय साधन शुद्ध तो अभिन्न साधनसाध्य कहा। साध्य शुद्ध, राग भिन्न विकल्प है तो उसे भिन्न साधन का आरोप देकर, साध्य का व्यवहारसाधन वह है, ऐसा कहा गया है।

दूसरी बात। एक समय में दो साधन हैं, एक क्षण में दो साधन हैं। निश्चयसाधन और व्यवहारसाधन एक क्षण में है। अपने छठवें गुणस्थान की मुख्यता से बात करते हैं। पाँचवें गुणस्थान में, चौथे गुणस्थान में तत्प्रमाण ले लेना। समझ में आया? तो एक क्षण में दो साधन। साध्य एक शुद्ध। निश्चय प्राप्त करना, पूर्ण शुद्ध निर्मल पर्याय प्राप्त करना, वह साध्य। उसके दो साधन एक क्षण में। जितनी अपनी वस्तु है, उसका अवलम्बन करके जितनी शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और स्वरूपाचरण आदि स्थिरता प्रगट हुई है, वह निर्विकल्प शुद्ध है, अरागी परिणति है, संवर-निर्जरारूप शुद्धता है और उतनी क्षायिकरूप समकित पर्याय हो तो (अथवा) ऐसी क्षयोपशम, क्षायिकरूप पर्याय है, उसे निश्चयसाधन कहा और पूर्ण साध्य को, साध्य—प्राप्त करनेयोग्य कहा। और उस काल में जितना

व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प स्व-पर (हेतु) प्रत्यय का आश्रय, पर के विषयवाला देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम आदि विकल्प उठता है, वह साध्य का व्यवहारसाधन कहा जाता है। इस शुद्धता को निश्चयसाधन कहने में आया है। आहाहा! समझ में आया?

एक समय में दो साधन। एक व्यवहारसाधन, एक निश्चयसाधन। किसका? साध्य का। पूर्ण शुद्धता प्राप्त हो, ऐसे साध्य के दो साधन। एक यथार्थ निश्चयसाधन और एक अयथार्थ—साध्य शुद्ध है उससे विपरीत राग है—तो उसे भिन्न साध्यसाधन कहा गया है।

यहाँ कहते हैं कि **अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण...** यह इस कारण से **प्राथमिक जीव...** अर्थात् छठवें गुणस्थानवाला जीव। मुख्यरूप से अपने यह लेना है अभी। गौणरूप से पाँचवें और चौथेवाला लेना। **व्यवहारनय से...** देखो भाषा! **व्यवहारनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन लेकर...** व्यवहारनय से। व्यवहारनय का अर्थ—जो स्वपरप्रत्यय विकल्प उठता है, उसे व्यवहारनय से व्यवहारनय कहा जाता है। अपना शुद्ध स्वभाव है, उसका आश्रय लेकर जितनी शुद्धि प्रगट हुई, उसे निश्चय कहते हैं और जितना राग रहा अभी छठवें गुणस्थान में पंच महाव्रत के परिणाम, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, ग्यारह अंग पढ़ना, इतना जो भाग है, वह व्यवहारनय से प्राथमिक जीव को भिन्न साध्यसाधनभाव का अवलम्बन लेकर, साध्य शुद्ध है और विकल्प अशुद्ध है तो उसे भिन्न साध्यसाधन का अवलम्बन व्यवहारनय से लिया गया है, ऐसा कहने में आया है। आता है न सविकल्प अवस्था।

छठवें गुणस्थान में विकल्प हो तो वस्त्र के त्याग का, अध:कर्मी आदि के त्याग का है। वस्त्रादि लूँ, ऐसा विकल्प उन्हें नहीं होता। तो उन्हें अट्ठाईस मूलगुण का जो राग आता है, वह स्व-परप्रत्ययी विकल्प है। अपने पुरुषार्थ की कमी से, निमित्त के लक्ष्य से विकल्प आया है, तो राग है, वह साध्य का व्यवहारनय से साधन कहने में आया है। अमरचन्दभाई! जरा बात में बहुत गड़बड़ करते हैं। अभी तो कहते हैं कि चौथे, पाँचवें और छठवें में व्यवहार सम्यग्दर्शन होता है, निश्चय होता ही नहीं। अरे! भगवान! यह कहाँ से लाया? गजब भाई! यह तो गजब इसकी भगवानपने की विपरीतता भी बहुत।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तेरी उल्टी दशा भी बहुत भाई!

जहाँ अकेला व्यवहार है वहाँ चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ गुणस्थान कहाँ से आया? यह अभी कितने ही पण्डित लोग लेते हैं। पत्र में बहुत आता है कि चौथे, पाँचवें, छठवें में व्यवहारमोक्षमार्ग है। निश्चयमोक्षमार्ग सातवें में है। इस व्यवहार से निश्चय प्राप्त होता है। अरे! भाई! पराश्रित व्यवहार है, स्वआश्रित निश्चय है। दो सिद्धान्त है। स्वआश्रय निश्चय, पराश्रित व्यवहार। तो पराश्रित व्यवहार से निश्चय की प्राप्ति अभिन्न साध्यसाधन का स्वआश्रय हुए बिना कभी नहीं होती।

मुमुक्षु : यह न हो तो भिन्न साधन कहलाये कैसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यही अभी कहेंगे नीचे। देखो!

प्राथमिक जीव व्यवहारनय से... यहाँ शब्द लेना। किसे? भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन। व्यवहारनय से अवलम्बन है। नीचे कहा, देखो। तीन है न, तीन। तीसरा नोट। **मोक्षमार्ग प्राप्त ज्ञानी जीवों को...** देखो! मोक्षमार्ग प्राप्त है। मोक्षमार्ग नहीं प्रगट हुआ, सम्यग्दर्शन-ज्ञान नहीं, उसकी यहाँ बात है नहीं। मोक्षमार्ग प्राप्त अर्थात् शुद्धस्वभाव श्रद्धा, ज्ञान और आंशिक स्थिरता प्राप्त ऐसे ज्ञानी जीवों को **प्राथमिक भूमिका में...** भले मोक्षमार्ग वहाँ प्राप्त किया, निश्चयमोक्षमार्ग अभेदरूप से सातवें में है और पूर्णरूप से आगे है। तथापि यहाँ भी इतना मोक्षमार्ग तो है, निश्चय जितना प्रगट हुआ, उतना मोक्षमार्ग तो है।

मोक्षमार्ग प्राप्त ज्ञानी जीवों को प्राथमिक भूमिका में,... अर्थात् कि छठवें गुणस्थान की भूमिका में लेना अपने मुख्यरूप से। **साध्य तो परिपूर्ण शुद्धतारूप से परिणत आत्मा है...** साध्य तो शुद्ध निर्मल पर्याय से परिणत आत्मा है। वह तो साध्य—पूर्ण पर्याय प्रगट करनेयोग्य। और उसका साधन... **उसका साधन व्यवहारनय से... व्यवहारनय से (आंशिक शुद्धि के साथ-साथ रहनेवाले)....** अन्तर छठवें गुणस्थान में स्वद्रव्य के आश्रय से जितनी शुद्धि दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुए, उसे आंशिक शुद्धि कहा जाता है। पूर्ण शुद्धि हो तो साध्य हो जाये। आंशिक शुद्धि की साथ-साथ रहनेवाले, साथ-साथ रहनेवाले।

भेदरत्नत्रयरूप परावलम्बी विकल्प कहे जाते हैं। देखो! भेदरत्नत्रय। व्यवहार सम्यग्दर्शन अर्थात् देव-गुरु-शास्त्र की भेदरूप श्रद्धा, नौ तत्त्व की भेदरूप श्रद्धा। है तो राग, (परन्तु) उसे समकित कहना, वह तो व्यवहारनय से समकित कहते हैं। और शास्त्र का ज्ञान वह भी है तो व्यवहार, वास्तव में ज्ञान नहीं। है तो विकल्प। और पंच महाव्रत के परिणाम, वे भेदरत्नत्रय हुए। वह **भेदरत्नत्रयरूप परावलम्बी विकल्प कहे जाते हैं।** इतना पराश्रय से राग उत्पन्न होता है।

इस प्रकार उन जीवों को व्यवहारनय से साध्य और साधन भिन्न प्रकार के कहे गए हैं। उन जीवों को स्वभाव के आश्रय से शुद्धि का अंश प्रगट हुआ है, वह निश्चय साधन है और उस निश्चय साधन के काल में व्यवहार परावलम्बी विकल्प जितना व्यवहाररत्नत्रय का उठता है, उसे व्यवहार से साधन, पूर्ण शुद्धि का व्यवहारसाधन कहने में आया है। तो दोनों साधन साथ-साथ में हैं। उसने लिखा है न कि काल भिन्न है, भाव भिन्न है, स्वामी भिन्न है। यहाँ कहते हैं कि निश्चय और व्यवहार का साधन जो है, उसका काल एक है, स्वामी भी एक है, छठे गुणस्थानवाले, भाव भिन्न है। कहो, कौन सा भाव भिन्न है? एक वीतराग का अंश है, एक राग का अंश है और पूर्ण शुद्धि वह पूर्ण वीतरागता है। उस भाव से भी भिन्न है। निश्चय साधन...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न? निमित्तपना साधन है। राग आया व्यवहाररत्नत्रय का, वह निमित्तरूप साधन और अन्दर शुद्धि प्रगट हुई, वह शुद्ध उपादानरूपी साधन। निमित्तरूपी साधन, उपचार से साधन, व्यवहार से (साधन)। यह तो कहा न पहले। दो बार, तीन बार कहा। व्यवहार साधन कहो या निमित्त साधन कहो या उपचार साधन कहो। वास्तविक साधन नहीं परन्तु शुद्धि के साथ निमित्त आया तो आरोप देकर उसे साधन कहा गया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए तो भिन्नसाध्यसाधन कहा। सूक्ष्म बात है। समझ में आया? मक्खनलालजी!

आत्मा... साथ-साथ लिया न? आंशिक शुद्धि के साथ-साथ। तो जितना अपने में शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति—चारित्र का अंश प्रगट हुआ, वह तो साध्य का अभिन्न साधन है। साध्य पूर्ण शुद्ध का अभिन्न साधन है। निश्चय शुद्ध से शुद्ध। परन्तु विकल्प जो व्यवहाररत्नत्रय का उठता है, वह है विकल्प। इस कारण साध्य का भिन्न साधन व्यवहारनय से निमित्त का आरोप देकर साधन कहा गया है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है तो विरोध, राग है, बन्ध का कारण है। परन्तु वहाँ ऐसा ही निमित्त है कि देव-गुरु, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प है। कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का विकल्प नहीं। पंच महाव्रत का विकल्प है। वस्त्र, पात्र, अध:कर्मी (आहार) लेने का विकल्प नहीं। वीतराग ने कहे हुए शास्त्र के छह काय आदि का ज्ञान है, अन्य का कहा हुआ ज्ञान नहीं। इस अपेक्षा से व्यवहार से निमित्त को, भिन्न साधन को साधन कहने में आया है। आहाहा! कठिन बात, भाई! मोक्षमार्ग समझने के लिये भाई! इसे ज्ञान में जरा (अवकाश होना चाहिए)। अभी तो बहुत विरुद्ध चला है। अभी तो कहे चौथे, पाँचवें, छठवें में अकेला व्यवहारमोक्षमार्ग, निश्चयमोक्षमार्ग सातवें में (होता है)। ठीक! एक व्यक्ति कहे, बारहवें में (निश्चय) मोक्षमार्ग (होता है क्योंकि) वह राग टल जाता है वहाँ। राग है, तब तक व्यवहारमोक्षमार्ग। कुछ न कुछ गप्प चलती है अभी। ओहोहो!

तो कहते हैं कि **व्यवहारनय से साध्य और साधन भिन्न प्रकार के कहे गए हैं। (निश्चयनय से साध्य और साधन अभिन्न होते हैं।)** यह तो पहले कहा कि शुद्धि तो इसमें प्रगट हुई है। कौन सी शुद्धि? वस्तु ज्ञायकभाव, चैतन्यभाव का अवलम्बन होकर सम्यग्दर्शन हुआ है निश्चय, ज्ञान सम्यक् हुआ है निश्चय और स्थिरता हुई, वह रागरहित निश्चय। ऐसे शुद्धता के अंश को, पूर्ण शुद्धता का निश्चयसाधन कहकर साध्यसाधन एक है, ऐसा कहा। साथ में विकल्प जितना उठता है, वह शुद्ध साध्य से भिन्न जाति का राग है। परन्तु उस काल में ऐसा विकल्प आना, वह भूमिका के योग्य आता है तो उसे साध्य का व्यवहारसाधन कहा गया है।

मुमुक्षु : अपेक्षा समझने की।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपेक्षा समझनी चाहिए। अपेक्षा समझे बिना...

मुमुक्षु : साध्य साधन मानकर....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात है, भाई! वस्तु समझे बिना... जैसे कोई कार्य होता है तो निमित्त होता है या नहीं सामने? उसी प्रकार निश्चय के कार्य में यह व्यवहार विकल्प निमित्त कहने में आया है। निमित्त कहने में आया है। वास्तव में यह मोक्षमार्ग नहीं। राग भाग है। परन्तु उसे स्वभाव की साधनदशा में शुद्धता प्रगट हुई है, वह मोक्षमार्ग है, तो राग को निमित्त देखकर उपचार करके व्यवहार से उसे मोक्षमार्ग कहने में आया है। उसे यहाँ निमित्त साधन कहा गया है।

मुमुक्षु : उसे ही निश्चयसाधन और उसे ही व्यवहारसाधन कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, उसे ही नहीं। उस जीव को। उस जीव को जितनी शुद्धता प्रगट हुई है, वह निश्चयसाधन और जितना व्यवहार का विकल्प उठता है, वह व्यवहारसाधन। दोनों साधन भिन्न हैं। किसी को साधन नहीं। ओहो! ऐसी सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ। सूतर का फाल करते हैं न। शोभालालभाई! हमारे यहाँ विवाह होता है न विवाह? तो पहले ऐसा करते थे। लड़की का विवाह करे न? तो वर को, वर होता है न? तुम्हारे दूल्हा कहते हैं न? उसे सुतर का फालका उलझाकर देते हैं। गूंजवण समझते हो? क्या कहते हैं? सुलझाने के लिये। यह कन्या से विवाह करने आया है तो इसकी बुद्धि स्थिर है या बहुत आकुलता है? यदि स्थिर होगी तो सूत की गाँठ खोल देगा। नहीं तो तोड़ डालेगा। वह तोड़ डाले। समझ में आया? हमारे पहले काठियावाड में रिवाज था। अभी है? होगा। वर को एक सूत का फालका देते हैं। ऐसा उलझाकर, हों! ऐसे-ऐसे करके। तो धीर हो तो खोल सके, उतावल करे तो तोड़ डाले।

मुमुक्षु : उसकी परीक्षा हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्थिरता नहीं उसे। इसी प्रकार यहाँ निश्चय और व्यवहार की

गाँठ में क्या खोलना है, उसके लिये ज्ञान निर्मल होना चाहिए। समझ में आया? आहाहा!

हमारे पण्डितजी ने स्पष्टीकरण तो बहुत किया है नीचे नोट में। समझ में आया? देखो, यहाँ तक आया कि **भिन्नसाध्यसाधनभाव को अवलम्ब कर...** किसे? छठवें गुणस्थानवाले मुनि जब तक पूर्ण वीतराग नहीं हुए तो इतनी भेदवासित बुद्धि अभी राग की रह गयी है, तो उन्हें अपने स्वरूप का साधन निश्चय शुद्धता तो प्रगट हुई है, वही वास्तव में तो साध्य का साधन है। परन्तु उस साध्य के साधन में राग की मन्दता का व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प जो उठता है, उसे निमित्त (कहकर) व्यवहारसाधन, पूर्ण साध्य का व्यवहारसाधन कहने में आया है। वास्तव में वह साधन नहीं है। नहीं है, उसे (साधन) कहना, इसका नाम व्यवहार और है, उसे जानना, इसका नाम निश्चय। आहाहा! समझ में आया? '**ववहारोऽभूदत्थो**' व्यवहार से जो कहने में आया है, वह साधन। साधन दो प्रकार के नहीं। साधन तो एक प्रकार का है परन्तु साधन की कथनी दो प्रकार की चली है। निरूपण दो प्रकार का चला है। समझ में आया?

मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है टोडरमलजी ने कि भाई! मोक्षमार्ग दो नहीं। मोक्षमार्ग तो एक ही है। स्वभाव की शुद्धि श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र प्रगट करना। परन्तु साथ में भूमिका के योग्य राग की मन्दता देखकर उसमें निमित्त को उपचार से व्यवहार सहचारी देखकर, साथ-साथ में लिया है न हमारे पण्डितजी ने, देखो! आंशिक शुद्धि के साथ-साथ। कोष्ठक में। यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान की भूमिका शुद्ध प्रगट हुई है, उसके साथ सहचर रहता है व्यवहार दर्शन-ज्ञान-चारित्र का विकल्प, तो सहचर देखकर निमित्त को व्यवहार मोक्षमार्ग कहा गया है। वास्तव में वह मोक्षमार्ग नहीं है। ओहोहो! समझ में आया? दाँव-पेच की बात है, ऐसा नहीं। यह तो दाँव-पेच निकले ऐसी बात है।

अब एक दूसरा शब्द आया। **अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण प्राथमिक जीव व्यवहारनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन लेकर....** यहाँ कितने ही क्या कहते हैं? कि चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थान में तो व्यवहारनय से भिन्न साध्यसाधन है, वहाँ अकेला व्यवहार ही है, ऐसा कहते हैं। ऐसा नहीं है। व्यवहारनय का अवलम्बन, व्यवहारनय तब उसे कहा जाता है कि आत्मा के शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान,

चारित्र का अवलम्बन लेकर प्रगट निर्मल हुआ हो, तो उसके साथ (रहे हुए) राग को व्यवहारसाधन का आरोप दिया जाता है। अकेला साधन-फाधन... यह तो आगे कहेंगे। आगे व्यवहारवलम्बी की बात करेंगे। अकेला भिन्न साध्य और साधन अकेला विकल्प (मानता है) वह तो मिथ्यादृष्टि है, वह तो अनादि से किया है।

साध्य शुद्ध मानकर और यह विकल्प शुभराग की क्रिया व्यवहाररत्नत्रय के राग से मुझे शुद्धि की प्राप्ति होगी, ऐसा मानकर तो व्यवहारावलम्बी अनन्त बार मिथ्यादृष्टि हो रहा है। यह बाद में कहेंगे। समझ में आया? यह व्यवहारनय देव-गुरु-शास्त्र तो भिन्न विषय है। अपने विषय से, अपने स्वभाव के विषय से व्यवहाररत्नत्रय पर विषयवाला है। अकेला पर विषयवाला भाव शुद्ध स्वभाव के भान बिना अनन्त बार कर चुका है। तो उसकी कोई संवर-निर्जरा, अकेला व्यवहार साध्यसाधन से हुए नहीं। समझ में आया?

निश्चय के साथ चले तो निमित्त कहने में आवे। समझ में आया? निश्चय स्वभाव के श्रद्धा-ज्ञान किये बिना अकेला पराश्रित व्यवहार तो बन्ध का ही कारण है। परन्तु निश्चय का साधन करके व्यवहार का विकल्प आया, है तो बन्ध का ही साधन, परन्तु यहाँ मोक्षमार्ग का यथार्थपना अन्दर प्रगट हुआ है, उसके साथ में निमित्त को भी मोक्षमार्ग कहने में आया और साधन कहने में आया। साधन है नहीं, उसे साधन कहना व्यवहारनय है। साधन है, उसे साधन जानना, वह निश्चयनय है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी होती है। मुनि या पाँचवें गुणस्थान के योग्य शुद्धि जो अपने द्रव्य के आश्रय से प्रगटे, तब उस भूमिका के योग्य ऐसा ही बारह व्रत का विकल्प, पाँच महाव्रत का विकल्प, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नौ तत्त्व का विकल्प ऐसा ही राग की मन्दता का भाव होता है, उसे व्यवहारसाधन कहकर आरोप से साधन को मोक्षमार्ग कहा है, वास्तव में वह मोक्षमार्ग नहीं है। आहाहा! है अटपटी भाषा, हों! आगे आयेगा अभी। उससे... समझे न? संस्कार डालता जाता है। समझ में आया?

पाँचवें गुणस्थान के योग्य श्रावक को भी बारह व्रत के विकल्प और देव-गुरु-

शास्त्र की भक्ति, नौ तत्त्व के भेद की श्रद्धा ऐसा भेदवासित राग उत्पन्न होता है, परन्तु वह निश्चयस्वभाव पूर्ण साध्य की अन्दर दृष्टि, ज्ञान प्रगट किये हैं, वह तो निमित्त को व्यवहारसाधन कहने में आया है, दूसरी कोई बात नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : चौथेवाले को भी ऐसा ही है?

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथेवाले को भी ऐसा ही है। चौथेवाले को भी जितना द्रव्य के आश्रय से, वस्तु के अवलम्बन से स्व के आश्रय से दृष्टि, ज्ञान और लीनता हुई, वही शुद्धि है। वही संवर, निर्जरा है, वही मोक्षमार्ग का एक अंश भी कहने में आता है। और यहाँ साथ में जितना देव-गुरु-शास्त्र के भक्ति के रागादि आये, उस राग को व्यवहारश्रद्धा-ज्ञान कहने में आया। वास्तव में वह है ही नहीं। नहीं है, उसे कहना, वह व्यवहार; है, उसे जानना, वह निश्चय। आहाहा! बहुत गड़बड़ी चलती है, हों! बाहर निकलेगा तो बहुत गड़बड़ी होगी। यहाँ चलता है, इस बात के सामने।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से अकेला बन्ध ही होता है। दोनों कहाँ कहा? शुद्धि से संवर, निर्जरा होती है। यह तो बात कही नहीं बहुत बार आगे। स्वभाव के आश्रय से जितनी शुद्धि होती है तो संवर, निर्जरा है। वह तो शुद्धि है। वह तो पाँच, सात, दस बार आ गया। और जितना विकल्प व्यवहार है, वह बन्ध का कारण है। उसे भिन्न साधन कहने में आया है। निश्चयसाधन जो स्वभाव की शुद्धि प्रगट हुई है, वह निश्चयसाधन है निश्चयसाध्य का। बहुत बार बात आती है, परन्तु लक्ष्य रखना चाहिए, भाई! समझ में आया? पौन घण्टा तो हो गया।

मुमुक्षु : अब तो पकड़ में आ जाना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आना चाहिए। ऐसा कथन चलता है, वह इसके ख्याल में बात आनी चाहिए।

मुमुक्षु : व्यवहार क्यों कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्यों कहा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कार्य तो शुद्ध है, उसे (राग को) क्यों साधन कहा? ऐसा निमित्त देखकर साधन व्यवहार से कहा। है तो बन्ध का कारण। परन्तु बन्ध के कारण को मोक्ष का साधन कहना, वह व्यवहारनय का लक्षण है। समझ में आया?

दो बात है। भिन्न साध्यसाधन है, वह विकल्प है और परविषय है। उसका विषय पर है। समझ में आया? और यह विकल्प स्वपरप्रत्यय के आश्रय से उत्पन्न हुआ है। स्व का आश्रय, थोड़ा स्व का आश्रय है और थोड़ा पर का आश्रय है, ऐसा नहीं है। परन्तु अशुद्ध उपादान पर्याय में राग हुआ, उसका निमित्त कर्म है और अशुद्ध उपादान अपनी पर्याय। दोनों के संग से उत्पन्न हुआ उसे स्वपरप्रत्यय राग कहते हैं। स्वपरप्रत्यय (में) राग का विषय पर है देव-गुरु-शास्त्र आदि और आत्मा के ज्ञान-दर्शन, यथार्थ शान्ति, ज्ञान-दर्शन का विषय आत्मा है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान, शान्ति—चारित्र का विषय आत्मा है और व्यवहार का विषय पर है। समझ में आया? निश्चयसाधन है, वहाँ व्यवहार का इतने विकल्प को निश्चय शुद्ध का व्यवहारसाधन कहने में आया। समझ में आया? ओहोहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहारनय से आया न, **व्यवहारनय से भिन्नसाध्य-साधनभाव का अवलम्बन लेकर...** व्यवहारनय से शब्द तो अन्दर संस्कृत टीका में पड़ा है। भाई! यह मार्ग आत्मा का पंथ है। अकेला कूटस्थ... कूटस्थ द्रव्य करे कि द्रव्य में कुछ नहीं, कुछ नहीं—ऐसा नहीं है। द्रव्य में अशुद्धता नहीं, परन्तु पर्याय में अशुद्धता है। अनादि संसार है। यह अशुद्धता, जितनी द्रव्य शुद्ध के आश्रय से, त्रिकाल के आश्रय से अशुद्धता टली, उतनी तो शुद्धता हो गयी, पूर्ण अशुद्धता टले तो केवलज्ञान हो जाये। पूर्ण अशुद्धता टली नहीं, तो जितनी अशुद्धता टलकर शुद्धि हुई, वह मोक्ष का वास्तविक निश्चयसाधन। उसके साथ जो विकल्प आता है अशुद्ध का, उसे आरोप देकर निश्चय साध्य का व्यवहारसाधन कहने में आया है। दोनों का भाव में अन्तर, दोनों का काल एक, दोनों का फल में अन्तर, दोनों की दिशा में अन्तर।

व्यवहारनय का विषय पर है। आयेगा फिर देखो, २५७। भिन्नविषयवाले श्रद्धा-ज्ञान। २५७ की अन्तिम लाईन है।

मुमुक्षु : एक समय में दोनों भाव हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों भाव हैं एक समय में। साथ-साथ में हैं। नीचे है। **भिन्नविषयवाले श्रद्धा-ज्ञान...** है न? अन्तिम लाईन का अन्तिम शब्द।

मुमुक्षु : गुजराती में है। २५५ पृष्ठ पर।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ हिन्दी में है २५७ में अन्तिम लाईन। **भिन्नविषयवाले श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र के द्वारा....** देखो! यह भिन्न विषय है। व्यवहारश्रद्धा, व्यवहारज्ञान, व्यवहारराग का विषय पर है। निश्चय सम्यक्त्व, निश्चय ज्ञान, निश्चय चारित्र का विषय स्व है। निश्चय सम्यग्दर्शन—सच्चा सम्यग्दर्शन, सच्चा ज्ञान और सच्चा चारित्र, इसका विषय आत्मा है, यह निश्चय। और जितना व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प उठा, उसका विषय पर है। उसका स्वपरप्रत्यय विकल्प है। विषय पर है। बन्ध का कारण है। १६४ गाथा में आ गया। १६४ में न? '**बंधो व मोक्खो वा**' नहीं आ गया? १६४ में आ गया, १६४ में गया है।

दंसणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि।
साधूहि इदं भणिदं तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा॥१६४॥

व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान से बन्ध होता है। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान से मुक्ति होती है, शुद्धता होती है। १६४ पृष्ठ में मूल गाथा आ गयी। १६४ गाथा। बीच में आठ दिन पड़ा रहा था न। आठ दिन दूसरा चलता था न। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सूत का फालका...

अब क्या कहते हैं, देखो! वजन यहाँ है कि **अनादि काल से भेदवासित बुद्धि...** अर्थात् ज्ञान में परिपूर्णता नहीं हुई तो अपूर्णता और राग तो अनादि काल का है। और **प्राथमिक जीव...** अर्थात् प्रथम जीव सम्यग्दृष्टि, ज्ञानी इत्यादि। चारित्रवन्त हैं वे भी।

व्यवहारनय से... व्यवहारनय से, हों! **भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन लेकर...** अकेला जो निश्चयसाध्यसाधन न हो तो व्यवहार को साध्यसाधन कहने में आता ही नहीं। यह आगे लेंगे व्यवहारावलम्बी में। अकेला साध्य शुद्ध प्रगट करना है और शुभराग की क्रिया, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा से मुझे शुद्धता होगी (ऐसा मानता है वह) मूढ़ है, व्यवहारावलम्बी मिथ्यादृष्टि है। परन्तु जिसे निश्चयसाध्यसाधन प्रगट हुआ है, उसके भिन्न साधन को व्यवहार कहने में आता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : निश्चय बिना व्यवहार कहाँ से आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार कहाँ से आया परन्तु?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार तो अन्धा है। और निश्चय ज्ञान तो जागता है। (ज्ञान) जगा तो जाना कि हाँ, व्यवहार है। वह जानने में आया। जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य है नहीं। समझ में आया?

यह **व्यवहारनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन लेकर....** व्यवहारनय से अवलम्बकर। तो वहाँ निश्चयनय से द्रव्य का अवलम्बन है ही। द्रव्य का अवलम्बन निश्चय से न हो तो व्यवहारनय से अवलम्बन भी कहने में नहीं आता। आहाहा! **अवलम्बन कर सुख से तीर्थ की शुरुआत करता है...** यह शब्द आया था। व्यवहारनय से अवलम्बकर सुख से तीर्थ की शुरुआत करता है। **(अर्थात् सुगमरूप से मोक्षमार्ग की प्रारम्भभूमिका को सेवन करता है)**। नीचे सुख से, का अर्थ किया है, देखो!

सुख से = सुगमरूप से; सहजरूप से; कठिनता बिना। (जिन्होंने द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप के श्रद्धानादि किये हैं... देखो! द्रव्यनय का द्रव्यार्थिनय। द्रव्य जिसका विषय है, ऐसा द्रव्यार्थिकनय। वह द्रव्यस्वरूप ज्ञायक है, उसके विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप है, उसके श्रद्धान, ज्ञान, चारित्र किये हैं, **ऐसे सम्यग्ज्ञानी जीवों को तीर्थसेवन की प्राथमिक दशा में...** यह तीर्थ है न? चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ भेद पड़ता है, इतना तीर्थ है। **(-मोक्षमार्गसेवन की प्राथमिक भूमिका में) आंशिक शुद्धि के साथ-साथ...** जितनी स्वभाव के आश्रय से शुद्धि प्रगट हुई, उस शुद्धि के साथ **श्रद्धाज्ञानचारित्र**

सम्बन्धी परावलम्बी विकल्प (भेदरत्नत्रय)... लो, इतना स्पष्टीकरण किया है। **होता है।** ऐसा विकल्प मुनि को भी आता है। कुन्दकुन्दाचार्य को भी आता है। समझ में आया? वीतरागता कहाँ हुई है? भेदवासित बुद्धि पड़ी है अभी थोड़ी। मिथ्यात्व नहीं परन्तु चारित्र में दोष इतना अस्थिरता का विकल्प है।

क्योंकि अनादि काल से जीवों को जो भेदवासना से वासित परिणति चली आ रही है... सर्वथा अभेद कभी नहीं हुआ। यह मिथ्यात्व की बात नहीं है। राग के अभाव की शुद्धि कभी हुई नहीं। तो **परिणति चली आ रही है, उसका तुरन्त ही सर्वथा नाश होना कठिन है।** उस क्षण में, आत्मा का भान हुआ, उस क्षण में सर्वथा केवलज्ञान हो जाये, ऐसा नहीं होता। तो भान होने के काल में जितनी स्थिरता-शुद्धि प्रगट हुई, वह तो यथार्थ है और उस काल में व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प आता है, वह सुख से-सुख से तिरता है, ऐसा व्यवहारनय से कहने में आया है। समझ में आया? सुख से अर्थात् व्यवहारनय से सुख से-सुख से। तीव्र कषाय नहीं, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के विकल्प की श्रद्धा, उसे व्यवहार अनुकूल गिनने में आया है। व्यवहार से अनुकूल अर्थात् व्यवहार से सुख से-सुख से तिरता है, ऐसा कहने में आया है। कहो, समझ में आया?

अब उस व्यवहार का स्वरूप क्या है? व्यवहार का क्या स्वरूप है? जिसे यहाँ व्यवहार साधन कहा। भिन्नसाध्यसाधन कहा, अभिन्नसाध्यसाधन की भूमिका के काल में भिन्न साध्यसाधन कहा, उस भिन्न साधन का स्वरूप क्या? समझ में आया? कहते हैं कि **जैसे कि— '(१) यह श्रद्धेय (श्रद्धा करनेयोग्य) है,...** यह देव-गुरु-शास्त्र श्रद्धा करनेयोग्य है। अरे! आत्मा श्रद्धा करनेयोग्य है—ऐसा विकल्प उठता है, उसे व्यवहार साधन में गिनने में आया है। अभी, नौ तत्त्व श्रद्धा करनेयोग्य है, छह द्रव्य श्रद्धा करनेयोग्य है, आत्मा पूर्ण शुद्ध है, वह श्रद्धा करनेयोग्य है—ऐसा विकल्प उठता है। सम्यग्दर्शन तो हुआ है, परन्तु अभी व्यवहार के विकल्प में, व्यवहारश्रद्धा के विकल्प में यह श्रद्धा करनेयोग्य है।

(२) यह अश्रद्धेय है,... कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र अश्रद्धेय है, सुगुरु-सुदेव-सुशास्त्र श्रद्धेय है—ऐसा विकल्प उठता है, उसे यहाँ व्यवहारतीर्थ अथवा व्यवहारसाधन

अथवा व्यवहार पर के विषयवाला विकल्प, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहने में आया है। ओहोहो! समझ में आया?

(३) यह श्रद्धा करनेवाला है.... देखो आत्मा। आत्मा श्रद्धा करनेवाला है। भेद हुआ न, भेद? आत्मा श्रद्धा करनेवाला है और श्रद्धा करनेयोग्य देव-गुरु-शास्त्र हैं और कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र अश्रद्धेय है और **(४) यह श्रद्धान है;...** यह सम्यग्दर्शन की पर्याय श्रद्धान—ऐसा विकल्प उठता है। रतिभाई! यह सवेरे और दोपहर यह दोनों जरा (सूक्ष्म विषय है)। आज उत्तममार्दव का दिन है। वीतरागभाव। पर्याय में राग होता है। राग न हो तब तो वीतराग हो जाये। राग होता है तो किस प्रकार से उसे व्यवहार साधन कहने में आया, इसकी व्याख्या चलती है। समझ में आया? समझ में आता है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो राग... धर्म निश्चय का तो है नहीं, तो व्यवहार कहाँ से आया? राग को धर्म मानता है तो निश्चय है नहीं तो व्यवहार कहाँ से कहने में आया? वह तो व्यवहाराभास हुआ। मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? सत्य बात क्या है, उससे विपरीत क्या है, उसकी श्रद्धा का ठिकाना नहीं, उसे सम्यग्दर्शन कहाँ से होगा? अभी श्रद्धा का ठिकाना नहीं। व्रत कहाँ से आये? सम्यग्दर्शन बिना, अभी श्रद्धा का ठिकाना नहीं, वहाँ व्रत कहाँ से आये? प्रतिमा ले ली पाँच और दस और ग्यारह प्रतिमा है। रामजीभाई कहते हैं न, फिर पन्द्रह हो तो पन्द्रह ले ले। कहीं खबर नहीं किसे कहना प्रतिमा और किसे कहना... आहाहा!

यह श्रद्धा सम्बन्धी के विकल्प की बात चार बोल में आयी। व्यवहार सम्यग्दर्शन के विकल्प में यह चार बोल आये। निश्चय सम्यग्दर्शन में विकल्प है नहीं। वह तो शुद्ध स्वभाव की दृष्टि निर्मल हुई वह निश्चय। व्यवहार सम्यग्दर्शन में यह आत्मा श्रद्धा करनेवाला, यह श्रद्धा पर्याय, यह श्रद्धेय करनेयोग्य, यह अश्रद्धेय—ऐसे विकल्प को व्यवहार सम्यग्दर्शन, व्यवहार सम्यग्दर्शन, निश्चय साध्य का व्यवहारसाधन कहने में आया है। अब इसके ज्ञान की बात विशेष लेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ७, रविवार, दिनांक - १३-०९-१९६४, गाथा-१७२, प्रवचन-२०

यह पंचास्तिकाय की १७२ (गाथा चलती है)। मोक्षमार्ग का विस्तार की बात है। देखो! दो लाईन फिर से। चल तो गया है कल बहुत विस्तार से। परन्तु छोटाभाई ने जरा... हमारे इस सेठी ने और जरा (फिर से लेने को कहा)। सुख से, इसका सुख से प्रश्न था। देखो, क्या कहते हैं? जरा सूक्ष्म बात है।

अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण... पहले इतने शब्द का अर्थ। है? कल दो लाईनें चली थीं। फिर से, **अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण...** इसका अर्थ क्या? कि अनादि से आत्मा अपनी पर्याय से अन्दर में अभेद कभी पूर्णरूप हुआ नहीं। सम्यग्दर्शन-धर्म प्राप्त करने पर भी, आत्मा अखण्ड आनन्द ज्ञायक है, ऐसी पर से दृष्टि हटाकर अपने स्वभाव की दृष्टि की और स्वरूप में स्थिरता भी थोड़ी की, तथापि सर्वथा अभेद होना... यह अनादि वासना की वृत्ति पड़ी है तो इससे (छूटकर) अभेद हुआ नहीं।

यहाँ सम्यग्दृष्टि की बात है। समझ में आया? अनादि वह रागवाली बुद्धि है। राग में रुकना, ऐसा अनादि से है। सवेरे चला था, वह दूसरी बात। वह तो सम्यग्दर्शन में अज्ञान की बात चली थी। अपने ज्ञान की पर्याय में रागादि को अपना मानता है, वह अनादि मिथ्यावासना है। परन्तु यह जो है, वह अपने स्वरूप में अत्यन्त अभेद होना चाहिए, ऐसा अभेद हुआ नहीं तो राग की भेदता, राग, दया, दान के परिणाम से भेदबुद्धि अनादि से चली आयी है। समझ में आया? यह मिथ्यादृष्टि की बात नहीं है।

ज्ञानी को भी राग में एकाकार का अस्थिरता भाव चला आया है। अनादि काल से भेद अर्थात् राग में रुकना, ऐसी वासना, ऐसी गन्ध, ऐसी अस्थिरताबुद्धि होने के कारण, ज्ञान राग में रुकने के कारण। समझ में आया? भाई! इसमें तो ज्ञान में विचार और मंथन करने की आवश्यकता है। समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय में शुद्ध चैतन्य ज्ञान अनन्त गुण का ज्ञाता-दृष्टा का धाम होने पर भी, पर्याय में अनादि से राग की एकताबुद्धि है, वह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? और फिर राग की एकत्वबुद्धि टलने के बाद भी जितनी ज्ञान में राग की अस्थिरता है, वह भी अनादिवासित

बुद्धि है। समझ में आया? सेठी! पहले भेदवासना टूट गयी थी और अभेद हुआ था और फिर भेद हुआ, ऐसी बात नहीं है। समझ में आया? अहो! उसका मार्ग समझना, इसमें भी महान प्रयत्न है। समझने में!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ही है। दूसरा कौन सा प्रयत्न कौन करता है? ओहोहो!

अनादि काल से कभी आत्मा ने कर्म, पुद्‌गल, अक्षर, शब्द को कभी स्पर्शा ही नहीं, कभी अनादि से भेंटा ही नहीं। क्या कहते हैं, समझ में आया? यह शरीर, वाणी, कर्म, बाह्य के पदार्थ, इन्हें कभी अज्ञानी आत्मा ने भी पर को स्पर्शा नहीं, छुआ नहीं। हमारी गुजराती भाषा में कहें तो उन्हें अड्यो नहीं। समझ में आया? कभी तीन काल में, अनन्त काल में। भगवान आत्मा, यह अक्षर-अनक्षर शब्द, यह कर्म का खिरना और आना, शरीर में ऐसी क्रिया ऐसी होना या नहीं होना, उस सब जड़ की पर्याय को कभी आत्मा स्पर्शा ही नहीं। समझ में आया? भाई! शोभालालभाई! पदार्थ जड़ है, पर है। सेठ! क्या? मावा के जामुन को स्पर्शा ही नहीं कभी। खाते थे न? बर्फी और मावा को क्या कहते हैं? मिठाई और पूड़ी।

भगवान कहते हैं कि प्रभु! तू तो अरूपी चैतन्य है न! इस रूपी के एक रजकण से लेकर अनन्त परमाणु का स्कन्ध उसे कभी भेंटा नहीं, कभी स्पर्शा नहीं, कभी एकमेक हुआ नहीं, कभी सम्बन्ध किया नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह भेदवासित बुद्धि सिद्ध करनी है। पर को तो कभी स्पर्शा नहीं। सोना, जागना, दौड़ना, नाचना, बोलना, यह सब जड़ की क्रिया है। आत्मा कभी उसे स्पर्शा ही नहीं। अब उसने स्पर्शा क्या है? कि राग और अपना ज्ञायकभाव दो की एकपने की मान्यता राग में की है, उसे पर्यायदृष्टि में स्पर्श किया है। विकार को। इसका नाम मिथ्यात्वभाव, मिथ्यादर्शन शल्यभाव, इसका नाम मिथ्यादृष्टिपना। समझ में आया? यह अनादि की वासना है, उसकी पर्याय में, हों! पर को तो कभी स्पर्शा ही नहीं। वांचन, बोले, चले, हिले, कोई क्रिया इसने की तो नहीं, परन्तु किसी जड़ की क्रिया को स्पर्शा भी नहीं। खबर नहीं कि मैं उसे स्पर्श करता हूँ या नहीं? कभी स्पर्श ही नहीं किया।

स्पर्श किसे किया है? कि अपना स्वरूप ज्ञायक चिदानन्द अनन्त... अनन्त...

अनन्त... गुणराशि प्रभु, अपने स्वरूप को भूलकर अपनी पर्याय—अवस्था में विकल्प जो उठता है अपने में, उसे एकबुद्धि से (एकत्वबुद्धि से) स्पर्श कर 'वह राग मेरा है, मैं रागरूप हूँ', ऐसी मान्यता अनादि की मिथ्यादृष्टि की वासना है। आत्मा में है। समझ में आया? पर का अस्तित्व तो अपने में नहीं और पर के अस्तित्व को स्पर्शा ही नहीं। समझ में आया? खाया न अभी, बर्फी और मौसम्बी और यह।

मुमुक्षु : वह तो चला गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु स्पर्शा ही नहीं तो चला कहाँ से जाये? कभी आत्मा भगवान अरूपी अज्ञानरूप से भी परपदार्थ को कभी स्पर्शा नहीं, भेंटा नहीं, एक हुआ नहीं, पर (रूप) हुआ नहीं, सम्बन्ध किया ही नहीं। ताराचन्दजी! बराबर है? अब इसने किया क्या है? कि विकल्प, दया, दान, काम, क्रोध, विकल्प जो वृत्ति उठती है विकार, अपनी पर्याय में, हों! जीव में-आत्मा में। उसे एक मानकर सम्बन्ध किया, राग को स्पर्शा और राग को अपना माना, इसका नाम मिथ्यादृष्टिपना है। अब यह मिथ्यादृष्टि टलने पर भी स्वभाव का भान होकर, राग को मैं स्पर्श करता हूँ, राग मेरा है, राग में एकत्व है, ऐसा मिथ्यादृष्टिपना छूटने पर भी राग की अस्थिरता की वासना पड़ी है उसमें। समझ में आया? यह भी अनादि की वासना है। कभी राग की अस्थिरता छूट गयी थी और फिर वापस राग की अस्थिरता हुई है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! खबर नहीं... खबर नहीं (कि) क्या तत्त्व है। आत्मानन्दजी कहाँ गये? नहीं आये? समझ में आया?

अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण... अपनी पर्याय में अनादि काल से राग से, अस्थिरता से वासित बुद्धि है। समझ में आया? **प्राथमिक जीव...** अर्थात् जिसने अपना आत्मा ज्ञानस्वरूप, शुद्ध स्वरूप आनन्दमूर्ति मैं हूँ—ऐसी राग और विकल्प से पृथक् अपने आत्मा का, ज्ञाता-दृष्टा का भान हुआ, प्रतीति हुई, श्रद्धा हुई, अभिप्राय हुआ, अनुभव हुआ। उसमें अभी अस्थिरता का राग बाकी है। समझ में आया? यदि राग बाकी न हो तो पूर्ण वीतराग हो जाये और राग बाकी है, वह राग अनादि की वासनावाला है। कोई नया राग उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं है। समय-समय

में भले उत्पन्न हो, परन्तु वासना राग की अनादि की ऐसी की ऐसी है। राग से भिन्न दृष्टि की, परन्तु भिन्न स्वरूप में स्थिरता नहीं की। समझ में आया? तो अनादि काल से भेदवासित.... अमरचन्दभाई! यह तो पद का अर्थ होता है।

यह तो सिद्धान्त है और सिद्धान्त के एक-एक शब्द में महान आगम पड़े हैं। समझ में आया? एक-एक शब्द में अनन्त आगम हैं। कहते हैं कि एक तो **अनादि काल से भेदवासित...** राग की वासनावाला ज्ञान। ज्ञान पृथक् पड़ा भले राग से, परन्तु अभी वासना राग की अस्थिरता की रह गयी है। वह अस्थिरता का राग **अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण प्राथमिक जीव व्यवहारनय से...** अर्थात् छठवें गुणस्थानवाला मुख्य जीव (और) गौणरूप से पाँचवें और चौथेवाला जीव, उसे यहाँ प्राथमिक जीव कहा गया है। समझ में आया? यह प्राथमिक का अर्थ हुआ।

वे **जीव व्यवहारनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन लेकर...** ज्ञानी (को) आत्मा का भान हुआ है। सम्यक् चैतन्यमूर्ति मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ। स्वभाव से तो राग को कभी स्पर्शा ही नहीं। स्वभाव से। पर को तो स्पर्शा नहीं। स्वभाव की दृष्टि से तो राग को भी स्पर्शा नहीं। परन्तु पर्याय में राग की अस्थिरता है। **प्राथमिक जीव व्यवहारनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन लेकर...** अर्थात् साध्य तो शुद्ध है, शुद्धदशा प्रगट करनी है। सातवें गुणस्थान के योग्य या पूर्ण परिणति निर्मल शुद्ध साध्य—वह साध्य है। और उस साध्य का साधन भिन्न है। साध्य शुद्ध है और साधन साध्य से भिन्न प्रकार का है। भिन्नसाध्यसाधन। साध्य शुद्ध है तो उसका अभिन्न साधन तो प्रगट हुआ है। कैसा? कि पूर्ण शुद्ध प्रगट करने का भाव है, परन्तु अपना स्वभाव शुद्ध चैतन्य के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो शुद्ध अवस्था है, इतना साधन, शुद्ध पूर्ण (दशा) का निश्चयसाधन प्रगट हुआ है। उसे अभिन्न साध्यसाधन कहा जाता है। कठिन बात! ऐई! सेठ! इसमें समझने में बहुत मेहनत करनी पड़ती है।

मुमुक्षु : आप समझाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझावे कौन? समझे कौन? समझने का तो इसे है या नहीं?

कहते हैं कि एक बात कि **प्राथमिक जीव व्यवहारनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव**

का अवलम्बन लेकर... इसका अर्थ यह हुआ कि इसमें—आत्मा में निश्चय साध्यसाधन हुए हैं। भाई! समझ में आया? क्या नाम भाई?

मुमुक्षु : सनतकुमार।

पूज्य गुरुदेवश्री : सनतकुमारजी! यह तो चक्रवर्ती का नाम है यह। वह तो सनतकुमार ही है आत्मा। उसमें क्या है? स्वभाव का चक्र रखता है न? तो अज्ञान और राग-द्वेष को उड़ा दे, ऐसा आत्मा है। क्यों ताराचन्दजी! क्या कहते हैं? भाई! हमारे छोटाभाई ने कहा था थोड़ा फिर से लेना, ऐसा कहा था कल। लो, अब यह तो हमारे पण्डिजी हैं यहाँ बड़े, हों!

मुमुक्षु : हमको लाभ हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अब इसने आकर ऐसा कहा और हमारे भाई यह सेठी तो वृद्ध बुजुर्ग हैं। उसने कहा, सुख से क्या है? सुख तो आते अभी देरी लगेगी, हों!

कहते हैं, प्रभु! सुन तो सही। व्यवहारनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन। उसका अर्थ क्या? कि अपना शुद्ध ज्ञान चिदानन्द आनन्दस्वरूप पूर्ण है, उसकी दृष्टि हुई है—श्रद्धा, उसका स्वसंवेदनज्ञान का ज्ञान में वेदन हुआ है और ज्ञान में स्थिरता की चारित्र की दशा भी आंशिक उत्पन्न हुई है। उसे पूर्ण साध्य जो शुद्ध है, उसका वह निश्चयसाधन, अभिन्नसाधनसाध्य कहा जाता है। कठिन बात, भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभिन्न हुआ। तो अभिन्न के साथ भिन्नसाध्यसाधन दूसरा है, यह बात यहाँ सिद्ध करनी है। समझ में आया? उसमें भी इतना अर्थ है... बहुत जरा और अलग आया। क्या? कि भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध ज्ञायक है, उसका साध्य पूर्ण शुद्ध होना, वह साध्य है, साधनेयोग्य है और उसका साधन निश्चयसाधन, जैसा शुद्ध साध्य है तो यहाँ शुद्ध जितना प्रगट हुआ, स्वभाव की दृष्टि, स्वभाव का ज्ञान, स्वभाव की स्थिरता, उसे यहाँ साधन कहा जाता है। वह साधन अभिन्नसाध्यसाधन है। क्योंकि शुद्ध साध्य है, उसका यह शुद्धता का अंश साधन कहने में आया। यह साधन की व्याख्या भी ऐसी है। और सूक्ष्म आया थोड़ा।

वह साधन है, पश्चात् साध्य प्रगट होगा, इसलिए उसे साधन कहने में आया है। परन्तु साधन निश्चय हुआ तो बलजोरी से साध्य को प्रगट करेगा, ऐसा नहीं है। आत्मावलोकन में है न, भाई? क्या कहा, समझो। जरा बात सूक्ष्म है। फिर से कहते हैं न! दो, तीन, चार बोल बिना चले, ऐसा नहीं यहाँ तो। और न बोले, पूछे तो दो-चार बार तो बात आती ही है। इसके बिना पकड़ में आये, ऐसी बात नहीं है।

मुमुक्षु : .... साध्यसाधक है अन्दर ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं है, सुनो!

भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण अनन्त गुण का धाम है, ऐसी दृष्टि हुई, और उसका सम्यग्ज्ञान हुआ, उसके स्वरूप की स्थिरता भी हुई। उस शुद्धता को पर्याय में जो शुद्धता प्रगट हुई है, उसे शुद्ध साधन, निश्चयसाधन कहा। क्योंकि प्रगट करने का साध्य पूर्ण शुद्ध है और यह चीज़ अपूर्ण शुद्ध है। तो अपूर्ण शुद्ध को यहाँ अभिन्नसाधन, साध्य के साथ अभिन्नसाधन कहा। परन्तु साधन का अर्थ ऐसा नहीं लेना कि वह साधन शुद्धता प्रगटी है तो वही साधन साध्य को लायेगा। साध्य को प्रगट करेगा, ऐसा नहीं है। और यह क्या? चन्दुभाई! क्योंकि साधन तो ऐसा कहने में आया है कि साध्य की दशा प्रगट हुए पहले उसमें ऐसी शुद्धता, निर्मलता साधन था। यह पहले शुद्ध ही था और पश्चात् साध्य प्रगटेगा तो वह साधन आया तो उसके कारण से प्रगट होगा, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। अभी समझ में नहीं आया, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, यह भी नयी शुद्धता है। सुनो बराबर।

यह तो साध्यसाधन का भेद है। यहाँ तो निश्चय शुद्धसाधन जो हुआ... बात पूरी बहुत अन्तर है। वर्तमान में तो इतनी गड़बड़ है कि अभी समझना कठिन पड़े। अनादि का ही नहीं है, शुद्ध साधन अनादि का है ही नहीं। समझ में आया? अभी तो यहाँ अभिन्नसाध्यसाधन की बात चलती है। उसमें यह अनादि का है ही नहीं। यह तो नयी पर्याय प्रगट हुई। परन्तु यह नयी पर्याय शुद्ध स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई। साधन कहा

साध्य का, परन्तु वह नयी प्रगट हुई वह निश्चय अभिन्नसाध्यसाधन है, तथापि वह साधन साध्य को लायेगा या साधन की पर्याय बलजोरी से साध्य को प्रगट करेगी, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : यह उसे जोर करके लावे, ऐसा नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। तथापि उसे यहाँ अभिन्नसाध्यसाधन कहने में आया है। यहाँ यह सिद्ध करना है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यय होता है परन्तु वह पर्याय स्वतन्त्र है, साध्य की पर्याय स्वतन्त्र है। मोक्षमार्ग की निश्चयपर्याय भी मोक्ष को प्रगट करती है, ऐसा है ही नहीं। अमरचन्दभाई! क्योंकि वह पर्याय तो पूर्व में वर्तती थी और पश्चात् यह (साध्य) होगी, इसलिए उसे साधन कहने में आया है। परन्तु साधन आया तो बलजोरी से साध्य को प्रगट होना ही पड़े, ऐसी साधन में ताकत नहीं है। शुद्ध साधन, हों! अभी भिन्न साधन की बाद में बात करते हैं। वह तो अलग बात है। समझ में आया?

भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण चैतन्यज्योत अखण्डानन्द कन्द पड़ा है। उसका साधन किया अन्दर में (शुद्धात्मा का) तो साधन उसे शुद्ध हुआ, अनन्त काल में नहीं हुआ ऐसा। और साध्य पूर्ण शुद्ध (दशा) है तो पूर्ण साध्य का अभिन्न साधन कहा। क्योंकि वह शुद्ध है, यह भी शुद्ध है। तो अभिन्न साधन, अभिन्न साध्य, एक जाति का है। एक जाति का।

मुमुक्षु : .... पूर्ण।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूर्ण है। इस अपेक्षा से उसे निश्चय से अभिन्नसाध्यसाधन कहा, तथापि वह शुद्धता जो अभिन्न प्रगट हुई है, उससे साध्य होना ही पड़े, उससे होगा ही, ऐसा नहीं है। साध्य की निर्मल पर्याय स्वतन्त्र प्रगट होती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य के आश्रय से स्वतन्त्र होती है। यह पर्यायके आश्रय से नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? यह सूक्ष्म हो गया। यह सूक्ष्म में और सूक्ष्म। और हमारे छोटाभाई कहे, थोड़ा फिर से कहना। और वापस उसमें सूक्ष्म आया।

मुमुक्षु : पर्याय के आश्रय से नहीं होती, स्वतन्त्र होती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्वतन्त्र पर्याय है साध्य की। पर्याय है साधन तो साध्य होगा, ऐसा नहीं है। साध्यसाधन का अर्थ इतना कि साध्य प्रगट होने से पहले ऐसी दशा थी, ऐसा। नहीं तो वह साधन भी साध्य का साक्षी ही है। साधन भी साध्य का साक्षी है। उससे प्रगट होगा, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : साध्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : आया है। यह तो पूर्व में साधन है, ऐसा कहने में आया। परन्तु यह शुद्ध साधन हुआ तो साध्य को लायेगा, ऐसा नहीं। क्या एक पर्याय दूसरी पर्याय की मालिक है ? क्या स्वामी है ? समझ में आया ? सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : बहुत गहरी।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत गहरी इसलिए न समझ में आये, ऐसी नहीं है।

मुमुक्षु : बुद्धि प्रमाण समझे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बुद्धि में प्रयास तो करना पड़ेगा या नहीं ? बीड़ी-तम्बाकू में कैसा प्रयास है ? बुन्देलखण्ड में ऐसे सेठ... सेठ... सेठ... सेठ... परन्तु किसका सेठ ? समझ में आया ? यहाँ तो आत्मा के स्वभाव के श्रेष्ठ और सेठ दृष्टि में हो, तब सेठ कहलाता है।

दृष्टि में अपना आत्मा और वह भी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र, शुद्ध स्वभाव की अन्तर्मुखता से प्रगट दशा हुई, वही साध्य को लायेगी ही, ऐसा जोर पर्याय में नहीं है। क्योंकि वह पर्याय तो व्यय हो जाती है। नयी पर्याय (को) व्यय लाता है, ऐसा नहीं है। और उत्पाद पूर्व में था शुद्ध साधन, इसलिए उसके कारण से साध्य होगा ही, ऐसा नहीं है। यह तो मात्र साध्य से पहले निश्चयसाधन कौन सा था, उसे बतलाने के लिये निश्चयसाध्यसाधन अभिन्न कहने में आया है। कहो, समझ में आया ? कठिन बात, भाई ! यह तो दसलक्षणी पर्व के दिन हैं तो इसमें यथार्थ बात क्या है, उसकी दृष्टि इसे समझनी पड़ेगी या नहीं ?

तो कहते हैं कि यहाँ पर तो यहाँ तक आया कि व्यवहारनय से... पहले निश्चयनय से बात की। यहाँ व्यवहारनय से (कथन) है, निश्चयनय से अभिन्नसाध्यसाधन है तो यहाँ व्यवहारनय से भिन्नसाध्यसाधन कहा। निश्चय बिना व्यवहार कभी नहीं होता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए तो यह लिया है पहले।

निश्चय का साधन प्रगट हुए बिना व्यवहार के साधन का आरोपित भाव कहना, वह भी यथार्थ नहीं है। और एक समय में दोनों साधन हैं। परन्तु दोनों का भाव भेद है। एक अन्तर शुद्ध उपादान की दृष्टि से, अन्तर ज्ञायकभाव की दृष्टि, ज्ञान और लीनता की, वह शुद्ध है। उसे शुद्ध अभिन्नसाध्यसाधन कहने में आया है। निर्मल की एक जाति गिनकर, निर्मल की एक जाति गिनकर, शुद्धता (साधन) अपूर्ण और शुद्धता (साध्य) पूर्ण, परन्तु शुद्धता है, उसकी एक जाति गिनकर निश्चय से उस निर्मलदशा को साधन कहा गया है।

अब इसके साथ, **व्यवहारनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन लेकर...** धर्मीजीव को इस निश्चय के साधन के साथ व्यवहारसाधन (होता है)। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का राग, शास्त्र को पढ़ने का विकल्प (होता है)। वह विकल्प स्वपरप्रत्ययी पर्याय है। अकेली शुद्ध पर्याय नहीं। पहले जो निश्चय अभिन्नसाध्यसाधन कहा, वह अभिन्न शुद्ध है तो स्वद्रव्य—आश्रय शुद्ध हुआ। स्वआश्रय से शुद्ध। परन्तु अब यह भिन्नसाध्यसाधन जो कहते हैं, वह विकल्प है, राग है। वह राग स्वपरप्रत्यय है। अपनी पर्याय निमित्त के लक्ष्य से उत्पन्न हुई है तो राग है, विकल्प है, मैल है, उपाधि है, शुभभाव है। उस शुभभाव को व्यवहारनय से भिन्न साध्य (साधन कहा)। क्योंकि शुभभाव मलिन है, विकल्प है और साध्य है, वह शुद्ध है। तो साध्य शुद्ध की जाति भिन्न हुई। साध्य जो शुद्ध प्रगट करना है, उससे विकल्प भिन्न हुआ। भिन्न हुआ, इस कारण से साध्य और साधन भिन्न है, ऐसा उस साधन को साध्य का साधन व्यवहारनय से कहा गया है। भाई! यह मार्ग तो ऐसा है। यह समझे बिना ऐसे का ऐसा अनादि काल से चला आता है। अन्धाधुंधी, अन्धाधुंध।

व्यवहारनय से... यहाँ वजन है। वजन समझते हो? यहाँ आगे आचार्य को इसमें क्या कहना है, उसका जोर है। कि **व्यवहारनय से...** वह विकल्प उठता है व्यवहाररत्नत्रय का, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का, नौ तत्त्व की श्रद्धा का विकल्प भेदवाला और ग्यारह अंग का अभ्यास, पंच महाव्रत का विकल्प उठना, वह साध्य शुद्ध का साधन व्यवहारनय से कहने में आया है। क्योंकि राग और विकल्प होने से साध्य शुद्ध का व्यवहारसाधन कहने में आया है। निश्चयसाधन प्रगट हुआ है—अभिन्न साधन, (इसलिए साथ के राग को) व्यवहार / निमित्त साधन कहा गया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार साधन ही नहीं। कहाँ से आया व्यवहार? माल बिना बारदान किसका? कोथला समझते हो? बारदान। माल नहीं और बोरी किसकी? परन्तु किसकी बोरी? माल बिना? खाली बोरी भी किसकी? तम्बाकू की, दाने की, शक्कर की बोरी। परन्तु माल हो तो फिर कही जाती है कि यह शक्कर की बोरी, दाने की बोरी, चावल की। इसी प्रकार निश्चय बोरी हो—माल हो, तब उसे उसकी बोरी कहा जाता है। विकल्प उठता है। समझ में आया? बहुत गड़बड़ है इसलिए धीरे से, शान्ति से विस्तार किया जाता है। एकदम दो लाईनें कैसे करे? दो लाईन पूरी की, ऐसा कोई कहता था। भाई! पूरा कहाँ करे? इसका विस्तार जो है, इतना समझ में आवे नहीं और ऐसे का ऐसा पढ़ जाये, उसमें कुछ यथार्थ हाथ आवे नहीं। कहो, समझ में आया? बल्लभदासभाई! लो, यह बात अभी सूक्ष्म आयी। सवेरे कुछ ऐसा आया और अभी ऐसा आया। रविवार के अनुकूल आया। हमारे कहाँ गये? गये? यह बैठे। .... यह कहे, रविवार को ऐसा ही आता है। यह और ऐसा कहते हैं।

देखो भाई! थोड़ा परन्तु यथार्थ समझना चाहिए। भले ग्यारह अंग का ज्ञान न हो, नौ पूर्व का न हो, परन्तु जितना हो, उतना यथार्थ और सत्य होना चाहिए। समझ में आया? थोड़ा सा सच्चा ज्ञान भी केवलज्ञान को ला सकता है और ग्यारह अंग और नौ पूर्व का अभ्यास भी मिथ्यात्व को टाल नहीं सकता। समझ में आया?

कहते हैं कि **प्राथमिक जीव...** अर्थात् चौथे-पाँचवें और मुख्य छठवें गुणस्थानवाले

सन्त, साधु, उन्हें निश्चय अभिन्नसाध्यसाधन प्रगट हुआ है, उसे व्यवहारनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन आता है—राग का आश्रय आता है। देव की भक्ति, गुरु की भक्ति, देव-गुरु की श्रद्धा, ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं। तो ऐसा अवलम्बन लेकर। यहाँ तक अर्थ हुआ। अब आया हमारे सेठी का अर्थ। **सुख से तीर्थ का प्रारम्भ करते हैं...** सुख से करीने कहो या सुख से। अर्थात् सुख से तीर्थ की शुरुआत करके। सुख से करके कहो, यहाँ हिन्दी भाषा में। अब इसका अर्थ नीचे हमारे पण्डितजी ने किया है, देखो! **सुख से=सुगमता से, सहजरूप से, कठिनाई बिना।** अर्थात् शुभभाव आता है, स्वरूप में स्थिरता नहीं। परिणति शुद्ध है। क्या? धर्मी की परिणति शुद्ध है। परिणति क्या? पर्याय। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्मल पर्याय परिणति शुद्ध है। परन्तु शुद्धोपयोग में नहीं आया। स्वरूप में स्थिर होकर शुद्धोपयोग नहीं है तो उस काल में उसे व्यवहार का अवलम्बन आये बिना नहीं रहता।

मुमुक्षु : परिणति और उपयोग....

पूज्य गुरुदेवश्री : लो! कितनी बार कहा? बहुत बार कहा कि परिणति अर्थात् शुद्ध दशा। छठवें गुणस्थान में, चौथे गुणस्थान में, पाँचवें में—तीनों में जितनी द्रव्य के आश्रय से दृष्टि, ज्ञान और लीनता हुई, उतनी पर्याय शुद्ध परिणति कायम रहती है। सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ तो सम्यग्दर्शन की शुद्ध परिणति दर्शन की और अनन्तानुबन्धी के अभाव की इतनी चारित्र की, वह शुद्ध परिणति अर्थात् पर्याय कायम रहती है और शुद्धोपयोग तो जब अन्तर में ध्यान में जाता है, तब शुद्धोपयोग होता है। समझ में आया?

चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि को भी शुद्ध परिणति सम्यग्दर्शन और अनन्तानुबन्धी के अभाव की पर्याय कायम रहती है। युद्ध में हो, भोग में हो। समझ में आया? वह शुद्ध परिणति कायम है, परन्तु उपयोग अभी शुभ-अशुभभाव में जाता है तो शुद्ध उपयोग नहीं है। समझ में आया? शुद्धोपयोग तो जब ध्यान में जाता है, तब शुद्धोपयोग चौथे गुणस्थान में कदाचित् किसी समय किसी काल में आता है।

और पाँचवें गुणस्थान में भी शुद्ध परिणति मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी की तथा अप्रत्याख्यान की गई, उतनी शुद्ध पर्याय तो कायम चालू है। कायम चालू है। दुकान में बैठा हो, भोग में हो, युद्ध में हो। युद्ध तो न हो। समझ में आया? जरा क्रोध भी हो,

मान, माया, लोभ विकल्प उठे हों तो भी जितनी शुद्ध परिणति की पर्याय प्रगट हुई, वह तो निरन्तर रहती है। और कभी शुद्धोपयोग के ध्यान में आता है। शुभाशुभ का विकल्प छूटकर शुद्धोपयोग का ध्यान किसी काल में कभी आता है। चौथे गुणस्थान से पाँचवें में बहुत अल्प काल में आता है शुद्धोपयोग। चौथे में लम्बे काल में आता है।

और छठवें गुणस्थान में शुद्ध परिणति, सम्यग्दर्शन की शुद्ध पर्याय और तीन कषाय के अभाव की शुद्ध पर्याय, वह शुद्ध परिणति तो हमेशा रहती है। मुनि को आहार का विकल्प हुआ हो, सोने का विकल्प हुआ हो, बोलने का विकल्प हुआ हो, वाँचन का विकल्प हुआ हो, सुनने का विकल्प हुआ हो, भगवान की यात्रा का, भक्ति का विकल्प हुआ हो मुनि को भी, तब भी जितनी शुद्ध परिणति रागरहित श्रद्धा-ज्ञान परिणति हुई, वह परिणति तो कायम रहती है।

अब उस परिणति के समय शुद्धोपयोग नहीं है। क्योंकि व्यवहार का अवलम्बन है। आया न? यह राग, देव, गुरु, शास्त्र की भक्ति का विकल्प, उसका अवलम्बन है। शुद्धोपयोग रमता नहीं। वह (शुभ) छूटकर शुद्ध में रमे तो सातवाँ गुणस्थान आ जाता है। समझ में आया? कठिन बात, भाई! कहते हैं कि मुनि को भी छठवें गुणस्थान में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और तीन कषाय का अभाव का चारित्र, इतनी निर्मल धारा, जिसे निर्मल परिणति कही, निर्मल पर्याय कही, शुद्धदशा कही, निर्विकारीदशा कही, ऐसी दशा तो मुनि को कायम रहती है। चौथे के योग्य चौथे की शुद्धता, पाँचवें के योग्य पाँचवें की शुद्धता, छठवें के योग्य छठवें की शुद्धता की पर्याय कायम चलती है। इसमें तो बहुत अभ्यास करना पड़ता है, हों! शोभालालभाई! बहुत ध्यान रखते हैं, हों! तुम्हारी अपेक्षा समझने की इन्हें बहुत धगश है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पूछते हैं—इसमें से प्रश्न करते हैं। इसमें से ऐसा लगता है कि यह समझने की दरकार करते हैं। समझने की दरकार करना। समझ में आया? यह तो महानिधान आत्मा का प्रगट करने की समझ है। समझ में आया? धूल की ... कौन कर सकता है? कभी स्पर्शा नहीं, यह तो पहले कहा था। लक्ष्मी को कभी स्पर्शा

नहीं। जामुन, गुलाबजामुन को कभी खाया नहीं, बर्फी का कभी आत्मा ने सम्बन्ध किया नहीं, स्त्री के शरीर का सम्बन्ध आत्मा ने कभी किया नहीं। शरीर को स्पर्शा नहीं कभी तीन काल—तीन लोक में अज्ञानी ने भी। मात्र स्पर्श किया है अपने स्वरूप को भूलकर अज्ञान और राग-द्वेष का। आहाहा!

उसमें यहाँ छूटने में दो भाग किये। अज्ञान और मिथ्यात्व और राग जितने छूट गये, स्वभाव के आश्रय से निर्मल दशा श्रद्धा, ज्ञान की हुई, चारित्र की हुई। उस निर्मल दशा की परिणति है, वह शुद्ध है। विकल्प के साथ भले हो, और वह शुद्ध को साधन कहकर, पूर्ण शुद्ध का साधन निश्चय से कहा गया है। साध्य और साधन एक प्रकार के गिनकर उसे साधन कहा, परन्तु साधन का अर्थ भी पहले ले लिया कि साधन है तो साध्य उसके कारण से आयेगा, ऐसा नहीं है। इस साध्य से पहले ऐसी दशा वर्तती थी, उसका ज्ञान कराया। साधन भी साध्य का साक्षी है। आहाहा! यह निश्चयसाधन, हों! अरे! यहाँ तो उस व्यवहार को साधारण साधन भाई! बनाना है, इसलिए यह (कहा जाता है)। समझ में आया?

व्यवहारसाधन जो कहने में आया है, वह निमित्त देखकर (कहा गया है)। ज्ञान की श्रद्धा, ज्ञान, लीनता है थोड़ी, वहाँ तो सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का, श्रद्धा का राग आता है। उसे कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का राग नहीं आता। जो एक ही आत्मा माननेवाले हैं, आत्मा सर्वथा अज्ञान से भी कर्ता नहीं, ऐसा माननेवाले हैं, ऐसी मान्यता तो उसे व्यवहार में भी नहीं होती। समझ में आया?

निश्चय में तो परद्रव्य का झुकाव है ही नहीं। निश्चय जितना शुद्ध साधन है, उतना तो स्वद्रव्य के आश्रय से है, परन्तु जितना परद्रव्य के आश्रय से व्यवहाररत्नत्रय उत्पन्न हुआ, उसे यहाँ भिन्न साधन कहा है, उस भिन्न साधन में सुख से तीर्थ की शुरुआत करता है, ऐसा कहा, क्यों? कि-शुद्धोपयोग में जा नहीं सकता और अशुभ परिणाम को लाना नहीं, तो बीच में देव-गुरु-शास्त्र, सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र, पंच महाव्रत के परिणाम, पंचम गुणस्थान के योग्य बारह व्रत के विकल्प आते हैं, उनका व्यवहार से अवलम्बन लिया, ऐसा कहा जाता है। व्यवहार से अवलम्बन लिया। अशुभ को टालने

और अशुभ से बचने के लिये वह शुभभाव आया, उसका उसने अवलम्बन लिया। अवलम्बन लेकर, ऐसा शब्द पड़ा है न?

निश्चय में अवलम्बन अपने द्रव्य का है। उसमें शुद्ध पर्याय अवलम्बन है साध्य के लिये। शुद्ध पर्याय का अवलम्बन द्रव्य है। परन्तु ज्ञानी स्वरूप में स्थिर नहीं हो सकता, ऐसी भूमिका में **व्यवहारनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन लेकर...** ऐसा विकल्प आवे कि सत्य कहना, असत्य को उत्थापित करना। वह भी एक विकल्प है। समझ में आया? यह भी एक विकल्प है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का भी विकल्प है और व्यवहाररत्नत्रय तीनों विकल्प है। विकल्प अर्थात् राग है। उस राग का अवलम्बन लिया। स्वरूप में स्थिर नहीं हो सकता तो अवलम्बन लिया तो कठिनता बिना वहाँ टिकता है तो सुख से पार होता है, ऐसा कहा गया है। सेठी!

सीढ़ियाँ होती हैं न, सीढ़ियाँ? मंजिल पर चढ़ने के लिये। सोपान। चढ़ते हैं तो सीढ़ियों से, परन्तु वह लकड़ी है और आड़े डाले न हाथ रखने के लिये। क्या कहते हैं? कठेड़ा कहते हैं हमारे तो। कठेड़ा कहते हैं न? हाथ रखते हैं। चलते हैं पैर से, हों!

इसी प्रकार आत्मा चलता है तो अपने शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र की पर्याय से गति करता है परिणमन में। उसमें ऐसे व्यवहार के विकल्प का कठेड़ा, व्यवहार से अवलम्बन आता है। निमित्तरूप अवलम्बन। समझ में आया? और निश्चय जो साध्यसाधन कहा, वह तो निश्चय शुद्ध परिणति हुई। वह तो यथार्थ में पूर्ण साध्य का निश्चय स्वआश्रय साधन कहने में आया है। कठिन बात, भाई! यह सब साधारण समाज कहती है, उसके लिये यह? परन्तु रास्ता ही यह है, दूसरा कोई रास्ता नहीं। यह साधारण समाज के लिये है। समझ में आया?

मुमुक्षु : सुख से....

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख से (अर्थात्) कठिनता बिना। देखो! सहजरूप। सहज अर्थात्? विकल्प तो राग है। परन्तु स्वभाव में जा सकता नहीं तो विकल्प का आश्रय व्यवहार से लिया, व्यवहार से लिया। अशुभ में नहीं गया, अशुभ से बचा, ऐसा व्यवहार आया तो सहजरूप से क्रम-क्रम से राग घटाता है, शुद्धि बढ़ती है व्यवहार से तो, सुख

से पार होता है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। निश्चय से तो अपने स्वभाव की स्थिरता द्वारा सुख से पार होता है। परन्तु साथ में राग का अवलम्बन व्यवहार विकल्प उठा है, शुद्धोपयोग नहीं, (राग) आया है तो इससे सुख से-सुख से तीर्थ की सेवा करके पार होगा, ऐसा कहने में आया है। व्यवहारनय का कथन ऐसा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कह दिया।

सुख से तीर्थ का प्रारम्भ करते हैं... इसका अर्थ क्या? कि इसमें कषाय की मन्दता आयी शुभभाव, तो उसमें बहुत जोर नहीं करना पड़ा स्वरूप में स्थिरता करने का। सहज ऐसा विकल्प का आश्रय हुआ तो उसके आश्रय से सुख से तीर्थ की सेवा व्यवहार से करता है, व्यवहार से पार (करने की) शुरुआत करता है, ऐसा कहने में आया। निश्चय से तो अपने स्वभाव के आश्रय से सुख से शुरुआत होती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यही सुख से है। इसका यहाँ विकल्प में आरोप देकर सुख से तीर्थ का प्रारम्भ करता है, ऐसा कहा जाता है। क्योंकि शुद्धोपयोग है नहीं तो राग की मन्दता का अवलम्बन न ले तो भ्रष्ट हो जाये। समझ में आया? प्रवचनसार में कहा न? शुद्धोपयोग आया परन्तु नहीं और मुझे शुभ के विकल्प का अवलम्बन लेना नहीं। अवलम्बन लेना नहीं तो कहाँ जायेगा? तो अशुभ में जायेगा। समझ में आया? शुद्ध में स्थिर नहीं रह सकता। उपयोग तो गणधर का भी नहीं रह सकता शुद्धोपयोग। तब यदि व्यवहार का अवलम्बन न ले तो अशुभ में जायेगा। इस कारण से सुख से तीर्थ की शुरुआत करते हैं, व्यवहार से सुख से शुरुआत करते हैं। **(अर्थात् सुगमता से...)** सुगमरूप से **मोक्षमार्ग की प्रारम्भभूमिका का...** प्रथम भूमिका में राग का सेवन करते हैं अथवा राग आता है, उसका अवलम्बन लिया, तो व्यवहार से सेवन करते हैं, ऐसा कहने में आया है। ओहोहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तत्त्व की दृष्टि समझना हो तो द्रव्यानुयोग का अभ्यास करना पड़ेगा। द्रव्यानुयोग-तत्त्व की दृष्टि क्या है और कैसे उत्पन्न होती है, कैसी भूल है, यह समझे बिना स्वरूप कहाँ से आयेगा? प्रथमानुयोग का अर्थ कैसे करना, इसकी भी उसे खबर नहीं पड़ेगी। चरणानुयोग में, करणानुयोग में क्या कहना है, उसकी खबर नहीं पड़ेगी इस दृष्टि के बिना। चार अनुयोग है। उनमें जो लिखा है तद्नुसार बराबर समझ जाये तब तो द्रव्य का आश्रय (करने का) द्रव्यानुयोग का कथन है उसमें। कथानुयोग में नहीं, ऐसा नहीं, परन्तु मुख्यरूप से वार्ता है। गौणरूप से अन्दर में लिया कि आत्मा द्रव्य ऐसा है और वैसा है। सब लिया है। परन्तु इसका ध्यान नहीं जाता। निश्चय की बात में ध्यान नहीं जाता और अकेली कथा (पढ़े)। उसमें तो राग, विकल्प है। पर के ऊपर लक्ष्य है, वह तो पुण्य है। कथा सुनने में पर का लक्ष्य है। द्रव्यानुयोग सुने तो भी शुभभाव है तो कथानुयोग-प्रथमानुयोग सुने तो वह भी शुभभाव है। अमरचन्दभाई! वह तो परद्रव्य की ओर का लक्ष्य है, झुकाव है। आहाहा! अरे! लोगों को सत्य समझने की दरकार नहीं होती न, इसलिए कुछ न कुछ सहारा लेकर ऐसे होता है... ऐसे होता है... ऐसे होता है... पर के आश्रय से होता है। प्रभु! वह तो पर का आश्रय तो व्यवहार से कहा है। स्व के आश्रय बिना कभी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं होते। समझ में आया?

अब, **जैसे कि...** यह कहते हैं कि व्यवहार कैसा आता है? विकल्प का अवलम्बन किस प्रकार का आता है? भिन्नसाध्यसाधन में साधन किस प्रकार का उत्पन्न होता है? अभिन्नसाध्यसाधन की भूमिका में। **(१) यह श्रद्धेय (श्रद्धा करनेयोग्य) है,...** यह विकल्प आया। निश्चय में तो यह श्रद्धा करनेयोग्य है और ऐसा कोई बोल होता नहीं। यह तो अभेद वस्तु की दृष्टि हुई, ज्ञाता-ज्ञेय के (भेद को) छोड़कर...

मुमुक्षु : ग्रहण-त्याग....

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्रहण-त्याग भी नहीं, यह श्रद्धा करनेयोग्य है और यह श्रद्धा करनेयोग्य नहीं, यह तो विकल्प उठा है। अन्तर्दृष्टि जहाँ हुई ज्ञायक में, उसमें 'यह श्रद्धायोग्य है' यह तो विकल्प है, राग है। अन्तर्दृष्टि जहाँ निर्विकल्पदृष्टि हुई, वहाँ ऐसा

भेद है ही नहीं। ऐसी दृष्टि में भेद नहीं होने पर भी पूर्ण वीतरागता नहीं तो ऐसे भेद के विकल्प का अवलम्बन आये बिना नहीं रहता। ओहोहो! यह निमित्त की अनुकूलता गिनने में आयी है। यह निमित्त की अनुकूलता। अनुकूल कहो या निमित्त कहो। अनुकूल कहो या निमित्त से—सुख से-सुख से तिरेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इसे निमित्त से-सुख से तिरे, ऐसा कहने में आरोप आता है। कथन दो प्रकार के हैं। सुख से तिरना तो एक ही उपाय से है—स्वभाव से है। परन्तु कथन दो प्रकार के हैं। मोक्षमार्ग का कथन दो प्रकार का है। मोक्षमार्ग दो (प्रकार के) नहीं। साधन के (कथन के) दो प्रकार, साधन दो का नहीं। ऐसा सुख से तिरता है, ऐसे कथन दो प्रकार के हैं। सुख से तिरता है, ऐसे दो बोल नहीं हैं। अपने स्वभाव से तिरता है, यह विकल्प व्यवहार आया, इसलिए सच्चे देव, शास्त्र गुरु और कुदेव का निमित्त छूट गया तो इतना (विकल्प) रहा, उतना व्यवहार अवलम्बन में सुख से-सुख से कठिनता बिना आगे बढ़ जायेगा स्वभाव के आश्रय से। उसे निमित्त में सुख से तिरता है, ऐसा कहने में आया है। कहो, समझ में आया?

यह भागवत शास्त्र वाँचन होता है। आया था न पहले? उसमें ही है यह। पारमेश्वर, नहीं आया? वह तो आ गया पहले। पारमेश्वर शास्त्र। नहीं कहा इसमें? पारमेश्वर शास्त्र। देखो! चौथी लाईन, इसमें ही है। पारमेश्वर शास्त्र का। परमेश्वर जिन भगवान भागवत दैवी पवित्र शास्त्र। भागवत शास्त्र है। भगवान परमात्मा ने कहा हुआ शास्त्र है। जैन परमेश्वर त्रिकाल नेता, ज्ञान के पूर्ण ज्ञाता, उन्होंने कहा हुआ दैवी शास्त्र। ओहोहो! समझ में आया?

तो व्यवहार का क्या विकल्प उठता है? जिसे व्यवहार भिन्नसाध्यसाधन कहा, साध्य निश्चय शुद्ध है और साधन विकल्प है, तो प्रथम भूमिका में पूर्ण वीतराग न हुआ हो, उस दशा में कैसा विकल्प आता है? कि यह श्रद्धेय—श्रद्धा करनेयोग्य है। सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र श्रद्धा करनेयोग्य है। और आत्मा भी श्रद्धा करनेयोग्य है। ऐसा भी भेद डालकर विकल्प उठता है, वह व्यवहार है। श्रद्धा तो हुई है, परन्तु विकल्प ऐसा आवे कि ओहो! पूर्ण आनन्द प्रभु, वही श्रद्धा का विषय है और वहीं श्रद्धा करनेयोग्य है। ऐसा विकल्प उठता है, प्रगट दृष्टि हुई होने पर भी।

(२) यह अश्रद्धेय है,... कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र, एकान्त माननेवाला अश्रद्धेय है, श्रद्धा करनेयोग्य नहीं। भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कहे हुए देव-गुरु-शास्त्र के अतिरिक्त कोई श्रद्धा करनेयोग्य नहीं। ऐसा ज्ञानी को साध्य का भिन्नरूप विकल्प, ऐसा व्यवहार साधन का अवलम्बन आता है। **(३) यह श्रद्धा करनेवाला है...** देखो! आत्मा श्रद्धा करनेवाला है, यह भी विकल्प हुआ। आत्मा श्रद्धा करनेयोग्य है। आत्मा और आत्मा श्रद्धा करनेयोग्य है, दो भेद हुए, विकल्प हुआ। **(४) यह श्रद्धान है;...** यह सम्यग्दर्शन, वह श्रद्धान है—पर्याय। यह श्रद्धान है, ऐसा भेदरूप पर्याय का विकल्प, उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन का विकल्प कहने में आया है। उसे साध्य का व्यवहारसाधन कहने में आया है। समझ में आया? आहाहा! चार आने का (हिसाब न मिले) तो आठ आने का कैरोसीन जलाता है। क्या? हिसाब में चार आना नहीं मिलते हिसाब करते-करते (तो) आठ आने का तेल जलावे। यहाँ मिलान करना, निश्चय क्या? व्यवहार क्या? साधन क्या? साध्य क्या? निर्मल क्या? मलिन क्या? गड़बड़ है गड़बड़।

मुमुक्षु : सबका मेल होना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ कहाँ इसे मेल करना है? दूसरा मेल करना है बहियों का और बाहर का और धूल का। समझ में आया? और या कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र, वे भी कुछ है, उनमें भी कुछ है। और त्यागी होगा, बड़े-बड़े होंगे, वरदान दे, कुछ वचन दे और किसी का वह हो जाये पैसा-बैसा मिले और राजा उसे मानते हों तो कुछ नहीं होगी खूबियाँ? अब राजा कौन? भूत जैसा राजा। राजा अर्थात् क्या? पूर्व के पुण्य के कारण पुतला बैठाया सिर पर। उसकी बुद्धि कितनी? कि राजा जिसे माने, वह बड़ा होगा। यह तूने कहाँ से कीमत की? समझ में आया? अरे! इसके लिये तो करोड़ों रुपये खर्च कर डाले और उसके पीछे तो मोटरें घूमती हैं, इसलिए कुछ होगा। धूल में भी नहीं, सुन न!

यहाँ कहते हैं कि वह श्रद्धा करनेयोग्य नहीं। श्रद्धा करनेयोग्य सत्य है, असत्य श्रद्धा करनेयोग्य नहीं, ऐसा विकल्प उठता है, वह श्रद्धा का विकल्प आया—राग। अब **(१) यह ज्ञेय (जाननेयोग्य) है,...** आत्मा जाननेयोग्य है, ऐसा विकल्प उठा। परिपूर्ण भगवान अखण्डानन्द (है, ऐसा) जाना है, तथापि अभी विकल्प उठता है। ओहो!

बारम्बार उसमें, जाननेयोग्य है, भगवान के शास्त्र जाननेयोग्य है, भगवान क्या कहते हैं वह जाननेयोग्य है, वह जाननेयोग्य है, ऐसा विकल्प आया। जिसे यहाँ भिन्नसाध्य का साधन कहा।

(२) यह अज्ञेय है,... यह जाननेयोग्य नहीं। अज्ञानी की बात जाननेयोग्य नहीं। यह क्या कहते हैं? सुनो तो सही! परन्तु क्या जाने इसमें? अज्ञानी अपने सत्य से विरुद्ध कहता है, वह अज्ञेय है—जाननेयोग्य नहीं। समझ में आया? **(३) यह ज्ञाता है....** आत्मा जाननेवाला है। भेद पड़ गया न? यह जाननेयोग्य, यह जाननेयोग्य नहीं, यह जाननेवाला, ऐसा भेद पड़ गया, वह तो विकल्प उठा। **और (४) यह ज्ञान है;...** यह ज्ञान है, यह ज्ञाता है, यह जाननेयोग्य है, यह जाननेयोग्य नहीं। ऐसे चार प्रकार का भेद पड़ा, उसे ज्ञान का—शुभराग का विकल्प कहने में आता है। उसे साध्य का व्यवहार साधन कहने में आया है। ऐसा विकल्प आये बिना रहता नहीं। समझ में आया?

अब तीसरा। **(१) यह आचरणीय (आचरण करनेयोग्य) है,...** देखो! है न? **यह आचरणीय (आचरण करनेयोग्य) है,...** आत्मा में स्थिर होना, स्थिर होना, वह आचरण करनेयोग्य है, यह भी एक विकल्प है। अथवा व्यवहार में पंच महाव्रत आदि का राग आचरण करनेयोग्य है, यह भी एक विकल्प है। **(२) यह अनाचरणीय है,....** यह अशुभभाव ज्ञानी को आचरणीय नहीं—आचरण करनेयोग्य नहीं, पाप के परिणाम आचरण करनेयोग्य नहीं। यह भी एक विकल्प-राग है।

(३) यह आचरण करनेवाला है... आत्मा आचरण करनेवाला है। शुभ या शुद्ध का आचरण करनेवाला आत्मा है, वह भी एक विकल्प आया। **और (४) यह आचरण है;....** शुद्ध स्वरूप की स्थिरता, वह निश्चय आचरण है। यह विकल्प आया, वह व्यवहार आचरण है। ऐसा विकल्प का भाव चारित्र में हुआ, वे तीनों विकल्प हुए—दर्शन का, ज्ञान का और चारित्र का। उसे यहाँ भिन्न साधन कहा गया है। अभिन्न साधन प्रगट हुआ हो, उसे व्यवहार ऐसा आता है तो उसे भिन्न साधन कहने में आया है। समझ में आया? अब विशेष कर्ताकर्म का बोल कल लेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ९, मंगलवार, दिनांक - १५-०९-१९६४, गाथा-१७२, प्रवचन-२१

यह पंचास्तिकाय की १७२वीं गाथा चलती है। मोक्षमार्ग का विस्तार। उसमें यहाँ ऐसा आया, देखो! **थोड़ी-थोड़ी विशुद्धि प्राप्त करके,...** यहाँ तक आया है। क्या कहा इसमें? कि यह आत्मा अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द शुद्ध सम्पन्न पदार्थ है। शुद्ध सम्पदा सम्पन्न, उसकी अन्तर्दृष्टि करके निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ हो और अपने आत्मा का सम्यग्ज्ञान हुआ हो और स्वरूप में लीनता का—चारित्र का भी अंश प्रगट हुआ हो, उसे मोक्षरूपी पर्याय अथवा सातवें गुणस्थान के योग्य शुद्ध परिणति उपयोग, उसका व्यवहारसाधन उस भूमिका में कैसा होता है, उसकी व्याख्या चलती है। समझ में आया? यह पहली भूमिका (बाँधी कि) यह क्या चलता है?

यह आत्मा अनादि अज्ञान वासना का तो नाश करके राग, विकल्प उठता है, वह विकार और स्वभाव त्रिकाल स्वभाव वह भिन्न है, ऐसा भान पहले होना। समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और साथ में जरा स्वरूप स्थिरता का स्वरूपाचरण शुद्धि का अंश प्रगट हुआ, वह निश्चयसाधन, शुद्ध मोक्षमार्ग अथवा शुद्ध परिणति अथवा शुद्ध मोक्ष का निश्चयसाधन यह शुद्ध प्रगट दशा हुई, उसे निश्चयसाधन कहा गया है।

और निश्चयसाधन स्वद्रव्य, स्वपर्याय, स्वहेतु निर्मल पर्याय है। अपने द्रव्य के आश्रय से शुद्ध निर्मल, द्रव्य के शुद्ध चैतन्यपने के सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्मल दशा प्रगट हुई, वह स्वहेतु, स्वद्रव्य आश्रय से स्व निर्मल पर्याय है, और मोक्ष अथवा सातवे गुणस्थान के योग्य शुद्ध उपयोग की परिणति भी शुद्ध है। तो उस शुद्ध का निश्चयसाधन-कारण कहने में आया है। साथ में व्यवहारसाधन होता है कि जो निश्चय का व्यवहारसाधन कहने में आया है कि जो परविषयवाला भेदरत्नत्रय है। परविषय जिसमें देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह विकल्प-राग है, परद्रव्य का विषय है उसमें। शास्त्र का ज्ञान, वह भी राग है, उसमें पर विषय (होता) है, और पंच महाव्रत अथवा अट्ठाईस मूलगुण आदि व्यवहारचारित्र के परिणाम भी परद्रव्य के लक्ष्य से, आश्रय से है। तो व्यवहाररत्नत्रय रागमय है, वह स्वपरहेतु पर्याय है। अपनी पर्याय निमित्त के अवलम्बन से उत्पन्न हुई, इतनी पर्याय को स्वपरहेतु शुभराग कहा जाता है।

उस शुभराग को यहाँ भेदरत्नत्रय कहा गया है। समझ में आया? इस भेदरत्नत्रय को साधन कहकर....

दृष्टान्त दिया है इसमें, जैसे **धोबी द्वारा शिला की सतह पर...** शिला की सपाटी पर **पछाड़े जानेवाले,...** हमारे गुजराती में ऐसा शब्द है झींकना, पछाड़ना। पछाड़ते जाने पर है उसमें? और **निर्मल जल द्वारा भिगोए जानेवाले...** और वह वस्त्र निर्मल जल में डुबाया हुआ **और क्षार (साबुन) लगाए जानेवाले...** साथ में साबुन लगाया। धोबी, यह शिला, पानी और साबुन—तीन आये तीन। **मलिन वस्त्र की भाँति...** मलिन वस्त्र में **थोड़ी-थोड़ी विशुद्धि प्राप्त करके,...** उसी प्रकार आत्मा में निर्मल शुद्ध अंश प्रगट हुआ है, साथ में व्यवहार-विकल्प से कुछ-कुछ शुद्धि होती है, ऐसा व्यवहारनय से कहने में आया है। ओहोहो! समझ में आया? यहाँ निम्नानुसार नोट है।

जिस प्रकार धोबी पाषाणशिला, पानी और साबुन द्वारा मलिन वस्त्र की शुद्धि करता जाता है, उसी प्रकार... नीचे नोट है। क्यों अभी तक नहीं निकाला? किसने दे दिया? कहो, समझ में आया? **धोबी पाषाणशिला, पानी और साबुन द्वारा मलिन वस्त्र की शुद्धि करता जाता है,...** नीचे नोट है। २५८ पृष्ठ। **उसी प्रकार प्राक्‌पदवीस्थित...** प्राक् अर्थात् छठवें गुणस्थान में रहनेवाला। शुद्धोपयोग की स्थिरता अभी हुई नहीं, परन्तु शुद्ध परिणति निर्मल स्वद्रव्य के आश्रय से हुई है और विकल्प व्यवहार साधन भी साथ में है। उसे प्राक्‌पदवी, पहली पदवी में **स्थित ज्ञानी जीव...** देखो! है तो ज्ञानी। **भेद रत्नत्रय द्वारा...** यह विकल्प अर्थात् शुभोपयोग द्वारा **अपने आत्मा में संस्कार को आरोपण करके उसकी थोड़ी-थोड़ी शुद्धि करता जाता है, ऐसा व्यवहारनय से कहा जाता है।** यह तो राग—शुभराग है। पंच महाव्रत के परिणाम, शास्त्र का ज्ञान और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा भी राग है। परद्रव्य के विषय से अपने में उत्पन्न हुआ है, वह तो राग है। राग से शुद्धि आत्मा में होती है, यह व्यवहारनय से, उपचार से निमित्त देखकर आरोप से कहने में आया है। भारी गड़बड़, भाई! समझ में आया?

परमार्थ ऐसा है कि उस भेदरत्नत्रयवाले ज्ञानी जीव को शुभभावों के साथ यह शुभभाव है भेदरत्नत्रय। **जो शुद्धात्मस्वरूप का आंशिक आलम्बन वर्तता है,...** शुद्ध भगवान ज्ञायक आत्मा का जो अन्तर आंशिक—थोड़ा अवलम्बन—आश्रय—आधार

वर्तता है, **वही उग्र होते-होते...** अन्तर वस्तु ज्ञायक की ओर विशेष अन्तर का साधन, अन्तर का अवलम्बन लेकर **विशेष शुद्धि करता जाता है।** अपनी निर्मल पर्याय तो आत्मा के आश्रय से ही शुद्धि होती है। व्यवहार विकल्प आता है, उससे शुद्धि नहीं होती। समझ में आया?

इसलिए वास्तव में तो, शुद्धात्मस्वरूप का आलम्बन करना ही शुद्धि प्रगट करने का साधन है और उस आलम्बन की उग्रता करना ही शुद्धि की वृद्धि करने का साधन है। पहले शुद्धि का साधन कहा, शुद्धि प्रगट करने का। फिर शुद्धि प्रगट हुई, उसमें वृद्धि करना, वह भी अन्तर ज्ञायकभाव का आश्रय करने से ही शुद्धि प्रगट होकर, विशेष आश्रय करने से शुद्धि की वृद्धि हुई। कठिन भाई समझना! यह सब समझ करना... समझ करना। समझ किये बिना धर्म नहीं होता?

मुमुक्षु : धर्म स्वयं ही समझ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म अर्थात् आत्मा का ज्ञानस्वभाव। चिदानन्द, सच्चिदानन्द प्रभु। जैसा सिद्ध स्वभाव है, वैसा अन्तर स्वभाव है। उन सिद्ध को प्रगट हो गया। यहाँ शक्ति—स्वभाव शुद्ध है, उसके अन्तर अवलम्बन से जितना सम्यग्दर्शन-ज्ञान और स्थिरता का अंश शुद्धि प्रगट हुई है, वह स्वभाव के आश्रय से, अवलम्बन से हुई है। व्यवहार-निमित्त के अवलम्बन से नहीं होती। और वही शुद्धि की वृद्धि स्वभाव के उग्र अवलम्बन से होती है। व्यवहार के अवलम्बन से होती है, ऐसा कहना व्यवहारनय का कथन है। देखो! यह कहा न?

साथ रहे हुए शुभभावों को शुद्धि की वृद्धि का साधन कहना, वह तो मात्र उपचार कथन है। शुद्धि की वृद्धि के उपचरितसाधनपने का आरोप भी... अब यह दूसरी बात करते हैं। अकेले दया, दान, भक्ति, व्रत, तप का भाव है, उसका व्यवहार से साधन का आरोप भी किसे आता है? जिसने निश्चय का साधन अन्तर प्रगट किया हो उसे।

मुमुक्षु : कौन स्वीकार करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : न स्वीकार करे तो उसके घर में रहा। वस्तु का स्वरूप तो ऐसा

है। माने, न माने इससे कहीं वस्तुस्थिति पलट जायेगी? समझ में आया?

भगवान ज्ञानज्योति चैतन्यमूर्ति प्रभु के अन्तर अवलम्बन से जितनी शुद्धि प्रगट हुई, उसके साथ जितना शुभराग आया तो शुद्धि की वृद्धि तो स्वभाव के अवलम्बन से ही होती है, परन्तु साथ में शुभराग भेदरत्नत्रय आया, उससे शुद्धि होती है, ऐसा व्यवहारनय का उपचार कथन है। देवीलालजी! ओहोहो! व्यवहार असत्यार्थ, अभूतार्थ है। वह असत्य अर्थ को प्रगट करता है। जिससे संस्कार शुद्ध नहीं होते, जिससे वृद्धि नहीं होती, उससे वृद्धि संस्कार होते हैं, ऐसा कहना वह व्यवहारनय का लक्षण है। अन्यथा कहना, वह व्यवहारनय का स्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? यह सब समझना पड़ेगा, हों! क्यों शोभालालभाई! भाई को कहते हैं कि समझना पड़ेगा सबको।

मुमुक्षु : इसके बिना ज्ञान नहीं होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होगा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु पहली समझ करने जितनी तो स्थिरता करे। क्या चीज़ है? किस प्रकार प्रगट होती है? कैसे प्रगट नहीं होती? क्या विघ्नरूप भाव है? क्या अविघ्नरूप दशा है? वह दशा किस प्रकार प्रगट होती है? ऐसी समझण किये बिना अकेला पुरुषार्थ किस दिशा में करना, इसकी भी उसे खबर नहीं। अन्ध-अन्ध चलता है। अन्ध बतावे और अन्ध चले। खड्डे में गिरेगा। खड्डा अर्थात् चौरासी के अवतार। ऐसा। ऐसे चौरासी के अवतार में भटकेगा।

जिसे धर्म करना है, जन्म-मरण का अन्त लाना है, उसे त्रिलोकनाथ परमात्मा जैनपरमेश्वर फरमाते हैं, ऐसा मुनि—सन्त फरमाते हैं। भाई! तेरी चीज़ में तो पूर्ण आनन्द, पूर्ण आनन्द पड़ा है न! अतीन्द्रिय आनन्द का रस झरता है न! अतीन्द्रिय रस पड़ा है। जो सिद्ध में आनन्द है, वैसा आनन्द तेरे द्रव्य में—वस्तु में है। ऐसी आनन्द की दृष्टि करना, जिससे शुद्ध आनन्द का अंश प्रगट हो, उस आनन्द का ज्ञान करना, जिसके ज्ञान के स्वसंवेदन में शान्ति हो, वही आनन्द में झुकना, जिसमें स्थिरता की शान्ति में आनन्द की वृद्धि होती है, वही एक मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? दूसरे कहे कि आत्मा का शुद्ध का अनुभव करना, वह एक ही मोक्षमार्ग है।

परन्तु ऐसे मोक्ष की धारा शुद्ध परिणति ज्ञानी को उत्पन्न होने पर भी जब तक पूर्ण दशा न हो, तब तक ऐसा व्यवहार, देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत का अहिंसा आदि राग का भाव और शास्त्र का अभ्यास, स्वाध्याय करना, ऐसा शुभराग आये बिना नहीं रहता। वह आता है, उसे व्यवहार साधन कहकर उस साधन से शुद्धि की वृद्धि हुई, ऐसा व्यवहारनय से कहने में आया है। आहाहा! राजमलजी! यह ब्याज निकाले तो उसमें कितनी होशियारी करनी पड़ती है? सेठ! दस लाख दिये हों और चार आना के हिसाब से बनिया ब्याज निकाले। प्रतिदिन का ब्याज। प्रतिदिन का समझे न? चक्रवृद्धि ब्याज। ब्याज के ऊपर ब्याज। दस लाख दिये हों, चार आना के हिसाब से, दस लाख वाले बारह आना, रुपया न दे। उसमें अब तो कहते हैं, ब्याज बढ़ गया। लोग ऐसा कहते हैं। परन्तु वह चार आना के हिसाब से दस लाख का ब्याज एक दिन का चढ़े। तदुपरान्त वापस चार आनारूप से पैसा और ब्याजसहित का ब्याज। ऐसे चक्रवृद्धि का ब्याज निकाले।

यहाँ आत्मा में क्या है? भगवान जाने भाई! अपने कुछ समझते नहीं। अपने करो धर्म। कहीं धूल में धर्म होगा? क्या चीज़ है? किस प्रकार निर्मलता होती है और मलिनता पर्याय में कितनी होती है, उसे क्या कहते हैं, इसकी खबर नहीं। समझ में आया?

तो आचार्य कहते हैं कि आत्मा का शुद्ध भगवान महिमावन्त त्रिकाली स्वभाव के अवलम्बन से शुद्धि प्रगट हुई—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और उसके उग्र अवलम्बन से शुद्धि की वृद्धि होती है। साथ में शुभराग रहा, उससे शुद्धि की वृद्धि हुई, ऐसा उपचार से कथन किया गया है। समझ में आया? **शुद्धि की वृद्धि के उपचरितसाधनपने का आरोप भी उसी जीव के शुभभावों में आ सकता है कि जिस जीव ने शुद्धि की वृद्धि का यथार्थ साधन (—शुद्धात्मस्वरूप का यथोचित आलम्बन) प्रगट किया हो।** यह शुभ व्यवहाररत्नत्रय में भी शुद्धि के साधन का व्यवहार उसे कहा जाता है कि जिसे अपना निर्मल स्वभाव आनन्द, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता की निर्मल दशा प्रगट की हो, उसके राग को व्यवहारसाधन आरोप से कहा जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : उग्रता।

पूज्य गुरुदेवश्री : उग्रता कहा न, पहले दो बार अर्थ किया। आत्मा ज्ञायस्वभाव

पूर्णानन्द मूर्ति है, उसमें दृष्टि लगाकर जो शुद्धि प्रगट हुई, वह स्वभाव का विशेष— उग्र साधन-अवलम्बन किया। पर्याय में द्रव्य का विशेष आश्रय किया इसका नाम उग्र साधन।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अवलम्बन उग्र किया, इसलिए निर्मल साधन प्रगट हुआ। लो! इसे समझना कठिन पड़ता है। समझना कठिन पड़े, इसमें ऐसा कुछ नहीं है। सरल सादी भाषा है। प्रगट करने में पुरुषार्थ लगाना, वह दूसरी बात है, परन्तु समझने में ऐसी कोई कठिन बात नहीं है। समझने की बात की। पश्चात् प्रगट कैसे करना, यह प्रयत्न तो अपूर्व है। समझ में आया?

भगवान आत्मा, आत्मा है न? आत्मा वस्तु अन्दर, उस आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का रस पड़ा है। पूर्ण आनन्द, गुण अनन्त शक्ति, एक आनन्द में अनन्त शक्ति और उसके आनन्द की अनन्त पर्याय (प्रगट हो) ऐसा आनन्द। एक गुण है न? व्यापक है न सबमें? तो एक गुण में इतनी अनन्त शक्तियाँ। आत्मा के अनन्त गुण में निमित्त होने की ताकत है और अनन्त गुण में ज्ञान का आनन्द, दर्शन का आनन्द, चारित्र का आनन्द, स्वच्छता का आनन्द, ऐसा सबमें आनन्द आता है। ऐसा आनन्द सहजानन्द जो आत्मा का स्वभाव त्रिकाल है, उस पर दृष्टि करने से जो राग और विकल्प और पुण्य-पाप पर अनादि से दृष्टि लगी है... वह सवेरे चलता है, वह मिथ्यादृष्टिपना है। दया, दान, काम, क्रोध का विकल्प उठता है, उस ओर लक्ष्य करके उतना ही अपना अस्तित्व स्वीकार करना, वह अज्ञानभाव है। एक राग का कर्तृत्व स्वीकारना होता है, वह अज्ञानभाव से है। आहाहा! कहो, सेठ! क्या करना इसमें? उलहाने भी बहुत मिलते हैं। यह (क्रिया) कुछ कर सकता नहीं और यह (तत्त्व) समझ में आता नहीं। न समझ में आये, ऐसा नहीं होता। अनन्त काल इसने अज्ञान में बिताया है तो अज्ञान कैसे होता है? ज्ञान कैसे होता है? इसे समझ और प्रयत्न और उल्लसित वीर्य से समझने का काम करना पड़ेगा। उल्लसित वीर्य से, उल्लसित वीर्य से। समझ में आया?

ओहो! यह आत्मा वस्तु सच्चिदानन्द सिद्ध प्रभु है। सिद्ध भगवान हुए हैं, वे कहीं

से हुई निर्मल पर्याय ? कोई बाहर से आयी है ? वह अन्तर में पड़ी है, उसमें से धारावाही प्रगट हुई है। समझ में आया ? ऐसा आत्मा... '**सिद्ध समान सदा पद मेरो।**' आता है या नहीं यह बनारसीदास में ? ऐसा शुद्ध स्वरूप, उसकी दृष्टि करने से... पुण्य-पाप के विकल्प की स्वभाव में एकताबुद्धि है, वह अज्ञान है। स्वभाव की दृष्टि करने से उस एकत्वबुद्धि का अज्ञान नाश पाता है। नाश होने पर उत्पत्ति किसकी होती है ? कि शुद्ध श्रद्धा, शुद्ध ज्ञान और शुद्ध शान्ति की उत्पत्ति होती है। ऐसे शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति की उत्पत्ति हुई, वह पूर्ण साध्य का निश्चयसाधन है। ऐसा जिसे प्रगट हुआ हो, उसे जो व्यवहाररत्नत्रय का शुभराग आता है, उसे व्यवहारसाधन का आरोप उसे दिया जाता है। जिसे दृष्टि के स्वभाव का भान भी नहीं और अकेले दया, दान, व्रत, भक्ति, तप का राग करता है, वह तो व्यवहारसाधन का आरोप देने के भी योग्य नहीं रहा। क्यों अमरचन्दभाई ! आहाहा ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : प्रगट तो आपको करना है, हमें तो सुनना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो, प्रगट तुम्हारे करना है या किसे करना है ? परन्तु सुननेवाला समझकर प्रगट करने के लिये सुनता है या मुफ्त सुनता है ? डेरियाजी ने ठीक डाला है, हों ! पैसेवाले को डाले। समझ में आया ? आहाहा !

कहते हैं कि तेरी चीज़ तेरे समीप पूर्णानन्द से भरपूर है। तेरी दृष्टि में अपराध है। समझ में आया ? वह दृष्टि अपने पूर्ण स्वभाव को स्वीकार नहीं करके दया, दान, व्रत, आदि के राग को स्वीकार करती है, भगवान उसे ही मिथ्यादृष्टि कहते हैं। समझ में आया ? ऐसी मिथ्यादृष्टि का जब सम्यक् स्वभाव के आश्रय से नाश हुआ तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान और स्थिरता का अंश प्रगट हुआ, साथ में रहे हुए शुभराग को व्यवहारसाधन का आरोप दिया जाता है। अज्ञानी आत्मा का भान किये बिना अकेले दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप का, पूजा का, यात्रा का भाव करे तो शुभराग है। उसे व्यवहारसाधन का आरोप है नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! यह चार लाईनें हुई। **थोड़ी-थोड़ी विशुद्धि प्राप्त करके,...** यहाँ तक आया।

उसी अपने आत्मा को... अब यहाँ से हटाते हैं। थोड़ा जो शुभराग रहा, **उसी**

अपने आत्मा को निश्चयनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव के अभाव के कारण,... देखो! निश्चयनय से इतनी बात। **भिन्नसाध्यसाधनभाव के अभाव के कारण,...** वहाँ ऐसा लेना। दो भाग कर देना। क्या कहा, समझ में आया? भगवान अपना पूर्ण शुद्ध प्रभु,... इसने कभी सुना नहीं, समझा नहीं, माहात्म्य आया नहीं। बाहर की दृष्टि में ऐसा का ऐसा घूमा करता है, घूमा करता है। यह आया है न? बिल्ली-बिल्ली लोटण। क्या? बिल्ली, बिल्ली, बिलाडी। वह जड़ीबूटी होती है, ऐसा दृष्टान्त दिया है समयसार नाटक में। बिल्ली लोटण। एक जड़ीबूटी होती है न? उसे सूंघे तो चारों ओर ऐसी की ऐसी (लोटा करती है)। इसी प्रकार राग, द्वेष, पुण्य, पाप और बाहर के तम्बाकू के व्यापार और हीरा-माणेक उसे सूँघा सूँघ करके घूमता रहता है। सेठी! बिल्ली होती है न बिल्ली? वह समयसार नाटक में दृष्टान्त दिया है। बिल्ली है, वह जड़ी बूटी हो... ऐसी जड़ीबूट वनस्पति की गांठ (होती है)।

मुमुक्षु : लोटन भी कहते हैं और....

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक। ऐसे-ऐसे घूमे उसकी ओर से, वह वस्तु तो वहाँ पड़ी है। ऐसे जगत की वस्तु बाह्य पदार्थ तो जहाँ है वहाँ है। अपना लक्ष्य वहाँ कर-करके राग-द्वेष... राग-द्वेष... राग-द्वेष... करते-करते फिरा करता है अनादि से। यह ठीक, यह ठीक नहीं, यह किया और यह किया और पर के लक्ष्य में घूमता-फिरता करता है।

वह दृष्टि गुलांट खाकर, मैं शुद्ध आनन्दघन जड़ी-बूटी हूँ, उसमें मोक्षमार्ग सच्चा पड़ा है और जिसमें मोक्ष ही है। अपना शुद्धस्वभाव, मुक्त द्रव्यस्वभाव मुक्तस्वरूप ही है। ऐसी पर से दृष्टि पर्याय से, विकल्प से, निमित्त से, संयोग से हटाकर निज स्वभाव में दृष्टि लगाना, वही सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का हेतु है। समझ में आया? वह सम्यग्दर्शनपर्याय प्रगट हुई और साथ में सम्यग्ज्ञान हुआ, साथ में स्वरूपाचरण भी गुणस्थान प्रमाण चौथे, पाँचवें, छठवें प्रमाण स्वरूपाचरण हुआ। उसके साथ जितना शुभराग रहा—व्यवहाररत्नत्रय, उसे निश्चय साध्य का व्यवहारसाधन, ज्ञानी को शुद्ध साधन प्रगट हुआ है, उसके (राग के) व्यवहारसाधन का आरोप कहा जाता है। अज्ञानी को तो साध्य शुद्ध और साधन शुद्धि की खबर नहीं, इसलिए वह राग, दया, दान, भक्ति, व्रत, तप का करे, उसे तो व्यवहारसाधन भी नहीं कहा जाता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जायेगा चार गति में, निगोद में जायेगा धीरे-धीरे।

आचार्य तो कहते हैं कि अरे..! एक वस्त्र का धागा रखकर भी 'मैं मुनि हूँ', ऐसे राग को मुनिपना मानता है, निगोद में जायेगा।

मुमुक्षु : तिलतुष रखे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : तिलतुष न रखे, गाड़ियाँ रखे। अरे! भगवान! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य फरमाते हैं और ऐसी वस्तुस्थिति है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मोटर और मोटरगाड़ी। अरे! प्रभु! एक तिलतुषमात्र रखकर भी, 'मैं मुनि हूँ' ऐसा मानता है तो ऐसा रखने का ममता का भाव है, वहाँ मुनिपना होता ही नहीं। ऐसी निर्ममत्वदशा हुई नहीं और ममत्व की भूमिका में 'मैं मुनि हूँ', ऐसा मानता है तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, निगोदं गच्छई, निगोद में जायेगा धीरे... धीरे... कदाचित् स्वर्ग में जायेगा, भूतड़ा-बूतड़ा होगा। वहाँ से तिर्यंच में होकर (निगोद में जायेगा)। यह परम वीतरागमार्ग की दृष्टि छोड़कर अकेला राग... राग... राग... राग... व्यवहार में धर्म मानता है तो उसमें नरक, निगोद का ही रास्ता है। समझ में आया? उसमें जन्म-मरण का अन्त आयेगा नहीं। कहो, समझ में आया या नहीं? जुगराजजी! बराबर है? यह सब सेठियाओं को तैयार होना पड़ेगा। अकेला पैसा-बैसा से काम नहीं चलेगा।

उसी अपने आत्मा को... किसे? कि जिसे निश्चय स्वभाव का साधन निर्मल श्रद्धा-ज्ञान प्रगट हुए हैं, उसे जो व्यवहार विकल्प देव-गुरु-शास्त्र आदि का आया, वह क्रियाकाण्ड का आडम्बर है। राग आया न राग? वह आडम्बर है। **उसी अपने आत्मा को निश्चयनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव के अभाव के कारण,...** वह विकल्प आया, उससे मैं छूट गया। समझ में आया? भिन्नसाध्यसाधनभाव का अभाव। जो निमित्त(रूप) मन्द राग को व्यवहारसाधन कहने में आया था, निश्चय साध्य (हुआ तो), वह लक्ष्य छूट गया। शुद्धि तो है यहाँ, परन्तु फिर राग का लक्ष्य छूट गया और भिन्न साध्यसाधनभाव

(छूट गया)। भिन्न साध्य अर्थात् जो निश्चय में (पूर्ण) स्वभावशुद्धि होना, उसका साधन-स्वभावशुद्धि का साधन था, उसमें व्यवहारसाधन आया था क्रियाकाण्ड का व्यवहारनय का, उस ओर का लक्ष्य छोड़कर, **भिन्नसाध्यसाधनभाव के अभाव के कारण, दर्शनज्ञानचारित्र का समाहितपना (अभेदपना) जिसका रूप है,...** देखो! अपने ज्ञानानन्दस्वभाव में लीन हो गया। सातवें गुणस्थान में। व्यवहार क्रियाकाण्ड का विकल्प छठवें गुणस्थान तक था, शुभराग। उसे व्यवहारसाधन का आरोप दिया था। उससे हटकर निश्चयनय से अर्थात् सत्यदृष्टि से भिन्नसाध्यसाधनभाव का अभाव। साध्य शुद्ध और अशुद्ध जो व्यवहार विकल्प का साधन था, उसका अभाव कर दिया, लक्ष्य छोड़ दिया और स्वरूप में स्थिरता हो गयी। तब दर्शन-ज्ञान-चारित्र का, निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का समाहितपना-अभेदपना हो गया।

(अभेदपना) जिसका रूप है,... देखो! सातवें गुणस्थान की शुद्धोपयोगदशा। समझ में आया? छठवें गुणस्थान तक शुभराग का, विकल्प का निमित्त था। उसका लक्ष्य छूटकर अपना आनन्दकन्द परमात्मा अपना निज स्वरूप, उसमें घुसकर लीन हो गया। दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन की एकता आत्मारूप हुई। ऐसे **सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर की निवृत्ति के कारण...** देखो! यह छठवें गुणस्थान में, पाँचवें गुणस्थान में व्यवहाररत्नत्रय आदि का विकल्प था, उसे यहाँ क्रियाकाण्ड कहा गया है। राग की क्रिया, वह क्रियाकाण्ड है; वह ज्ञानकाण्ड नहीं। अमरचन्दभाई! आचार्यों ने बहुत स्पष्ट किया है। भाई! तुम समझो तो सही कि क्या चीज़ है? और फिर प्रयत्न करना, समझण यथार्थ हो तो प्रयत्न करेगा। परन्तु समझण ही जिसकी यथार्थ नहीं, वह प्रयत्न कहाँ कैसे करेगा? कहते हैं कि भगवान आत्मा... अपना स्वरूप शुद्ध है, उसकी तो कीमत नहीं। बीड़ी की कीमत, तम्बाकू की कीमत। हीरा की कीमत, धूल की कीमत पैसे की। पाँच लाख का, दस लाख का बँगला हो। आहाहा! गजब, भाई! परन्तु क्या है? समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तत्काल है राग की। जहर है राग, उसमें तत्काल का दुःख है। पर में लक्ष्य करे तो राग उत्पन्न होता है। जहर है। यहाँ तो व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प

है, वह भी जहर है। जिसे व्यवहारसाधन कहा, वह जहर है। परन्तु आता है, व्यवहारनय से अनुकूल गिनकर व्यवहारसाधन कहने में आया है। आहा! समझ में आया?

जिसका रूप है, सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर की... भाषा देखो प्रयोग की है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आडम्बर कहा है न? पाठ में है न! उसमें क्या? कहो, समझ में आया? '**भिन्नसाध्यसाधनभावाभावादर्शनज्ञानचारित्रसमाहित्वरूपे विश्रान्तसकल-क्रियाकाण्डाडम्बरनिस्तरङ्ग**' यह तो पाठ का अर्थ है न! पाठ में है, उसका अर्थ हिन्दी में है। कोई शब्द आगे-पीछे किया नहीं।

भगवान आत्मा ज्ञान सत् शाश्वत् ज्ञान-आनन्द की खान, उसमें दृष्टि करके जितनी शुद्धता प्रगट हुई, वह तो वास्तविक साध्य का साधन है, वास्तविक ध्येय का साधन है। साथ में व्यवहार क्रियाकाण्ड, पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण और ऐसा जो विकल्प आता था, वह क्रियाकाण्ड का आडम्बर था। छठवें में आता है। वह आडम्बर समेटा। समझ में आया? वह विकल्प छोड़कर सकल क्रियाकाण्ड के... देखो! सकल क्रियाकाण्ड। जितना छठवें गुणस्थान में वीतराग की व्यवहार आज्ञा के पंच महाव्रत अट्ठाईस मूलगुण, अपने गुरु का विनय, भक्ति, यात्रा, वह सब राग का क्रियाकाण्ड का भाव है। होता है छठवें, पाँचवें में भी होता है और चौथे में भी होता है, परन्तु है राग, पुण्यबन्ध का कारण शुभराग है। उसे निवृत्त करके। **निवृत्ति के कारण....** देखो! यह क्रिया आडम्बर की निवृत्ति के कारण। यह शुभराग आया, उसे साथ में लेकर निवृत्ति हुई, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

पहली दिशा क्या है? और किस दिशा में जाना है, यह निर्णय करता है या नहीं? निर्णय किये बिना चलता है? कहते हैं कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अभेदपना समाहितपना जिसका रूप। ओहो! सातवें गुणस्थान के योग्य मोक्षमार्ग हो गया, शुद्धोपयोग अन्दर (हो गया)। कहो, समझ में आया? पश्चात् आगे बढ़ते-बढ़ते चला जायेगा। **सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर की निवृत्ति के कारण (-अभाव के कारण)....** ऐसा। विकल्प का अभाव हो गया। फिर शुद्धोपयोग में रमणता हुई। **निस्तरंग...**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प की खास बात, विकल्प की खास बात। स्वरूप से विकल्प बाह्य है। चैतन्य के शुद्ध स्वभाव से विकल्प बाह्य चीज़ है। अन्तर की चीज़ नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आडम्बर ही है। पहले से ही आडम्बर है। परन्तु छोड़ा, तब आडम्बर छोड़ा, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? व्यवहाररत्नत्रय है, वह विकल्प शुभ बहिरबुद्धि से बाह्य लक्ष्य से उत्पन्न होता है। अन्तर स्वभाव के आश्रय से व्यवहार उत्पन्न ही नहीं होता। व्यवहार पराश्रित है, निश्चय स्वाश्रित है। महासिद्धान्त। कहो, मोतीलालजी!

मुमुक्षु : बारह अंग का ज्ञान....

पूज्य गुरुदेवश्री : बारह अंग का ज्ञान परावलम्बी है। क्या है? भगवान आत्मा का अन्तर ज्ञान स्वावलम्बी है। स्वावलम्बी है, वही मोक्ष का मार्ग है; परावलम्बी विकल्प, वह बन्ध का कारण है। आहाहा! कठिन बात, भाई! लोग समझते नहीं, विचार करते नहीं। आचार्य क्या कहते हैं? कैसे होना चाहिए? ऐई! सोनगढ़ एकान्त करता है, एकान्त करता है। सुन और समझ तो सही, भाई! बापू! तेरे पंथ में अन्तर में लाने की चीज़ है। न आ सके तो भी निर्णय तो ऐसा करना पड़े या नहीं? कि अन्तर में जाना, वही एक मोक्ष का मार्ग है, दूसरा मोक्षमार्ग नहीं है। कहो, समझ में आया?

निस्तरंग परमचैतन्यशाली है... ओहो! भाग्यशाली और चैतन्यशाली आया अब। कहो, शोभालालभाई! तुमको-सबको कहते हैं न भाग्यशाली है। सेठियाओं को कहते हैं भाग्यशाली है। भाग्यशाली समझते हो? कर्म। पुण्यशाली है, भाग्यशाली है। यहाँ कहते हैं कि यह परम चैतन्यशाली है। विकल्प का भाव जो शुभभाव था, वह छूटकर परमचैतन्यशाली हो गया। समझ में आया? सातवें गुणस्थान में परमचैतन्यशाली। फिर आगे भी बढ़ गया। आठ, नौ, दस। ओहो! यह भाग्यशाली। लोग कहते हैं कि यह पुण्यशाली है। दूसरा क्या कहते हैं? प्रतिभाशाली। प्रतिभाशाली है। प्रतिभाशाली है। लो, यह दूसरी बात आ गयी।

मुमुक्षु : स्वभावशाली।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्वभावशाली है परमचैतन्यशाली।

देखो, पाठ है, हों! '**चैतन्यशालिनि**' संस्कृत में है। '**चैतन्यशालिनि**' ओहो! स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता तो थोड़ी थी, और विकल्प का लक्ष्य छोड़कर अन्दर में सातवें गुणस्थान के योग्य और आगे निर्विकल्प स्थिरता हुई (तो) परमचैतन्यशाली (होने से) अकेले ज्ञायकभाव की शुद्धता प्रगट हुई। **तथा जो निर्भर आनन्द से समृद्ध है...** ओहोहो! निस्तरंग परमचैतन्यशाली। तरंग नहीं उठती उसमें। विकल्प की तरंग भी नहीं। निस्तरंग। समझ में आया? उन्मग्न, निमग्न, यह अर्थ आया था उसमें, भाई! उसमें आता है या नहीं? ९४ गाथा में। ९४ नहीं, ९८-९८। प्रवचनसार में आता है। उन्मग्न-निमग्न ९८ में आता है। भेद उन्मग्न होता है और वह अभेद निमग्न होता है। समा जाता है। आता है न?

मुमुक्षु : आनन्द की तरंगें उठती हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उठती हैं। परन्तु वह यहाँ विकल्प नहीं। वह तो परमचैतन्यशाली का आनन्द हुआ। वह तरंग उठती है परन्तु वह अभेद होती है और विकल्प आता है, वह भेदतरंग है। समझ में आया? निस्तरंग। लो, यह और तरंग में याद आया वह उन्मग्न और निमग्न। भाई! आता है न? वह नदी उन्मग्न, निमग्न शब्द पड़ा है। व्यवहार उन्मग्न होता है, और निमग्न होता है—अन्दर डूब जाता है। अभेद दृष्टि में भेद निमग्न होता है। भेददृष्टि में भेद उत्पन्न हो जाता है। समझ में आया? ऐसी पर्याय प्रगट होती है, वह उन्मग्न हुआ। अन्दर चली जाती है, वह पर्याय निमग्न हो गयी।

इसी प्रकार यहाँ विकल्प का नाश हो गया। और पर्याय में परमचैतन्यशाली दशा जो निर्भर आनन्द से समृद्ध है। देखो! निर्भर—भरा हुआ। भरपूर आनन्द से विशेष शान्ति हो गयी। निर्भर—पूर्ण आनन्द से समृद्ध। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में लवलीन हो गया। अपने आनन्द का स्वाद लेने में, पूर्ण आनन्द से भरपूर ऐसे भगवान आत्मा में यह **विश्रान्ति रचते हुए....** कहो, यह तो यहाँ कथन है। मैं विश्रान्ति रचूँ, ऐसा भी वहाँ नहीं है।

भगवान आत्मा...! देखो भाषा! भगवान आत्मा, यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान तो हुआ था, और जो शुभविकल्प आता था, वह क्रिया आडम्बर की ओर से लक्ष्य छोड़कर अन्तर में निमग्न होता है तो **निर्भर आनन्द से समृद्ध है ऐसे भगवान आत्मा में...** आहाहा! भगवान आत्मा, ऐसा करके तो बुलाया है। भगवान आत्मा! यह विकल्प आता है, वह पामरता है। पूर्णानन्द में... **विश्रान्ति रचते हुए....** देखो! विश्रान्ति। राग की थकान थी, राग विकल्प उठता था न? वह खेद था। मुनि भी राग उत्पन्न होता है, उतना खेद है, अविश्रान्ति है, दुःख है। पंच महाव्रत का, अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प उठता है, वह भी दुःख है, अशान्ति है, उपाधि है, विकल्प है, तरंग है, जहर है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उतरता है, तब तो कहा जाता है यह। ऐसा कि बाहर जायेगा तो यह सब। बाहर निकलकर बाहर जाने के लिये आता है। समझ में आया?

ऐसी पहले दृष्टि हुई है, स्थिरता में कचास थी, उतनी परसमय में प्रवृत्ति थी। चारित्र साक्षात् मोक्ष का कारण है तो जितनी परसमय में प्रवृत्ति है, उतना अचारित्र है। ऐसी स्वपरहेतु पर्याय राग की है, व्यवहाररत्नत्रय कहने में आता है, अविश्रान्ति है। उससे हटकर आत्मा में विश्रान्ति करते हुए। देखो! यह विश्रान्ति। अपने आत्ममहल में प्रवेश कर जितनी शुद्धि करे, उसका नाम विश्रान्ति है। लो, यह वास्तु लेते हैं। आहाहा! अपने निजमहल में... भगवान आनन्द का महल अन्दर पड़ा है पूर्णानन्द (उसकी) पहली दृष्टि हुई थी, ज्ञान तो किया था, स्थिरता भी थोड़ी थी। परन्तु विकल्प है, उतनी अशान्ति, अविश्रान्ति थी। व्यवहाररत्नत्रय अविश्रान्ति थी। आहाहा! तो यह दूसरी अविश्रान्ति कहाँ रही? पाप का भाव और महल में और धूल में रहना, आहाहा! यह तो सब अविश्रान्ति है। भाई! विश्रान्तिगृह नाम नहीं रखते कोई? ऐसा पढ़ा है कहीं मकान पर। विश्रान्तिगृह। धूल में भी विश्रान्तिगृह नहीं। पाँच लाख का बँगला बनाया, दस लाख का। हजीरा समझे? बड़ा महल लम्बा। विश्रान्तिगृह।

मुमुक्षु : मकबरा कहते हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कब्रिस्तान को हजीरा कहा। हजीरा है न। क्या है? बड़ा महल

बनाया, उसमें चूहे की भाँति पड़ा हो अन्दर में अपना मानकर। धार होती है न धार। पत्थर की नहीं धार? उसकी गुफा में पड़ा हो, वैसे बड़ी धार में पड़ा हो। नेवला जैसा है। भान नहीं कि मैं कौन हूँ और किस सम्पत्ति से मैं निभता हूँ और वह सम्पदा क्या मेरी है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो राग की एकता (करता है), यह कब्र खोदते हैं। ऐसा बड़ा (बँगला)। क्या है? बँगले में तू कहाँ है? तू तो राग में भी नहीं तो पर में कहाँ से आया? समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा में विश्रान्ति रचते हुए... ओहोहो! लो, दस बजे तक चला, हों! अब तो मोटरें हो गयीं। नहीं तो गाड़ी से जाते थे। गाडा क्या? बैलगाड़ी। तो जहाँ चार कोस, पाँच कोस चले, फिर खाने के लिये रुके। विश्रान्ति ले। बैल को छोड़ो, घास डालो। अपने ढेबरा-बेबरा साथ में लिये हों। ढेबरा-बेबरा उस समय बढ़िया, हों! अब तो यह सब मैसूर और यह... ढेबरा होता है और उसके साथ अथाणां हो और गाँव में से छाछ ले आवे, गाँव में जाकर। विश्रान्ति लो अब। १० से २ बैठे। चार घण्टे। दो के बाद (बैलगाड़ी) जोड़े। इसी प्रकार यहाँ आत्मा में विश्रान्ति ले। अनादि काल से थकान लगी थी।

मुमुक्षु : यह विश्रान्ति....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है। रास्ते में भूख लगी हो और वह ढेबरा घी चुपड़े हुए हों और उसमें अथाणा हो। अथाणा को क्या कहते हैं? अचार। केरी का अचार और उसमें दही हो साथ में ठीक सा। दस-दस, बारह-बारह ढेबरा। हाँ। अब खा-पीकर फिर सो जाये, लो। ऐसा यहाँ कहते हैं, निश्चिन्तता से आनन्द का पाथेय साथ में लिया है न! अन्दर में गति करते... करते... करते... स्थिर हुआ तो विश्रान्ति हो गयी, उसमें सोता है। यह (अज्ञानी) जागता है। समझ में आया? यह खा-पीकर सो जाता है।

भगवान आत्मा में विश्रान्ति रचते हुए (अर्थात् दर्शनज्ञान-चारित्र के ऐक्यस्वरूप, निर्विकल्प परमचैतन्यशाली... निस्तरंग कहा था न? उसका निर्विकल्प परमचैतन्यशाली।

भरपूर-आनन्दयुक्त... निर्भर का अर्थ किया। **भरपूर-आनन्दयुक्त ऐसे भगवान आत्मा में अपने को स्थिर करते हुए,...** विश्रान्ति का अर्थ किया, सबका किया। निस्तरंग का अर्थ निर्विकल्प किया। है न? और निर्भर का अर्थ भरपूर किया। आनन्द से समृद्ध का अर्थ आनन्दयुक्त किया। ऐसे भगवान आत्मा में विश्रान्ति का अर्थ स्थिर किया। सबका अर्थ किया।

क्रमशः समरसीभाव समुत्पन्न होता जाता है... क्रम-क्रम से वीतरागदशा उत्पन्न होती जाती है। अन्दर स्थिरता (करता) सात, आठ, नौ (गुणस्थान चढ़ता जाता है)। **इसलिए परम वीतरागभाग को भाव को प्राप्त करके...** परम वीतरागभाव पूर्ण प्राप्त करके **साक्षात् मोक्ष का अनुभव करते हैं।** लो! साक्षात् पूर्णानन्द का अनुभव, वह साक्षात् मोक्ष का अनुभव। यह एक अधिकार, निश्चयसाधनसहित में व्यवहारसाधनवाला जीव फिर साधन छोड़कर स्थिर होता है तो वीतरागभाव की पूर्णता होती है, ऐसा एक अधिकार पूरा हुआ। समझ में आया?

(अब केवलीव्यवहारावलम्बी (अज्ञानी) जीवों का प्रवर्तन और उसका फल कहा जाता है :—) क्या कहते है? अपना स्वभाव शुद्ध चैतन्य अमृत आनन्द, उसका अन्तर ज्ञान, निश्चय दृष्टि किये बिना अकेले क्रियाकाण्ड, व्यवहार दया, दान, भक्ति, व्रत, तप करता है, वह व्यवहारावलम्बी जीव मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? **केवलव्यवहारावलम्बी...** है न? **(मात्र व्यवहार का अवलम्बन करनेवाले)...** मात्र व्यवहार अर्थात् निश्चय है नही। स्वभाव शुद्ध ज्ञानमूर्ति प्रभु की सम्यग्दृष्टि नहीं, उसका ज्ञान नहीं, उस ओर का आंशिक भी सावधानी का झुकाव नहीं। अकेले दया, दान आदि सब कहेंगे, हों! यह जरा कठिन बात आयी। यहाँ अकेले व्यवहार को अवलम्बन करनेवाला है, **वे वास्तव में भिन्नसाध्यसाधनभाव के अवलोकन द्वारा...** देखो! कोई कहता है कि भाई! यह पहले भिन्नसाध्यसाधन कहा था तो निश्चय नहीं और अकेला भिन्न साधन है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : निश्चय बिना का यहाँ आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अब आया निश्चय बिना का व्यवहार। पहले कहा वह तो

निश्चय के साथ का व्यवहार था। निश्चय साधन का साध्य (था)। उसमें व्यवहार कैसा, उसकी व्याख्या हो गयी। अब जहाँ निश्चय साधन ही नहीं, निश्चय आत्मा का (और) अकेले क्रियाकाण्ड का व्यवहार अवलम्बन करते-करते हमारी शुद्धि हो जायेगी, हमें धर्म हो जायेगा—ऐसा माननेवाले को व्यवहारावलम्बी मिथ्यादृष्टि कहा है। समझ में आया?

वह **वास्तव में भिन्नसाध्यसाधनभाव के अवलोकन द्वारा...** देखो! वास्तव में वह तो भिन्न साध्यसाधनभाव को ही मानता है। यह क्रिया अपने करते हैं, दया, व्रत, भक्ति, तप, जप, सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण (आदि के) विकल्प उठते हैं बस! वह साधन है, उसके साथ निश्चय प्रगट हो जायेगा। ऐसा अज्ञानी अवलोकन... उसका ज्ञान पर से, राग से मेरा स्वभाव प्रगट होगा, ऐसा अवलोकन करनेवाले **निरन्तर अत्यन्त खेद पाते हुए,...** लो! निरन्तर। यह सम्यग्दृष्टि, ज्ञान में जितना राग था, उतना खेद था। समझ में आया? परन्तु यह तो निरन्तर मात्र खेद है। उसमें आंशिक खेद और आंशिक आनन्द था। आहाहा! समझ में आया? (यह तो) अकेला व्यवहाराभास निश्चय की खबर बिना। मैं क्या चीज़ हूँ? कैसी दृष्टि होना चाहिए? कैसा ज्ञान होना चाहिए? कैसे स्वरूप में स्थिर होना चाहिए? उसकी खबर नहीं, खबर नहीं। सम्यग्दर्शन-आत्मा क्या है, उसकी खबर नहीं। सम्यग्ज्ञान आत्मा के आश्रय से होता है, उसकी खबर नहीं, चारित्र अपने आश्रय से होता है, उसकी खबर नहीं। यह क्रियाकाण्ड करते... करते... करते... यह अभी चलता है वह। अमरचन्दभाई! अभी तो यही चलता है। बस! यही चलता है। करो भाई करो... करो... करो... व्यवहार करते-करते कभी भी निश्चय हो जायेगा।

मुमुक्षु : छोटी लाईन पर गाड़ी चलते-चलते....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह छोटी लाईन ही नहीं। यह तो जहर की लाईन है। ठीक प्रश्न करते हैं सनतकुमारजी। ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा कि पहले छोटी लाईन लो, फिर बड़ी में चढ़ जायेंगे। परन्तु यह छोटी ही नहीं। यह तो विपरीत की है। जाना है भावनगर और जाता है ढसा।

मुमुक्षु : अदिशा में जाने की (लाईन है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : अदिशा में। अकेला व्यवहार तो परदिशा सन्मुख है। यह व्यवहार तो भिन्न विषय है। अपना स्वविषय तो उसमें है ही नहीं। आहाहा! वह दिशा ही उल्टी है। दृष्टि उल्टी, दिशा उल्टी, साधन उल्टा, लक्ष्य उल्टा, फल उल्टा, कारण उल्टा। समझ में आया?

पहले कहा था वह तो स्व की दिशा ली थी। आत्मा को विषय बनाकर दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुए थे। उसमें थोड़ा शुभराग था, उसकी दिशा पर के ऊपर थी। इसलिए उसे साधन कहते थे, निश्चय हुआ इस कारण से। परन्तु यहाँ निश्चय का भान नहीं, सम्यग्दर्शन भेदज्ञान नहीं। करो, भाई प्रतिमा ले लो, व्रत ले लो, भक्ति करो, पूजा करो, मन्दिर बनाओ पाँच लाख, दस लाख का।

मुमुक्षु : सिद्धचक्र की पूजा करें तो धर्म होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस! सिद्धचक्र की पूजा, वह मैनासुन्दरी आता है या नहीं? ...आता है। वह सब आता है। सिद्धचक्र का पाठ कर लो दिन आठ। जाओ। मैना रानी... सिद्धचक्र के पाठ से तुम्हारा कल्याण होगा। सन्देह नहीं करना। धूल में सिद्धचक्र का पाठ तो राग है, वह तो विकल्प है। उसमें निर्वाण का मार्ग कहाँ से आया? समझ में आया? ज्ञानी को सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हुए हैं, उसे स्वरूप में उपयोग की स्थिरता न हो, तब ऐसा भाव आता है। परन्तु उस भाव को व्यवहारसाधन निश्चयवाले को कहने में आया है। वह भी है तो बन्ध का ही कारण, परन्तु स्वरूप का साधन प्रगट हुआ है, तो दूसरे को व्यवहारसाधन का आरोप दिया जाता है। अज्ञानी को तो कुछ है ही नहीं। अपना द्रव्य क्या है, दृष्टि क्या है, निर्विकल्प ज्ञाता-दृष्टा क्या है, इसकी खबर नहीं। करते रहो, कुछ करते रहो। कभी भी बेड़ा पार हो जायेगा। शरीर की स्थिति पूरी हो जायेगी। समझ में आया?

निरन्तर अत्यन्त खेद पाते हुए,... खेद प्राप्त करता है। आहाहा! **(१) पुनःपुनः धर्मादि के श्रद्धानरूप अध्यवासन में उनका चित्त लगता रहने से,...** देखो भाषा! एक-एक में अन्तर करते हैं। अज्ञानी अपने स्वभाव की दृष्टि किये बिना, अकेले धर्मादि छह द्रव्य की श्रद्धा का अध्यवसाय में उसका चित्त लगा करता है। उसमें एकत्वबुद्धि रही

है। यह धर्मास्ति, अधमास्ति, यह देव है और यह गुरु है। पर है न? अध्यवसाय में छह द्रव्य आये न? समझ में आया? छह। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश (आदि) भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। उन छह द्रव्य की ओर के लक्ष्यवाली श्रद्धा, उसमें चित्त लगा करता होने से देखो!

श्रद्धानरूप अध्यवासन में उनका चित्त लगता रहने से,... छह द्रव्य में। अपना द्रव्य क्या है, उसकी दृष्टि करता नहीं। लो, अकेले छह द्रव्य के (विकल्प में) चित्त लगा करता होने से, वह शुभभाव है। परन्तु मिथ्यात्वसहित है तो अकेला व्यवहारसाधन भी उसे कहने में नहीं आता। मिथ्यात्व परिणाम से वनस्पति हो जायेगा। यह आगे कहेंगे कि वनस्पति जैसा हो जायेगा।

(२) बहुत श्रुत के (द्रव्यश्रुत के) संस्कारों से उठनेवाले... शास्त्र का अभ्यास, बहुत अभ्यास करना, पृष्ठ बदलकर चारों ओर के शास्त्र के। ऐसा है और ऐसा है। भगवती आराधना में ऐसा लिखा है, उसमें अकालमरण ऐसा लिखा है, उसमें अमुक ऐसा लिखा है। अरे! सुन तो सही, प्रभु! जो पर्याय आती है कोई भी द्रव्य में से, उसमें कारण-योग्यता थी, उसमें से आती है। उसमें अकाल-फकाल मरण आया कहाँ से? परमाणु में भी उस समय की स्थिति ऐसी होने की थी। पर्याय अन्दर में थी, वह कारणरूप कार्य आया है। समझ में आया? **संस्कार से उठते...** यह कहा है सर्वार्थसिद्धि में। देखो! औषध करने से रोग मिटता है, ऐसा करने से ऐसा होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र क्या है? शास्त्र कौन करता है स्व का?

संस्कारों से उठनेवाले विचित्र (अनेक प्रकार के) विकल्पों के जाल द्वारा... अकेला पर शास्त्र, भगवान के शास्त्र, हों! अन्य के शास्त्र की यहाँ बात है ही नहीं। भगवान के शास्त्र में पर का लक्ष्य करके ऐसे... ऐसे... ऐसे... **विचित्र (अनेक प्रकार के) विकल्पों के जाल द्वारा उनकी चैतन्यवृत्ति चित्त-विचित्र होती है,...** चित्र-विचित्र होता है। मलिन। मिथ्यात्वसहित पुण्यबन्ध होता है, धर्म-बर्म है नहीं। समझ में आया? और **(३) समस्त यति-आचार के समुदायरूप तप में प्रवर्तनरूप...** मुनि के आचार

पालन करता है न अट्ठाईस मूलगुण? ऐसे पालना, दया ऐसे पालना, सदोष आहार नहीं लेना, निर्दोष आहार लेना। समझ में आया? **यति-आचार के समुदायरूप...** सब समूह प्रकार। इतना स्वाध्याय करना, चारों ओर वन्दन करना, इस दिशा से वन्दन करना, ऐसे सामायिक करना, ऐसे विकल्प का जाल। वह **समुदायरूप तप में प्रवर्तनरूप...** तप शब्द से मुनिपना। व्यवहार मुनिपने में प्रवर्तनरूप **कर्मकाण्ड की धमाल में...** देखो! शुभराग की धमाल। **वे अचलित रहते हैं....** कर्मकाण्ड की धमाल। उसमें धमार किया है न? उनकी भाषा में। तुम्हारे क्या कहते हैं हिन्दी में? हमारे कहते हैं धमाल। पूरे दिन धमाल। ऐसे पालन करना, ऐसे खाना, ऐसा करना, ऐसा करना, जाकर पैर धोना, साफ करना। ऐसे क्रियाकाण्ड की धमाल में रुक जाता है। वह राग है, पुण्यबन्ध का कारण है, परन्तु मिथ्यात्वसहित है। वह साधन-फाधन है नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल १०, बुधवार, दिनांक - १६-०९-१९६४, गाथा-१७२, प्रवचन-२२

मोक्षमार्ग का पंचास्तिकाय का अधिकार है। इसमें यहाँ दूसरे अधिकार में केवलव्यवहारावलम्बी जीव की बात चलती है। पहले आ गया... २५९ पृष्ठ। २५९ हिन्दी। पहले यह अधिकार आया कि आत्मा में अभिन्नसाध्यसाधन जिसे प्रगट हुआ है अर्थात् कि अपना आत्मा शुद्ध परमात्मस्वरूप निजानन्द निर्विकल्प है, ऐसी जिसे निश्चयदृष्टि हुई है और स्वसंवेदनज्ञान अन्तर निश्चय हुआ है और उस स्वरूप-सन्मुख की लीनता के निर्विकारी चारित्र परिणाम हुए हैं, उसे अभेद साध्यसाधन कहा गया है। साध्य तो शुद्ध पूर्ण और यह शुद्धि जितनी प्रगट हुई, वह साधन। समझ में आया? शुद्धि पूर्ण होना अथवा सातवें गुणस्थान के योग्य शुद्ध की परिणति होना, वह साध्य और यह साधन निश्चय। अपना स्वरूप विकल्प अर्थात् राग, भेदरहित अखण्ड आनन्द और ज्ञायकभाव से भरपूर है, ऐसी अन्तर्मुख दृष्टि निश्चय की होना और ज्ञान और लीनता होना, वह निर्मल पर्याय साध्य जो पूर्ण शुद्ध अथवा सातवें गुणस्थान के योग्य शुद्धता, उसका निर्मल पर्याय साधन कही गयी है। निर्मल पर्याय साध्य पूर्ण। उसे अभेद साध्यसाधन कहा।

उस भूमिका में भिन्न साध्यसाधनभाव भी होता है। समझ में आया? विकल्परूप से पंच महाव्रत के परिणाम ऐसा भेदरत्नत्रय, व्यवहाररत्नत्रय स्वपरप्रत्ययहेतु ऐसा रागभाग निश्चय का साध्यसाधन है, वहाँ व्यवहार साध्यसाधन का आरोप देने में साधन में आया, ऐसा राग उत्पन्न होता है, उसे व्यवहार साधन और निश्चय साध्य कहते हैं। निश्चय अर्थात् शुद्ध साध्य। समझ में आया? ऐसा नहीं समझकर अकेला व्यवहार क्रियाकाण्ड व्यवहाररत्नत्रय का जो व्यवहाराभास है, निश्चय की सन्धि बिना ज्ञायक वस्तु अन्तर में समझे बिना अकेला व्यवहार का विकल्प करता है, होता है, वह मिथ्यादृष्टि व्यवहारावलम्बी एकान्त मिथ्यादृष्टि कहा जाता है। सेठी! बराबर है? समझ में आया?

अब एक प्रश्न ऐसा था अमरचन्दभाई का कि यह क्रमबद्ध में बहुत गलती होती हैं। यह क्रमबद्ध है न? क्रमबद्ध होता है, उसमें यह व्यवहार विकल्प साधन (करना) कहाँ (रहा)? और निश्चयस्वरूप का साधन करना वह क्रमबद्ध में रहाँ कहाँ? ऐसा

कि लोग भूल से (सन्देह से) प्रश्न करते हैं। समझ में आया? भाई भी जाते हैं न शोभालालभाई वहा जाते हैं। .... ऐसा कहते थे।

क्रमबद्ध में ऐसा समझना कि प्रत्येक पदार्थ (में) अपनी पर्याय के स्वकाल में क्रम से वह पर्याय उसमें—द्रव्य में होती है। उसमें स्वकाल का पर्यायकाल आता है तो उसमें वह पर्याय क्रमनियम में पर्याय का काल है तो पर्याय आती है। ऐसे क्रमसर वर्तनेवाली, ज्ञानी उसका-क्रम का जब निर्णय करता है तो अपने में अकर्तापने की बुद्धि का पुरुषार्थ होता है। कहते है.... रतनलालजी आते हैं या नहीं स्वाध्याय में? नहीं आते। .... है वहाँ। वे करेंगे। ठीक! वे कहते थे, कोई-कोई दस-पन्द्रह व्यक्ति इकट्ठे होकर स्वाध्याय करते-करते इसमें सन्देह क्या है, भूल क्या है, यह समझ में आता है। वांचन नहीं, स्वाध्याय नहीं तो उसमें क्या है? कैसे है? यहाँ क्या कहते हैं? दूसरे क्या कहते हैं? है कैसा? इसका निचोड़ कौन करे स्वाध्याय बिना? तो उसे शास्त्र का स्वाध्याय तो हमेशा होना चाहिए।

यहाँ क्रमबद्ध में ऐसा कहा कि भाई! क्रमबद्ध तो... परन्तु क्रमबद्ध सिद्ध नहीं करना यहाँ आचार्य महाराज को। आत्मा का ज्ञानस्वभाव है, वह अकर्ता है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव है, शुद्ध स्वभाव है, तो वह किसे करे? किसे करे? तो कहते हैं कि पर की पर्याय क्रमसर होती है, उसका मैं क्या करूँ? होता है, उसमें क्या करूँ? न हो, उसमें क्या करूँ? और मुझमें भी समय-समय में क्रमसर जो रागादि की पर्याय उत्पन्न होती है, उसके ऊपर—क्रमबद्ध का निर्णय करनेवाली की दृष्टि राग पर नहीं है। क्योंकि राग आता है तो मुझे लाना क्या? नहीं आता है, उसे लाना क्या? ऐसे क्रमबद्ध को माननेवाले को राग और पर का कार्य मेरा नहीं और मेरा कार्य तो राग और पर का अकर्ता है, ऐसा सम्यग्ज्ञान में निर्णय होता है, तब राग और पर का अकर्ता हूँ, ऐसा पुरुषार्थ आया, उसका नाम मोक्षमार्ग कहा जाता है। शोभालालजी! बहुत गड़बड़ चलती है।

मुमुक्षु : क्रमबद्ध में ऐसा सब आवे कहाँ से?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्रम के अर्थ में तात्पर्य यह है कि मैं दूसरे का तो क्या कर

सकता हूँ? और मैं मेरा भी क्या कर सकता हूँ? अरे! मुझमें भी निर्मल पर्याय आती है, उसका विकल्प क्या करना कि मैं लाऊँ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, होती नहीं तो विकल्प क्या करूँ? मैं तो ज्ञायक चैतन्य शुद्ध हूँ, मैं होते को जाननेवाला हूँ, ऐसा अन्तर में निर्णय, अनुभव करना, इसका नाम अकर्तापना, इसका नाम क्रमबद्ध का तात्पर्य फल है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। सूक्ष्म है परन्तु समझनेयोग्य है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय होती है। क्रम अर्थात् क्रमसर होनेवाली पर्याय। पर्याय की बात चलती है न! पर्याय अर्थात् प्रत्येक द्रव्य में क्रमवार, क्रमवार, क्रमवर्ती, क्रमसर, क्रम-क्रम से आनेवाली पर्याय क्रमसर होती है, आगे-पीछे नहीं। (आगे-पीछे) अर्थात् पहली पर्याय बाद में आवे और वर्तमान पर्याय बाद में आवे और बाद की वर्तमान में आवे, (ऐसा नहीं है)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं हो, उसे क्या करे? न हो, उसे करना क्या और है, उसे छोड़ना क्या? और है उसका करना क्या? सूक्ष्म बात है। भगवान आत्मा ज्ञान चैतन्यज्योति है, ऐसे क्रमबद्ध के लक्ष्यवाला पर का लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञानमूर्ति का लक्ष्य करता है तो ज्ञाता-दृष्टा उत्पन्न हुआ, और राग तथा पर का अकर्ता हुआ, इसका नाम सम्यग्दर्शन और भेदज्ञान है। समझ में आया? ऐसा मान ले कि मुझे जब होना होगा, तब होगा। परन्तु तेरी दृष्टि कहाँ है? तू होना होगा तब होगा, (ऐसा कहता है परन्तु) तेरी दृष्टि कहाँ है? ज्ञानस्वभाव पर दृष्टि करे तो उसे जो होता है, उसका जाननेवाला रहना। समझ में आया? सनतकुमारजी! जरा गड़बड़ बहुत है।

वहाँ सर्वविशुद्ध अधिकार में, समयसार में आया कि आत्मा का अकर्तापना '**दृष्टान्तपुरस्सरमाख्याति**' ऐसा शब्द आया है अमृतचन्द्राचार्य की टीका में। आत्मा का अकर्तापना '**दृष्टान्तपुरस्सरमाख्याति**' जैसे स्वर्ण के कुण्डल आदि क्रमसर जो पर्याय

कुण्डल में होती है, वह पर्याय कुण्डल की है। कुण्डल समझते हो? इसी प्रकार द्रव्य में जो क्रमसर पर्याय क्रमवार आनेवाली है, वह द्रव्य की है, पर की नहीं। ऐसा निर्णय करनेवाली की दृष्टि पर के कर्तृत्व के लक्ष्य से, रुचि से हट जाती है और अपनी पर्याय में आनेवाला राग या निर्मल पर्याय, उसे मैं रचूँ, ऐसा विकल्प भी उसे नहीं होता। अपनी ज्ञायक चैतन्यभूमि, ज्ञायक भगवान चैतन्यज्योत है, उसमें दृष्टि जम जाती है तो राग का और पर का अकर्ता होता है, उसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। समझ में आया?

भगवान ने देखा होगा, वैसा होगा। भगवान ने देखा, परन्तु तुझे निर्णय कहाँ है? भगवान तो सर्वज्ञ हैं। उन्होंने जैसा देखा, वैसा होता है। आता है न यह?

जो जो देखी वीतराग ने, सो सो होसि वीरा रे,
अनहोनी कब हू न होसि काहे होत अधीरा रे।
जो जो देखी वीतराग ने, सो सो होसि....

अब उसे कितने ही पलटा डालने चाहते हैं। ऐसा नहीं है। 'जो जो देखी वीतराग ने, सो सो होसि' ऐसा नहीं। 'जो जो होसि परद्रव्य में ऐसी देखी वीरा रे...' पण्डित कितने ही तो ऐसा बदल डालते हैं, बदल डालते हैं। अरे! भगवान! क्या करता है तू? समझ में आया?

जो, वीतराग और सर्वज्ञ परमात्मा जगत में है, ऐसी ज्ञान की एक परिपूर्ण पर्याय का स्वीकार अस्तित्व—सत्ता का स्वीकार जब करता है, तब स्वीकार करनेवाले की दृष्टि पर से हट जाती है, राग से हट जाती है, अल्पज्ञ पर्याय की दृष्टि हट जाती है और अल्पज्ञ पर्याय सर्वज्ञस्वभाव में प्रविष्ट हो जाती है, तब उसे सर्वज्ञ की सत्ता का स्वीकार होता है। आहाहा! समझ में आया?

इस जगत में सर्वज्ञ परमेश्वर हैं। एक ज्ञान गुण, उसकी एक समय की पर्याय। उसमें अपना पूर्ण स्वरूप और त्रिकाल द्रव्य-गुण-पर्याय पूर्ण है। विकल्प का आश्रय लिये बिना, निमित्त का आश्रय लिये बिना अपनी पर्याय में पूर्ण ज्ञानदशा प्रगट हुई, उसे सर्वज्ञ कहो, यह सात तत्त्व में उसे मोक्षतत्त्व कहो। सात तत्त्व की श्रद्धा आती है या

नहीं ? तो मोक्ष की श्रद्धा और सर्वज्ञ की श्रद्धा कब होती है ? कि उसकी दृष्टि राग से हटकर... क्योंकि राग से सर्वज्ञ की सत्ता का निर्णय नहीं होता। अल्पज्ञ के आश्रय से, मैं अल्पज्ञ हूँ, इसके आश्रय से सर्वज्ञ की सत्ता का स्वीकार नहीं होता। सर्वज्ञस्वभाव जो आत्मा में है, उसके आश्रय से अल्प ज्ञान में सर्वज्ञ की सत्ता का स्वीकार होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गुजराती कहाँ है ? यह तो हिन्दी है। ऐसा कि भाषा सादी कहो। गुजराती नहीं। भाव कठिन है, गम्भीर है। गम्भीर है गहरी बात। ओहोहो!

जिसका एक ज्ञानगुण, अनन्त गुण में से एक गुण, शक्ति त्रिकाल। जिसकी शक्ति में अनन्त-अनन्त शक्ति एक गुण में। उसमें त्रिकाल पर्याय होने की सामर्थ्य है। उसमें एक समय की पर्याय जब ज्ञान की पूर्ण हुई, जिसमें—उस पर्याय में अनन्त केवली दिखते हैं, ज्ञान की एक समय की पर्याय अनन्त सिद्ध को जानती है। अनन्त सिद्ध को जानती है। लोकालोक को जाननेवाले एक केवली, ऐसे अनन्त सिद्ध को, केवली को जानते हैं। अमरचन्दभाई! लोकालोक तो कहीं गया। लोकालोक तो एक केवलज्ञान की एक पर्याय में आ गया। अपनी पर्याय जानने में आ गया। ऐसे अनन्त केवली एक केवलज्ञान की पर्याय में ज्ञात हो गये। हो गये या नहीं। क्योंकि सर्व जीव का ज्ञान होता है न ? संसारी, सिद्ध, मोक्षगामी सबका ज्ञान उसमें होता है केवलज्ञानी को।

एक ज्ञानगुण की एक समय की दशा में अनन्त सिद्ध का स्वीकार ज्ञान में आया, एक समय है, परन्तु तीन काल का ज्ञान है, ऐसे अनन्त सिद्ध का ज्ञान एक समय में आ गया। ऐसी एक ज्ञान की पर्याय के स्वभाव का माहात्म्य, सत्ता है, ऐसा स्वीकार करनेवाला अर्थात् मोक्षपर्याय का स्वीकार करनेवाला कहो या केवलज्ञान का स्वीकार करनेवाला कहो, वह स्वीकार करनेवाली की दृष्टि निमित्त से हटकर, विकल्प से हटकर, अल्पज्ञ की ओर के झुकाव से हटकर अन्तर स्वभाव द्रव्यस्वभाव सर्वज्ञस्वभाव है, उस ओर ढलती है, तब सर्वज्ञ की सत्ता का स्वीकार होता है। तो निर्विकल्प श्रद्धा हो गयी, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन हो गया। समझ में आया ? भाषा सादी है, परन्तु भाव

गम्भीर है, ऐसा कहो। अब तो हिन्दी बोली जाती है, इसलिए उसे गुजराती या हिन्दी कुछ अन्तर पड़ता नहीं लगता। कहो, समझ में आया?

भाई! यह वस्तु का स्वरूप ज्ञेय ज्ञायक। अब यह तो टीका ही करते हैं कि लो, ज्ञेय ज्ञायक की चर्चा-वार्ता करे और संयम-फंयम पालना नहीं। अरे! भगवान! यह दृष्टि में अनन्त-अनन्त पदार्थ का अकर्तृत्व हुआ और अपना ज्ञानानन्द अनन्त स्वभाव की पर्याय के परिणमन का कर्ता हुआ, इतना संयम आ गया। सम्यग्दर्शन में पर से हटकर अपना स्वभाव ऐसा परिपूर्ण है, ऐसी एक श्रद्धा हुई, ऐसा ज्ञान हुआ और चारित्र-स्वरूप में पूर्ण रमणता करनी है, ऐसी प्रतीति भी उसमें आ गयी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आ गयी। तो उसमें स्थिरता की कमी है, परन्तु इससे उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान, स्वरूपाचरण में कोई अन्तर है और उसमें संयम—विशेष स्थिरता नहीं, इसलिए वह मोक्षमार्ग नहीं—ऐसा है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लोगों को ऐसा होता है कि यह व्यवहार... व्यवहार... करते-करते कभी निश्चय होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अधिकार चलता है। उसकी तो बात चलती है कि भाई! निश्चय सम्यग्दर्शन स्वरूप के सामर्थ्य का, सामर्थ्य का विश्वास अन्तर में जानने से जो आता है, वैसा आया नहीं तो किसमें स्थिरता होगी, उसकी तो इसे खबर नहीं। तो अकेला विकल्प करे पंच महाव्रत का, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का, वह तो राग है। मिथ्यात्वसहित पुण्य बँधेगा। उसमें कोई संवर-निर्जरा का अंश कभी नहीं होता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पहले अधिकार में कहा कि ज्ञान में भास हुआ कि क्रमबद्ध कहो या अकर्तापना कहो या ज्ञाता-दृष्टापना कहो—तीनों एक बात है। होता है,

उसे मुझे करना क्या? नहीं होता उसे करना क्या? निर्मल पर्याय होती है, उसका विकल्प करूँ... करूँ, ऐसा विकल्प करने से निर्मल पर्याय होती है? स्वभाव में एकाकार दृष्टि करने से निर्मल पर्याय होती है। तो उसका झुकाव तो वस्तु के सामान्य स्वभाव की ओर ढलना, वह उसका कर्तव्य है। समझ में आया? और जीवन्धर ने लिखा है, देखो! ....व्यवहार असत्यार्थ नहीं। यह प्रवचनसार में लिखा है। द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों होकर सत् है। परन्तु वह तो दूसरी बात है। वह तो जाननेयोग्य की बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा लेख लिखा है आज। यह सत्य है, अमुक असत्य है। तीनों मिलकर सत् है। परन्तु वह तो पूरा द्रव्य और गुण, पर्याय की बात समझाने के लिये है। परन्तु आश्रय करनेयोग्य कौन है? जिसकी खान में अनन्त केवलज्ञान, अनन्त आनन्द भरा है, ऐसा भूतार्थ द्रव्य, वही आश्रय करनेयोग्य है। इस अपेक्षा से, पर्याय इसकी है, (तथापि) उसे आचार्य ने आश्रय करनेयोग्य नहीं, इसलिए असत्यार्थ और अभूतार्थ कहा है। नहीं है, ऐसा नहीं है।

वास्तव में तो पर्याय को असत्यार्थ कहा वह गौण करके कहा है। (सर्वथा) नहीं है, ऐसा नहीं कहा। दो बातें हैं। अपनी पर्याय में अनन्त पर्याय है, विकल्प भी है, उसे गौण करके असत्यार्थ कहा है। नहीं कहकर असत्यार्थ कहा है, ऐसा नहीं है। देवीलालजी! यह ध्रुवस्वभाव नहीं और जिसमें दृष्टि टिकानी है, वह तो ध्रुव है और पर्याय पर दृष्टि रखने से दृष्टि भी अस्थिर होती है और पर्याय भी अस्थिर है तो उससे तो राग ही उत्पन्न होता है। उस राग के नाश करने के काल में, स्वभाव में दृष्टि एकाकार होती है तो वीतरागी निर्विकल्प दृष्टि होना, वह भूतार्थ के आश्रय का फल है। इसलिए पर्याय और राग को असत्यार्थ (कहा है)। नहीं, इसलिए नहीं परन्तु आश्रय करनेयोग्य नहीं (इसलिए) गौणरूप से असत्यार्थ कहने में आया है। अमरचन्दभाई! आहाहा!

यह तो आया नहीं? अपने नहीं आया? यह नयसार की गाथा दी नहीं? नयचक्र की। निश्चयनय पूज्य है या प्रमाण पूज्य है? प्रमाण में तो दो बात आती है, इसलिए वह बड़ा है। अमरचन्दभाई! यह तो अमरचन्दभाई ने प्रश्न किया था क्रमबद्ध का जरा। तो

प्रमाणज्ञान है, वह पूज्य है या निश्चय (पूज्य) है? अपने जैनतत्त्वमीमांसा में आ गया है नयचक्र में से। उन्होंने कहा कि प्रमाण में दो अंश का ज्ञान आता है। उसमें वह पर्याय और व्यवहार का निषेध नहीं आता। और निश्चय में स्वभाव के आश्रय से व्यवहार का निषेध आता है। निषेध आता है तो निर्मल पर्याय प्रगट होती है। दो का ज्ञान करने में, ज्ञान करने में व्यवहार और राग का निषेध नहीं आता, इसलिए प्रमाणज्ञान के बदले निश्चयज्ञान, निश्चयदृष्टि पूज्य है। देवीलालजी! आहाहा! कोई समझे नहीं, क्या कहते हैं? कैसे है? विकल्प नहीं? मुनियों को भी पंच महाव्रत का विकल्प तो आता है। आवे, उससे कौन इनकार करता है? उसे निश्चयसाधन प्रगट हुआ है। ज्ञायकभाव मैं कर्ताहर्ता किसी का नहीं। जानना-देखना मेरा स्वभाव है, ऐसा दृष्टि में आया है। पंच महाव्रत का राग व्यवहार आता है, उसका भी ज्ञानी ज्ञाता रहता है, कर्ता नहीं होता। वह उसका फल है ज्ञाता का। समझ में आया? क्या करे? कोई बलजोरी .... यह तो झूठा... झूठा... ओहोहो!

मोक्षमार्गप्रकाशक में इतना स्पष्ट कर दिया है और मोक्षमार्गप्रकाशक का तो वर्णीजी बहुत स्वाध्याय करते थे। एक महीने में चार बार। अब उस मोक्षमार्गप्रकाशक को झूठा सिद्ध करते हैं। क्या है? क्योंकि उसमें तो ऐसा लिखा है कि व्यवहारमोक्षमार्ग तो निमित्तरूप है। शुद्ध उपादान की अकर्तापने की दृष्टि और ज्ञान प्रगट हुए तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प आता है, उसे निमित्त कहते हैं। वास्तव में वह बन्ध का कारण है। उसे निमित्त देखकर मोक्ष का आरोप देकर व्यवहार कहा। उड़ा दो। व्यवहारमोक्षमार्ग सातवें तक है। निश्चय आठवें से शुरु होता है। भिन्न-भिन्न... मोक्षमार्ग भिन्न कर दिया। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आ गया निश्चय। अर्थात् इसे राग करना। राग करो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा करते... करते... करते... निश्चय हो जायेगा। अरे! भगवान! तेरा स्वरूप तो ज्ञान है, आनन्द है—ऐसी दृष्टि किये बिना तेरा शुभराग भी आत्मा के कल्याण में कोई कारण-फारण नहीं है।

मुमुक्षु : निमित्त कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुन न अब। वह तो शुद्धता प्रगट हुई हो तो निमित्त कहने में आता है। शुद्धता की दृष्टि और भान बिना तेरे व्यवहार को निमित्त भी कौन कहता है? समझ में आया? चारों ओर खलबलाहट हो गयी है। जैनदर्शन... अब जहाँ-जहाँ इसका स्वाध्याय होता हो, वहाँ जैनदर्शन... ऐसा लिखा है। और पैसे देना। निकलो भाई गृहस्थों, नहीं तो जहाँ तहाँ स्वाध्याय हो गया है सोनगढ़ का। अरे...! भगवान!

मुमुक्षु : किसी का रोका रुकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी को रोका रुकता है भाई? जिसकी योग्यता है, उसे मिलेगा ही और समझने का प्रयत्न भी करेगा। वह किसी से रोका रुकता है, और यहाँ है तो वहाँ पर्याय होती है, ऐसा भी नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह जैनदर्शन। ... यह जैनदर्शन (पत्र) का वह है न, इन्दौर से निकलता है न। उसे पैसा देकर... ऐसे कि पैसा दो, सस्ता करो और एकदम जहाँ वाँचन हो, वहाँ दो-दो मुफ्त भेजो, ऐसा कुछ लिखा है। यह ठीक है भाई! बापू!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु हम क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : होता-बोता कुछ नहीं। विकल्प आता है दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा, तप बिल्कुल निश्चय में सहायक नहीं, इसलिए सोनगढ़ को कहते हैं। यह बात सच्ची।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका विशेष ज्ञान न हो, इसका विशेष स्पष्टीकरण ख्याल में न हो तो उसे .... कठिन लगता है। तो अपने कारण से इसे यथार्थ समझना चाहिए। जवाब देने के लिये नहीं, परन्तु अपने को सीखना है, इसलिए इसे यथार्थ समझना

चाहिए कि मार्ग ऐसा ही है, दूसरा नहीं। तीन काल-तीन लोक इन्द्र हो या नरेन्द्र हो, भगवान पास में बैठे हों तो भी भगवान की ओर लक्ष्य रखे, यह सम्यग्दर्शन में बिल्कुल कारण नहीं है। समझ में आया? पर के ऊपर लक्ष्य करने से आत्मा का ज्ञान होता है? अकेला ज्ञान का भण्डार जिसमें पड़ा है, केवलज्ञान का कन्द अकेला परमात्म नारायण निज परमात्मस्वरूप, ऐसी अन्तर्दृष्टि हुए बिना, उसका माहात्म्य आये बिना, उसे दृष्टि में झेले बिना तेरी दृष्टि शुद्ध कहाँ से होगी? दृष्टि में पर्याय और राग और निमित्त झेले, अब यह तो अनादि से किया है, उसमें क्या है? समझ में आया? ऐसा पहले इसे निर्णय करना चाहिए। सम्यग्दर्शन पहले भी इसे ऐसा निर्णय करना चाहिए कि मेरा स्वभाव पूर्ण है, उस ओर दृष्टि करने से ही सम्यग्दर्शन होता है। विकल्प और राग और भेद और निमित्त (को) साक्षात् समवसरण में बैठा हो तो समवसरण में सुनता है, इसलिए इस कारण से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा तीन काल में नहीं है। सनतकुमारजी!

भगवान ऐसा कहते हैं। भगवान कहते हैं कि हमारी श्रद्धा तुम्हें (करनी हो), हम हैं, ऐसी मान्यता करनी हो तो हमारी ओर से लक्ष्य छोड़ो। तुम्हारा भगवान है, उसकी ओर लक्ष्य करो। सेठ! यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं। भगवान को इनकार करता है। ऐसा नहीं... ऐसा नहीं... भगवान! ऐसा नहीं। समझा भगवान को तू। भगवान ऐसा कहते हैं कि नहीं... नहीं... महाराज! ऐसा नहीं। यह आता है न? भरतेश में आता है भरतेश। भरतेश वैभव में एक लेख आता है। वह जब नेमि थे न विद्याधर? वैताक पर्वत का नेमिराजा, वह भरत का साला। भरत चक्रवर्ती का साला। वह एक बार आया था। बड़ा राजा था। वह भी महाशूरवीर था बड़ा, आठ-आठ हजार रानियाँ। बड़ा पुण्यवन्त इन्द्र जैसा था। अभी तो पहले थे न, जुगलिया में से आया है न पहले तो? वह कन्या देने आया था भरत के पुत्र को, अपनी बहन के पुत्र को—भानेज को देते थे न! यहाँ चर्चा होती थी। फिर पुत्र को बुलाया भरत ने। नेमिकुमार बैठे थे। नेमिकुमार के साथ चर्चा हुई।

नेमिकुमार कहे... नेमिराजा, नेमिराजा। बड़ा विद्याधर। चर्चा होते-होते ऐसी हुई कि अभेदरत्नत्रय, वह मोक्ष का मार्ग है; भेदरत्नत्रय, बन्ध का कारण है। वे कहते थे नेमिराजा कहते हैं या नहीं। अभेदरत्नत्रय मोक्ष का मार्ग है। भरत कहे, क्यों नहीं?

भगवान की भक्ति, अपने ऋषभदेव भगवान दादा विराजते हैं, उनकी भक्ति मोक्षमार्ग नहीं? नेमिराजा कहे, नहीं। वह पुण्यबन्ध का कारण है। पुत्र को कहा। बेटा! तेरे मामा कहते हैं वह सत्य है या हम कहते हैं वह सत्य है? पिताजी! क्या हो गया तुमको? आप कहते थे न कि व्यवहाररत्नत्रय बन्ध का कारण है। अब कैसे बदल गये? मामा कहते हैं वह बराबर है। भरत कहे, अरे! यह कन्या देने आये हैं तो तू इनके पक्ष में चढ़ गया? क्या हुआ तुझे? अरे! पिताजी! क्या कहते हो तुम?

क्या तुम हमको ऐसा कहते थे? तुम पहले कहते थे कि भगवान त्रिलोकनाथ हो, देवाधिदेव हों, दादा हैं हमारे, पिताजी के पिता हैं, परन्तु उनकी भक्ति का विकल्प है, वह तो पुण्य ही है। पुण्य ही है, धर्म नहीं। यह समझाते थे भरत चक्रवर्ती परन्तु पुत्र का पक्ष करके... अरे! ऐसा पक्ष किया? वह कन्या देने आये, कन्या की लालच में उनके पक्ष में चढ़ गया? क्या कहते हो पिताजी? ऐसा नहीं है। स्वभाव भगवान आत्मा, अपने शुद्ध स्वभाव-सन्मुख की दृष्टि, ज्ञान, लीनता अभेदरत्नत्रय एक ही मोक्षमार्ग है। व्यवहार... व्यवहार बन्ध का कारण है। मोक्षमार्ग नहीं, नहीं, नहीं। .... समझ में आया? यह भरतेश में एक ऐसा टुकड़ा लिया है। भरतेश कथा है न?

इसी प्रकार यहाँ त्रिलोकनाथ परमात्मा कहते हैं कि अरे! भव्य जीवो! भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप पड़ा है, उसके सन्मुख की दृष्टि और (विकल्प से) विमुख दृष्टि का नाम सम्यग्दर्शन उत्पन्न होने का उपाय है। दूसरा कोई उपाय नहीं तीन काल-तीन लोक में। भगवान के पास जाये, (स्वर्ग) में जाये, नरक में जाये, पशु में जाये, इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। विकल्प आता अवश्य है। व्यवहार होता है, भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र की होती है परन्तु वह राग है। उसे निमित्तसाधन, निश्चयसाधन प्रगट हुआ हो तो निमित्तसाधन कहने में आता है। निश्चय प्रगट हुए बिना उसे निमित्तसाधन का आरोप भी नहीं दिया जाता। कहो, समझ में आया?

अब वह केवल व्यवहारावलम्बी धमाल में अचलित रहता है, यह आया। है न? धमाल-धमाल पूरे दिन। यह अपवास किये, यह किया, देखो न! सुगन्ध दसमी को कितना मजा आता है। दस पूजा और दस में जय-जय बोले, उसमें मजा कितना आता है! यह अब अन्दर में विकल्परहित बात। कहो, ऐई! अकेले स्वभाव के लक्ष्य ओर

दृष्टि बिना, कहते हैं कि श्रद्धा, ज्ञान और आचरण की धमाल में पड़ा है। समझ में आया? उसमें खबर भी पड़े। भगवान की जय... भगवान की जय... पाँच, सात बार खूब बोले, इसलिए इसे ऐसा हो जाता है कि हाश... दूसरे को ऐसा हो जाता है। वह तो शुभभाव की हद है। परन्तु इसके–शुभराग की मर्यादा है। उसका लक्ष्य, रागरहित मेरी चीज़ है, ऐसे स्वभाव का लक्ष्य और दृष्टि न हो तो उसे व्यवहार भी नहीं कहा जाता। उसकी मर्यादा कितनी? आता अवश्य है, परन्तु उसमें एकाकार हो जाये। आहा! उससे हमारा कल्याण होगा। शोभालालजी! आता अवश्य है। नामस्मरण आता है, भक्तिभाव आता है, पूजा का भाव आता है। णमो अरिहन्ताणं बोलना, वह भी शुभराग है। आता अवश्य है, परन्तु उसमें एकाकार होकर उससे सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र होगा, यह तीन काल—तीन लोक में नहीं है। समझ में आया? क्यों?

देखो! यहाँ तो अन्तिम शब्द यह आया है न कल? ओहो! अपना ज्ञानस्वभाव, ज्ञानगुण अनन्त गुण की पर्याय क्रमसर होती है। परन्तु क्रमसर होती है, क्रमसर–क्रमवार, उसकी दृष्टि क्रमसर करने पर नहीं है। मैं ज्ञायक हूँ, चिदानन्द हूँ, उसके ऊपर दृष्टि रहने से राग आता है, उसे करूँ, ऐसी पर्यायबुद्धि नहीं है। वह क्रमबद्ध का फल है। अकेला क्रमबद्ध–क्रमबद्ध करे, आनेवाला है वह आनेवाला है, वह तो मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? दृष्टि की ओर का, ज्ञायक की ओर का तो झुकाव नहीं और आनेवाली पर्याय आयेगी, आनेवाली पर्याय आयेगी। किसमें आयेगी? क्या है तेरा द्रव्य? द्रव्यस्वभाव की दृष्टि बिना आनेवाली होगी, वह आयेगी... आनेवाली होगी, वह आयेगी, उसे क्रमबद्ध का ठिकाना ही नहीं। कर्ताबुद्धि तो है और क्रमसर मानना, यह दो कहाँ से आया? मैं करूँ... मैं करूँ... मैं करूँ... मैं करूँ फिर ऐसा करूँ, फिर ऐसा करूँ। और ऐसा करूँ तो ठीक (और) क्रमबद्ध माना, (ऐसा) दो कहाँ से आये तुझे?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। यह कर्ता अर्थात् करूँ, ऐसा कहा ही नहीं। करूँ... करूँ... करूँ... और क्रमबद्ध मानना। करूँ और क्रमबद्ध मानना, ऐसे दो कहाँ से आये? अमरचन्दभाई! यह तो विरुद्ध ही है। यह आना, वह अलग बात है और मैं करूँ, यह

अलग बात है। आना वह तो ज्ञान-दर्शन की दृष्टि होने पर भी राग, भक्ति आये बिना रहती नहीं। परन्तु मैं रचूँ, करूँ – यह दृष्टि राग के ऊपर है, वह पर्यायबुद्धि है, अंशबुद्धि है, मिथ्याबुद्धि है। आहाहा! तो क्रमबद्ध में मैं ऐसा करूँ... ऐसा करूँ... ऐसा करूँ... करूँ आवे और फिर क्रमबद्ध है, दोनों कहाँ से आये? क्रमबद्ध को माननेवाले को करूँ... करूँ, ऐसा विकल्प नहीं उठता। अमरचन्दभाई! बराबर है सनतकुमारजी! यह तो भाई ने प्रश्न किया था न अन्दर, उसका थोड़ा और (स्पष्टीकरण किया)। इन्हें जाना है गिरनार। इसलिए फिर कल और आवे तो कहाँ... कहा, आज ही आ जाये।

ओहो! भगवान! थोड़ा जानना परन्तु यथार्थ जानने से जिसमें स्व की रुचि हो, ऐसा कर्तव्य करना चाहिए। बाकी तो सब होता है... होता है... होता है... यह तो पहले आ गया। अभिन्नसाध्यसाधन में... दिया है नीचे। नीचे है देखो। नीचे नोट है न? **'वास्तव में साध्य और साधन अभिन्न होते हैं।'** नीचे नोट है। भिन्नसाध्यसाधनभाव के नीचे। नोट में। वास्तव में तो साध्य अर्थात् शुद्धि प्रगट करना और साधन अर्थात् वह (अपूर्ण) शुद्धि प्रगट हुई है वह। पूर्ण शुद्धि प्रगट करना, वह साध्य है, ध्येय है और वह (अपूर्ण) शुद्धि स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई है, वह साधन है। वास्तव में साध्य और साधन एक होते हैं—अभिन्न होते हैं। निर्मल पर्याय का साधन निर्मल पर्याय उसका नाम साध्यसाधन अभिन्न।

जहाँ साध्य और साधन भिन्न कहे जायें वहाँ 'यह सत्यार्थ निरूपण नहीं है... समझ में आया? भिन्न साधन कहने में आता है... भीखाभाई! यहाँ तो ऐसा है। 'रण में चढ़ा रजपूत छुपे नहीं, भाग्य छुपे नहीं भभूत लगाया, चंचल नारी को नैन छुपे नहीं, चन्द्र छुपे नहीं बादल छाया।' इसी प्रकार सत्यार्थ वस्तु जो है, वह रोकने से रुकती नहीं। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप, ऐसी स्वरूप निर्मल (दृष्टि), वह निश्चय साधन और निर्मल साध्य, यह यथार्थ बात है। जिसमें साध्यसाधन भिन्न कहने में आवे (कि) वह व्यवहारविकल्प का साधन और शुद्धि साध्य, यह सत्यार्थ निरूपण नहीं है। **किन्तु व्यवहारनय द्वारा उपचरित निरूपण किया है'....** निमित्त देखकर... शुद्ध साधनदशा चलती है, उसकी कमजोरी में उस भूमिका के योग्य ऐसा कषाय मन्दता का शुभराग

आता है। परन्तु वह वास्तव में उपचरित निरूपण है, उपचार है, यथार्थ नहीं, वास्तविकता नहीं। **ऐसा समझना चाहिए।**

केवलव्यवहारावलम्बी जीव... केवल व्यवहारावलम्बी जीव अर्थात ? अर्थात् निश्चय सम्यक् शुद्ध चैतन्यमूर्ति की दृष्टि किये बिना... अकेला भगवान ज्ञानमूर्ति, राग नहीं, संसार उदय-फुदय मेरे स्वभाव में है ही नहीं। अकेला परमपारिणामिक कारणप्रभु, कारण आत्मा—ऐसी दृष्टि किये बिना, ऐसी दृष्टि को प्रगट किये बिना **केवलव्यवहारावलम्बी जीव इस बात की गहराई से श्रद्धा न करते हुए...** गहराई से श्रद्धा नहीं करते। **'वास्तव में शुभभावरूप साधन से ही...** वास्तव में शुभभाव—देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, नौ तत्त्व के भेद का राग विकल्प, पंच महाव्रत का विकल्प, बारह व्रत के विकल्प, शास्त्र पठन का विकल्प—ऐसे **शुभभावरूप साधन से ही शुद्धभावरूप साध्य प्राप्त होगा'....** मेरा शुद्ध साध्य इस साधन से प्रगट होगा। **ऐसी श्रद्धा का गहराई में सेवन करते हुए...** समझ में आया ? **इस बात की गहराई से श्रद्धा न करते हुए...** और **ऐसी श्रद्धा का गहराई में सेवन करते हुए...** शुभभाव से—राग से होता है, ऐसी गहराई से श्रद्धा है और शुभभाव से नहीं (होता), ऐसी गहराई से श्रद्धा नहीं है।

शुद्धभावरूप साध्य प्राप्त होगा' ऐसी श्रद्धा का गहराई में सेवन करते हुए निरन्तर अत्यन्त खेद प्राप्त करते हैं। समझ में आया ? अकेले आनन्द की ज्ञान-दृष्टि हुई नहीं, अकेला विकल्प दया की, ऐसा किया, भक्ति की, पूजा की, व्रत किये, तप किया, अनशन किया, ऊनोदर... क्या कहलाता है वह षोडशकारण। षोडशकारण तो सम्यग्दृष्टि को होता है। मिथ्यादृष्टि को षोडशकारण कहाँ से आया ? अमरचन्दभाई ! दर्शनविशुद्धि बिना षोडशकारण आये कहाँ से ? सम्यग्दृष्टिपूर्वक में जो विकल्प होता है तो षोडशकारण से बन्ध होता है। तीर्थंकर का बन्ध होता है। तो सम्यग्दृष्टि को विकल्प का भी आदर नहीं। जिससे तीर्थंकरगोत्र बँधे, उसका भी सम्यग्दृष्टि को आदर नहीं। यह तो प्रसन्न-प्रसन्न होता है कि आहाहा ! ऐसा करके फिर तीर्थंकर होऊँगा। अरे.. ! भगवान ! (संवत्) १९८५ के वर्ष में कहा था कि तीतर होगा। तीर्थंकर तो अनन्त जीवों को तारने में निमित्त है। तू खाने में निमित्त होगा। काँप उठा सम्प्रदाय।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। क्या है तुझे? तत्त्वदृष्टि बिना तुझे तीर्थंकरगोत्र का विकल्प कहाँ से हुआ? समझ में आया? आहाहा!

[विशेष के लिए २३०वें पृष्ठ का पाँचवाँ और २३१वें पृष्ठ का तीसरा तथा चौथा पाद टिप्पण देखें।] अन्दर आ गया है। २३३ पृष्ठ है न, उसमें भी २३३ है। उसमें २३३ पृष्ठ है हिन्दी में। गुजराती में होगा कुछ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : महँगा है? ऐसा कैसे किया परन्तु तुम्हारे मित्र ने?

देखो पहला नोट। **जिस नय में साध्य तथा साधन भिन्न हों...** भिन्न प्ररूपण किया जाता है। साध्य साधन क्या? बुद्धि, वह साध्य और राग विकल्प, वह साधन—ऐसा जिसमें कहा हो, **वह यहाँ व्यवहारनय है।** वह तो पराश्रित व्यवहारनय का कथन है। **जैसे कि छठवें गुणस्थान में (द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप के आंशिक आलम्बनसहित)...** द्रव्यार्थिकनय से द्रव्य शुद्ध है, उसका ज्ञान करने से, शुद्धात्म स्वरूप के आंशिक अवलम्बनसहित। अभी पूर्ण अवलम्बन हो जाये तो केवलज्ञान हो जाये। परन्तु आंशिक अवलम्बनसहित **वर्तते हुए तत्त्वार्थश्रद्धान (नवपदार्थसम्बन्धी श्रद्धान),...** वह विकल्प है। स्व-पर प्रत्यय का आश्रय वह राग है।

तत्त्वार्थज्ञान... शास्त्र का। **और पंच महाव्रतादिरूप चारित्र...** व्यवहारचारित्र। वह विकल्प है, राग है, शुभराग है। **व्यवहारनय से मोक्षमार्ग है, क्योंकि (मोक्षरूप) साध्य स्वहेतुक पर्याय है...** देखो! मोक्षरूप साध्य स्वहेतुक आत्मा के आश्रय से पर्याय है **और (तत्त्वार्थश्रद्धानादिमय मोक्षमार्गरूप) साधन स्व-परहेतुक पर्याय है।** विकारी है, इसलिए उसे व्यवहार से कहा जाता है। यथार्थ में वह मार्ग नहीं है। ओहोहो! चौथी?

जिनभगवान के उपदेश में दो नयों द्वारा निरूपण होता है। वहाँ, निश्चयनय द्वारा तो सत्यार्थ निरूपण किया जाता है और व्यवहारनय द्वारा अभूतार्थ उपचरित निरूपण किया जाता है। अभूतार्थ झूठा उपचरित निरूपण किया गया है। सच्चा

निरूपण करना चाहिए। **प्रश्न :- सत्यार्थ निरूपण ही करना चाहिए; अभूतार्थ उपचरित निरूपण किसलिए किया जाता है ?** ऐसी लम्बी बात है। सिंह को समझाने के लिये बिल्ली का दृष्टान्त दिया जाता है। परन्तु बिल्ली को ही सिंह मान ले (तो झूठ है)। उसी प्रकार निश्चय को समझाने में व्यवहार आता है, (परन्तु) व्यवहार को ही निश्चय मान ले, वह उपदेश सुनने के योग्य नहीं है। समझ में आया ? यह सब बात इसमें है।

अब यहाँ क्या कहते हैं ? अपने आत्मा शुद्ध परमात्मस्वरूप की दृष्टि तू कर। उसका आश्रय लिये बिना अकेले व्यवहार का आश्रय लिया, सब में **प्रवर्तनरूप कर्मकाण्ड की धमाल में...** ऐसा लिखा है। आचार्यों ने भाषा कैसी की है। धमाल... धमाल... विकल्प की धमाल... परन्तु आज भी कितना होता है, ऐसा देखो, लो !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग होता है परन्तु उसमें इतनी धमाल ! यह मैं रह गया, वह कहे मैं रह गया, वह कहे, (मैं रह गया)। कहाँ रह गया ? तेरे पास है विकल्प। सामने जाये वह और अधिक वह कहलायेगा। पीछे रह गया उसे... परन्तु पीछे और सामने तो तेरे विकल्प में है या कहीं बाहर में है ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। तीन लोक के नाथ को रीझाना अन्दर। बाहर का तीन लोक का नाथ कब था इसे ? वह भगवान भगवान का नाथ है। समझ में आया ? अपना नाथ तो अपने पास ही है। एक समय भी दूर नहीं। आता है न यह समयसार नाटक में (बन्ध द्वार, पद ४८) ? मेरा धनी है... क्या कहते हैं ? 'मेरो धणी नहीं दूर दिसंतर, मोहीमें है मोहि सूझत नीकै।' समयसार नाटक में आता है। अन्यत्र शोधता है। मेरे पास है। 'मोहि सूझत' समझ में आया ? मेरो धणी है मोही की पास, सूझत है नीके। निश्चय है, निश्चय अर्थात् बराबर। बराबर मेरे पास है। मेरा भगवान बाहर नहीं। समझ में आया ? भगवान मन्दिर में रहता है, मेरा भगवान शत्रुंजय में रहता है, सम्मेदशिखर में रहता है। नहीं, नहीं। मेरा भगवान मेरे पास है। समझ में आया ? कठिन बात ! फिर यह नहीं करे। परन्तु इसे ऐसी दृष्टि होगी, उसे भक्ति का शुभराग आये बिना रहेगा नहीं।

मुमुक्षु : राग....

पूज्य गुरुदेवश्री : आयेगा, होगा, परन्तु उसे निमित्तरूप जानना। शुद्ध उपादान स्वभाव अन्तर में है, उसके आश्रय से निर्मलता हुई। एक ही बात। यही निश्चय से है। उपचार से कहा तो लग नहीं पड़ना। समझ में आया? मामा कहते हैं न चूहे को, नहीं? रामजीभाई बहुत बार दृष्टान्त नहीं देते? वह मामा ननिहाल जितना होगा, लड़की का विवाह आवे तो? मामा! आना भाई हमारे पास पैसा नहीं है। मोसाळुं कहते हैं या क्या कहते हैं? मोसाला। वह चूहे जितना होगा। समूचा कपड़ा काट जाये। वह कपड़ा न काट जाये, उसके लिये मामा-मामा करते हैं। भाईसाहेब! सम्हालना, हों!

मुमुक्षु : तुझे तो कपड़ा देना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा। तुझे तो देना चाहिए उसके बदले तू ले जाता है यह? ऐसा करके स्वार्थ है, हों!

कहते हैं, **(१) कभी किसी को (किसी विषय की) रुचि करते हैं,...** तीन बोल लेते हैं न श्रद्धा में? धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश अमाप... ओहोहो! यह तो विकल्प है। यह विकल्प ही मेरा मोक्षमार्ग है, ऐसा नहीं। **(२) कभी किसी के (किसी विषय के) विकल्प करते हैं...** ज्ञान का। शास्त्र के ज्ञान में कोई ऐसा आया, ऐसा आया। **(३) कभी कुछ आचरण करते हैं;...** यह चारित्र का विकल्प आया। **दर्शनाचरण के लिए—वे...** अज्ञानी, आत्मा की दृष्टि बिना अकेले शुभ विकल्प में **कदाचित् प्रशमित होते हैं,...** समकित का गुण है न? प्रशम, संवेग, निर्वेग। कषाय मन्द। वह भी कदाचित् है, हों! एक धारा नहीं। क्योंकि स्वभाव की दृष्टि तो नहीं, अन्तर शान्ति नहीं।

कदाचित् प्रशमित होते हैं,... राग मन्द, **कदाचित् संवेग को प्राप्त होते हैं,...** संवेग एकदम। ओहोहो! बहुत जाना, बहुत जाना। **कदाचित् अनुकम्पित होते हैं,...** आहाहा! प्राणी को तो मैं नहीं .... ऐसा विकल्प उठाकर उसमें लीन हो जाता है। और उससे मुझे धर्म होगा, मोक्षमार्ग होगा ऐसा अज्ञानी मान लेता है। बहुत कठिन बात है। **कदाचित् आस्तिक्य को धारण करते हैं,...** समवसरण भगवान का (इससे विरुद्ध)

दूसरा कहे तो सिर काटे तो (भी) न छोड़ूँ। उसमें आस्तिक्य का तो विकल्प है अभी। समझ में आया? भगवान का ऐसा समवसरण हो, सात योजन लम्बा, ऐसा और वैसा। उससे दूसरी बात कहे, तो कहे—नहीं। ऐसी आस्तिक्यता बताता है। उस आस्तिक्य का तो विकल्प है। समझ में आया? इतना ख्याल में—विकल्प में एकाकार हो जाता है कि बस! हमारे तो सम्मेदशिखर की एकबार यात्रा हो जाये तो कल्याण हो जाये। 'एकबार वंदे जो कोई'। बहुत वहाँ जाये। है न वहाँ? सडसडाट गया तो मुझे जल्दी दो। देरी से आगे गया था, सबसे पहले एक बजे उठा था। क्या है? भगवान की भेंट मैंने पहले दर्शन किये थे, हों! परन्तु इतना अधिक उत्साह क्या? राग है, उसमें इतना अधिक उत्साह क्या? धमाल... धमाल। स्वरूपचन्दजी!

आता है, भक्ति हो, परन्तु उसमें एकाकार हो जाये और उसे ऐसा हो जाये कि मेरा तो कल्याण हो गया। बेड़ा पार हो गया। पहले दर्शन किये। अन्यमत में तालाब में पानी पड़ा हो न तो पहले नहावे (अर्थात्) पानी को जगावे, वह पहला पवित्र कहलाता है। रात्रि में चार बजे, साढ़े तीन बजे उठकर जाये पानी में, वह पानी को जगाया कहलाता है। खबर है न सब हमको तो। एक रात्रि में बोलता कि चार बजे जल्दी उठना। वहाँ नहाने... जल्दी पानी को जगाने जाये। पानी में पहले पड़े, वह पहला पवित्र हो जाये। समझ में आया?

कहते हैं, **कदाचित् आस्तिक्य को धारण करते हैं, शंका, कांक्षा, विचिकित्सा...** व्यवहार में शंका नहीं करता, कांक्षा—कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की कांक्षा नहीं करता; विचिकित्सा समझे? गुरु के शरीर में कोई मैल आदि हो तो उसकी विचिकित्सा नहीं करता। **मूढ़दृष्टिता के उत्थान को रोकने के लिये...** लो! शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढ़दृष्टि को रोकने के लिये **नित्य कटिबद्ध रहते हैं,...** कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को नहीं मानता। ... क्या है? यह तो विकल्प है। इतना माननेवाला मैं सम्यग्दृष्टि हूँ। समझ में आया? वह तो विकल्प है भाई! कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को न मानना और सुदेव, सुगुरु, सुशास्त्र को मानना, वह विकल्प है। मिथ्यात्व नहीं, हों! वह विकल्प है। उसे धर्म माने कि यह संवर, निर्जरा है तो मिथ्यात्व है। सुनने मिले नहीं और धमाल मचावे ऐई! एकान्त

है रे एकान्त। आचार्य कहते हैं कि यह चार बोल में रोकने में। शंका आदि रोकना। समझे न? **नित्य कटिबद्ध रहते हैं,** ...वह तो विकल्प है, राग है। समझ में आया?

उपबृंहण,... उसके अवगुण ढाँकना **स्थितिकरण,...** दूसरे का स्थितिकरण करना। **वात्सल्य और प्रभावना को भाते हुए बारम्बार उत्साह को बढ़ाते हैं;...** ओहोहो! मैंने कितना स्थितिकरण किया, कितने की प्रभावना की। परन्तु पर में क्या? विकल्प आया वह तो शुभ है। पर की प्रभावना तू क्या कर सकता है? वही यहाँ आया। देखो! पर की स्थितिकरण नहीं कर सकता, ऐसा कहा। नहीं, कर सकता है। जीवदया पाल सकता है, ऐसा मानना, अनेकान्त मानना। जीवदया पाल सकता है, एक ही नहीं पाल सकता... नहीं, उपकार कर सकता है क्यों लिखा? अरे! जीव तिर्यंच दूसरे को खाता है, ऐसा लिखा है। खाता है, ऐसा स्वामीकार्तिकेय में आता है। छोटी मछली को बड़ी मछली खाती है। कितना कथन। मार नहीं सकता तो ऐसा लिखा क्यों है? आता है न जब दु:ख बतलाना हो, तब बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है। ऐसा बतलाना है, वहाँ क्रिया कर सकता है, ऐसा कहाँ आया? वहाँ तो दु:ख बतलाना है। आहाहा! ऐसे दृष्टान्त दिये हैं।

मुमुक्षु : निश्चय ऐसा और व्यवहार ऐसा....

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, हाँ। दोनों सच्चा है। जिला भी सकता है, उपकार कर सकता है। स्थितिकरण कर सकता है, ऐसा नहीं कहा भगवान ने? यह सर्वज्ञ की वाणी नहीं? अरे! सुन भाई! यह वीतराग की वाणी (में) व्यवहार से विकल्प आया, उसे व्यवहार से स्थितिकरण किया, ऐसा कहा जाता है। क्या पर की स्थिति आत्मा कर सकता है? आहाहा! भारी कठिन... भारी कठिन... आहाहा! हम दूसरे का उपकार और अपकार कर सकते हैं। देखो! दृष्टान्त दिया है। कहो, समझ में आया? यह **उपबृंहण, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना को भाते हुए बारम्बार उत्साह को बढ़ाते हैं;....** लो, यह दर्शनाचरण की बात की।

ज्ञानाचरण के लिये—स्वाध्यायकाल का अवलोकन करते हैं,... समय हो गया भाई स्वाध्याय का। ऐसा विकल्प करता है। **बहु प्रकार से विनय का विस्तार करते**

हैं,... बराबर पृष्ठ को थूंक नहीं लगाना, ऐसा नहीं करना, पुस्तक नीचे नहीं रखना, ऐसे विकल्प में एकाकार / तत्पर हो जाता है। समझ में आया? **विनय का विस्तार करते हैं,...** भाषा देखो! **दुर्धर उपधान करते हैं,...** शास्त्र का अभ्यास करो, फलेगा। इतना अभ्यास करे तो शास्त्रज्ञान हो जायेगा। वह तो विकल्प है। ऐसी धमाल से-विकल्प से तुझे अन्दर ज्ञान हो जाएगा? समझ में आया? मोतीलालजी! बहुत बात...

भलीभाँति बहुमान को प्रसारित करते हैं,... शास्त्र का बहुमान करता है, पुस्तक का, देव का, गुरु का। कहो, **निह्नवदोष को अत्यन्त निवारते हैं,...** जिससे प्राप्त हुआ है उसका नाम लेता है। ऐसा विकल्प व्यवहार से होता है। **अर्थ, व्यंजन और तदुभय की शुद्धि में अत्यन्त सावधान रहते हैं;...** बराबर शब्द का अर्थ होना चाहिए, व्यंजन शब्द होना चाहिए, दोनों की शुद्धि होनी चाहिए। लो! समझे? उसमें **अत्यन्त सावधान रहते हैं;...** उसमें और उसी में सावधान रहते हैं। परन्तु आत्मा क्या है, उसकी कोई सावधानी है या अकेले विकल्प में ही तेरी सावधानी है? ऐसे जीव को यहाँ व्यवहारावलम्बी, स्वभाव की दृष्टि किये बिना उसे व्यवहारावलम्बी कर्ताबुद्धि मिथ्यादृष्टि कहा है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ११, गुरुवार, दिनांक - १७-०९-१९६४, गाथा-१७२, प्रवचन-२३

पंचास्तिकाय का मोक्षमार्ग का अधिकार चलता है। उसमें अकेला व्यवहारावलम्बी अनादि काल से अपना शुद्ध चैतन्यमूर्ति आत्मा कौन है, उसकी दृष्टि और अनुभव किये बिना अकेले सम्यग्दर्शन की बाह्याचरण की क्रिया निःशंक आदि करता है तो उसमें शुभभाव बँधता है, उसमें आत्मा का कल्याण नहीं होता। समझ में आया? निश्चय बिना का अकेला व्यवहार। पहला अधिकार चला कि निश्चय आत्मा निर्विकल्प ज्ञानमूर्ति है, ऐसा उसका अनुभव, दृष्टि करने से पूर्ण वीतरागता न हो, तब तक ऐसा व्यवहार का विकल्प आता है। उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आचरण का जो शुभराग, उसे निश्चय में व्यवहार साधन कहा गया है। परन्तु अपना शुद्ध चैतन्य ज्ञानमूर्ति आत्मा की ज्ञानचेतना प्रगट किये बिना... समझ में आया? अकेले दर्शनाचार, ज्ञानाचार व्यवहार... और अभी तो चारित्र के आचरण की बात चलती है। देखो!

चारित्राचरण के लिये—हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्म और परिग्रह की सर्वविरतिरूप पंच महाव्रतों में तल्लीन वृत्तिवाले रहते हैं,... पंच महाव्रत के विकल्प में तल्लीन रहता है, वह राग है। पंच महाव्रत के परिणाम भी शुभ विकल्प-राग है, धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया? अभी देखो ऐसी बात बहुत चलती है कि पंच महाव्रत क्यों पालन किये, यदि पंच महाव्रत राग हो और बन्ध का कारण हो तो? कुन्दकुन्दाचार्य ने भी पालन किये थे। कौन पालन करे? वे आये थे। उसे निमित्तरूप से पालन किये, ऐसा कहने में आता है। परन्तु वह राग आया, वह मोक्ष का कारण नहीं। समझ में आया? वह संवर-निर्जरा नहीं। यह पंच महाव्रत के परिणाम भी चारित्र नहीं। चारित्र तो आत्मा ज्ञानस्वरूप चिद्घन आनन्दकन्द, उसका अनुभव करके उसमें लीन हो जाना—स्थिरता, लीनता, अरागता, वीतरागता, ऐसे भाव को चारित्र कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... चारित्र है नहीं।

ऐसा वीतरागी चारित्र होता है, तब पंच महाव्रत का विकल्प आया, उसे निमित्तरूप

साधन व्यवहार से कहने में आता है। परन्तु ऐसा भान नहीं। मैं कौन हूँ? कैसा हूँ? कहाँ हूँ? क्यों हूँ? ऐसा आत्मतत्त्व, आत्मज्ञान, आत्मभान बिना अकेले पंच महाव्रत के परिणाम में **तल्लीन वृत्तिवाले रहते हैं,...** ऐसा लिखा है, देखो! है शोभालालभाई? परन्तु वह धर्म नहीं। और उसमें धर्म मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! यह कठिन। यह आचार्य का कथन नहीं समझते और उसमें से आचार्य का कथन ऐसा ले। पहले चौथे, छठवें तक तो व्यवहार है... व्यवहार है... फिर सातवें में थोड़ा निश्चय आता है।

यहाँ तो कहेंगे अभी कि किंचित् ज्ञानचेतना। अपना आत्मा पवित्र अनन्त गुण का पिण्ड एक निर्विकल्प वस्तु, उसकी दृष्टि सम्यक् किये बिना, उसकी ज्ञानचेतना— अन्तर में ज्ञान में ज्ञानचेतना, ऐसी ज्ञानचेतना प्रगट किये बिना और स्वरूप की स्थिरतारूप भी ज्ञानचेतना। ताराचन्दभाई! सूक्ष्म बात है। वर्तमान में तो बहुत धक्का लगता है। पूरी बात वीतरागमार्ग से विरुद्ध मार्ग करते हैं और मानते हैं कि हम धर्म करते हैं और क्रम-क्रम से धर्म हो जायेगा। बहुत फेरफार। ओहोहो! इतना अचार्य यहाँ स्पष्ट करते हैं और टोडरमलजी ने सातवें अध्याय में इतना स्पष्ट किया सातों तत्त्व का कि भाई! अहिंसा (आदि) महाव्रत तो पुण्यास्रव है न! तत्त्वार्थसूत्र में उन्हें पुण्यास्रव कहा है न? अमरचन्दभाई! समझ में आया?

यहाँ भगवान अमृतचन्द्राचार्य महाराज कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक का स्पष्टीकरण करते हैं। सर्वज्ञ भगवान परमात्मा का हार्द खोलते हैं कि परमात्मा-परमेश्वर जैन त्रिलोकनाथ वीतराग परमात्मा ने तो ऐसा फरमान किया है कि अपने ज्ञानस्वरूप के ज्ञान की दृष्टि, ज्ञान का ज्ञान और ज्ञान का चारित्र को प्रगट किये बिना अकेले पंच महाव्रत का विकल्प, अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प वह पुण्यबन्ध का ही कारण है। उसमें किंचित् चारित्र और धर्म नहीं है। वह व्यवहारावलम्बी जीव उसे धर्म मानकर खेदखिन्न होकर स्वर्गादि देव में क्लेश भोगने जायेगा। कठिन बात, भाई! समझ में आया?

देखो, तल्लीनवृत्ति। ज्ञानी के एक-एक शब्द में क्या पड़ा है? कि ज्ञानी को आत्मा के भानपूर्वक पंच महाव्रत का विकल्प आता है, परन्तु तल्लीन नहीं है। एक-एक शब्द में अपने विस्तार नहीं किया, परन्तु प्रत्येक में ऐसा लिया है। समझ में आया?

है ? दर्शनाचरण उत्थान को रोकने में नित्य कटिबद्ध रहता है। प्रभावना को भाते हुए बारम्बार उत्साह बढ़ाता है। स्वाध्याय के काल का अवलोकन करता है। विस्तार करता है विनय में। प्रसरित करता है। अत्यन्त सावधान रहता है शब्द, अर्थ और तदुभय में। ज्ञानी को भी ऐसा विकल्प तो आता है परन्तु तल्लीन नहीं है, अत्यन्त सावधान नहीं है। कर्तृत्वबुद्धिरहित ज्ञाता-दृष्टा होकर पंच महाव्रत का विकल्प आया, उसे जानता-देखता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : विकल्प आता है परन्तु उसमें तल्लीन नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तल्लीन नहीं है। तल्लीन नहीं परन्तु ज्ञाता-दृष्टा है और कर्तृत्व नहीं। इतनी बात है। होता तो है। पूर्ण वीतराग नहीं। छठवें गुणस्थान में मुनि आत्मज्ञानी धर्मात्मा, सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ ने जैसा कहा, ऐसी अन्तर्दृष्टि, आत्मा का अनुभव निर्विकल्प दृष्टि हुई है और निर्विकल्प ज्ञान का वेदन भी है और स्वरूप के तीन कषाय के अभाव का चारित्र भी मुनि को होता है। उस मुनि को अन्दर पंच महाव्रत का विकल्प / राग आता है, तल्लीन नहीं है। (राग को) अपना स्वभाव नहीं जानते। बन्ध का कारण जानकर ज्ञाता-दृष्टा रहते हैं। ओहोहो ! बहुत फेरफार हो गया। अब टोडरमलजी का मोक्षमार्गप्रकाशक, उसमें से सत्य बात खोटी सिद्ध करने को तैयार हो गये। आहाहा ! वह भी अमृतचन्द्राचार्य का पाठ है, टोडरमलजी को एक ओर रखो। यह क्या कहते हैं ?

देखो ! **पंच महाव्रतों में तल्लीन वृत्तिवाले रहते हैं,...** व्यवहारावलम्बी उसे ही धर्म और मोक्ष का कारण मानकर उसमें तल्लीनता—लीन पूरे दिन रहता है। बस ! अहिंसा, दया, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य ऐसा विकल्प आया तो वही मानो मार्ग और वही हमारा मुख्य उद्धार करनेवाला। आहाहा ! **सम्यक् योगनिग्रह जिनका लक्षण है ऐसी गुप्तियों में अत्यन्त उद्योग रखते हैं,...** देखो ! अत्यन्त उद्योग रखता है। गुप्ति—व्यवहारगुप्ति। मन, वचन और काया से हटकर अशुभ से शुभ में अत्यन्त उद्योग रखता है। वह तो शुभराग है। अज्ञानी व्यवहारावलम्बी आत्मा के भान बिना अत्यन्त गुप्ति में धर्म मानकर अपने शुद्ध आत्मा से च्युत होता है।

मुमुक्षु : सम्यक् विशेषण लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह **सम्यक् योगनिग्रह जिसका लक्षण है...** सम्यक् अर्थात. ? अशुभ से बराबर विमुख हुआ है, ऐसा। नीचे आयेगा न! अशुभ प्रवृत्ति का उसने अत्यन्त निवारण किया है, अत्यन्त निवारण किया है। शुभ कर्मप्रवृत्ति को बराबर ग्रहण किया है। अत्यन्त निवारण अशुभ से... नीचे आयेगा। नीचे ही है। अर्थात् अशुभ का बराबर निग्रह किया है, ऐसा। पाप के परिणाम से विमुख हुआ है बराबर और पुण्य परिणाम में गुप्ति मानता है। शुभ विकल्प को ही गुप्ति मानता है। अन्दर भक्ति का विकल्प उठता है, राग का, गुण-गुणी के भेद का, तो मानता है कि हमको गुप्ति है। वह गुप्ति है ही नहीं। समझ में आया? सम्यक्.... क्या कहा?

योगनिग्रह जिनका लक्षण है (-योग का बराबर निरोध करना, जिनका लक्षण है)... बराबर योग का निरोध करता है। किसका बराबर? अशुभ का। अशुभराग नहीं रखता। हिंसा नहीं, झूठ नहीं, चोरी नहीं, कल्पना नहीं दूसरी अशुभ की। विमुख होकर शुभराग में अति आदर करता है। परन्तु वह पुण्य है, आत्मस्वभाव नहीं, चारित्र नहीं। व्यवहार पंच महाव्रत का राग, वह चारित्र नहीं। चारित्र तो आत्मा के अन्तर अनुभव में स्थिरता, निर्विकल्प आनन्द प्रगट करना, वह चारित्र है। आहाहा! बहुत कठिन जगत को। देवीलालजी! पुकार... पुकार... करते हैं पूरे दिन।

भाई! तेरा रास्ता दूसरा है प्रभु! मुक्ति का मार्ग सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतरागदेव ने (दिखलाया है कि) अन्तर रागरहित चिदानन्द पूरा अखण्डानन्द प्रभु है, उसमें घुसकर ज्ञानचेतना ज्ञान का वेदन, ज्ञान का वेदन (करना)। वह तो राग है, अशुभयोग से हटकर शुभराग (में रमना वह) भी राग है, वह ज्ञान का वेदन नहीं और अन्तर ज्ञान का वेदन हुए बिना मोक्ष का मार्ग है ही नहीं। बहुत कठिन बात। समझ में आया?

ईर्या,... अत्यन्त युक्त रहता है। ऐसा देखकर चलना, साढ़े तीन हाथ देखना कि किसी जीव को दुःख न हो। **भाषा...** विचारकर बोलना। व्यवहार। **ऐषणा,...** निर्दोष आहार लेना। उसके लिये बनाया हुआ आहार नहीं। समझ में आया? ऐष कुछ भी नहीं, हमारे लिये बना है वह पानी, आहार। यहाँ तो उसका भी ठिकाना नहीं। यहाँ तो उसके लिये सब चौका करते हैं, आहार, पानी लाते हैं सब विक्रय होता हुआ। क्या कहलाता

है? विक्रय करके। उसका तो ठिकाना यहाँ व्यवहार का पुण्यबन्ध का भी ठिकाना नहीं। यह तो ऐषणा। अत्यन्त युक्त रहता है। निर्दोष आहार पानी लेना, मेरे लिये बनाया हुआ नहीं लेना, परन्तु वह शुभ विकल्प है। आहाहा! समझ में आया?

आदाननिक्षेप... कोई भी चीज़ ग्रहण करने-रखने में अत्यन्त प्रयत्न में युक्त रहता है। देखो! पाँच समिति में। बराबर विकल्प रखकर प्रयत्न में (रहता है), परन्तु है शुभराग। वह प्रवृत्तिरूप परिणाम शुभ के हैं। वह चारित्र नहीं, वह धर्म नहीं, वह संवर-निर्जरा नहीं। आहाहा! समझ में आया? **उत्सर्गरूप...** किसी भी चीज़ को छोड़ना हो तो बराबर यत्नपूर्वक **समितियों में प्रयत्न को...** घोड़े की तरह चलना या ऐसा नहीं। लाख ध्यान रखकर (चले), किसी प्राणी को दुःख नहीं हो, इस प्रकार से वस्तु लेना, रखना और छोड़ना। यत्न (रखे), कीड़ी-मकोड़ा न हो। उस **प्रयत्न को अत्यन्त जोड़ता है,...** तथापि वह शुभविकल्प अर्थात् शुभराग है, धर्म नहीं। समझ में आया? यह व्यवहारावलम्बी की बात चलती है। अकेले व्यवहार का अवलम्बन लेकर क्रियाकाण्ड में राग मन्द करता है, उसमें धर्म मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है, मूढ़ है। समझ में आया? आहाहा! मोतीलालजी!

अब, **तपश्चरण के लिये—अनशन,...** करता है। साधु नाम धराकर, हजारों रानियाँ छोड़कर अनशन करता है। छह-छह महीने के अपवास, बारह-बारह महीने के। अनशन-अर्थात् आहार नहीं। परन्तु वह तो आहार लेना नहीं, ऐसा विकल्प आया, वह अनशन शुभराग है; संवर नहीं। आहाहा! संवर तो अन्तर ज्ञानमूर्ति चिद्घन में प्रवेश करना, निर्विकल्प आनन्द की जागृति अन्दर खोजना उसका नाम भगवान तप कहते हैं। आज सवेरे (आया), आज तप का ही दिन है। तप का दिन है न आज? वह सवेरे आ गया।

स्वरूप—भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त शुद्ध परमात्मस्वभाव का पुंज। परमात्मस्वभाव अर्थात् परमस्वभाव। ऐसा भगवान अपना आत्मा, उसमें सावधान होकर उपयोग लगाना, वह चारित्र और जोर—पुरुषार्थ विशेष उग्र करके लीन होना, वह तप है। समझ में आया? बाकी सब लंघन। आहाहा! चिल्लाहट मचा जाये। लाखोंपतियों की लड़कियाँ आठ-आठ अपवास किये हों, उन्हें कहे कि निर्जरा नहीं। तेरे (अपवास)

सुन न अब। मर जाये और सूख जाये तेरे अपवास से। हाय... हाय...! ऐसे तो अनन्त बार किये। चन्दुभाई! भाई! राग मन्द किया हो तो पुण्य बँधता है। आहार में गृद्धि की मन्दता की हो तो पुण्य बँधता है परन्तु मैंने आहार छोड़ा और मुझे धर्म हुआ (ऐसा माना तो) मिथ्यादृष्टि है। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा की क्या आज्ञा है? और क्या वीतराग धर्म है? वीतराग धर्म है, राग धर्म नहीं। समझ में आया? तो राग से रहित मेरी चीज़ अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद और अतीन्द्रिय आनन्द में स्थिर हो जाना, ऐसे भान बिना केवल अनशन का विकल्प पुण्यबन्ध का कारण है। ...जी! यह अपवास-बपवास करते हैं न? यह देशसेवा में बहुत करते हैं, मर जाते हैं बेचारे।

मुमुक्षु : अनशन करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनशन करते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक, देरियाजी का ठीक...

अनशन,... यह विकल्प है, शुभराग है। शुभाशुभ इच्छा का निरोध करके आत्मा में लीन हो जाना, आनन्द की उग्रता का वेदन होना, इसका नाम अनशन तप है। समझ में आया? यहाँ तो अकेला आहार छोड़ा और उस ओर का लक्ष्य रहे (कि) आज मैंने आहार छोड़ा, अपवास किया, वह शुभराग है। व्यवहारावलम्बी उसे धर्म मानता है, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। वीतराग परमेश्वर का धर्म क्या है, वह उसे समझ में नहीं आया। ओहोहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... तो राग का कर्तृत्व कहाँ से आया? राग का कर्तृत्व रहता नहीं। राग का अकर्ता हुए बिना उसे शुद्धता का लक्ष्य कहाँ से आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ शुद्धता धूल में आयी? शुद्ध तो स्वभाव अन्दर है। उसकी रुचि, दृष्टि हुई नहीं। राग की मन्दता से अपवास आदि किये। देखो ने! यह तो

व्यवहारावलम्बी जीव है, रागी जीव है, पुण्य बँधेगा। मिथ्यादृष्टि है। पुण्य बँधेगा, स्वर्गादि में जायेगा। वहाँ से निकलकर पशु आदि में जाकर निगोद में जायेगा। समझ में आया? वीतरागमार्ग सुनना भी कायर को... नपुंसक कहा है या नहीं? एक दूसरी जगह। प्रवचनसार में कहा। नहीं? क्लीब। ९४ में। ९४ (गाथा) में कहा है। उसमें तो—समयसार में तो आता है। ९४ में तो ऐसा कहा है कि अरे..! प्राणी! तू दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप का शुभराग क्रियाकलाप को भेंटता है। ऐसे भेंटता है कि आहाहा! और उससे रहित अपना क्या स्वभाव है, उसकी स्वभावदृष्टि करने में नपुंसक है-हींजड़ा है-पावैया है। ऐसा कहा है। समझ में आया? है या नहीं यहाँ? वे दो समयसार के नहीं, यह तो ९४ में आता है न? समझ में आया? देखो। ९४।

जो जीवपुद्‌गलात्मक असमानजातीय द्रव्यपर्याय का—कि जो सकल अविद्याओं का एक मूल है... देह की क्रिया (प्रवचनसार)। देह की क्रिया और आत्मा दोनों को अन्दर एक मानकर **अविद्याओं का एक मूल है उसका—आश्रय करते हुए यथोक्त आत्मस्वभाव की सम्भावना करने में नपुंसक होने से...** क्लीब है। राग और शरीर की पर्याय की क्रिया, उससे भिन्न मेरा आत्मस्वभाव है, ऐसे अन्तर स्वभाव की सम्भावना, संचेतन, अनुभव, मान्यता, आदर करने में नपुंसक होने से **उसमें ही बल धारण करते हैं वे—जिन्हें निरर्गल एकान्तदृष्टि उछलती है...** एकान्तदृष्टि। यह एकान्तदृष्टि है। राग की क्रिया विकल्प उठते हैं, वह तो राग है। एकान्त उसमें धर्म (मानता है), तेरी एकान्त दृष्टि उछलती है। भगवान आत्मा में राग नहीं, ऐसे आत्मा का स्वभाव तेरी दृष्टि में, ज्ञान में लिया नहीं और ऐसे करते हुए मुझे धर्म हो जायेगा, वह मूढ़ है। जुगराजजी! कठिन भाई! यह प्रवेश करना, सुनना कठिन पड़ता है। आहाहा! नया व्यक्ति तो ऐसे कम्पित हो जाये।

मुमुक्षु : मन्द कषाय को....

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्द कषाय को धर्म माने तो मिथ्यात्व हो जाता है। मन्द कषाय मिथ्यात्व नहीं, उसमें धर्म मानता है। मन्द कषाय मिथ्यात्व नहीं। उसमें मानता है कि मैं संवर करता हूँ, मैं निर्जरा करता हूँ, इसका नाम मिथ्यात्व है। समझ में आया?

ज्ञानी को भी मन्द कषाय तो आती है। यह अधिकार तो पहले आ गया। अपने स्वरूप का भान होने पर भी स्वरूप में स्थिरता नहीं होने पर तो ऐसा विकल्प आता है, अनशन ऊनोदरी का ज्ञानी को भी (आता है)। परन्तु उसे धर्म नहीं समझते। उससे रहित अन्दर जितना शुद्धोपयोग स्वरूप में रहे, उतना ही धर्म है। समझ में आया?

यह मनुष्यशरीर है, इस प्रकार अहंकार-ममकार द्वारा ठगाये हुए, अविचलित-चेतना विलासमात्र आत्मव्यवहार से च्युत होकर, जिसमें समस्त क्रियाकलाप को छाती से लगाया जाता है... आहाहा! जैसे छोटा बालक होता है न, उसे उसका पिता छाती से लगाता है न; उसी प्रकार अज्ञानी उस राग का भाव, पंच महाव्रत, अनशन, ऊनोदरी का विकल्प, वह अपने आत्मा के स्वभाव के साथ एकत्व करता है। भेंटता है कि राग मेरा स्वरूप, राग मेरा स्वरूप है, राग मेरा स्वरूप है। समझ में आया? पूरी दुनिया से अलग चीज़ है। वीतरागमार्ग परमेश्वर त्रिलोकनाथ का मार्ग पूरी दुनिया से अलग है। आहाहा!

कहो, **अनशन, अवमौदर्य,...** है न? देखो! **अवमौदर्य,...** अव-उदर। पेट में थोड़ा लेना। दो-चार फल लेना, नहीं लेना। वह तो शुभभाव हो तो ऐसा होता है, परन्तु वह धर्म नहीं है। अपने आत्मा में राग का अभाव होकर स्थिरता होना, इसका नाम वास्तव में ऊनोदर तप है। राग को घटाकर ऊनोदर आहार लिया, वह विकल्प है। वह पुण्यबन्ध का कारण है, कर्मचेतना है। बहुत कठिन लोगों को। समझ में आया?

वृत्तिपरिसंख्यान... बस! आज बाहर भोजन करने निकलता हूँ तो अभिग्रह धारता है। दो घर में जाना, एक घर में जाना। ऐसी वृत्तिपरिसंख्यान। यह भी एक विकल्प है। इसमें सर्वस्व मान लिया। अभिग्रहण धारण किया। हम ऐसा करते हैं। पाँच श्रीफल हों, बीच में आम पड़ा हो, उसमें एक सुपारी सिर पर हो तो लेना, ऐसा कोई अभिग्रह किया हो, लो! अब ऐसा अभिग्रह धारण किया हो तो पाँच, पन्द्रह दिन, महीने न मिले। वह तो विकल्प है। पुण्य हो तो मिलता है, न हो तो नहीं मिलता। विकल्प है, वह कोई आत्मस्वभाव की सावधानी नहीं। सब मान लिया उसमें।

मुमुक्षु : कठिन तपस्या है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन तपस्या कहाँ है? पामरता है। समझ में आया?

कहते हैं कि वह **रसपरित्याग...** दूध, दही, खांड, शक्कर, कोई पकवान नहीं खाना। नहीं खाने का विकल्प है, वह शुभभाव है। रस का त्याग... आत्मरस के आदर बिना राग के रस का आदर नहीं छूटता। समझ में आया ? सहजानन्द प्रभु आत्मा आनन्द जैसा सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा को अतीन्द्रिय आनन्द पूर्ण प्रगट हुआ है, ऐसा अपने आत्मा में आनन्द पड़ा है, ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द का रस लेना, वह वास्तव में अपने रस का आदर है और पररस का त्याग है। समझ में आया ? अपने आनन्द के स्वाद के समक्ष पर की इच्छा ही न हो। राग आया, तथापि उसकी एकाग्रता—भावना नहीं। अहो! मेरी चीज में तो पूर्ण शान्ति पड़ी है न! ऐसा अन्तर में समाना, उसका नाम भगवान वास्तव में आत्मा के रस का आदर और पररस का त्याग (कहते हैं)। समझ में आया ? रागरस का त्याग, हों! यहाँ तो बाह्य रस का त्याग करके हमने रूखा खाया, हमने ऐसा खाया, हम तपसी हो गये। लो, यह और तपसी आया। समझ में आया ?

मुमुक्षु : लोग तो कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोग कहे। लोगों को कहाँ भान है ? ऐसे के ऐसे अनादि मूढ़रूप से व्यापार करते-करते निवृत्त हो तो वहाँ बैठे, आकर जो सुने... ओहो! हो गया धर्म, लो। सुन लिया धर्म। ऊपर बैठकर बात करता हो वह कुछ। ऐसा करना और अपवास करना, भाई! लाभ होगा। बारह प्रकार के तप कहे हैं। बारह तप में अनशन, ऊनोदरी को तप कहा है। एक रोटी कम खायेगा, आठ रोटी खाता हो उसमें, तो ऊनोदरी तप होगा। तप, वह निर्जरा है और निर्जरा, मोक्ष का कारण है।

मुमुक्षु : दूसरी बार हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ गये केवलचन्दभाई! कहो, समझ में आया ? इनके चिरंजीवी ने प्रश्न किया था। क्या ? एक रोटी छोड़े तो भी उसमें ऊनोदरी तप है न ? परन्तु वह तप अधिक (बड़ा) कि आत्मा गया वह ? कहे, उसमें भी है। आत्मा आत्मा क्या करते हैं ? क्योंकि बारह प्रकार के तप में सब आता है। आहाहा! यह तुलाराम। तुलाराम कहे, उसमें तपस्या या निर्जरा आती है न ? आये थे न नौ के वर्ष में। तुलाराम गजराज के भाई, नहीं ? किसी ने पूछा था। पूछ लो सेठ महाराज को 'तपसा निर्जरा'

तत्त्वार्थसूत्र में आता है। तो उस तपस्या से निर्जरा होती है या नहीं? अरे! सुन तो सही। कौन सी तपस्या?

अपने आत्मा के आनन्द की अनुभव दृष्टि होने के पश्चात्... यह तो सवेरे आ गया। स्वरूप में अन्तर उग्र सावधानी से आनन्द की डकार आना, इसका नाम भगवान तपस्या और निर्जरा कहते हैं। ऐसी तपस्या तो अनन्त बार की है। अनन्त काल में मनुष्यपना पहली बार मिला है? अनन्त बार मिला है। ऐसे बाह्य त्याग तो अनन्त बार किये, ऐसे मास—मास खमण के अपवास भी अनन्त बार किये। धूल में भी धर्म नहीं। अपने आत्मा के स्वभाव की दृष्टि हुए बिना राग मन्द हो तो पुण्य बँधता है। संवर-निर्जरा है? तीन काल में निर्जरा उसमें है नहीं। कहो, समझ में आया? देखो न! अभी तो शक्ति न हो तो बेचारा मुश्किल से करे मान लेने के लिये। अट्ठाई करे। मर जाये। अभी एक बाई मर नहीं गयी? जोरावर (नगर) में। आठ अपवास, छह अपवास में मर गयी। भाई रहने दे... अब रहने दे... परन्तु यह सब करते हैं।

मुमुक्षु : निर्वाण हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्वाण धूल में भी हुआ नहीं। ऐसे लंघण तो अनन्त बार किये हैं। समझ में आया? चैतन्य चमत्कार सूर्य भगवान वीतरागी पिण्ड आत्मा है, ऐसी अन्तर्दृष्टि हुए बिना उसमें लीनता कभी होती नहीं। कहाँ से चारित्र आया? और कहाँ से सम्यक्त्व आया और कहाँ से उसे तप हो गया? समझ में आया?

कहते हैं, **रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन....** बस, मैं तो एकान्त में रहता हूँ। स्त्री नहीं, कोई नहीं। एकान्त वन में—जंगल में रहता हूँ। तो क्या हुआ वन-जंगल में रहा उसमें? देरियाजी! गजब परन्तु आसन खंखेर डालते हैं। एकान्त।

मुमुक्षु : एकान्त ही है, उसमें क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या है। श्रीमद् कहते हैं न?

यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाग लह्यो।
वनवास रह्यो मुख मौन रह्यो, दृढ आसन पद्म लगाय दियो।
जप भेद जपे तप त्योंही तपे, उरसे ही उदास लही सब पे।

सब शास्त्रन के नय धारी हिये, मत मंडन खंडन भेद लिये।
वह साधन बार अनन्त कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।
अब क्यों न विचारत है मन से, कुछ और रह्या उन साधन से।

इन सब साधन से भिन्न दूसरी चीज़ है। कहो, समझ में आया? 'वह साधन वार अनन्त कियो, तदपि कुछ हाथ हजु न पार्यो।' कहाँ से पड़े? विकल्प के आश्रय से पड़े? वह तो निर्विकल्प चीज़ है। ज्ञानघन वीतराग आनन्दकन्द की मूर्ति चैतन्य स्फटिकरत्न। चैतन्य स्फटिकमूर्ति चैतन्य की है। अकेले पूर्णानन्द से भरपूर। उसमें एकाकार हुए बिना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कभी तीन काल में होते नहीं। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : .... सच्चे मन से नहीं किया। बाहर दिखाव के लिये किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर के दिखाव से करे तो नौवें ग्रैवेयक जाये नहीं। यह तो कपट हुआ, माया हुई। नौवें ग्रैवेयक जाये और माया करे तो कपट हुआ। वह तो शुभभाव ऐसा किया। लोगों को कहीं ऐसी मान्यता-गाँठ घुस गयी है न! आहाहा!

कायक्लेश में सतत् उत्साहित रहते हैं,.... देखो, सब में ले लेना। कायक्लेश। बैठना, आसन लगाना। चार-चार घण्टे तक बैठे। घोर आसन, पद्मासन। क्या हुआ उसमें? राग मन्द हो तो वह तो पर के ऊपर लक्ष्य है। राग मन्द हो तो परद्रव्य आश्रय विषयभेद है। स्वविषय में आया नहीं। शुभराग हो जाये। **सतत् उत्साहित रहते हैं,....** लो, सतत उसमें उत्साहित। अनशन में, ऊनोदरी में, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग इत्यादि (में)।

'प्रायश्चित्त...' निज अंतःकरण को अकुंशित रखता है... इसका अन्तिम योगफल यह। **'प्रायश्चित्त'** कोई पाप हो तो गुरु के पास जाये। महाराज! ऐसा दोष हुआ है। क्या करना। यह सब आसन खंखेर डालते हैं। भाई! बापू! यह होता है। विकल्प है, भाई! तेरी चैतन्यमूर्ति में विकल्प कैसा? वह निर्विकल्प शान्त स्थिर पूरा तत्त्व है। ज्ञानज्योति में यह करूँ... यह करूँ... ऐसा विकल्प कैसा? समझ में आया? आहाहा! कहो, ईश्वरचन्दजी! लो यह आया तुम्हारे सनावद से लेख आया है। ऐसा करना... ऐसा

करना... समकित की क्या गिनती ? ज्ञान और चारित्र समकितरूपी हाथी को खा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : समकित बिना चारित्र....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! भगवान! सम्यक्त्व बिना भाई बापू! ऐसा कहते हैं, देखो। भाई! बापू! आँख बन्द होगी, ऐसे पैर लचक-लचक करेंगे। बाहर में नहीं अन्दर होगा। पर के प्रति लक्ष्य में राग हुआ और उससे वह धर्म माना तो स्वभाव का अनादर हो गया। शान्ति नहीं रहेगी। मरण के समय शान्ति नहीं रहेगी। हाय... हाय... ऐसा करेगा।

एक व्यक्ति पूछता था कि महाराज! अभी के त्यागियों के मरण... लचक-लचक मरते हैं। ऐसा होगा ? समाधिमरण ऐसा है ? उसने देखा होगा। एक गृहस्थ थे दिगम्बर। उन्होंने पूछा कि जितने यह साधु आदि मैं देखता हूँ मरण काल में तो ऐसे आकुल-व्याकुल होते हैं। तो यह पंचम काल का समाधिमरण ऐसा होगा ? भाई! बापू! समाधिमरण किसे कहना भाई ? अन्दर पुण्य-पाप के विकल्प का लक्ष्य छोड़कर, अन्तर शान्ति, समाधि निर्विकल्प दृष्टि, सम्यग्दर्शन में पहली समाधि होती है। इसलिए समाधि, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन की समाधि प्रगट हुए बिना मृत्यु काल में शान्ति की समाधि कहाँ से आयेगी ? अन्तर शान्त... शान्तरस में झूलते-झूलते देह छूटी या नहीं, खबर नहीं। सम्यग्दर्शन बिना कभी ऐसी समाधि होती नहीं। कहाँ से समाधिमरण करे ? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द में अन्दर झूलता है। पर के ऊपर लक्ष्य जाने पर विकल्प आता है। आवे विकल्प तो भी अन्दर ज्ञाता-दृष्टारूप से समाधि में है। मानो, छूटने का काल आ गया, देह छूटने का काल। समझ में आया ? देह को छूटने का अवसर आ गया। मानो छूटा हुआ ही है। अपनी दृष्टि में चैतन्यगोला भिन्न भासित हुआ है, भिन्नरूप से अनुभव करता है, इसका नाम समाधिमरण है। ऐसे ... और समाधि मरण हो गया। टांगा लचक, अन्दर आलसविलस हो। हाय... हाय... हवा में रखो भाई! अमुक करो, लोग हट जाओ, हवा आने दो। नहीं तो दुःखी होगा। हवा वह अन्दर की आती है या बाहर की ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : पंखा लगाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : पंखा लगावे उसमें क्या हुआ? पंखा अन्दर में लगावे। शुद्ध चैतन्य को हिलता-डुलता करे अन्दर से। अखण्डानन्द चैतन्य मैं हूँ, दृष्टि में परिणति की शुद्धता प्रगट हो, वह शान्ति का पंखा लग गया। बाहर से तो धूल में भी नहीं।

कहते हैं, प्रायश्चित्त लेता है। **विनय,...** अन्तःकरण को अंकुशित रखता है। बराबर विनय करना। देव-गुरु-शास्त्र की वैयावृत्य करना। लो, देव-गुरु-शास्त्र आदि। शुभभाव है। समझ में आया?

व्युत्सर्ग... करे। कायोत्सर्ग ऐसे लगावे। 'तावकायं ठाणेणं माणेणं जाणेणं अप्पाणं वोसरामी' परन्तु इसमें क्या हुआ? यह तो पर के ऊपर लक्ष्य है। भगवान आत्मा अन्दर में आनन्द का कायोत्सर्ग अर्थात् विकल्प भी एक काया है, विकल्प भी एक कार्मण काया का फल है, ऐसा व्युत्सर्ग—स्वरूप में लीन होना, इसका नाम कायोत्सर्ग है। समझ में आया?

स्वाध्याय,... यह स्वाध्याय करे शास्त्र की तो वह शुभराग है। परद्रव्य की ओर का लक्ष्य है स्वाध्याय, वह भी शुभराग है। वह वास्तविक स्वाध्याय नहीं। स्व-अध्याय अन्दर चिदानन्द में स्व में अन्तर में एकाकार का घुंटन होना, उसका नाम स्वाध्याय है। कहो, शास्त्र का वाँचन, वह भी राग है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्मरण होता है, परन्तु विकल्प है न। पर के ऊपर लक्ष्य है। वाँचना, पृच्छना, पर्यटन, अनुप्रेक्षा, धर्मकथा वह तो विकल्प / राग है। सेठी! यह तो अलौकिक बात है। स्व-अध्याय चैतन्य प्रभु अपना अवलोकन करते-करते उसका विकास हो जाये अन्दर में, उसका नाम स्वाध्याय है। वह संवर-निर्जरा। पर का-शास्त्र का स्वाध्याय करे, वह तो विकल्प है और व्यवहारावलम्बी वह जीव है। वहाँ अवलम्बन करके धर्म मानता है। उसकी तो बात चलती है।

ध्यानरूप परिकर द्वारा... समूह, सामग्री ध्यान। बस! ऐसे बैठ जाओ बराबर।

परन्तु क्या? वह भी विकल्प है। अन्तर्मुख की दृष्टि किये बिना एकाग्र... एकाग्र... एकाग्र... अशुभ से हटा, ध्यान वह व्यवहार ध्यान, वह भी विकल्प है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पूरा स्थान बताया न! जिसके ऊपर नजर करने से नजर का स्थान मिले, सत्ता का, शाश्वत का वह स्थान है। जिस पर नजर करते हैं, वह शाश्वत धाम है। नजर स्थिर होती है, ऐसा चैतन्यधाम है। वहाँ नजर करता नहीं और बाहर में नजर करता है।

मुमुक्षु : इतना सब रखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना सब रखे, क्या रखता है? क्या धूल रखता है? ऐसा यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु : .... मार्क्स ही नहीं देते।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मार्क्स नहीं देते, ऐसा होगा? धर्म के मार्ग में शून्य, पुण्य का मार्ग है बन्ध का। कहो, समझ में आया?

स्वाध्याय और ध्यानरूप परिकर द्वारा.... समूह। बस! ऐसा करना, कपड़े बाँध लो, ऐसा कर लो। बराबर ... सह तो तेरा पर के ऊपर लक्ष्य है। ध्यान कहाँ से आया? जरा अभी बात बहुत कठिन है, हों! सेठ!

मुमुक्षु : समझ जाये तो कठिन नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उसका स्वभाव है। न समझ में आये, ऐसी बात है ही नहीं। परन्तु उसकी दरकार नहीं करता। महा चिद्घन पड़ा है। समझ में आये नहीं, उसकी दृष्टि न हो, ऐसा कैसे बने? परन्तु उसकी दरकार नहीं।

मुमुक्षु : ध्यान की बात तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान। यह ध्यान अन्तर्दृष्टि का है नहीं। विचार में मंथन चले कि मैं ऐसा हूँ, मैं ऐसा हूँ, वह तो विकल्प है। मैं ज्ञान हूँ, मैं आत्मा हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मैं पवित्र हूँ, ऐसा विचार करे वह तो विकल्प है। सेठी! भाई! यह तो भगवान अमृतचन्द्राचार्य

महाराज अनादि मिथ्यादृष्टि व्यवहारावलम्बी कैसे होते हैं, उसकी बात चलती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह आता है अभी, देखो!

निज अन्तःकरण को अंकुशित रखते हैं;... अन्तकरण को, हों! मन को। अशुभ में से हटकर... **वीर्याचरण के लिये—कर्मकाण्ड में....** वीर्य। तो **सर्व शक्ति द्वारा व्यापृत रहते हैं;...** रुका हुआ, गुँथा हुआ, मशगुल, लीन, व्यापृत। सर्व शक्ति द्वारा जितना वीर्य हो उतना। अपवास इतने करे। जितनी शक्ति हो, उतने अपवास करो। सम्यग्दर्शन बिना, ज्ञाता के ज्ञान के भान बिना वह वीर्य की स्फुरणा जो राग की मन्दता में होती है, वह भी कर्मचेतना है। **ऐसा करते हुए कर्मचेतनाप्रधानपने के कारण—** कर्मचेतना अर्थात् शुभराग। शुभराग एक कार्य है। उसमें चेतना चेत गयी है। आहाहा! समझ में आया?

यद्यपि अशुभकर्मप्रवृत्ति का उन्होंने अत्यन्त निवारण किया है... देखो! अत्यन्त निवारण। यह परिणाम की अपेक्षा से है, मिथ्यात्व की अपेक्षा से नहीं। अशुभ चारित्रमोहनीय के जो परिणाम हैं, उनसे निवारण किया है। अशुभकर्म अर्थात् कार्य-परिणाम, अशुभराग, उस अन्तर परिणति को उन्होंने अत्यन्त निवारण किया है। शुभविकल्प, शुभविकल्प, शुक्ललेश्या, पद्मलेश्या। शुक्ललेश्या, तेजोलेश्या ऐसे परिणाम शुभ पुण्यबन्ध का कारण है। रतिभाई! यह सुना नहीं ६२-६३ वर्ष में। ६२ कहाँ से? ७१ हो गये। ७१ हुए न? कितने? हाँ परन्तु ७१। कहो, समझ में आया? कहाँ गये फावाभाई!

कहते हैं कि.... यह तो अपने थोड़ा-थोड़ा लिया है, हों! उसमें विस्तार बहुत है। **कर्मचेतनाप्रधानपने के कारण—यद्यपि अशुभकर्मप्रवृत्ति का...** कर्म शब्द से कार्य। अशुभ परिणाम से **उन्होंने अत्यन्त निवारण किया है, तथापि—शुभकर्मप्रवृत्ति को जिन्होंने बराबर ग्रहण किया है...** देखो, बराबर ग्रहण किया है। ऐई! माया के लिये नहीं। शुभभाव... शुभभाव... शुभभाव... देखो! यह शास्त्र कितना स्पष्ट करता है! शुभभाव बराबर ग्रहण किये हैं। किसी के लिये नहीं। दुनिया को दिखाने के लिये नहीं। परन्तु उसका लक्ष्य पर के ऊपर है, स्वयं क्या चीज़ है, उस पर दृष्टि है नहीं।

सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर से... देखो! सकल क्रियाकाण्ड, यह सब किया शुभविकल्प का। इतना तो स्पष्टीकरण है कि यह व्यवहार है, वह स्वपरप्रत्यय विकल्प है और परविषयवाला है, क्रियाकाण्ड का आडम्बर है, बन्ध का कारण है। समझ में आया? स्वद्रव्य आश्रय नहीं, स्वविषय नहीं। **पार उतरी हुई दर्शनज्ञानचारित्र की ऐक्यपरिणतिरूप ज्ञानचेतना को....** देखो! अभी चौथे गुणस्थान के योग्य जो दर्शनज्ञानचारित्र की एक यहाँ '**जरा भी नहीं उत्पन्न किया हुआ...**' चौथे गुणस्थान में अपना आत्मा ज्ञान, दर्शन, आनन्द की डली पूर्ण, उसकी सावधानी से सम्यग्दर्शन, उसमें एकाकारता, उसमें स्वरूपाचरण की लीनता, ऐसी तीन की एक परिणति। देखो! चौथे गुणस्थान में भी ऐसा लिया है। समझ में आया?

ज्ञानचेतना को किंचित् भी उत्पन्न न करते हुए,... अन्दर ज्ञान भगवान, उसमें एकाकार नहीं होते हुए राग के परिणाम में धर्म मानता हुआ, शुभ परिणाम का अवलम्बन लेता हुआ सन्तुष्ट होकर देवलोक में क्लेश भोगने चला जाता है। बस, पुण्यबन्ध होता है। कहो, समझ में आया? बन्ध होता है न? भगवान अबन्धस्वरूप आत्मा है। अबन्ध परिणाम, यह ज्ञानचेतना। क्या कहते हैं? वह **सकल आडम्बर से पार उतरी हुई दर्शनज्ञानचारित्र की....** देखो! आडम्बर से पार उतरी हुई। उससे रहित होकर। **दर्शनज्ञानचारित्र की ऐक्यपरिणतिरूप....** भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध स्वभाव का सूर्य, उसकी दृष्टि, उसका ज्ञान और उसकी लीनता। ऐसी ज्ञानचेतना एक परिणतिरूप ज्ञानचेतना। देखो! समझ में आया? यह एक परिणति कहाँ लेते होंगे, वे अर्थवाले? सातवें में लेते होंगे? आठवें में लेते होंगे? तो फिर यह ऐसा कि यह तो मिथ्यादृष्टि की बात की है। चौथे से छठवें तक व्यवहार और सातवें में यह। यहाँ तो मिथ्यादृष्टि की बात चलती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे की बात है पहली शुरुआत की। यह चौथा आवे पहले। किंचित् नहीं। देखो। **ज्ञानचेतना को किंचित् भी उत्पन्न न करते हुए,....** समझ में आया? **ज्ञानचेतना को किंचित् भी...** ऐसा कहने में आशय है। थोड़ी भी ज्ञानचेतना प्रगट किये बिना, विशेष ज्ञानचेतना सातवें गुणस्थान की कहाँ से आयेगी? यह तो पहले

में पड़ा है। विकल्प पर लक्ष्य है। परविषय परद्रव्य में पड़ा है। ऐसा करना... ऐसा करना... ऐसा करना... पूरा चैतन्य असाधारण स्वभाव त्रिकाल है, वह तो पड़ा रहा। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो तीन की एकतारूप विशेष चारित्र हुआ तो विशेष वहाँ ज्ञानचेतना हुई। पूर्ण ज्ञानचेतना तेरहवें में होती है। परन्तु शुरुआत ज्ञानचेतना की चौथे से होती है। अमरचन्दभाई! यह ज्ञानचेतना चौथे गुणस्थान से उत्पन्न होती है। निर्विकल्प प्रतीति ज्ञान की ज्ञान में, ऐसी चेतना दर्शन-ज्ञान की एकतारूप परिणति इतनी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भले आवे, तो कौन इनकार करता है? समझ में आया? यह तो इतने-इतने भाव होने पर भी अन्दर में एकाकार नहीं होता तो एक परिणति... तीन शब्द लिये हैं न? **दर्शनज्ञानचारित्र की ऐक्यपरिणतिरूप ज्ञानचेतना को...** इसमें भी **किंचित् भी उत्पन्न न करते हुए,...** ज्ञानचेतना पूर्ण तो नहीं। समझ में आया? परन्तु किंचित् भगवान ज्ञानस्वभाव का वेदन ज्ञान में (नहीं उत्पन्न करते हुए)। वह तो राग का वेदन जितना क्रियाकाण्ड किया वह। क्रियाकाण्ड का आडम्बर कहा है। राग की क्रिया से पार उतरी हुई ज्ञानचेतना। जिसमें विकल्प नहीं, ऐसा शुद्ध स्वभाव, ऐसी श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र ऐक्यपरिणतिरूप ज्ञानचेतना। तीनों को एक करके ज्ञानचेतना कही है, देखो! समझ में आया? पहले जितने बोल कहे वह ज्ञानचेतना के नहीं। वे कर्मचेतना के कहे। कर्मचेतना का अर्थ शुभभाव। आहाहा! लोगों को तो...

भाई! सत्य बात तो ऐसी है। इसे समझे बिना उसका प्रयत्न किस दिशा में ढलेगा? ऐसे का ऐसे हैरान-हैरान होकर चला गया। मुनि हुआ तो क्या हुआ? बाहर में श्रावक नाम धराया तो क्या हुआ? पदवी लगायी इतनी बड़ी। तूने तेरी जाति की सम्हाल की? समझ में आया? तेरी जाति परमात्मा की जाति है। समझ में आया? ऐसी जाति में स्वरूप की दृष्टि, स्वरूप का ज्ञान और स्वरूप की लीनतारूप एक परिणाम, एक परिणतिरूप। देखो! तीनों की ऐक्य पर्यायरूप। उसकी दृष्टि में तो लेना चाहिए न कि

यह करना है, दूसरा करनेयोग्य है नहीं। इसे निर्णय तो करना चाहिए कि करनेयोग्य तो यही है। दूसरा कुछ है नहीं। संसार खाते है, बन्ध खाते है। कहो, यह दुकान का धन्धा और फंधा, वह तो पाप खाते, वह क्रिया पुण्य खाते। वह सब बन्ध के खाते में डाल दो।

भगवान आत्मा, ज्ञान की पर्याय जिसकी है, उस ओर एकाग्र होकर दर्शन-ज्ञान-चारित्र एक परिणति की ज्ञानरूप दशा किंचित् भी उत्पन्न नहीं करते हुए। कोई कर्म के कारण से, अमुक के कारण से, ऐसा नहीं लिया। वह ज्ञानरूप दशा किंचित् भी उत्पन्न नहीं करते हुए। अरे! क्या करें, दर्शनमोह का उदय है। तुझे किसने कहा ऐसा? तेरे पुरुषार्थ की कमी के कारण ज्ञानचेतना नहीं है, दूसरा कोई कारण नहीं है। पर्याय में अपने स्वभाव का जितना माहात्म्य आना चाहिए, ऐसा माहात्म्य करता नहीं। राग का माहात्म्य करता है तो वह तेरा ही दोष है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कार्य चेतन में। चैतन्य को दृष्टि में तो ले। यह चैतन्यप्रभु पूर्णानन्द है, उस ओर ढलना, वह एक ही मार्ग है। राग की क्रिया से हटना, स्वभाव सन्मुख ढलना, वह एक ही मार्ग है। शुरुआत से लेकर पूर्ण तक। यह विचार आया था रास्ते में। वह भेदज्ञान प्रारम्भ से आया था न! शब्द ऐसे पड़े हैं और अर्थ उल्टे करे। भेदविज्ञान प्रारम्भ से वह पूर्ण। इसलिए वे कहते हैं कि देखो, चौथे से उसे पूर्ण भेदज्ञान हो, बारहवें में जाओ। अरे... भाषा! ऐसी भाषा आ गयी है न! परन्तु उस पूर्ण का अर्थ सहित है। उस पूर्ण का अर्थ सहित है। शून्य है उसके साथ पूर्ण है। परन्तु वह प्रारम्भ से पूर्ण, ऐसा लिखा न।

मुमुक्षु : अर्थात् शुरुआत से ही पूर्ण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूर्ण ही है। पूर्ण अर्थात् सहित ही है। ज्ञान भेदविज्ञान। समझ में आया? ऐसा शुद्धनय का पक्ष तो पहले करे। पक्ष करो पहले कि यही करना है, यही पक्ष है, यही लक्ष्य है, उसमें दक्षता करके उसमें लीन होना, यही आत्मा का आचरण है। बाकी सब बात विकल्प में जाती है। समझ में आया?

किंचित् भी उत्पन्न न करते हुए,... देखो! ज्ञानचेतना का भंग किया स्थिरता

बढ़ती है-बढ़ती है तो। **ज्ञानचेतना को किंचित् भी उत्पन्न न करते हुए, बहुत पुण्य के भार से...** लो! देखो! पुण्य के भार से। पुण्य हुआ, बहुत पुण्य हुआ, बोझा। गधे के ऊपर जैसे लकड़ी का बोझा होता है। **बहुत पुण्य के भार से मंथर हुई...** सुस्त हो गया। ओहोहो! ऐसी **चित्तवृत्तिवाले वर्तते हुए,...** मन्द, जड़, सुस्त जैसी चित्तवृत्तिवाला। व्यवहार के अवलम्बन में पड़ा, निश्चय का भान नहीं।

देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति की परम्परा द्वारा... परम्परा तो होती है। क्या? क्लेश की परम्परा। पुण्य बँधेगा। देवलोक आदि स्वर्ग में जायेंगे। वहाँ से कोई राजा, महाराजा होगा। परन्तु क्लेश, क्लेश और क्लेश। राजा, महाराजा हो तो भी राग का क्लेश है, देवलोक में भी राग का क्लेश है। कहो, अच्छे कुल में जाऊँगा, फिर अपने करेंगे। अभी साधारण कुल में आ गये हैं। कहो, शोभालालभाई! तुम्हारे जैसे बड़े अच्छे कुल में आकर फिर करेंगे, ऐसी कोई भावना भावे, लो! हम गरीब व्यक्ति हैं, क्या करें? पाँच-पचास हजार की पूँजी नहीं हमारे पास। अब पूँजी-बूँजी का क्या काम है यहाँ? अच्छे घर में अवतरित होंगे आगामी भव में, सब सामग्री-बामग्री होगी, कमाने की चिन्ता नहीं होगी, फिर धर्म करूँगा। तो अभी से सब सामग्री मिथ्या और शरीर की सामग्री की तो भावना है तुझे। परपदार्थ की भावना है, उसमें तू कहाँ से करेगा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में नहीं मिले। सुन न! यहाँ तो यह कहते हैं। तेरी भावना है मिलने की। स्वभाव का तो निषेध करता है। यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... अभी नहीं... अभी नहीं... अभी नहीं... यह लाओ... यह लाओ... सामग्री लाओ। अब बीड़ियोंवाले बेचारे क्या करे? एक रुपया पैदा करे। घर में आठ व्यक्ति। तो अभी धर्म नहीं होगा भाई! वह मिले थे। हमको तो बहुत मिलते हैं न! बीड़ी बनाते हैं न? पहले तो तीन आने, चार आने मिलते थे। तीन आने की हजार। वह बनानेवाले को, हों! बनानेवाले को। पहले भुंगला करे, खाली रखकर, फिर एक साथ ऐसे... ऐसे... इसलिए झट बीड़ी बनावें।

मुमुक्षु : एक रुपये की पाँच हजार।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँच हजार। हाँ। तीन आने की हजार मुझे खबर है न। एक हजार के तीन आने। अभी अधिक होंगे। दो रुपये, डेढ़ रुपया जैसा होगा।

मुमुक्षु : दो रुपये, ढाई रुपये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ होता है। ऐसा कि लो अब भी दो, ढाई रुपये हो और घर में आठ व्यक्ति हों। किसे करना? तुम्हारे जैसा कहाँ है कि पैसे का प्रवाह चलता जाये। उसे आठ व्यक्ति हों, बेचारे अकेले को क्या करना? कहो। अब सुन न, अकेला ही है। कर ले न यहाँ। यह तो बाहर का जो होना होगा, वह होगा। अभी से निषेध करता जायेगा तो वहाँ निषेध ही रहेगा।

देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति की परम्परा... क्लेश की प्राप्ति की परम्परा, ऐसा। **अत्यन्त दीर्घ काल तक संसारसागर में भ्रमण करते हैं।** लो! यह व्यवहारावलम्बी निश्चय के भान बिना ऐसे क्रियाकाण्ड में रम रहा है। पुण्य बन्ध होकर स्वर्ग में जायेगा। और बहुत लम्बे काल तक, बहुत लम्बे काल तक संसारसागर में भ्रमण करता है। इसका श्लोक कहा है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल १२, शुक्रवार, दिनांक - १८-०९-१९६४, गाथा-१७२, प्रवचन-२४

यह पंचास्तिकाय में मोक्षमार्ग का विस्तार चलता है। उसमें वर्तमान चलते अधिकार में... अनादि काल से अपने शुद्ध स्वभाव के भान बिना अकेला व्यवहार अवलम्बन करते-करते हमारा मोक्ष होगा। दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, पूजा इत्यादि सब आ गया न? यह आचरण करते-करते हमारा कल्याण हो जायेगा, ऐसे शुभ अनुष्ठान द्वारा शुद्धता का फल आयेगा, ऐसा मानकर जो शुभभाव का अनुष्ठान करता है, उसका फल क्या? **देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति की परम्परा द्वारा...** शुभभाव है तो उससे देवलोक या वहाँ से निकलकर कोई सेठाई, गृहस्थ आदि होकर **परम्परा द्वारा अत्यन्त दीर्घ काल तक संसारसागर में भ्रमण करते हैं।**

पहले भी एक आया था कि देवलोक की क्लेश की परम्परा द्वारा मुक्ति होगी, ऐसा पहले आया था। समझ में आया? ७०-७० में आया था, १७०वीं गाथा। अन्तिम टुकड़ा है कि जो कोई आत्मा अपने निश्चय शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की रमणता करता है, परन्तु अभी तक अन्दर में शुभभाव छोड़ता नहीं, शुभभाव है, उसे छोड़ता नहीं तो वह **देवलोकादि के क्लेश की प्राप्तिरूप परम्परा द्वारा उसे प्राप्त करता है।** है? १७० गाथा की अन्तिम लाईन। सेठी! हाथ आया? कहाँ आया? आया। १७० गाथा की हिन्दी टीका की अन्तिम लाईन। अपना शुद्ध स्वभाव चैतन्य, उसकी दृष्टि और ज्ञान और जितनी स्वरूप की स्थिरता होने पर भी जब तक शुभभाव को प्राप्त करके उसमें रहता है, उसे छोड़ता नहीं तो उसे देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति होगी। परन्तु फिर राग का अभाव करके उसे मुक्ति होगी। समझ में आया? निश्चय चैतन्यस्वरूप परमपवित्र ज्ञायकभाव की दृष्टि, ज्ञान और कितनी ही लीनतासहित आत्मा शुभभाव सहित हो और शुभभाव को छोड़ता नहीं और स्वरूप की पूर्ण स्थिरता नहीं हुई तो शुभभाव के फल में देव, अच्छा राजकुल आदि में अवतार होकर क्रम-क्रम से राग को छोड़कर केवलज्ञान प्राप्त करेगा। समझ में आया?

यहाँ यह कहा कि अकेला सम्यक् चैतन्य शुद्ध स्वभाव की दृष्टि, ज्ञान और

अन्तर आश्रय बिना अकेला व्यवहार क्रियाकाण्ड करता है, उसे भी देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति (होती है)। वहाँ भी देवलोकादि क्लेश की प्राप्ति कहा था। यहाँ परम्परा द्वारा देवलोक मिलेगा, फिर कोई राजकुल आदि में अवतरित होगा और फिर अत्यन्त दीर्घ काल तक संसार सागर में भ्रमण करता है। समझ में आया? यह चन्दुभाई का प्रश्न था, उसके ऊपर से यह विचार जरा (आया)। पहले बोल में और चौथे बोल में क्या अन्तर है इसमें और इसमें? समझ में आया?

यह दूसरा बोल चला। पहला बोल ऐसा चला १७२ में। यह बात की, वह तो १७० की की। १७२ में पहले ऐसा आया कि अनादि वासना अभी पूर्ण टली नहीं, भेद साध्यसाधन... निश्चय अभेदसाध्यसाधन है, उसके साथ भेदसाध्यसाधन है। शुभरागरूपी व्यवहार से साध्य का साधन है। निश्चय से साध्य का साधन निश्चयस्वभाव के अनुकूल श्रद्धा, ज्ञान आदि कितनी ही लीनता है। तो वह क्रम-क्रम से राग को छोड़कर। उसमें यह 'क्रम' शब्द है, देखो! है या नहीं उसमें? **क्रम से समरसीभाव समुत्पन्न होता जाता होने से...** यह पहले में अन्तिम लाईन। केवलव्यवहारावलम्बी की शुरुआत करने से पहले। है? चन्दुभाई!

क्रम से समरसीभाव समुत्पन्न होता जाता होने से... क्रमशः **इसलिए परमवीतराग को प्राप्त कर साक्षात् मोक्ष का अनुभव करता है।** कहो, समझ में आया? और बाद में लेंगे निश्चय की बात जहाँ है न? अकेले निश्चयवाले की बात। वहाँ ऐसा लेंगे कि मात्र पाप को ही बाँधता है। निश्चयावलम्बी को आत्मा का ज्ञान, आनन्द का अनुभव नहीं और अकेले शुभभाव को छोड़ देता है, वह तो अशुभभाव में आकर अकेले पाप को बाँधता है। यह तीसरा बोल उसमें आया। और अन्त में निश्चय-व्यवहार का सुमेल करते-करते, उसमें यह आया कि शीघ्र संसारसमुद्र को पार उतरकर। ऐसा बोल आया है। १७२ में अन्त में। है? पहले में क्रमशः, (बाद में) शीघ्र। यह तो पृष्ठ शीघ्र फिरावे उसे ख्याल में आवे, उसकी बात है। उकता जाये पृष्ठ बदलते हुए एक निकाले और दूसरा निकाले तो कुछ समझ में आये नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, ऐसा है। ठीक! घण्टे भर का काम है और फिर कहाँ याद रखना है हमारे? सेठी! दलाल है, दलाल।

यहाँ पाँच बोल की बात करनी है। इस गाथा में, भाई चार और एक पहली गाथा १७० में गया। समझ में आया? अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्य ज्ञायक की दृष्टि होने पर भी जब तक शुभभाव को छोड़ता नहीं और शुद्धोपयोग होता नहीं और उसमें यदि देह छूट जाये तो शुभभाव के फल में देवलोकादि मिलेंगे। शुद्ध दृष्टि, ज्ञान है तो क्रम-क्रम से राग का अभाव करके मुक्ति को प्राप्त करेगा। क्रम से। समझ में आया? पहले १७० में देवलोकादि परम्परा कहा है, वहाँ 'क्रम से' शब्द नहीं है। वहाँ परम्परा कहकर मोक्ष होगा, इतना (लिया है)।

अब १७२ में जब पहले भेदसाध्यसाधनभाव की बात की, वहाँ अभेद ज्ञानस्वरूप चैतन्य का शुद्ध ध्येय का निश्चय साधन सम्पन्न है। मैं शुद्ध हूँ, आनन्द हूँ, ज्ञायक हूँ— ऐसे साधनसाध्य से सम्पन्न है। उसके साथ व्यवहार के विकल्प का साधन है तो क्रम से... क्रम से... क्रम से... राग घटाकर वह मुक्ति को प्राप्त करेगा। तीसरे बोल में... यहाँ दूसरा बोल। और ऐसा कहने में तीसरा आया। १७२ में दूसरा। अकेला व्यवहारावलम्बी है, जिसे ज्ञान चैतन्यमूर्ति का बिल्कुल अनुभव नहीं, श्रद्धा नहीं, ज्ञान नहीं और अकेले शुभभाव का आचरण करता है तो वह देवलोक की क्लेश की परम्परा को प्राप्त करके बहुत लम्बे काल तक संसार में भ्रमता है। समझ में आया? यह तो चन्दुभाई ने प्रश्न किया था जरा रात्रि में। फिर अभी तीसरा बोल निश्चयावलम्बी (अज्ञानी) का आयेगा। वहाँ अकेला पाप बाँधेगा, ऐसा कहेंगे। चौथा बोल साध्यसाधनसहित निश्चयसहित शुभराग, परन्तु उसका जोर स्वभावसन्मुख है। एकदम जाना तो वह जाकर शीघ्र केवलज्ञान को प्राप्त करेगा। ऐसे चार बोल का वर्णन १७२ में आया है। एक पहले आया समकितसहित का कि देवलोक पाकर मुक्ति में जायेगा।

अब चलती गाथा। '**चरणकरणप्पहाणा ससमयपरमत्थमुक्कवावारा। चरण-करणस्स सारं णिच्छयसुद्धं ण जाणंति।** यह गाथा चलती है। कहाँ आया, गाथा चलती है वहाँ? उलझ जाता है। यह चलती गाथा १७२ गाथा चली। हिन्दी में २६१ पृष्ठ है।

समझ में आया ? **(अर्थात् तो चरणपरिणामप्रधान हैं....** अर्थ लिखा है। जिसकी दृष्टि में शुभभाव ही प्रधान है। दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, पूजा, व्यवहार ज्ञानाचरण, व्यवहारदर्शनाचरण, व्यवहारचारित्राचरण, व्यवहारतपाचरण, व्यवहारवीर्याचरण चरणपरिणाम—शुभपरिणाम जिसमें मुख्य है **और स्वसमयरूप परमार्थ में व्यापाररहित हैं,....** देखो ! मगनलालजी ! समझ में आया ? भगवान स्वसमय शुद्ध चैतन्य का स्वसमयरूप परमार्थ ऐसे व्यापाररहित है। अन्तर की निश्चयदृष्टि, निश्चयज्ञान और निश्चय की स्थिरतारूप अन्तर स्वसमय का व्यापार है नहीं। अकेले शुभाचरण का व्यापार है। तो चरणपरिणाम प्रधान है और स्वसमयरूप परमार्थ में व्यापाररहित है। यहाँ तो व्यापार आया। शुद्ध के व्यापाररहित है और अकेले शुभ परिणाम का व्यापार करता है।

मुमुक्षु : शुभ करते-करते शुद्ध होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : करते-करते कहाँ से होगा ? धूल में ? राग में से अराग कहाँ से आयेगा ? बहुत गड़बड़ चली है अभी तो। ओहोहो !

क्या कहते हैं, देखो ! यह कहेंगे सही कि **वे चरणपरिणाम का सार...** क्या कहते हैं ? कि शुभ परिणाम का सार तो अन्तर में शुद्धरूप से जाना, वह है। ऐसे शुभ को छोड़कर। और शुभ में रहते-रहते शुद्धता आती है, ऐसा कभी नहीं होता। समझ में आया ? शुभ चरणपरिणाम का। चरण शब्द से शुभ परिणाम है। शुभ कषाय की मन्दता का सार यह है कि उससे हटकर अन्तर में शुद्ध की दृष्टि, ज्ञान और लीनता होना, वह सार। वह निश्चय शुद्ध को नहीं जानता। अन्तर में निश्चय स्वभाव की शुद्धता क्या है ? उसे बिल्कुल श्रद्धा नहीं करता, ज्ञान नहीं करता, अकेले शुभ अनुष्ठान से मेरा कल्याण हो जायेगा, शुभभाव से मुक्ति होती है ऐसी उल्टी दृष्टि पड़ी है, वह मिथ्यादृष्टि दीर्घ काल तक स्वर्ग आदि में जाकर संसार में परिभ्रमण करेगा। समझ में आया ?

नीचे थोड़ा लिखा है। वह तिगड़ा (३) है न नोट में ? **श्री जयसेनाचार्यदेवकृत तात्पर्यवृत्ति-टीका में व्यवहार-एकान्त का निम्नानुसार स्पष्टीकरण किया गया है :— जो कोई जीव विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभाववाले शुद्धात्मतत्त्व के....** एक बात। कैसा है भगवान आत्मा ? शुद्धात्म तत्त्व कैसा है ? शुद्ध आत्मतत्त्व। विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभाव।

जिसका विशुद्धज्ञानदर्शन ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव त्रिकाल है, ऐसे **शुद्धात्मतत्त्व के सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप निश्चयमोक्षमार्ग से निरपेक्ष...** ऐसा शुद्ध चैतन्य विशुद्ध ज्ञानदर्शनमय शुद्धात्मततत्त्व। जो पुण्य-पाप के विकल्प से रहित ऐसे आत्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् आचरणरूप निश्चयमोक्षमार्ग से निरपेक्ष। निश्चयमोक्षमार्ग तो है नहीं, अकेला व्यवहार में चलता है। समझ में आया?

केवलशुभानुष्ठानरूप व्यवहारनय को ही... केवल शुभ अनुष्ठान। दया, भक्ति, व्रत, तप, पूजा, दान आदि कर-करके शुभ अनुष्ठान में **व्यवहारनय को ही मोक्षमार्ग मानते हैं,...** कहो, समझ में आया? **वे उसके द्वारा देवलोकादि के क्लेश की परम्परा प्राप्त करते हुए संसार में परिभ्रमण करते हैं;...** जो अमृतचन्द्राचार्य में आया, वह लिया। **किन्तु यदि शुद्धात्मानुभूतिलक्षण निश्चयमोक्षमार्ग को माने....** देखो, व्याख्या। पहले शुद्धात्मतत्त्व विशुद्धज्ञानदर्शन सम्पन्न की श्रद्धा, ज्ञान और एकाग्रता नहीं। अकेले शुभ अनुष्ठान से मुझे मुक्ति होगी, ऐसा मानता है, वह तो परिभ्रमण करेगा।

किन्तु यदि शुद्धात्मानुभूतिलक्षण निश्चयमोक्षमार्ग... निश्चयमोक्षमार्ग की व्याख्या की। निश्चयमोक्षमार्ग—सच्चे मोक्षमार्ग की व्याख्या क्या? कि शुद्धात्मानुभूतिलक्षण निश्चयमोक्षमार्ग। पुण्य-पाप के विकल्प से रहित, अपना शुद्ध आत्मा परम पवित्र निधान, उसकी अनुभूति-अनुभव करना। शुद्ध स्वभाव का अनुभव करना, शुद्ध स्वभाव की निर्विकल्प अनुभूति प्रगट करना, वही शुद्धात्मानुभूतिलक्षण निश्चयमोक्षमार्ग है। उसकी दृष्टि आदि हुई हो, उसे मानता हो, **और निश्चयमोक्षमार्ग का अनुष्ठान करने की शक्ति के अभाव के कारण...** परन्तु अन्दर में स्थिर होने की, स्वरूप में स्थिर करने की शक्ति के अभाव के कारण। समझ में आया?

अनुष्ठान करने की शक्ति के अभाव के कारण निश्चयसाधक शुभानुष्ठान करें,... निश्चय ऐसी दृष्टि, ज्ञान, लीनता में कचास है तो उस शुभराग को व्यवहार से निश्चयमार्ग का साधन कहने में आया है। ऐसे शुभराग में हो तो वह सराग सम्यग्दृष्टि है। सराग अर्थात् दृष्टि तो सम्यक् वीतरागी ही है, परन्तु शुभराग के अनुष्ठान में आया है तो इस अपेक्षा से रागवाला सम्यग्दृष्टि कहा गया है। वह **परम्परा से मोक्ष प्राप्त करते हैं।**

मुमुक्षु : क्या परम्परा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह परम्परा मोक्ष है। जो पहले १७० में कहा था वह।

इस प्रकार व्यवहार-एकान्त के निराकरण की मुख्यता से दो वाक्य कहे गये। अब स्पष्टीकरण किया है। यहाँ जो सराग सम्यग्दृष्टि जीव कहा। सराग कहा न ? मिथ्यादृष्टि नहीं। है तो सम्यक् शुद्ध चैतन्य की अनुभवदृष्टि, परन्तु सराग क्यों कहा ? कि साथ में राग है, उसका उपचार करके समकिती को सराग कहा। सम्यग्दर्शन सराग-फराग है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अस्थिरता की अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि सरागी, ऐसा कहने में आता है। वह चारित्र के दोष से लिया गया है। सम्यग्दृष्टि तो स्वभाव की दृष्टि हुई, वह तो वीतरागदृष्टि है, परन्तु स्थिरता की कचास और कमी के कारण जो शुभराग आया, उसे व्यवहारसाधन गिनकर उस राग को सम्यग्दर्शन के साथ मिलाकर सराग सम्यग्दृष्टि कहने में आया है। समझ में आया ?

उन जीवों को सम्यग्दर्शन तो यथार्थ ही प्रगट हुआ है परन्तु चारित्र-अपेक्षा से उन्हें मुख्यतः राग का अस्तित्व होने से 'सराग सम्यग्दृष्टि' कहा है, ऐसा समझना। और उन्हें जो शुभ अनुष्ठान है, वह मात्र उपचार से ही 'निश्चयसाधक' कहा गया है,.... शुभ अनुष्ठान जो कहा, वह निश्चय का, स्वभाव शुद्धता का व्यवहार से साधन कहा है, ऐसा समझना चाहिए। समझ में आया ? कितना समझना ? एक घण्टे में बहुत बातें आती हैं। समझना कितना ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वे भी कितने ही घुस गये हों न विपरीतता गत काल में। उसमें समझना... समझना... समझना। एक घण्टे। ज्ञानस्वरूपी आत्मा है। दूसरी चीज़ कहाँ है वह ? उस ज्ञान को समझना, अन्दर दृष्टि करना, वह निश्चय है और साथ में राग आवे, उसे वह शुभ अनुष्ठान व्यवहारसाधन है, ऐसा समझना। समझ में आया ?

अब, केवलनिश्चयावलम्बी... अब यह व्यवहारावलम्बी की बात कही, दो

बात कही। एक निश्चय साधनसाध्य सहित व्यवहार साध्यसाधनवाला देवलोकादि (जाकर) क्रम-क्रम से मोक्ष जायेगा। एक। यहाँ अकेला व्यवहारावलम्बी निश्चय के भान बिना अकेला व्यवहारावलम्बीवाला देवलोकादि की परम्परा करके दीर्घ काल संसार में डुबेगा, भटकेगा। **अब केवलनिश्चयावलम्बी (अज्ञानी) जीवों का...** निश्चयावलम्बी अज्ञानी। उसका **प्रवर्तन और उसका फल कहा जाता है:—** देखो!

अब, जो केवलनिश्चयावलम्बी हैं,... निश्चय प्रगट नहीं हुआ। मैं ज्ञान हूँ, आनन्द हूँ, शुद्ध हूँ—ऐसी दृष्टि प्रगट नहीं हुई, परन्तु अकेला निश्चय... निश्चय... निश्चय... करके (मानता है कि) मुझे निश्चय है, वह निश्चयावलम्बी है। **सकल क्रियाकर्मकाण्ड के आडम्बर में विरक्त बुद्धिवाले वर्तते हुए,....** जहाँ-जहाँ शुभाचरण की क्रिया की बात शास्त्र में चले तो कहे, यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं। निश्चय स्वरूप का भान नहीं और व्यवहार का आचरण आवे शास्त्र में तो वह तो व्यवहार है, वह तो राग है, राग है, राग है, राग है, राग है। तिरस्कार करते-करते निश्चय की दृष्टि नहीं, व्यवहार का शुभभाव करना नहीं, अकेले अशुभभाव में जायेगा।

यहाँ तो अभी **केवलनिश्चयावलम्बी...** अज्ञानी की बात है, हों! निश्चय का भान हो कि मैं ज्ञानानन्द शुद्ध ज्ञाता-दृष्टा हूँ, ऐसे भान में जब तक स्थिरता न हो तो उसमें शुभराग का व्यवहार साधन आये बिना नहीं रहता। परन्तु यह तो अज्ञानी अपने निश्चय की बात करे। आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है, उसमें कुछ नहीं। भगवान ने व्यवहारक्रिया कही, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, वह सब शुभराग है, शुभराग है। कौन इनकार करता है? शुभराग है। परन्तु शुभराग भी करे नहीं और निश्चय का अनुभव हो नहीं। सनतकुमारजी! बात तो....

कहते हैं कि **सकल क्रियाकाण्ड के...** दया, दान, भक्ति, नामस्मरण आदि, पूजा, व्यवहार जितना कहा न १७२ में पहले? व्यवहारावलम्बी का। स्वाध्याय आदि करना, आदि जो-जो व्यवहार कहा, वह **सकल क्रियाकर्मकाण्ड के आडम्बर में विरक्त...** नहीं... नहीं... नहीं... यह शुभभाव नहीं, यह शुभभाव नहीं, यह शुभभाव नहीं। शुभ तो बन्ध का कारण है। बन्ध का ही कारण है, कौन इनकार करता है? परन्तु

निश्चय दृष्टि हुई नहीं, अनुभव है नहीं, व्यवहार में आता नहीं। अकेला पाप रहेगा। समझ में आया? अन्ततः पाप बँधेगा। ऐसा कहेंगे। देखो! केवल पाप को बाँधता है।

निश्चय अन्दर में दृष्टि और ज्ञान और लीनता का अनुभव है नहीं और हमारा निश्चय आत्मा बस शुद्ध है... शुद्ध है... शुद्ध हो गया। कहाँ से शुद्ध हो गया? अन्तर में एकाग्रता हुए बिना शुद्धता प्रगट नहीं होती। अन्तर एकाग्रता करता नहीं और शास्त्र में जहाँ व्यवहार के आचरण की बात आवे, उसका तिरस्कार करता है। यह शब्द आयेगा— तिरस्कार। यह नहीं... यह नहीं। क्या है? अन्दर स्थिर नहीं होता, शुभभाव करना नहीं। तो तुझे करना क्या है? शुभभाव धर्म नहीं। परन्तु शुभभाव भी करना नहीं, निश्चय में दृष्टि (भी) करनी नहीं, तो करना क्या है तुझे? अशुभभाव करेगा। संकल्प-विकल्प किया करेगा और मानेगा कि हम निश्चय में हैं, निश्चय में हैं। कहाँ से निश्चय में आया? सहजानन्द प्रभु अपने पुरुषार्थ से ज्ञान में ज्ञान का वेदन निश्चय में किये बिना और व्यवहार की बात आवे तो उसके **आडम्बर में विरक्त...** यह सब आडम्बर है व्यवहार का। क्रिया का आडरम्बर है राग का। आडम्बर ही है, सुन तो सही! परन्तु तुझे व्यवहार आचरण की बात करे तो करना नहीं, निश्चय में अनुभव की दृष्टि है नहीं, तो क्या करना है तुझे?

मुमुक्षु : अवलम्बन तो लिया न!

पूज्य गुरुदेवश्री : अवलम्बन कहाँ लिया है? नाममात्र अवलम्बन है कि मुझे निश्चय है। ऐसे मैं ज्ञाता हूँ, दृष्टा हूँ, ज्ञाता हूँ, दृष्टा हूँ। मुझे कुछ लेना देना नहीं। हमको कोई बन्धन-बन्धन है नहीं। हमारे कुछ करना ही नहीं। स्वरूप भी करना नहीं और शुभभाव भी करना नहीं। कहाँ जाना है तुझे?

मुमुक्षु : .... का अवलम्बन ले लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाममात्र लिया है। वस्तु का कहाँ लिया है?

मुमुक्षु : शब्द अवलम्बन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शब्द का अवलम्बन लिया। शब्द में क्या आया?

भगवान आत्मा निश्चय स्वरूप शुद्ध की दृष्टि लगाकर, सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट

हुए, पश्चात् स्थिर नहीं हो सकता, ज्ञानी को भी शुभभाव तो आता है। यहाँ तो निश्चय है नहीं और शुभभाव की क्रिया शास्त्र में आती है तो (कहते हैं), बन्ध का कारण है, कर्मचेतना है, कर्मचेतना है। तो कर्मचेतना ही है। सुन न! किसने इनकार किया? परन्तु कर्मचेतना में शुभ में आना नहीं, शुद्ध की दृष्टि में जाना नहीं। अशुभ में आयेगा। समझ में आया?

मुमुक्षु : शब्द तो आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : शब्द आते हैं, उसमें क्या हुआ? शब्द तो जड़ भी बोलता है। यह रेकॉर्डिंग भी शब्द बोलता है।

निश्चय ज्ञानस्वरूप चिदानन्द, ओहोहो! जिसकी सम्पदा में परमात्मस्वरूप पड़ा है, ऐसी अन्तर की दृष्टि, श्रद्धा, ज्ञान का प्रयास तो करता नहीं और व्यवहार आचरण की बात जहाँ शास्त्र में आवे तो कहता है कि यह तो आडम्बर है। बुद्धिवाला वर्तता हुआ, आडम्बर विरक्त। नहीं... नहीं... नहीं... **आँखों को अधमुँदा रखकर कुछ भी स्वबुद्धि से अवलोक कर यथासुख रहते हैं...** ऐसे आँख बन्द कर दे। आँख बन्द कर दे, उसमें क्या आया? वह तो जड़ है। **आँखों को अधमुँदा रखकर...** आधी आँख बन्द करके। **कुछ भी स्वबुद्धि से अवलोक कर...** अन्दर प्रकाश दिखता है, हों! कोई प्रकाश दिखता है। प्रकाश दिखता है, वह तो जड़ है, राग है, वह तो पुद्‌गल है। आँख को बहुत भींचे तो अन्दर कुछ दिखता है। परन्तु वह तो जड़ दिखता है। प्रकाश तो जड़ है। वह आत्मा कहाँ है? आत्मा में जड़ का प्रकाश कहाँ है? चैतन्य प्रकाश की दृष्टि, ज्ञान तो है नहीं और राग का शुभाचरण करना नहीं छोड़ता। तो कहते हैं, क्या करता है? **आँखों को अधमुँदा रखकर कुछ भी स्वबुद्धि से अवलोक कर....** स्वबुद्धि से। अन्दर हो गया। ओहोहो! एकाकार हो गया, ऐसी कल्पना में **यथासुख रहते हैं...** यथासुख।

मुमुक्षु : मन....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ? मन से कुछ नहीं, ऐसा कहते हैं। नहीं, नहीं, ऐसे बैठा उसमें क्या हो गया धूल में? दूसरी कल्पना में चढ़ गया। कल्पना शुभ की आती है, उससे इनकार करते हैं। अन्दर की दृष्टि नहीं। कल्पना दूसरी आवे, उसकी खबर नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल है। ऐसा ही कहते हैं यहाँ। बहुत होते हैं न यहाँ। एक आया था न? कहा नहीं था बहुत वर्ष पहले? समझ में आया? बस, सोता रहे खा-पीकर। दूध, खाकर हम ध्यान में रहते हैं। आवे सुनने ध्यान में से। यह महाराज कुन्दकुन्दाचार्य की बात करते हैं, कुन्दकुन्दाचार्य, वे कुन्दकुन्दाचार्य तो मेरे (पास) कितनी बार आ गये। अभिमान फट गया लगता है इसका, कहा। यह गाँव में बना था। समझ में आया? बस! सोता रहे छह घण्टे तक ऐसे। शरीर से ठीक, दूसरी चिन्ता नहीं, ध्यान में चढ़े। कुछ हो नहीं, प्रमाद अकेला। यह महाराज कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि भगवान के पास गये थे। वहाँ से लाये। वे कुन्दकुन्दाचार्य तो मेरे कितनी बार एक दिन में आ जाते हैं। वह कल्पना करे न!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह तो पढ़ा हुआ। परन्तु यह यथासुख कहते हैं न? बस साताशिलीया। अनुकूल खाना, पीना और लहर करे और फिर आँखें बन्द करके बैठे तो हो गया ध्यान। समझ में आया? यह नौकरी करते थे पहले स्थानकवासी में, मुम्बई। फिर नौकरी में कुछ मिलते होंगे... फिर इनके हाथ में हो न सब पैसा? स्थानकवासी की नौकरी। किसमें? यह उपाश्रय की कोई। फिर इनके पास पैसे आवे तो दे दे किसी को। नामा, क्या नामा? यह तीन हजार रुपये? मेरी जेब में आवे तो मेरे पैसे। परन्तु तेरे बाप के हैं ये पैसे? अध्यात्मी नाम धरावे। अध्यात्मी। बस! अध्यात्मी है। हमारे कुछ नहीं। जेब में यहाँ पड़े हों पैसे। परन्तु तेरे बाप के हैं? यह स्थानकवासी के उपाश्रय के हैं। तीन हजार का घोटाला निकला था। बहुत वर्ष पहले की बात है, हों! तीन हजार रुपये कहाँ गये? अध्यात्मी! अध्यात्मी! समझ में आया?

मुमुक्षु : अध्यात्मी अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अध्यात्मी, इसलिए कहा न यह निश्चय। हम अकेले आत्मा को ही मानते हैं। बस, आत्मा... आत्मा... हमारा आत्मा ही रमता है सदा। ऐसा। परन्तु यह तीन हजार रुपये किसी के, तेरा वेतन सौ रुपये का। यह किसी ने दिये, भान

नहीं होता व्यवहार का तुझे। कहाँ से हो गया अध्यात्मी आत्मा? हम आत्मज्ञानी हैं बस! आत्मज्ञानी हो गया। समझ में आया? ऐसे तो बहुत देखने को मिलते हैं, बहुत आते हैं। आँख बन्द कर बैठे, अन्दर कुछ कल्पना करे। कुछ दिखता है। धूल नहीं दिखता, यह तो प्रकाश हो कुछ। समझ में आया?

यथासुख... देखो नीचे लिखा है। **इच्छानुसार; जैसे सुख उत्पन्न हो वैसे; यथेच्छरूप से। [जिन्हें द्रव्यार्थिकनय के (निश्चयनय के) विषयभूत शुद्धात्मद्रव्य का सम्यक् श्रद्धान या अनुभव नहीं है...** है नीचे नोट में? ज्ञायकमूर्ति चिदानन्द आत्मा, उसे तो दृष्टि में लिया नहीं, ज्ञान का वेदन नहीं और अनुभव नहीं। **उसके लिए उत्सुकता या प्रयत्न नहीं है,...** देखो! उसके लिये उत्सुकता अन्दर में एकाकार होकर, प्रयत्न करूँ, वह नहीं। **ऐसा होने पर भी जो निज कल्पना से अपने में किंचित् भास होने की कल्पना करके निश्चिंतरूप से स्वच्छन्दपूर्वक वर्तते हैं।** भोग, खाना, पीना, लहर करना और अन्दर माने कि हमको निश्चय है, निश्चय है। क्या निश्चय है?

मुमुक्षु : अनर्गल वृत्ति

पूज्य गुरुदेवश्री : अनर्गल वृत्ति, स्वच्छन्द वृत्ति है। और दृष्टि नहीं, शुभराग नहीं। अकेले पापभाव में चला जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : झंखना स्वच्छन्दपूर्वक।

'ज्ञानी मोक्षमार्गी जीवों को प्राथमिक दशा में आंशिक शुद्धि के साथ-साथ... धर्मी जीव को सम्यग्दर्शन, ज्ञान के साथ पहली दशा में शुद्धि के साथ भूमिकानुसार शुभभाव होता है। सम्यग्दृष्टि को होता है, पाँचवें गुणस्थानवाले को होता है, मुनि को भी होता है। **इस बात की श्रद्धा नहीं करते,...** नहीं, वह शुभभाव नहीं, शुभभाव नहीं। परन्तु आये बिना रहता नहीं। सुन तो सही! सम्यग्दृष्टि को भी शुभभाव आये बिना रहता नहीं। कहाँ से शुद्धोपयोग रहेगा अन्दर? और अकेला माने कि बस दूसरा कुछ नहीं। ध्यान में चढ़ गये हम।

उन्हें यहाँ केवलनिश्चयावलम्बी कहा है। केवल निश्चयावलम्बी। बातें करे;

अन्तर्दृष्टि नहीं, ज्ञान नहीं, अन्तर चिदानन्द क्या स्वरूप है, उसकी उत्सुकता नहीं, प्रयत्न नहीं, उस ओर झुकाव नहीं, उस ओर उन्मुखता नहीं और अकेला शुभभाव आवे तो कहे, यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं। शुभभाव होवे तो भी उसे धर्म है, ऐसी बात नहीं परन्तु यहाँ तो निश्चय में जाता नहीं और शुभभाव छोड़ देता है अथवा शुभभाव करना नहीं। अकेला पाप बाँधेगा। निश्चयावलम्बी अकेला पाप को बाँधेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यथासुख।

(अर्थात् स्वमतिकल्पना से कुछ भी भास की कल्पना करके इच्छानुसार— जैसे सुख उत्पन्न हो वैसे-रहते हैं।), वे वास्तव में भिन्नसाध्यसाधनभाव को तिरस्कारते हुए,.... क्या कहते हैं? कि सम्यग्दर्शनपूर्वक निश्चय साधन हुआ, उसे भी शुभराग की क्रिया भिन्न साधन आता है, शुभराग आता है। उसे तिरस्कार करते हैं कि नहीं, शुभराग नहीं... नहीं, शुभराग नहीं। यह शुभराग नहीं। **अभिन्नसाध्यसाधनभाव को उपलब्ध न करते हुए,...** अन्तर में ज्ञाता पूर्ण स्वभाव की प्राप्ति अन्दर शुद्ध निश्चय से, निश्चय परिणति से होती है, उसे प्राप्त नहीं करते। समझ में आया?

अन्तराल में ही (-शुभ तथा शुद्ध के अतिरिक्त शेष तीसरी अशुभदशा में ही),... निश्चय की दृष्टि नहीं, व्यवहार शुभभाव करना नहीं। तीसरा **प्रमादमदिरा के मद से भरे हुए....** प्रमाद... प्रमाद... प्रमाद... आँख बन्द हो गयी। समझ में आया? लो, यह व्यवहारावलम्बी की बात है, ऐसी निश्चयावलम्बी की बात अज्ञानी की है। ऐसी कल्पना स्वच्छन्दी बहुत हो जाते हैं। निश्चय का नाम करके हमको क्या? इन्द्रिय के भोग होते हैं तो भोग जड़ की पर्याय है। हमको क्या? बहुत अच्छा, भाई! भोग का भाव किसका है? है तो जड़ की क्रिया। भाव किसका है? तेरा भाव है और तू कहता है कि जड़ की क्रिया है। किसने कहा ऐसा?

मुमुक्षु : दूसरे की अपेक्षा तो अच्छा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ अच्छा? पूरा मूर्ख है बड़ा। यह दूसरा जरा पुण्य बाँधकर परम्परा भटकेगा। यह सीधा पाप बाँधकर फिर भी भटकेगा। क्या समझे? उसको जरा स्वर्गादि मिले एकाध-दो भव यह। और (यह) सीधा पाप में जाये, इतनी बात है।

बाकी तो अच्छा, बुरा (कोई नहीं), दोनों खोटे हैं। दोनों खोटे हैं। उसमें गति मिले एकाध भव उसमें आत्मा को अच्छा क्या हुआ? उससे सुधरते होंगे? शुभभाव की क्रिया करते-करते सुधर जायेंगे। (ऐसा) कहते हैं न? परन्तु निमित्त कारण कहाँ से मिले? उपादान हो तो निमित्त कहलाये न? निमित्त कहलाये कहाँ से?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, है, है। आता है न, दोनों खबर है, दोनों खबर है। कहो, समझ में आया?

शुभभाव की जहाँ आचरण के शास्त्र में (बात) आवे (तो कहे), नहीं। पर की दया का भाव शुभ है, धर्म नहीं। भक्ति का भाव शुभ है, धर्म नहीं। परन्तु शुभभाव की बात जब आवे तब तिरस्कार करता है कि, नहीं। यह नहीं। शुद्ध में रह नहीं सकता। शुभभाव आवे तो तिरस्कार करता है। अकेला अशुभभाव ही रहा उसे। समझ में आया?

प्रमादमदिरा के मद से भरे हुए आलसी चित्तवाले वर्तते हुए,... वह आलसी का गोर। गोर किसे कहते हैं, समझते हो? अन्तर की चीज़ क्या है, उसकी तो दृष्टि नहीं, उत्सुकता नहीं, प्रयत्न नहीं, वीर्य नहीं, जागृति में कैसे आवे? उस ओर का तो बिल्कुल झुकाव नहीं। शुभभाव नहीं करना, वह तो कर्मचेतना है। कर्मचेतना है, कौन इनकार करता है? सुन तो सही! ज्ञानचेतना बिना शुभचेतना आये बिना रहती नहीं। और ज्ञानचेतना हो तो भी जब तक स्थिरता में नहीं रहता, तो शुभचेतना राग का ऐसा भाव कर्मचेतना ज्ञानी को भी आये बिना नहीं रहती। आहाहा! समझ में आया? देखो! भाषा कितनी प्रयोग की है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे? शुद्धचेतना को मोक्ष होगा। उसकी बात कहाँ है यहाँ? उसकी यहाँ बात कहाँ चलती है? शुद्धचेतना का तो भान ही नहीं और अशुद्ध कर्म अकेला क्रियाकाण्ड शुभराग का तिरस्कार करता है।

प्रमादमदिरा के मद से भरे हुए आलसी चित्तवाले वर्तते हुए, मत्त (उन्मत्त)

जैसे,.... गहल–पागल होता है न, पागल जैसा। हमको क्या है? निश्चय में हमारे क्या करना है? राग आओ तो आओ, भोग आओ तो आओ, युद्ध आओ तो आओ, हमको क्या है? ओहोहो!

मुमुक्षु : परमहंस....

पूज्य गुरुदेवश्री : परमहंस का अर्थ दूसरा है। वह तो राग से भिन्न होकर अन्तर्दृष्टि करके, हंस जैसे (पानी) और दूध को भिन्न करता है, खटास डालकर, उसी प्रकार अन्दर राग और स्वभाव को भिन्न करना, इसका नाम हंस है। विकल्प से रहित उत्कृष्टरूप से स्थिरता करना, वह परमहंस है। समझ में आया? अन्तर में दृष्टि का भान नहीं, तत्त्व क्या है, इसकी खबर नहीं, बस हो गया जाओ। माँस खाना हो, स्त्री का भोग, हमको कहाँ है? वह तो जड़ की क्रिया है। बहुत अच्छा। भाव कौन करता है उस समय में? भाव तो तेरा है या नहीं? पाप है तेरा। मर जायेगा ऐसा स्वच्छन्द करेगा तो। समझ में आया? क्या कहते हैं? क्रम में तो ऐसा आनेवाला था, बस! क्रम में ऐसा होनेवाला था। बहुत अच्छी बात है। सुन तो सही। क्रम में आनेवाले की दृष्टि कहाँ घुसती है? ज्ञायक चैतन्यमूर्ति मैं आनन्द हूँ, उसकी दृष्टि है, उसे राग क्रम में आया, उसका ज्ञाता और उसे राग बहुत मन्द आता है। उसे राग मन्द आता है। अज्ञानी क्रमबद्ध... क्रमबद्ध करके स्वच्छन्द सेवन करता है, मिथ्यात्व सेवन करता है, राग–द्वेष करता है और कहता है कि हमको आनेवाला था। वह मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का पोषण करता है। समझ में आया?

(उन्मत्त) जैसे,... गहल जैसा, पागल–पागल बस। कहा नहीं? मोक्षमार्गप्रकाशक पढ़कर आया था एक साधु। स्थानकवासी का था, फिर मन्दिरमार्गी हो गया। फिर यहाँ था चातुर्मास। यहाँ आये। निश्चय हो उसमें क्या है? चाहे जो हो, परन्तु निश्चय हो उसमें तीव्र राग आता ही नहीं। सुन तो सही! जिसे निश्चय का भान दृष्टि हुई, अनन्तानुबन्धी का राग तो होता ही नहीं। ऐसा तीव्र राग करे और माने कि हमको कुछ नहीं, हमको कुछ नहीं। मर जायेगा। निगोद में जायेगा। समझ में आया? बात तो ऐसी है।

मूर्च्छित जैसे,... मूर्च्छा में पड़ा न बस ऐसा। छह–आठ घण्टे तक ऐसे का ऐसा

आँख बन्द करके। क्या किया तूने? शुभ विकल्प भी नहीं किया। ऐसे का ऐसे आँख बन्द करके बस प्रमाद... प्रमाद। **सुषुप्त जैसे,....** सो रहा हो न, सो गया हो। थोड़ा-थोड़ा ऐसे हो। हम ध्यान करते हैं। क्या ध्यान करता है? **बहुत घी-शक्कर खीर खाकर तृप्ति को प्राप्त हुए....** खा कर बैठा हो न, ऐसा मानो बस। पेट हो बड़ा, ऐसा शरीर। हमको निश्चय हो गया। अरे! भगवान! निश्चय हो, उसकी दिशा दूसरी होती है।

मुमुक्षु : आत्मा तृप्त हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : किस प्रकार तृप्त हुआ? कहते हैं। एक हमने सुना था। (संवत्) १९७० के वर्ष में। राजकोट... ७४ में दीक्षा ली थी। वाल-बाल लोंच किये थे न! लोंच कराते हैं न उसमें तो। (संवत्) १९७० के वर्ष में जब पहली दीक्षा ली तब। वर्षा आयी तो एक राम मन्दिर में गये। वर्षा आती थी न, तो एक बाबा बोला देखकर कि आहाहा! अरे! नारायण को दुःख नहीं देना। ऐसा बोले। १९७० के वर्ष की बात है। ७० समझे न? ५१ वर्ष हुए।

मुमुक्षु : ७ और १०।

पूज्य गुरुदेवश्री : १९७०। १९००, ७ और १०। ५० वर्ष हुए। सुन्दर शरीर था, कोमल शरीर था, यह तो ५० वर्ष पहले की बात है। बाद में तो हम दिशा को जंगल जाते थे, वहाँ वर्षा आयी। वह बाबा बोला, नारायण को दुःख नहीं देना, जितनी अनुकूलता करे, साता उपजावे, आत्मा को सुख दे, उतना लाभ होगा। आत्मा नारायण है। उसे अपवास करना और कष्ट देना, यह दुःख है—ऐसा कहता है। माल उड़ाना। आत्मा नारायण को तृप्ति कराना। नारायण को दुःख (नहीं देना)। अरे! मर जायेगा। तृप्ति तुझे क्या राग की क्रिया से तृप्ति होगी? नारायण भगवान आत्मा है, वह तो राग से रहित दृष्टि करके तृप्ति होगी। राग से तृप्ति होगी तुझे? नारायण का अर्थ क्या? राग तो दुःख है, अतृप्ति है। शुभाशुभ विकल्प उठे, वह सब अतृप्ति है। आत्मा ज्ञान शीतल शान्ति (स्वरूप है), ऐसी अन्तर में दृष्टि करना, उससे नारायण को तृप्ति होती है। समझ में आया? राग का अभाव करके स्थिर होना, वही आत्मा की तृप्ति है। राग-भोग की वृत्ति है, वह अतृप्ति है। मर जायेगा, कहा। ऐसे के ऐसे बाबा बोले। समझ में आया?

देखो! **खाकर तृप्ति को प्राप्त हुए (-तृप्त हुए) हों ऐसे,....** ऐसे दिखते हैं ऐसे। **मोटे शरीर के कारण जड़ता उत्पन्न हुई हो...** महाध्यानी महन्त है भाई! इसे तो चाहे जो खिलाओ। **ऐसे, दारुण बुद्धिभ्रंश से मूढ़ता हो गई हो ऐसे,....** देखो! **मोटे शरीर के कारण जड़ता (-मन्दता, निष्क्रियता) उत्पन्न हुई हो ऐसे,...** कुछ कुछ निष्क्रिय जड़ जैसा दिखता है। है अन्दर अशुभराग, परन्तु बाहर में मानो...

मुमुक्षु : पतले शरीरवाले को....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जाड़ा शरीर इसलिए यह तो दृष्टान्त दिया।

मुमुक्षु : यह जैसा करता है, वैसा यह करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा। स्थूल शरीर की यहाँ कहाँ बात है? मोटे शरीर की भाँति। मोटा शरीर हो जड़ता, ऐसा उसे ऐसा हो जाये जड़ता जैसा। स्थूल शरीरवाले को होता है, ऐसा यहाँ नहीं परन्तु स्थूल शरीरवाला जैसे... वैसे यह एक स्थूल में कल्पना करके बैठा। बस हो गया मुझे। हमको निश्चय हो गया। कुछ जरा कल्पना करे कि सुख जरा मन्द राग में लगे, (माने कि) आत्मा का अनुभव हो गया। अरे...! भाई! अनुभव आनन्द की दिशा तो कोई दूसरी ही है। समझ में आया? ऐसी अन्तर्दृष्टि किये बिना, अकेले शुभभाव का आचरण न करे, **दारुण बुद्धिभ्रंश से...** बुद्धि कठिन बुद्धि से भ्रंश हो गया है। **मूढ़ता हो गई हो ऐसे,....** ओहोहो! कितने शब्द!

ज्ञानानन्द अनन्त एक द्रव्य, उसके अनन्त गुण, उनकी अनन्त पर्याय, खबर नहीं पर्याय की, नहीं खबर द्रव्य की, नहीं खबर गुण की, नहीं खबर विकार की। समझ में आया? पर्याय में शुद्धि कितनी होती है, किस प्रकार से, उसकी खबर नहीं। वह तो सब ध्यान करता है, हम ध्यान करते हैं। किसका ध्यान? खरगोश के सींग का? ससलाना सींग अर्थात् खरगोश का? खरगोश को सींग होते नहीं। तो वस्तु क्या है, उसकी तो तुझे खबर नहीं। समझ में आया? सर्वज्ञ भगवान के मुख से निकली हुई चीज़ एक आत्मा, एक आत्मा, अनन्त-अनन्त गुण, अनन्त संख्या से गुण का पिण्ड। एक समय में अनन्त पर्याय, एक समय में शुभ-अशुभ आदि राग, ऐसी चीज़ क्या है, उसकी खबर नहीं, दृष्टि करनी नहीं, उसे जानने का प्रयत्न करना नहीं और हमको निश्चय हो गया और

व्यवहार का आचरण छोड़कर सुखशैय्या, सुखशैय्या, सातासिलीया। अकेला पाप बाँधता है। समझ में आया?

जिसका विशिष्टचैतन्य मुँद गया है,... जिसका खास चैतन्य मुँद गया है। मुँद गया को क्या कहते हैं? बिडाई (गुजराती शब्द) गया है। चैतन्यस्वभाव, कमल जैसे खिलना चाहिए, वैसे पर्याय में खिलना चाहिए दृष्टि करके। भान नहीं, राग की तीव्रता में अपनी पर्याय में विशिष्ट मुँद गया होता है, संकुचित हो गया है। **ऐसी वनस्पति जैसे,....** लो! वनस्पति जैसा हो गया। जैसे वनस्पति हिलती नहीं वैसा।

मुनीन्द्र की कर्मचेतना को पुण्यबन्ध के भय से न अवलम्बते हुए.... देखो! मुनीन्द्र, उनकी कर्मचेतना अर्थात् शुभ आचरण। क्या कहा? आँकड़ा। पुण्यबन्ध। (नीचे फुटनोट में) ऐकड़ा-ऐकड़ा नीचे। यह कहाँ से आया नीचे नोट? वह भिन्नसाध्यसाधन का। यह आया था न वह भिन्नसाध्यसाधनभाव। नीचे नोट लिखा है इस ओर। **मोक्षमार्गी ज्ञानी जीवों को सविकल्प प्राथमिक दशा में (छठवें गुणस्थान तक) व्यवहारनय की अपेक्षा से भूमिकानुसार भिन्नसाध्यसाधनभाव होते हैं अर्थात् भूमिकानुसार नव पदार्थों श्रद्धा सम्बन्धी, अंगपूर्व सम्बन्धी ज्ञान और श्रावक-मुनि के आचार सम्बन्धी शुभभाव होते हैं।—यह बात केवलनिश्चयावलम्बी जीव नहीं मानता...** नहीं... नहीं... नहीं... नहीं। समझ में आया? **(आंशिक शुद्धि के साथ की) शुभभाववाली प्राथमिक दशा को वे नहीं श्रद्धते और स्वयं अशुभ भावों में वर्तते होने पर भी अपने में उच्च शुद्ध दशा की कल्पना करते स्वछन्दी रहते हैं।** कहो, समझ में आया?

यहाँ कहा कि पुण्यबन्ध के भय से। नीचे है। **केवलनिश्चयावलम्बी जीव पुण्यबन्ध के भय से डरकर....** अरे! दया, दान, अरे! भक्ति, अरे! यह बन्ध है। ऐसा करके शुभभाव से डरता है और शुभभाव करता नहीं। **मन्दकषायरूप शुभभाव नहीं करते और पापबन्ध के कारणभूत अशुभभावों का सेवन तो करते रहते हैं।** भोग की वासना, युद्ध की वासना, क्रोध, मान, माया, लोभ, मद-अभिमान ऐसे भाव तो करता है। परन्तु मुनीन्द्र को छठवें गुणस्थान के योग्य कुन्दकुन्दाचार्य जैसे मुनि हों तो भी आत्मा का अनुभव, दृष्टि की स्थिरता के साथ इतना शुभ आचरण का भाव, पंच

महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण आये बिना रहते नहीं। उसे तो मानता नहीं कि नहीं, ऐसे शुभभाव नहीं। समझ में आया?

पुण्यबन्ध के भय से न अवलम्बते हुए और परम नैष्कर्म्यरूप ज्ञानचेतना में विश्रान्ति को प्राप्त नहीं होते हुए,... दोनों बातें। पुण्यबन्ध से डरता है, स्वरूप में स्थिर नहीं होता। समझ में आया? **परम नैष्कर्म्यरूप ज्ञानचेतना...** देखो! परमनैष्कर्म्यरूप रागरहित, भगवान आत्मा की रागरहित दशा ऐसी **ज्ञानचेतना में विश्रान्ति को प्राप्त नहीं होते हुए, (मात्र) व्यक्त-अव्यक्त प्रमाद के आधीन वर्तते हुए,...** प्रगट प्रमाद और अप्रगट प्रमाद के आधीन होकर जड़ जैसा होता है। समझ में आया?

प्राप्त हुए हलके (निकृष्ट) कर्मफल की चेतना के प्रधानपनेवाली प्रवृत्ति... हल्के अशुभभाव की कर्मफल की चेतना **जिसे वर्तती है, ऐसी वनस्पति की भाँति,...** वनस्पति को कर्मफल है न अन्दर? दु:ख का और सुख का भोग। ऐसा हल्का **केवल पाप को ही बाँधते हैं।** लो! शुद्ध की दृष्टि, ज्ञान करता नहीं, परिणाम पुण्य का आचरण करना छोड़ दिया। हमारे करना नहीं, हमारे नहीं करना। पाप बाँधता है। समझ में आया? भाई! व्यवहारावलम्बी की बात ठीक लगे और निश्चयावलम्बी की बात जरा ठीक न लगे कितनों को। और यह कहाँ आया ऐसा? ऐसी बात है।

मुनि के योग्य या श्रावक के योग्य ऐसी भूमिका निश्चय प्रगट हुई हो तो भी शुभ आचरण का भाव तो होता है। न हो तो क्या वीतराग हो गया? या अज्ञानी रहा। शुद्धता की भूमि की खबर नहीं, शुभभाव की कर्मचेतना का अवलम्बन लेना नहीं। शुभभाव कर्मचेतना। अशुभभाव होगा अकेला कल्पना का। **केवल पाप को ही बाँधते हैं।** देखो! वह और जरा पुण्य व्यवहारावलम्बीवाला स्वर्गादि (प्राप्त करेगा ऐसा) कहा था। समझ में आया? स्वर्गादि में जाकर परम्परा अत्यन्त दीर्घ संसार में भ्रमण करनेवाला कहा। सम्यग्दर्शनसहित शुभभाव को छोड़ सकता नहीं, शुभभाव होते हैं तो देवलोकादि प्राप्त करके क्रम से परम्परा से मोक्ष को प्राप्त करता है। यह तो (निश्चयावलम्बी) केवल पाप ही बाँधता है।

कहा भी है कि:—णिच्छयमालम्बंता णिच्छयदो णिच्छयं अयाणंता। णासंति

चरणकरणं बाहरिचरणालसा केई॥ (अर्थात् निश्चय का अवलम्बन लेनेवाले परन्तु निश्चय से (वास्तव में) निश्चय को नहीं जाननेवाले... वास्तव में निश्चय ज्ञानस्वरूप, आनन्द और वीतरागस्वभाव है, उसका तो ज्ञान, दृष्टि करते नहीं। **कई जीव बाह्य चरण में आलसी वर्तते हुए...** और शुभ क्रियाकाण्ड में आलसी वर्तते हुए **चरणपरिणाम का नाश करते हैं।** शुभभाव का भी नाश करते हैं तो अकेला पाप बाँधते हैं। समझ में आया? लम्बी बात है न अन्दर? नोट।

इस गाथा की संस्कृत छाया इस प्रकार हैः—नीचे नोट है न? **निश्चयमालम्बन्तो निश्चयतो निश्चयमजानन्तः। नाशयन्ति चरणकरणं बाह्यचरणालसाः केऽपि॥** अब यह लिखा है न अन्दर में ऐकड़ा (१)? **श्री जयेसनाचार्यदेवरचित टीका में (व्यवहार-एकान्त का स्पष्टीकरण करने के पश्चात् तुरन्त ही) निश्चयएकान्त का निम्नानुसार स्पष्टीकरण किया गया है:—और जो केवलनिश्चयावलम्बी वर्तते हुए रागादिविकल्परहित परमसमाधिरूप शुद्ध आत्मा को उपलब्ध नहीं करते होने पर भी,....** अन्दर समाधि शान्ति निर्विकल्प को प्राप्त नहीं किया और **मुनि को (व्यवहार से) आचरनेयोग्य षड्-आवश्यकादिरूप अनुष्ठान....** सामायिक विकल्प हों राग। **अनुष्ठान को तथा श्रावक को (व्यवहार से) आचरनेयोग्य दानपूजादिरूप अनुष्ठान को दूषण देते हैं, वे भी उभयभ्रष्ट वर्तते हुए, निश्चयव्यवहार-अनुष्ठानयोग्य अवस्थान्तर को न जानते हुए पाप को ही बाँधते हैं (अर्थात् केवल निश्चय-अनुष्ठानरूप शुद्ध अवस्था से भिन्न ऐसी जो निश्चय-अनुष्ठान और व्यवहारअनुष्ठानवाली मिश्र अवस्था उसे न जानते हुए पाप को ही बाँधते हैं); परन्तु यदि शुद्धात्मानुष्ठानरूप मोक्षमार्ग को और उसके साधकभूत (व्यवहारसाधनरूप) व्यवहाररमोक्षमार्ग को माने, तो भले चारित्रमोह के उदय के कारण शक्ति का अभाव होने से शुभ-अनुष्ठानरहित हों...** शुभराग उस समय नहीं होता, परन्तु दृष्टि में है कि मैं ज्ञान हूँ, आनन्द हूँ और शुभ को छोड़कर मुझे स्थिर होना है। शुभराग आता है, अशुभभाव होता है न समकिती को? समझ में आया? तो भले **शुभ-अनुष्ठानरहित हों तथापि—यद्यपि वे शुद्धात्मभावनासापेक्ष...** शुद्ध चैतन्य की दृष्टि की सापेक्ष **शुभ-अनुष्ठानरत पुरुषों जैसे नहीं हैं....** जैसे शुद्ध स्वभाव की दृष्टि ज्ञान में लीनवाला शुभभाव है, ऐसे यह ज्ञानी निश्चय की दृष्टिसहित शुभभाव में रह नहीं

सकता। समझे? तो निश्चयसहित के शुभभाववाले से तो वह हल्का है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दृष्टि बनाये रखना।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टि बनाये रखना और शुभभाव में बन्ध का कारण है, मुझे शुभ होना चाहिए, व्यवहार, ऐसा मानता है। रह नहीं सकता।

तथापि शुभ-अनुष्ठानरत पुरुषों जैसे नहीं हैं... सम्यग्दृष्टि को जो शुभभाव है, ऐसे नहीं। सम्यग्दृष्टि यहाँ शुभभाव में आया नहीं और अशुभभाव में आया, दृष्टि में है तो वह अशुभ जैसा नहीं। **तथापि—सराग सम्यक्त्वादि द्वारा व्यवहारसम्यग्दृष्टि हैं और परम्परा से मोक्ष प्राप्त करते हैं।—इस प्रकार निश्चय-एकान्त के निराकरण की मुख्यता से दो वाक्य कहे गये।** लो! यह भी स्पष्टीकरण किया।

(यहाँ जिन जीवों को 'व्यवहारसम्यग्दृष्टि' कहा है, वे उपचार से सम्यग्दृष्टि हैं, ऐसा नहीं समझना। परन्तु वे वास्तव में सम्यग्दृष्टि हैं, ऐसा समझना। उन्हें चारित्र अपेक्षा से मुख्यतः रागादि विद्यमान होने से सराग सम्यक्त्वाले कहकर 'व्यवहारसम्यग्दृष्टि' कहा है। श्री जयेसनाचार्यदेव ने स्वयं ही १५०-१५१वीं गाथा की टीका में कहा है कि—जब यह जीव आगमभाषा से कालादिलब्धिरूप और अध्यात्मभाषा से शुद्धात्माभिमुख परिणामरूप स्वसंवेदनज्ञान को प्राप्त करता है, तब प्रथम तो वह मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियों के उपशम और क्षयोपशम द्वारा सराग-सम्यग्दृष्टि होता है।) सराग समकित का अर्थ—है तो समकित सच्चा, परन्तु साथ में राग है, इस अपेक्षा से सराग समकित कहने में आया है। तो कहते हैं कि अकेले निश्चय का भान नहीं, दृष्टि नहीं, प्रयत्न नहीं, उत्सुकता नहीं, सावधानी नहीं और शुभभाव छोड़ देना। नहीं, यह हमारे करना नहीं, यह हमारे नहीं करना। तो अकेला पाप बाँधकर... बस पाप बाँधे, फिर संसार में भटकेगा। अब दो के मेलवाले (सुमेल) वाले कौन हैं, इसकी बात करेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल १३, शनिवार, दिनांक - १९-०९-१९६४, गाथा-१७२, प्रवचन-२५

.... उसका विवरण चलता है। उसमें तीन बोल तो आ गये। क्या आया? कि अपना आत्मा (को) अनादि से, अज्ञानी का आत्मा को अनादि से राग-द्वेष की अस्थिरता अनादि से है, वह छूटी नहीं है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ है। समझ में आया? आत्मा चैतन्य है। शुद्ध आनन्द का अनुभव, निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चयज्ञान और निश्चयस्वरूप की स्थिरता हुई है, परन्तु अभी राग जो वासना अस्थिरता है, वह अनादिकाल की है, वह नाश नहीं हुई। समझ में आया? तो उसकी वासना होती है। निश्चय का साधन करता है तो उस समय व्यवहार राग की मन्दता का भी व्यवहारसाधन ज्ञानी को आता है। उस व्यवहारसाधन द्वारा क्रम-क्रम से शुद्धता की वृद्धि करता है, ऐसा आरोप से कथन किया गया है। अपना वस्तु का स्वभाव है, उसके आश्रय से ही शुद्धि की वृद्धि करता है। परन्तु राग की मन्दता व्यवहार निमित्तरूप साधन है, उससे संस्कार में आगे वृद्धि करता है, ऐसा कहने में आया है। एक बात यहाँ पूरी हुई।

दूसरी बात कि अकेला व्यवहारावलम्बी अनादि काल का, निश्चय स्वभाव का साधन अन्तर में प्रगट किया नहीं और अकेला व्यवहार, दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, स्वाध्याय, वाँचन, पूछना, पर्यटन आदि सब, अकेले शुभराग में रहता है और शुभराग से मुझे संवर, निर्जरा और मोक्ष होगा—ऐसा माननेवाले व्यवहारावलम्बी पुण्यपरिणाम को बाँधकर स्वर्गादि में जाकर परम्परा से चार गति में भटकेगा। यह दूसरी बात की।

तीसरी बात ऐसी कही कि निश्चयावलम्बी, जिसे आत्मा का भान नहीं और आत्मा निश्चय शुद्ध है... शुद्ध है... शुद्ध है... ऐसा बकते हैं। और शुभभाव आवे तो कहते हैं कि नहीं, शुभभाव नहीं, यह शुभभाव नहीं, यह शुभभाव नहीं, यह शुभभाव नहीं। नामस्मरण, भक्ति, पूजा, दान, व्यवहार व्रत का विकल्प आवे तो कहते हैं, यह नहीं। ऐसे शुभराग का निषेध करते हैं और निश्चय की प्राप्ति अन्दर करते नहीं। अकेले पाप के परिणाम करके पाप बाँधकर चार गति में भटकते हैं। ऐसे तीन बोल आये।

चौथा बोल यहाँ। समझ में आया? देवीलालजी! **(अब निश्चय-व्यवहार दोनों का सुमेल रहे....** है भाई? कहाँ है? २६५। खबर पड़े न कहाँ है। **(अब निश्चय-**

व्यवहार.... सेठ! है इसमें? मिला? है। **(अब निश्चय-व्यवहार....** निश्चय का अर्थ क्या? कि अपना स्वभाव शुद्ध द्रव्य ज्ञायक है। उसका आश्रय लिया है, ऐसा निश्चय शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति का अंश प्रगट हुआ, इसका नाम निश्चय और जितनी कमी है, उसमें राग की मन्दता का शुभराग, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति इत्यादि-इत्यादि जो व्यवहार के कहे वे, वह भाव साथ में है। **दोनों का सुमेल रहे....** स्वभाव ज्ञायक चैतन्य है। शुद्ध परमानन्द की मूर्ति का भी अवलम्बन लेकर जितनी स्वआश्रय से शुद्धदशा प्रगट की है, उसका नाम निश्चय कहा जाता है। उसमें जरा पराश्रय जितना व्यवहार रहता है, वह छठवें गुणस्थान के योग्य पंच महाव्रत आदि के परिणाम, उसे व्यवहार कहा जाता है। यह निश्चय और व्यवहार का सुमेल-संगति है। समझ में आया? यह सुमेल रहे। छठवाँ गुणस्थान हो...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी कहा वह दूसरे प्रकार से अब कहते हैं। अब शीघ्र स्वभाव सन्मुख ढलना। पहले में कहा था कि राग की मन्दता करते-करते आगे बढ़ना, ऐसा कहा था। यहाँ अब राग आता है परन्तु स्वभाव सन्मुख होकर उसका शीघ्ररूप से नाश करके मुक्ति लेना, ऐसा कहते हैं। यह बात कल आ गयी। परन्तु याद नहीं। कल गया न वह तो। २४ घण्टे हो गये। समझ में आया? यह बात कल पहले आ आ गयी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, गत कल को चौबीस घण्टे हो गये। याद न रह सके, ऐसा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहा था। कल तो पाँच बोल कहे। अभी तो चार कहे। यह चौथा बोल चलता है, परन्तु कल तो पाँच कहे थे। समझ में आया? १७०वीं गाथा लेकर (कहा था)। राग की मन्दता है, स्वभाव का साधन है। ऐसे राग से पुण्य बाँधकर देवलोकादि क्लेश पाकर फिर राग का अभाव करके मुक्ति को प्राप्त करेगा। यह पहला बोल इसमें नहीं था, वह लिया था। समझ में आया?

दूसरा बोल यह आया (जो) इसमें पहला बोल आया। यहाँ भी पहले अनादि की राग की वासना है। अनादि की। श्रद्धा, ज्ञान तो वही है। राग तो अनादि की अस्थिरता है न! तो उसे टालने का प्रयत्न धीरे-धीरे करने से स्वभाव सन्मुख की दृष्टि रखकर स्वभाव का शुद्ध साधन तो है। परन्तु राग की मन्दता जब तक न छूटे तो उसमें स्वर्गादि में जाकर क्रम-क्रम से राग घटाकर मोक्ष होगा। समझ में आया? यह पहला बोल यहाँ १७२ में (आया)। चन्दुभाई!

और दूसरा बोल व्यवहारावलम्बी का (आया)। आत्मा—स्वद्रव्य का आश्रय बिल्कुल नहीं। समझ में आया? चैतन्य ज्ञानानन्द पूर्ण शुद्ध स्वभाव का आश्रय बिल्कुल नहीं। अकेले देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति, विचार, स्वाध्याय करना, वांचन, पृछना, पर्यटना,.... इत्यादि। यह अकेले कल्पना के शुभभाव में रहता है और मानता है कि शुभराग से क्रम से मुझे मोक्ष होगा। तो कहते हैं कि उस शुभराग से देवलोकादि मिलेंगे और परम्परा चार गति में भटकेगा। समझ में आया? निश्चय में यह लिया कि आत्मा का—स्व का आश्रय तो बिल्कुल लिया नहीं और बातें करे कि आत्मा निर्लेप है, शुद्ध है, ऐसा है, ऐसा है और शुभराग का कारण जब आवे तो कहे, यह नहीं। शुभ, यह तो बन्ध का कारण है... बन्ध का कारण है... बन्ध का कारण है। ऐसे शुभ में आता नहीं, निश्चय प्राप्त करता नहीं। बीच में अशुभभाव करके पापबन्ध करके चार गति में भटकेगा।

अब यहाँ शीघ्र स्वभाव साधन के साथ सुमेल और क्रम-क्रम से वहाँ कहा था, (यहाँ) उग्ररूप से पुरुषार्थ करके शीघ्र मोक्ष जायेगा, ऐसी बात का सुमेल करते हैं। यह पाँचवीं बात रह गयी, हमारे चन्दुभाई कहते हैं कि दोनों की मिश्र की बात इसमें क्यों नहीं? यह सुनो। बाद में थोड़ी आनेवाली होगी तो आयेगी। **अब निश्चय-व्यवहार...** निश्चय किसे कहा, समझ में आया? कि स्व चैतन्य ज्ञानानन्द शुद्ध स्वभाव वस्तु है, उसका आश्रय किया है। निर्विकल्प दृष्टि, स्वसंवेदन ज्ञान का वेदन, और राग के अभावरूप स्थिरता का अंश प्रगट किया, इसका नाम निश्चय। साथ में व्यवहार विकल्प आवे—वांचन, पृछना, पर्यटना इत्यादि। स्वाध्याय इत्यादि, यह श्रद्धायोग्य है, यह श्रद्धायोग्य

नहीं, वह उसमें गया। यहाँ भी यह लिया कि बारह प्रकार के तप में विकल्प आता है इत्यादि। यह व्यवहार का सुमेल रहता है। नीचे लिखा है देखो। **निश्चय=व्यवहार के सुमेल की स्पष्टता के लिये पृष्ठ २५८ की द्वितीय, टिप्पणी देखें।** अर्थात् दूसरे फुटनोट में यह लिखा है। **भूमिकानुसार प्रवर्तनेवाले ज्ञानी जीवों का...** ज्ञानी जीवों का **प्रवर्तन और उसका फल कहा जाता है:—** ज्ञानी जीवों का प्रवर्तन और उसका फल कहा जाता है। देखो! इसमें तो बहुत स्पष्ट कर दिया। अभी पहले बोल में तो ऐसा लगता है कि अनादि वासना घटे और व्यवहार भेद साध्यसाधन आया। अभिन्न साध्यसाधन वहाँ गौण था, यहाँ खुल्ला कर दिया। समझ में आया? क्या खुल्ला किया? सुनो!

परन्तु जो, अपुनर्भव के (मोक्ष के) लिये... ध्यान रखना। यह निश्चय और व्यवहार छठवें गुणस्थान में है, ऐसा इस टीका में सिद्ध करते हैं। समझ में आया? निश्चय सातवें में है और छठवें में अकेला व्यवहार है, ऐसा नहीं। कहते हैं कि **अपुनर्भव के (मोक्ष के) लिये...** मुख्यरूप से छठवें में, गौणरूप से पाँचवाँ और चौथा भी लेना। **अपुनर्भव के (मोक्ष के) लिये नित्य उद्योग करनेवाले...** देखो! मोक्ष के लिये नित्य उद्योग करनेवाले। स्वभावसन्मुख कायम प्रयत्न का प्रवाह चालू है। समझ में आया? ज्ञानस्वरूप चैतन्य अकेला विकल्परहित, उसकी ओर प्रयत्न निरन्तर चालू है। **(मोक्ष के) लिये नित्य उद्योग करनेवाले...** एक। अभी बहुत बात आयेगी।

महाभाग भगवन्त... छठवें गुणस्थानवाले को भी महाभाग्य भगवन्त कहा गया है। अमरचन्दभाई! देखो, कोई कहता है कि यह व्यवहार छठवें तक है और सातवें में निश्चय होता है, बाद में होता है। यहाँ निश्चय और व्यवहार एक साथ है, ऐसा कहा है। समझ में आया? **नित्य उद्योग करनेवाले...** किसमें? मोक्ष के लिये। पूर्ण शुद्ध की प्राप्ति के लिये स्वआश्रय में कायम प्रयत्न करनेवाले, ज्ञाता... ज्ञाता... ज्ञाता... स्वभाव के प्रति नित्य पुरुषार्थ करनेवाले। महाभाग भगवन्त। समझ में आया। नीचे अर्थ किया है। **महाभाग=महापवित्र; महागुणवान; महाभाग्यशाली।** ऐसे भगवन्त। मुख्यरूप से छठवें गुणस्थान की बात चलती है। गौणरूप से पाँचवाँ और चौथा भी साथ में है ही।

निश्चय-व्यवहार में से किसी एक को ही नहीं अवलम्बते होने से... क्या

कहा ? निश्चय और व्यवहार में किसी एक का अवलम्बन नहीं, दोनों साथ में है। है न ? **(-केवलनिश्चयावलम्बी या केवलव्यवहारावलम्बी नहीं होने से)...** इसका अर्थ क्या हुआ ? कि निश्चय और व्यवहार दोनों एक साथ है। समझ में आया ? कहाँ ? यह प्रयत्न करता है, जो अधिकार चलता है, वह जीव। अपने स्वभाव चैतन्य की ओर झुकाव है, मोक्ष के लिये नित्य प्रयत्न है और महाभाग्य **निश्चय-व्यवहार में से किसी एक को ही नहीं अवलम्बते होने से...** अर्थात् कि दोनों साथ रहने से। है न ? समझ में आया ?

एक का नीचे स्पष्टीकरण है। **मोक्ष के लिये नित्य उद्यम करनेवाले महापवित्र भगवन्तों को....** तिगड़ा (३)। **(-मोक्षमार्गी ज्ञानी जीवों को)...** मोक्षमार्गी ज्ञानी जीवों को। छठवें, पाँचवें, चौथे में मोक्षमार्गी ज्ञानी जीवों को ऐसा कहने में आया है। समझ में आया ? कि छठवें में मोक्षमार्गी नहीं और सातवें में मोक्षमार्गी है, वह तो चारित्र की पूर्णता की अपेक्षा के योग्य निश्चयमोक्षमार्ग वहाँ कहा है। समझ में आया ? देवीलालजी ! देखो ! यह गड़बड़ बहुत चलती है, उसका यहाँ स्पष्टीकरण है।

कहते हैं कि **निरन्तर शुद्धद्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप का सम्यक् अवलम्बन वर्तता होने से...** शुद्ध चैतन्य ज्ञायकभाव जो शुद्ध द्रव्यनय का विषय है, उसका कायम, निरन्तर अवलम्बन वर्तता होने से **उन जीवों को...** उन जीवों को। **उस अवलम्बन की तरतमतानुसार....** उस अवलम्बन की तरतमता अनुसार। समझे ? **सविकल्प दशा में भूमिकानुसार....** देखो ! छठवें गुणस्थान में सविकल्प दशा, राग की दशा। दया, दान, भक्ति, व्रत, अथवा विनय आदि का विकल्प है। ऐसी **दशा में भूमिकानुसार शुद्धपरिणति....** यहाँ ऐसा लेना है। छठवें गुणस्थान के योग्य, पंचम गुणस्थान योग्य सविकल्पदशा है। समझ में आया ? वाणी, पृछना, पर्यटना इत्यादि (और) अनशन, ऊनोदर, विकल्प आदि ऐसे काल में उसकी स्वद्रव्य के आश्रय से शुद्ध परिणति है। समझ में आया ? आहाहा !

ऐसी **भूमिकानुसार शुद्धपरिणति....** चौथे गुणस्थान में सविकल्पदशा में भूमिकानुसार अनन्तानुबन्धी मिथ्यात्व के अभाव की शुद्ध परिणति। पाँचवें में विकल्प काल में उस पंचम गुणस्थान के योग्य शुद्ध परिणति। छठवें गुणस्थान में विकल्प, पंच

महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण का आया, उस काल में उस गुणस्थान के योग्य शुद्ध परिणति। परिणति समझे ? शुद्ध परिणति, शुद्ध अवस्था, निर्मल दशा द्रव्य के आश्रय से प्रगट हुई स्वआश्रय से, उसे यहाँ विकल्प की दशा में भूमिकानुसार शुद्ध परिणति (कही है)। समझ में आया ? यह रागादि आते हैं। समझ में आया ? देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा आदि इत्यादि विकल्प है। उस विकल्प के काल में जितनी शुद्ध परिणति अन्दर स्वआश्रय से है, वह **शुभपरिणति का यथोचित सुमेल....** वह शुद्धपरिणति और साथ में शुभराग, उस भूमिकायोग्य शुभविकल्प, दोनों की यथोचित—यथा उचित सुमेल **(हठ बिना)...** हठ बिना सहज उस भूमिका में ऐसा विकल्प आता है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, ज्ञानी को विकल्प भूमिका में आता है। उस समय शुद्ध परिणति सहज भूमिकायोग्य है। दोनों का सुमेल। समझ में आया ?

इसलिए वे जीव इस शास्त्र में (२४६वें पृष्ठ पर) जिन्हें केवलनिश्चयावलम्बी कहा है, ऐसे केवलनिश्चयावलम्बी नहीं हैं.... दोनों का निषेध किया न ? निश्चय-व्यवहार में से किसी का अवलम्बन नहीं। अर्थात् कि अकेले निश्चय का अवलम्बन नहीं। **तथा (२४५वें पृष्ठ पर) जिन्हें केवलव्यवहारावलम्बी कहा है, ऐसे केवल-व्यवहारावलम्बी नहीं हैं।** समझ में आया ? आहाहा !

मुमुक्षु : दोनों की मदद तो सुमेल....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, दोनों का एकान्त अवलम्बन नहीं। परन्तु दोनों साथ में है। निश्चय का भी अवलम्बन स्वभाव की शान्ति, श्रद्धा, ज्ञान प्रगट हुए हैं और उस भूमिका के योग्य सविकल्पराग की दशा भी है। सविकल्पदशा राग है, भूमिकायोग्य शुद्धपरिणति भी है। अकेला निश्चय का अवलम्बन, अकेला व्यवहार का अवलम्बन है नहीं। अकेले निश्चय का अवलम्बन है और व्यवहार नहीं तो भी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? और अकेला व्यवहारावलम्बन है, निश्चय अन्दर नहीं तो भी मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : इसलिए एक-एक की मुख्यता चाहिए, अब दोनों की....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। यह एक-एक की एकान्त की थी। अब यहाँ एकान्त की नहीं, दोनों साथ में है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा अकेला निश्चय... निश्चय (करे और) पर्याय का साधन अन्दर प्रगट नहीं हुआ, स्वभाव का आश्रय प्रगट नहीं हुआ और अकेले शुभभाव में भी अवलम्बन लिया नहीं, तो मात्र निश्चयावलम्बी हुआ, पाप बाँधा और निश्चय का साधन किया नहीं, अकेले शुभराग को साधन माना, वह व्यवहारावलम्बी हुआ। ज्ञानी दोनों का, एक का अवलम्बन आना और एक का नहीं, ऐसा नहीं। दोनों साथ में है। नहीं एकान्त निश्चय का अवलम्बन, नहीं एकान्त व्यवहार का अवलम्बन। एक साथ शुद्धपरिणतियोग्य निश्चय है और उस काल में राग का विकल्प देव-गुरु-शास्त्र, भक्ति, व्यवहाररत्नत्रय, नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, आचारांग आदि का ज्ञान और पंच महाव्रतादि के विकल्प, वे दोनों साथ में हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उपयोग की बात नहीं, है। साथ में है। निमित्तरूप साधन कहने में आवे, ऐसी परिणति है। इतना सिद्ध करना है। उससे मोक्ष होगा, यह व्यवहार से कथन किया गया है। निश्चय स्वभाव की शुद्ध परिणति से मुक्ति होती है। व्यवहार से कथन उपचार का कथन है। परन्तु है दोनों। शुद्ध परिणति है और शुभ नहीं, ऐसा नहीं और अकेला शुभ है और शुद्ध (परिणति भी) नहीं, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! समझमें आया? देखो! अभी तो इसमें विशिष्टता लेंगे। प्रमाद की प्रवृत्ति हो और टाले। अभी छठवाँ गुणस्थान है, वहाँ आत्मा की निचली दशा की बात है। और एक साथ निश्चय और व्यवहार दोनों हैं। निश्चय सातवें में और व्यवहार चौथे से छठवें में (ऐसा) एक काल में नहीं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह कहते हैं कि एक काल नहीं। व्यवहार का काल भिन्न है, निश्चय का काल भिन्न है। व्यवहार का स्वामी भिन्न है, निश्चय का स्वामी भिन्न है। व्यवहार का भाव भिन्न है, निश्चय का भाव भिन्न है। यह भाव उस काल में भिन्न है, एक काल में भिन्न, ऐसा नहीं। बाद के काल में भिन्न है, ऐसा कहते हैं, यह खोटी बात है। समझ में आया? क्या कहा? व्यवहार का भाव भिन्न, निश्चय का भाव भिन्न परन्तु एक काल में है। वह तो कहे कि व्यवहार का भाव भिन्न है और निश्चय का काल भिन्न है और भाव भी फिर भिन्न है। चन्दुभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह बात तो अनन्त काल में अथवा अकेला निश्चय कल्प ले कि बस, आत्मा निर्लेप है... निर्लेप है... निर्लेप है... शुद्ध है, ज्ञाता है। परन्तु कहाँ से आया निर्लेप? पर्याय में स्व का आश्रय किये बिना प्रगट शुद्ध साधन कहाँ से आया? और आत्मा में क्या है? वह तो विकल्प आता है... विकल्प आता है... शुभराग करो। करते... करते... करते... कल्याण हो जायेगा, वह भी एक साधन है। वह साधन है ही नहीं।

मुमुक्षु : दोनों एक काल में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक काल में है। भाव भिन्न है। भूमिका छठवें, पाँचवें, चौथे की है।

मुमुक्षु : ....दोनों साथ-साथ में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, साथ-साथ में हैं। संवर, निर्जरा भी साथ में है, बन्ध का भाव भी साथ में है। साथ में है, उसकी तो बात चलती है। समझ में आया?

एक का ही अवलम्बन न लेने से (-केवलनिश्चयावलम्बी या केवल-व्यवहारावलम्बी न होने से).... अथवा निश्चय साधन और व्यवहारसाधन दोनों साथ में है। समझ में आया? **अत्यन्त मध्यस्थ वर्तते हुए,...** अर्थात् कि स्वद्रव्य का आश्रय लिया, इतनी शुद्धता प्रगट हुई, वह भी है और परद्रव्य का आश्रय लिया उसमें जरा देव-गुरु-शास्त्र आदि की श्रद्धा, ग्यारह अंग का ज्ञान और पंच महाव्रत के परिणाम आदि, बारह व्रत के परिणाम वे साथ में हैं। दोनों में मध्यस्थ है। मध्यस्थ का अर्थ न तो अकेला निश्चय है, न तो अकेला व्यवहार है। दोनों साथ में है, उसे मध्यस्थ कहते हैं। समझ में आया?

शुद्धचैतन्यरूप आत्मतत्त्व में विश्रान्ति के विरचन की अभिमुख (उन्मुख) वर्तते हुए,.... देखो! क्या कहते हैं? शुद्धचैतन्यरूप आत्मतत्त्व। आत्मा कैसा है? कि शुद्धचैतन्यरूप आत्मतत्त्व। शुद्धज्ञायकभावरूप आतमतत्त्व में विश्रान्ति। उसमें विश्रान्ति— स्थिर होना। स्वभाव ज्ञायकभाव शुद्धचैतन्यमय आत्मतत्त्व है, उसमें स्थिर होना, विश्रान्ति।

विरचन-विशेषरूप से रचना। देखो! शुद्ध चैतन्यरूप आत्मतत्त्व में विश्रान्ति, वह मोक्ष का साक्षात् साधकपना है। उस **विरचन की अभिमुख....** है। ज्ञायकभाव, शुद्धभाव, अनन्त-अनन्त... यह सवेरे बहुत कही थी गुण की व्याख्या। आया था या नहीं?

मुमुक्षु : बहुत आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत आया लो हमारे भाई कहते हैं, बहुत आया। एक-एक गुण का स्वभाव सामर्थ्य ऐसा पूरा द्रव्य, उसके सन्मुख होकर विश्रान्ति अर्थात् अन्तर में स्थिर होता है, विशेष शान्ति स्थिर है। समझ में आया?

और **अभिमुख वर्तते हुए,...** स्वभाव सन्मुख दृष्टि, ज्ञानादि पर्याय। स्वभाव सन्मुख वर्तता हुआ, इतनी बात प्रधानरूप से ली है। अब **प्रमाद के उदय का अनुसरण करती हुई वृत्ति का....** देखो! यहाँ सविकल्पदशा छठवें गुणस्थान की है, पाँचवें गुणस्थान में उसके योग्य। तो यहाँ छठवें गुणस्थान में प्रमाद के उदय का अनुसरण आया जरा। उस भूमिका के योग्य न हो, ऐसा थोड़ा प्रमाद आदि आया, उस **वृत्ति का निवर्तन करनेवाली...** प्रमाद के परिणमन में तीव्र में से निवृत्त करानेवाली शुभक्रिया है। है तो शुभक्रिया प्रमाद। परन्तु तीव्र प्रमाद जरा होता था, उससे वापस हटकर। यह क्रिया कहाँ होती है? सातवें में होती है? यहाँ तो कहा, निश्चय-व्यवहार एकसाथ है और उसे वह होता है। समझ में आया?

ज्ञानस्वरूप चैतन्यप्रभु का आश्रय करके और उसकी विश्रान्ति करके, उसकी सन्मुख तो है, परन्तु अभी पूर्ण नहीं, इसलिए उस भूमिका के योग्य जरा प्रमाद के परिणाम चलित हुए तो ऐसी वृत्ति को-प्रमादवृत्ति को निवर्तन करनेवाली। यहाँ हिन्दी में अर्थ किया है। अपने भाई ने तो पाठ प्रमाण किया होगा न वहाँ। '**प्रमादोदयानुवृत्ति-निवर्तिकां**' इतना पाठ है। इसलिए वहाँ आगे हिन्दी ऐसा किया है कि उसका प्रायश्चित लेते हुए। भाई! यहाँ है न प्रमाद। प्रायश्चित अर्थात् वह विकल्पदशा है। 'यह नहीं' ऐसा प्रायश्चित का विकल्प आता है। समझ में आया? यह पहले आया था न दोषानुसार प्रायश्चित लेता है। उसे आता है। पहले में आया था। कहो, समझ में आया?

ऐसी समझण करना (कि) कैसी चीज़ है? किस प्रकार झुकता है? कैसे

झुकाव है? उसमें भी जरा शुद्ध स्वभाव का अन्तर आश्रय करते हुए मुनि विश्रान्ति स्वभाव की ओर लेते हैं और स्वभाव सन्मुख अभिमुख हैं, तथापि अन्दर प्रमाद की परिणति थोड़ी आती है, उसे निवर्तानेवाला क्रियाकाण्ड। प्रायश्चित का विकल्प आता है विकल्प। वह क्रियाकाण्ड परिणति आती है। समझ में आया? वहाँ निश्चय और व्यवहार दोनों हैं। स्वभाव के आश्रयरूप निश्चय है पर्यायरूप, हों! और इतना विकल्प तीव्र जरा था, वहाँ से हटकर शुभ परिणाम आये, ऐसी **क्रियाकाण्डपरिणति को माहात्म्य में से वारते हुए...** तथापि उस शुभपरिणाम का माहात्म्य अन्दर में नहीं है। क्या कहा, समझ में आया?

मुमुक्षु : अवलम्बन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अवलम्बन है, तथापि माहात्म्य नहीं कि ओहो! यह शुभभाव(रूप) प्रायश्चित हुआ तो इससे मेरी शुद्धि हो जायेगी, ऐसा माहात्म्य नहीं है। शुभराग आया। कहो, समझ में आया? क्या कहा?

देखो! इस अधिकार में बहुत स्पष्ट है। निश्चय-व्यवहार एक साथ है, ऐसा बहुत स्पष्ट है। व्यवहार पहले और निश्चय बाद में... समझ में आया? ऐसा नहीं है। पूर्ण निश्चय हो जाये, वह तो केवलज्ञान है। उसमें तो कोई बात नहीं। यहाँ तो जहाँ निश्चय है, वहाँ व्यवहार है और व्यवहार है, वहाँ निश्चय साथ में किस प्रकार रहता है? और किस भूमिका में है? समझ में आया? अभी बहुत गड़बड़ चलती है, इसलिए धीरे-धीरे यहाँ उसका स्पष्टीकरण होता है। कोई कहे कि नहीं, अकेला व्यवहार, पहले अकेला व्यवहार कहा था। वह 'वासना' आयी थी न पहले? अकेला व्यवहार है। व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उससे बढ़ते-बढ़ते निश्चय सातवें में उससे होगा। समझ में आया? ऐसा नहीं है।

कोई कहे कि व्यवहार का काल भिन्न है, निश्चय का भिन्न है। कोई कहे कि व्यवहार का स्वामी भिन्न है और निश्चय का स्वामी भिन्न है। व्यवहार-निश्चय का भाव भिन्न है। भाव भिन्न है, यह बराबर है, परन्तु एक काल में भिन्न है और वे भिन्न काल में भिन्न है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! उसके लिये तो यह अधिकार है।

मूल गाथा में तो वीतरागता की ही बात है। परन्तु जब तक पूर्ण वीतरागता न हो, तब तक अन्दर वीतराग की परिणति जितनी हुई, उसके साथ उसके योग्य सविकल्प व्यवहाररत्नत्रय आता है। समझ में आया? ऐसे विकल्प काल में भी जरा प्रमाद हो गया हो तो उससे निवर्तकर, प्रायश्चित करके शुभपरिणति की। 'किया' ऐसा यहाँ तो कथन है न! कर्तृत्वबुद्धि नहीं। परन्तु ऐसा शुभभाव आया। उस शुभभाव को भी माहात्म्य से वारता है अर्थात् उसका माहात्म्य नहीं करता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव शुद्ध वह शुद्ध है और राग, वह राग है। परन्तु राग का माहात्म्य नहीं करते। अभी यह बात समझ में नहीं आती। माहात्म्य नहीं करते, यह बात चलती है। तुम्हारा प्रश्न...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु मिश्र की बात नहीं चलती। क्या चलती है, इसकी तुम्हें खबर नहीं। चलती है कि राग आता है, परन्तु उसका माहात्म्य नहीं करते, यह बात चलती है। मिश्र तो हुआ है, वह प्रश्न कहाँ है? यह तो बात की है कि भाई! शुद्ध है, परन्तु यह राग आया, इसका माहात्म्य नहीं करते, यह बात यहाँ चलती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : आदर नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आदर नहीं। है, यह बात तो पहले चल गयी। यह तो कितनी बार कहा। निश्चय स्वभाव के आश्रय से साधन हुआ, वह निश्चय और उस भूमिका में व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प कितनी बार आया? विकल्प है, व्यवहार है, निश्चयकाल में व्यवहार है, व्यवहारकाल में शुद्ध परिणति का काल भी है। परन्तु वह साथ में होने पर भी उस भूमिका के योग्य जरा प्रमाद हो जाये तो प्रायश्चित अथवा 'यह नहीं' ऐसा विकल्प आया, यह विकल्प आया, उसका भी माहात्म्य नहीं करता।

मुमुक्षु : आदर तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : आदर तो स्वभाव सन्मुख है। समझ में आया?

यहाँ तो क्रियाकाण्ड परिणति को माहात्म्य से वारता हुआ। करते हैं, सहज यह विकल्प आया है। आये बिना रहता नहीं। अभी छद्मस्थ है, उसका राग भी (आता है)। शुद्ध परिणति है, स्वद्रव्य के आश्रय से शुद्ध परिणति है श्रद्धा, ज्ञान, स्थिरता का अंश स्वद्रव्य के आश्रय से हुआ, परद्रव्य का आश्रय इतना रहा कि उसमें व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प वर्तता है। वह योग में से जरा सा स्खलित हुआ तो प्रायश्चितरूप से शुभराग आया। समझ में आया? यह तो कथन की पद्धति ऐसी है। यह (अगला राग) तो चला गया और वर्तमान (प्रायश्चितरूप) शुभराग होता है, उसे उसके प्रायश्चितरूप (ऐसा) उसका अर्थ करते हैं। और वह राग आया, उसका माहात्म्य टालते हुए। माहात्म्य नहीं। होता है, है निश्चय और व्यवहार दोनों, परन्तु व्यवहार का माहात्म्य टालते हुए। माहात्म्य नहीं करते, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कठिन भाई!

मूल मार्ग को समझे बिना ऐसी बाह्य में अकेली प्रवृत्ति, क्रियाकाण्ड और या निश्चय शुष्कज्ञानी हो जाये। शुष्कज्ञानी। बस! हो गये हम निर्लेप, शुद्ध है, कुछ है नहीं। कहाँ से नहीं है? अन्दर स्वद्रव्य के आश्रय का प्रयत्न किये बिना शुद्ध की श्रद्धा, ज्ञान की पर्याय प्रगट होती नहीं और प्रगट पर्याय नहीं हुई तब तक शुद्ध... शुद्ध... कहाँ से हुआ? द्रव्य में शुद्ध है, उसमें तुझे क्या आया? समझ में आया? द्रव्य-गुण शुद्ध है, उसमें तेरी पर्याय में क्या आया? माहात्म्य तो यह है।

वस्तु चिदानन्द प्रभु ज्ञायकभाव स्वभाव पड़ा है, उसका आश्रय लेकर दृष्टि, ज्ञान, लीनता हुई, वही शुद्ध है। वही निश्चय का साधन है, केवल (ज्ञान) का अथवा साध्य का। परन्तु उस काल में ऐसा व्यवहार आता है। व्यवहाररत्नत्रय के योग्य, उस भूमिका के योग्य विकल्प आता है। श्रावक को बारह व्रत आदि, मुनि को पंच महाव्रत आदि, अट्ठाईस मूलगुण आदि, उसमें स्खलन हो जाये तो जरा प्रायश्चित का विकल्प भी आता है। वह विकल्प व्यवहार है। शुद्ध परिणति निश्चय है, तथापि व्यवहार का माहात्म्य टालते हुए। ओहोहो! बहुत किया हमने, प्रायश्चित लिया, ऐसा नहीं। शुभराग आया व्यवहाररत्नत्रय का, उससे जरा स्खलित हुआ तो भी शुभराग आया। समझ में आया? तो भी उसका माहात्म्य नहीं। माहात्म्य स्वभाव का है।

निश्चय-व्यवहार दोनों साथ में है, परन्तु व्यवहार का माहात्म्य नहीं। ऐसा कहते

हैं कि व्यवहार है, इतना बताते हैं। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार क्रियाकाण्ड जितना शास्त्र में लिखा है, ऐसी भूमिका के योग्य ऐसा विकल्प उसे है। तथापि... छतां कहते हैं न? ऐसा होने पर भी... शुभराग को क्रियाकाण्ड कहा, देखो उसका नाम। छठवें गुणस्थान में आता है कुन्दकुन्दाचार्य जैसे मुनियों को भी। व्यवहार आये बिना रहता नहीं, या केवलज्ञान हो जाये। साथ में साध्य का निश्चयसाधन साथ में है, तथापि व्यवहारसाधन का माहात्म्य नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्वभाव का ही निरन्तर साधन है। स्वभाव की मुख्यरूप से दृष्टि है, वह कभी हटती नहीं। आहाहा! कठिन निश्चय-व्यवहार, ऐसी गड़बड़ चली है न!

यह एक अधिकार ऐसा चौथे में है। समझे न? उस पहले में गड़बड़ की हो, उसका यहाँ स्पष्टीकरण कर डालते हैं। और पहले में कहा कि व्यवहारसाधन साधन है। परन्तु अकेला व्यवहारसाधन व्यवहारावलम्बी को है, वह तो मिथ्यात्व कहा। यहाँ निश्चयसाधन स्वभाव का है, यहाँ स्पष्टीकरण किया है कि किस-किस गुणस्थान में है। देखो! जहाँ प्रमाद होता है, उस भूमिका में व्यवहार है, वहाँ निश्चय भी है, तथापि व्यवहार का माहात्म्य नहीं करके निश्चय का माहात्म्य करते हैं। समझ में आया? आहाहा! देवीलालजी!

नित्य उद्योग करनेवाले, निश्चय-व्यवहार साथ में रहनेवाला, अत्यन्त मध्यस्थ वर्तनेवाला, आत्मतत्त्व में विश्रान्ति के विरचन—रचना करनेवाला, स्वभावसन्मुख वर्तनेवाले। इतना निश्चय कहा। साथ में **प्रमाद के उदय का अनुसरण करती हुई वृत्ति का निवर्तन करनेवाली (टालनेवाली)...** अशुभ से। **क्रियाकाण्डपरिणति को...** शुभ क्रियाकाण्ड की परिणति, शुभ विकल्प की अवस्था। देखो! उसमें भी परिणति कही। समझ में आया? शुद्ध की भी परिणति है और साथ में अशुद्ध की भी परिणति है। समझ में आया? शुभ **क्रियाकाण्डपरिणति को माहात्म्य में से वारते हुए (-शुभ क्रियाकाण्ड-परिणति हठरहित...** हठ नहीं है। सहज उस भूमिका के योग्य ऐसा विकल्प आये

बिना रहता नहीं। हठ बिना। अरे! मुझे ऐसा प्रायश्चित करना पड़ेगा, ऐसा नहीं है। मुझे इतना पाप लगा तो इतने अपवास करने पड़ेंगे। गुरु क्या दण्ड देंगे? क्या होगा? ऐसा नहीं। सेठी!

सहज स्वभाव की आश्रयदृष्टि होने पर भी, निर्विकल्प दृष्टि होने पर भी और ज्ञानी की मुख्यदृष्टि मुख्य तो द्रव्य पर ही सदा है। कभी पर्याय और राग की मुख्यता ज्ञानी को नहीं होती। होती नहीं, तथापि राग आवे तो भी माहात्म्य तो अन्तर सन्मुख है। (इसलिए राग से) निवारण करते हैं। अब व्यवहाररत्नत्रय का माहात्म्य टालते हैं, ऐसा कहते हैं। यह कहे कि व्यवहाररत्नत्रय से निश्चयरत्नत्रय होता है। अरे! भगवान! कहो, देवीलालजी! कितना अन्तर!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है। होता है, इसीलिए तो बात करते हैं, साथ में सुमेल है। परन्तु यह माहात्म्य नहीं करने की चीज़ है। बहुत उल्लसित हो गया कि ओहोहो! मैंने अपवास किये, मैंने ऐसा किया, दण्ड दिया और मेरे पाप कम हुए, यह विकल्प से, ऐसा माहात्म्य नहीं करने से। माहात्म्य नहीं। आता है।

क्रियाकाण्डपरिणति को माहात्म्य में से वारते हुए... आहाहा! टीका तो कितनी स्पष्ट की है! अब यह तो अमृतचन्द्राचार्य ऐसा कि ऐसे क्या करते हैं? ऐसे क्या करते हैं? और कोई कहता है, अमृतचन्द्राचार्य कड़क करते हैं। और ऐसा कोई कहता है। कोई कहता है कि अमृतचन्द्राचार्य ने ढीला कर दिया। और ऐसा कहते हैं। समझ में आया? एक वह भट्टारक थे न? कारंजा। वह कहे कि अमृतचन्द्राचार्य ने व्यवहार कह-कहकर बहुत हल्का कर दिया। और कोई कहे, अमृतचन्द्राचार्य ने कड़क कर दिया, कुन्दकुन्दाचार्य की अपेक्षा, अर्थ कर-करके। अरे! भगवान! भाई! जैसा है, वैसा है। भाई! तुझे खबर नहीं। यह अन्दर के मार्ग की रीति और पंथ क्या है। अकेला शास्त्र-शास्त्र किया करे। वेदिया की भाँति इस शास्त्र में यह लिखा, इस शास्त्र में ऐसा लिखा। सब लिखा है। परन्तु उसका सार क्या है? सार तो वीतरागता कहा। यह (बात) तो चलती है। तो वीतरागता निमित्त, राग, पर्याय से उपेक्षा होकर स्वभाव की ओर

ढलना, यह वीतरागता समस्त शास्त्रों का सार है। परन्तु यह वीतरागता जब तक पूर्ण न हो (तब तक) साथ में अनुकूलरूप छह द्रव्य, नौ तत्त्व का भेद, छह काय की दया का विकल्प, ग्यारह अंग का ज्ञान ऐसे ही निमित्तरूप विकल्प आते है, उसे व्यवहारसाधन निमित्त कहने में आता है। वह साधन आने पर भी अन्तर में उसका माहात्म्य नहीं होता। समझ में आया? एक साथ दोनों होने पर भी एक में माहात्म्य है और दूसरे में माहात्म्य नहीं। आहाहा! लो, यह तो कहे, नहीं। दोनों समकक्ष ही है। दोनों सत्य है, दोनों आदरणीय है, दोनों का फल मोक्ष है। कहते हैं न, भाई! सब पढ़े-लिखे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कथन क्या कहते हैं? किस अपेक्षा से कहते हैं? इसका अर्थ समझे बिना। यहाँ तो स्वद्रव्य के आश्रय से वीतरागता ही सिद्ध करनी है। वीतरागता समस्त शास्त्रों का सार है चार अनुयोग का। वीतरागता का अर्थ पर से उपेक्षा। स्व का आश्रय करना, पर की उपेक्षा करना, वह सब शास्त्र का सार है। स्वद्रव्य का आश्रय और पर की उपेक्षा, इसका नाम वीतरागता, यह सब शास्त्र का सार है। परन्तु स्वद्रव्य का आश्रय पूर्ण न हुआ हो, तब तक पराश्रय ऐसे व्यवहार विकल्प की भूमिका आये बिना रहती नहीं। समझ में आया?

और एक पर्याय में दो भाग कहाँ से आये? ऐसा मानते हैं कितने ही। शुद्ध पर्याय हुई और उसी पर्याय में थोड़ा भाग राग का रहा, वह अशुद्ध है। परन्तु हैं दोनों। सुन तो सही! समझ में आया? ऐसा कि दोनों में एक पर्याय कहो, उसे व्यवहारमार्ग कहो। क्या? जो स्वभाव के आश्रय से शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान हुए और जरा राग रहा, वह दोनों मिलकर व्यवहारमोक्षमार्ग है, ऐसा कहो। ऐसा है ही नहीं। जितनी स्वभाव के आश्रय से शुद्धता हुई, वही निश्चयसाधन मोक्ष का है और जितना रागादि व्यवहाररत्नत्रय हुआ, वह बन्ध का ही कारण है। परन्तु निमित्त देखकर मोक्ष के मार्ग का आरोप दिया गया है। ऐसा है नहीं, उसे कहा है। है (दोनों) एकसाथ। चन्दुभाई! समझ में आया? समझ में आया? समझ में आया? समझाणु काँई अर्थात् यह।

विकल्प होता नहीं। एक व्यक्ति कहता था। साधु आये थे। विकल्प, वह तो

मिथ्यात्व है। ठीक! अभी भान नहीं होता कुछ वहाँ... वह मानो कि निश्चय की बात है न यहाँ, तो अपने ऐसे लगा दो। नग्न साधु आये थे नग्न। वहाँ साथ में बैठे थे। विकल्प तो मिथ्यात्व है। विकल्प मिथ्यात्व है तो छठवें गुणस्थान में विकल्प तो आता है। हमारे व्यवहार का क्या काम है? और ऐसा बोलते थे। दूसरी बात। ओहो! पावर फटा लगता है, कहा, इसका। निश्चय का भान नहीं। हमारे व्यवहार का क्या काम है? ऐसा बोले। (संवत्) २००९ के वर्ष में। ग्यारह वर्ष हुए। समझ में आया? विकल्प है, वह मिथ्यात्व है, ऐसा पाट पर बैठकर बोले थे। इसी पाट पर। विकल्प है, वह मिथ्यात्व है। अरे! विकल्प मिथ्यात्व है? शुभराग मिथ्यात्व है? कौन कहता है? यह क्या कहते हैं? छठवें गुणस्थान में मुनि को व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, वह मिथ्यात्व नहीं है। समझ में आया? उसे परमार्थ धर्म माने तो मिथ्यात्व है। समझ में आया? परन्तु यहाँ निश्चय की बात चलती है न, तो लगाओ, इनके अनुकूल बोलो। शोभालालजी! भाई! यहाँ ऐसे अनुकूल नहीं। निश्चय है न इसलिए। परन्तु निश्चय है तो निश्चय स्वद्रव्य आश्रय, परन्तु पूर्ण न हो, वहाँ तक ऐसा पराश्रय राग हुए बिना नहीं रहता। भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकर छद्मस्थ हों छठे गुणस्थान में, उन्हें भी शुभराग आये बिना नहीं रहता। समझ में आया?

(-शुभ क्रियाकाण्ड-परिणति.... कोष्ठक में। **हठरहित सहजरूप से...** सहज का अर्थ है तो राग। परन्तु सहज का अर्थ 'मैं करूँ' ऐसी बुद्धि नहीं। सहज का अर्थ अन्दर में शुद्ध स्वभाव, ऐसा नहीं। **हठरहित सहजरूप से भूमिकानुसार...** पंचम गुणस्थान के योग्य बारह व्रत का विकल्प आता है। देव-गुरु-शास्त्र की पूजा का, षट्कर्म का आता है या नहीं? षट् कर्म। ऐसा विकल्प उसकी भूमिका के योग्य, षट्कार्य कहते हैं, वह सहजरूप से आता है। हठ से आवे कि हमारे करना पड़ेगा, अरे! सवेरे यह क्या करना पड़े, श्रावक के छह कर्तव्य हैं, ऐसा नहीं। स्व का आश्रय करते हैं अपूर्ण है, तो ऐसा षट्कर्म का विकल्प हठ बिना आये बिना रहता नहीं।

होने पर भी अंतरंग में उसे माहात्म्य नहीं देते हुए),... देखो! व्यवहाररत्नत्रय का अन्तरंग में माहात्म्य नहीं देते हुए। यह तो सबका स्पष्टीकरण कर डालते हैं, एक टीका

में तो। यह समझना नहीं और जहाँ वह कहा, अनादि से भेदवासना टली नहीं, इसलिए पहले तो व्यवहाररत्नत्रय करते-करते फिर निश्चय आयेगा। ऐसा अर्थ पहले बोल में ले लिया। अरे! भगवान! ऐसा नहीं है। वहाँ तो ऐसी बात की है कि वासना अनादि की अस्थिरता है, वह अनादि की है। सम्यग्दर्शन, चारित्र अंश नये प्रगट हुए, वह अनादि का नहीं, वह तो नया है। वासना बाकी रही है, वह कहीं नयी है, ऐसा नहीं। अनादि की अस्थिरता है तो क्रम-क्रम से टालने में निश्चय का आश्रय-साधन है, व्यवहार ऐसा सुख से-सुख से करते हैं, ऐसा वहाँ कहा गया है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि जहाँ सुख से-सुख से करते थे, किया था, व्यवहार के कारण से संस्कार करते थे, क्रम-क्रम से विशुद्धि उत्पन्न करते थे, ऐसा जो वहाँ कहा था, वह यहाँ कहते हैं कि व्यवहार का माहात्म्य छोड़ दे। समझ में आया? ऐसा तू वहाँ अर्थ लगाकर ऐसा माने कि देखो! इस प्रकार उसे शुद्धि होती है, उसे संस्कार पड़ते हैं। वह क्रम-क्रम से व्यवहार से आगे बढ़ता है। छोड़ दे, ऐसा माहात्म्य। होवे, उसका माहात्म्य छोड़ना या न हो उसका? अमरचन्दभाई! है या नहीं? छठवें गुणस्थान में, पंचम गुणस्थान में, चौथे गुणस्थान के योग्य व्यवहाररत्नत्रय की श्रद्धा, ज्ञान आदि का राग है। है, उसका माहात्म्य नहीं करना। एक ओर माहात्म्य करना तथा एक ओर नहीं करना। हो गया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ आत्मा की ओर का माहात्म्य करना। राग आने पर भी माहात्म्य नहीं करना। तो कहे, दोनों का माहात्म्य करना? इसका नाम दो नय को माना कहलाये? लो यह मिश्र। निश्चय मानना और व्यवहार दोनों का माहात्म्य करना, दोनों को सत्य मानना, दोनों को उपादेय मानना, व्यवहारसाधन को भी भला मानना, निश्चयसाधन को भी भला मानना। यह लिया है उन्होंने टोडरमलजी ने। व्यवहारसाधन को भी भला मानता है। मूढ़ है। है सही, परन्तु भला कहाँ है वहाँ?

मुमुक्षु : इसका स्पष्टीकरण हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न! यह तो उसमें से लिया है इन्होंने। घर का नहीं निकाला।

वे तो पण्डित गृहस्थ थे न! हमारे आर्ष का आचार्य मानना है। परन्तु आर्ष क्या कहता है, उसकी तुझे खबर नहीं और तुझे क्या आर्ष का मानना है? यह आर्ष का तो अर्थ चलता है। अमृतचन्द्राचार्य महामुनि सन्त छठवें-सातवें में झूलनेवाले कहते हैं कि यह विकल्प है हमारी भूमिका के योग्य। यह लिखते हैं, वह क्या है? शास्त्र की प्रभावना हो, ऐसा विकल्प आया है न? वह तो राग है। शास्त्र तो शास्त्र से बना है। कहाँ इन्होंने बनाया है? यह तो कहेंगे अभी अन्तिम श्लोक में। हमारे शास्त्र के कर्ता हम नहीं। तो कहे, व्यवहार से तो करते हैं। यह कौन जानता है कुछ? स्याद्वाद को वह कहा है सही न मोक्षमार्ग का? प्रत्येक वचन स्याद्वाद का स्यात् लेना। कथंचित् कहते हैं, ऐसा लेना। परन्तु इसका अर्थ क्या? आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि भगवान! तू तो पूर्ण शुद्ध वस्तु है। उसका आश्रय लिया तब शुद्धता हुई। तब अशुद्धता का राग शुभरागरूप है, उसका माहात्म्य नहीं करना। माहात्म्य तो स्वभाव की ओर का रखना। कहो, समझ में आया? **अंतरंग में उसे माहात्म्य नहीं देते हुए),...** समझ में आया? उस परिणति को अन्तरंग से माहात्म्य नहीं देते। यह आया, (उसे) जानते हैं। वह भी जानने का काम तो वास्तव में अपने स्वभाव का ही है। समझ में आया? तथापि राग आया, जानते हैं (कि) व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। समझ में आया? यह १२वीं गाथा समयसार। उस काल में व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है, आदरणीय नहीं। यह क्या कहते हैं? यहाँ भी यही कहते हैं, अमृतचन्द्राचार्य यहाँ कहते हैं। वहाँ भी यही कहा है उन्होंने। समझ में आया? पाँच मिनिट ही बाकी है? इतने में इतना समय गया न? कल भी अच्छी बात है। समझ में आया?

अत्यन्त उदासीन... पश्चात् क्या कहते हैं? आहाहा! यह राग का सुमेल है निश्चय की भूमिका में ऐसे ही देव-गुरु-शास्त्र, निर्ग्रन्थ गुरु, निर्ग्रन्थ के कहे हुए वीतरागी शास्त्र... समझ में आया? और भगवान ने कहे हुए छह द्रव्य, त्रिलोकनाथ ने कहे हुए छह काय के जीव, उन सबकी मान्यता का विकल्प ज्ञानी को है। समझ में आया? निर्विकल्प में तो द्रव्य के आश्रय से जो परिणति होती है, वह निश्चय। यह राग है परन्तु राग से माहात्म्य निवारकर अत्यन्त उदासीन (वर्तते हैं)। देखो!

अत्यन्त उदासीन वर्तते हुए,... राग से भी उदासीन। शुभराग से। मुनि को अशुभराग तो है ही नहीं। समझ में आया? उदास, शुभराग से उदास। शुद्ध आत्मा में आसन लगाया है। शुद्ध आत्मा में आसन लगाया है। दृष्टि के ध्येय में तो वहाँ लगा है। हों, प्ररूपणा करते हों, वाँचन करते हों, शास्त्र रचते हों। समझ में आया? शिष्य को प्रायश्चित भी देते हों कि ऐसा क्यों किया? नहीं, तुमको संघ से बाहर निकाल देंगे। ऐसा विकल्प मुनि को छठवें गुणस्थान में आता है। परन्तु उसका भी माहात्म्य टालकर (निवृत्त होते हैं)। हम तो मार्ग की बहुत वृद्धि करते हैं न उसमें? शुभराग आया तो मार्ग की प्रभावना (हुई)। सुन तो सही! मार्ग की प्रभावना अन्दर में है या बाहर में? बाहर में तो उसके कारण से होगी? समझ में आया?

कोई कहते हैं कि जैनशासन के विरोधी हों तो उसे मारना, ऐसा करना। अरे! भगवान! ऐसा कहाँ से आया? समझ में आया? राग आ जाये कि ऐसा नहीं होता। ऐसा मार्ग नहीं। यह मार्ग है, ऐसा स्थापन भी शुभराग है। यह मार्ग नहीं, ऐसा उत्थापन भी शुभ द्वेष है। परन्तु वह विकल्प पुण्यबन्ध का कारण है। वह आये बिना नहीं रहता। माहात्म्य टले बिना नहीं रहता और आये बिना नहीं रहता। सनतकुमारजी! आहाहा! और एक समय की एक पर्याय में दो भाग। चारित्र की अपेक्षा से लो तो कितनी ही शुद्ध पर्याय है और कितना ही राग-व्यवहार आया, वह अशुद्ध है। एक पर्याय के दो भाग। दो भाग हुए न? अमरचन्दभाई! पर्याय एक, समय एक, भाग दो। जितना स्वद्रव्य के आश्रय से शुद्ध हुआ, वही निश्चय का साधन। जितना परद्रव्याश्रित विकल्प उठता है, वही पर्याय में मलिनता, तथापि उसका माहात्म्य नहीं और शुद्ध का माहात्म्य करते हुए अत्यन्त उदासीन वर्तते हैं।

यथाशक्ति... देखो! यह बात ली। **आत्मा को आत्मा से आत्मा में संचेतते हुए....** यथाशक्ति। अपनी योगशक्ति, देखो! छठवें गुणस्थान में भी अन्दर विकल्प आया उससे हटकर आत्मा को, आत्मा से... विकल्प से नहीं। आत्मा ज्ञायक चैतन्य निर्लेप शुद्ध वस्तु ऐसे आत्मा को आत्मा से, निर्विकल्प परिणति आत्मा से, आत्मा में। ओहोहो! शुद्ध स्वभाव में वेदते हुए, अनुभव करते हुए। अपना निर्विकार भाव आत्मा से, आत्मा

को, आत्मा में वेदते हुए। देखो! **(अनुभव करते) हुए...** आहाहा! उसका ज्ञान, निर्णय किये बिना सत्य क्या है, असत्य क्या है—इसका विवेक कहाँ से होगा? ऐसे का ऐसे अन्ध अन्धरूप से मान ले कि चलो ऐसा है, शुद्ध है, शुद्ध है। परन्तु शुद्ध क्या है? व्यवहार है... व्यवहार है... व्यवहार है। परन्तु व्यवहार क्या है, किसको व्यवहार कहते हैं, उसका भाव में कुछ ख्याल आता है या नहीं? समझ में आया?

टोडरमलजी कहते हैं न? दो नय शास्त्र में कहे हैं, उन्हें माने बिना छुटकारा नहीं है। एक को छोड़ा नहीं जा सकता और दोनों का स्वरूप जानने में आता नहीं। क्या? दो में से एक को भी छोड़ा नहीं जा सकता और दोनों का क्या स्वरूप है, यह जानने में आता नहीं। क्या करना? अनेकान्त कर डालो फिर। समझ में आया? निश्चय से भी साधन है, व्यवहार भी एक साधन है, वह भी एक सत्य है, यह भी एक सत्य है, वह भी उपादेय है, यह भी उपादेय है। कहाँ से आया?

मुमुक्षु : भ्रमणा में।

पूज्य गुरुदेवश्री : भ्रमणा में आया तुझे। भगवान के मुख की वाणी और भगवान के शास्त्र में तो ऐसा है नहीं। समझ में आया?

संचेतते (अनुभवते) हुए नित्य उपयुक्त रहते हैं,.... देखो! नित्य-उपयुक्त रहता है। महाभाग्य भगवन्त अपने स्वरूप की ओर के झुकाव का बारम्बार उपयोग करता है। राग आने पर भी भूमिका में है, व्यवहार है। उस ओर का झुकाव बारम्बार करता है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल १४, रविवार, दिनांक - २०-०९-१९६४, गाथा-१७२, प्रवचन-२६

मोक्षमार्ग का वर्णन पंचास्तिकाय की १७२ (गाथा) में चलता है। १७२ में चौथा अधिकार है। क्या अधिकार है? **निश्चय-व्यवहार दोनों का सुमेल...** उचित योग्यता के साथ अविरोधता। समझ में आया? निश्चयसाधन और व्यवहारसाधन। अपना आत्मा एक समय में पूर्ण शक्ति-सत्त्व पूर्ण आनन्द (स्वरूप है), परन्तु प्रयोग अन्तर में करने से निर्मलता प्रगट होती है। समझ में आया? सत्ता—शक्ति पड़ी है।

जैसे पीपर का दाना होता है न, पीपर का? छोटी पीपर। उसमें चौंसठ पहरी चरपराहट अन्दर में पड़ी है। है या नहीं अन्दर? छोटी पीपर कहते हैं न छोटी पीपर? चौंसठ पहरी अन्दर चरपराहट पड़ी है और हरा रंग अन्दर पड़ा है। जितना घिसना पत्थर का आवे, वह तो निमित्त है। परन्तु अन्दर की एकाग्रता जितनी प्रगट होती है, वैसे-वैसे चौंसठ पहरी में से दो, चार, पाँच, पच्चीस, पचास, चौंसठ (प्रगट होती है)। समझ में आया? चौंसठ पहरी चरपराहट प्रगट होती है न? वह कहाँ से प्रगट होती है? पत्थर में से आती है? पीपर में से आती है। पत्थर में से आती हो तो कंकर और कोयले को भी घिस डालो, यदि उसमें से आती हो तो। प्राप्त की प्राप्ति है, जिसमें हो उसमें से मिल सकती है।

तो आत्मद्रव्य में वस्तु ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द पूर्ण गुणस्वभाव शक्तिरूप पूर्ण पड़ा है। समझ में आया? यह सीधी पीपर खाये। खाये ऐसा कहते हैं न? तो इतनी चरपरी नहीं लगती। सीधे पीपर खाये तो चरपरी चौंसठ पहरी नहीं लगती। अन्दर भरी है न? भरी है न? तो खाओ। शोभालालभाई! अन्दर में चौंसठ पहरी भरी है तो खाये, तब चौंसठ पहरी लगती है या नहीं? है न अन्दर? है, इसलिए खाये तो चौंसठ पहरी प्रगट होती है या नहीं? ऐसा नहीं है। अन्दर है, परन्तु उसका प्रयोग एकाकार अन्दर में हो, अन्दर से पर्याय प्रगट होने की योग्यता से, अन्दर है उसकी प्राप्ति और प्रगटता-प्रसिद्धि होती है। अन्दर में है, उसकी प्रसिद्धि होती है।

इसी प्रकार आत्मा में एक समय में ज्ञान, आनन्द, स्वच्छता, विभूता आदि अनन्त

शक्तियाँ सत्त्व शक्तिरूप आत्मा पड़ा है। उसमें से केवलज्ञान, केवलदर्शन, पूर्णानन्द प्रगट होता है। किसी बाहर के संयोग से नहीं, राग से नहीं, पर्याय में से नहीं। पर्याय में से आता है? पीपर का दाना घूंटते-घूंटते पचास पहर हुए। तो पचास पहर में से फिर चौंसठ पहरी होती है? पचास पहोर का तो व्यय होता है। उत्पाद तो फिर दूसरा हुआ। तो उत्पाद कहाँ से आया? अन्दर शक्ति में एकाग्रता करके, एकाग्रता अर्थात् अन्तर में घोंटता है, अन्दर है वह बाहर आयी है।

इसी प्रकार आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण सत्त्व सामान्य शक्तिरूप पूर्ण पड़ा है। उसमें जितना स्वद्रव्य का आश्रय लेकर जितने श्रद्धा, ज्ञान और लीनता निर्मल प्रगट की, वह शक्ति में से आती है। इतने का नाम शुद्ध साधन मोक्ष का अथवा निश्चयरत्नत्रय का। इसका नाम शुद्ध साधन कहने में आता है अथवा शुद्ध कारण कहने में आता है। समझ में आया? और उसके साथ भूमिका के योग्य, जैसे कि छठवाँ गुणस्थान है तो शुद्धि की प्रगटता अन्दर में तीन कषाय के अभाव की अन्दर में से प्रगट पर्याय-स्थिरता आयी। उस शुद्ध परिणति के साथ शुद्ध पर्याय के साथ जो शुद्धता प्रगट है, वह शुद्ध साधन है। मोक्ष का शुद्ध साधन है। उस भूमिका के योग्य उसे पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण के रागादि आते हैं, उसे व्यवहारसाधन कहा जाता है। यह निश्चय और व्यवहार का अविरोध है। दोनों को सुमेल है, दोनों की उचित योग्यता वहाँ होती है, उचित योग्यता। समझ में आया?

जितने प्रमाण में अन्दर शुद्धि स्वभाव चैतन्य के आश्रय से प्रगट हुई, उतने प्रमाण में वहाँ निमित्तपना राग की मन्दता की योग्यतावाला भाव रहे, उसका नाम निश्चय-व्यवहार का अविरोध अथवा निश्चय-व्यवहार का सुमेल अथवा निश्चय-व्यवहार की योग्यता की उचितता कहीं जाती है। समझ में आया? यहाँ यह अधिकार चलता है। निश्चय-व्यवहार दोनों का सुमेल। यहाँ तक आया है, देखो!

अंतरंग में उसे माहात्म्य नहीं देते हुए.... क्या कहते हैं? शुभराग आता है। इस ओर है। २६५ पृष्ठ है हिन्दी। अन्तरंग में उसे शुभभाव आता है, उसे उचित मुनिपने के योग्य, पंचम गुणस्थान के योग्य उसे शुभभाव, दया, दान, भक्ति, व्रतादि का विकल्प

उसकी योग्यता प्रमाण उस भूमिका में आता है। तो कहते हैं कि आने पर भी मुनि अन्तरंग में उसे माहात्म्य नहीं देते हुए। उसे माहात्म्य नहीं देते। माहात्म्य तो अन्तर ज्ञानानन्दस्वभाव में जितना स्वसन्मुख होता है, उसका माहात्म्य देते हैं। कहो, समझ में आया?

अत्यन्त उदासीन वर्तते हुए,... हुए। अन्तिम दशा है न? अत्यन्त उदास। राग होने पर भी, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प अर्थात् शुभराग होने पर भी, माहात्म्य टालकर अपने स्वभाव सन्मुख में राग से अत्यन्त उदास रहकर **यथाशक्ति आत्मा को...** देखो! **आत्मा से आत्मा में संचेतते....** है। पहले तो निर्णय दृष्टि की है। मैं ज्ञायक शुद्ध चैतन्य हूँ, ऐसी दृष्टि—सम्यग्दर्शन पहले प्रगट किया है। पहले में पहली भूमिका। समझ में आया? इसके बिना सम्यग्ज्ञान और चारित्र की वृद्धि और शुद्धि का टिकना बिल्कुल नहीं होता।

तो पहले अन्दर में पूर्ण शुद्ध हूँ... जैसे पीपर में चौंसठ पहोरी सामर्थ्य अन्दर पड़ी है, ऐसी प्रतीति करता है तो घूंटने का निमित्त का प्रयोग उसे होता है। समझ में आया? प्रगटती है, वह तो अपनी पर्याय उस काल में, परन्तु घूंटने का वहाँ निमित्त है। इसी प्रकार अपने आत्मा में एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण चैतन्य सच्चिदानन्द, राग और पर के कारण बिना निष्कारण कारणपरमात्मा, पर के कारण बिना अपना पूर्ण स्वरूप, परमपारिणामिकस्वभाव का दृष्टि में माहात्म्य करके अनुभव किया, यह पहले में पहली सम्यग्दर्शन वस्तु है। यह है तो फिर स्वभाव के आश्रय से ज्ञान हुआ, उसका नाम ज्ञान कहा जाता है और वह है तो स्वभाव के आश्रय से स्थिरता की, उतना चारित्र कहा जाता है। समझ में आया? और उसके साथ, जैसे वह पत्थर घिसने में निमित्त है, वैसे रागादि योग्यता, उसके मिलानवाला राग है, उसे निमित्त कहा जाता है। समझ में आया?

यह करते-करते यथाशक्ति गुणस्थानयोग्य छठवें आदि, सातवें में आगे, अपने आत्मा को आत्मा से निर्विकल्प स्वभाव, अकेला समस्वभावी भगवान, पूरा विश्वदृष्टा, विश्व का दृष्टा और अनन्त गुण का विश्वरूप। समझ में आया? पूरे विश्व का दृष्टा और

अनन्त गुण का विश्वरूप, अनन्तस्वरूप, ऐसा आत्मा, उसके **नित्य उपयुक्त रहते हैं,...** उसमें लीन होकर (रहता है)। मोक्ष की तैयारी है न! यहाँ तो उसकी बात चलती है न! अन्तिम अधिकार है। **नित्य उपयुक्त रहते हैं, वे (-वे महाभाग भगवन्तों),....** आहाहा! देखो! आचार्य भी कहते हैं कि महाभाग भगवन्तों, महागुणशाली भगवन्तों, महा चैतन्यशाली भगवन्तों। लो, यह पुण्यशाली कहते हैं या नहीं? शोभालालभाई! यह तुमको सब पुण्यशाली कहते हैं सेठियाओं को। यह पैसे(वाले)—पुण्यशाली हैं, या पैसेशाली हैं और भाग्यशाली हैं। कहो, समझ में आया?

यहाँ तो कहे चैतन्यशाली भगवन्त अपनी निज स्वरूप सम्पदा पर उपयुक्त रहते आत्मा को आत्मा से आत्मा में संचेतते—अनुभव करते हुए वास्तव में... देखो! देखो, यह निचोड़। **स्वतत्त्व में विश्रान्ति के अनुसार...** राग की मन्दता है, उसके अनुसार अशुद्धता नहीं टलती, कर्म का नाश उसके आश्रय से नहीं होता। जितना अविरोधी शुभभाव भले हो, उसे उचित, परन्तु उससे राग नहीं टलता और उससे कर्म नहीं खिरते। समझ में आया?

वास्तव में स्वतत्त्व में विश्रान्ति... ज्ञायक चिदानन्द प्रभु, वह वास्तव में स्वभाव, उसमें विश्रान्ति-स्थिर होना एकाकार होकर। इतनी **विश्रान्ति अनुसार...** समझ में आया? पहले क्रमसर आया था अपने। १७२ में नहीं था पहले में? उसमें आया था न? पहला भाग था, उसमें नहीं? क्रम से समरसीभाव समुत्पन्न होता जाता है। अन्तिम भाग था अन्तिम लाईन। पहले भाग की—अविरोध की। २५९ पृष्ठ पर अन्तिम लाईन है। केवल व्यवहारावलम्बी की शुरुआत करने से पहले। **क्रमशः समरसीभाव समुत्पन्न होता जाता है, इसलिए परम वीतरागभाग को भाव को प्राप्त करके साक्षात् मोक्ष का अनुभव करते हैं।** यहाँ पहले क्रम से लेकर फिर शीघ्र कहेंगे। समझ में आया?

वास्तव में स्वतत्त्व में विश्रान्ति के अनुसार.... ऐसा शब्द पड़ा है देखो! मन्द राग आया, उचित है, सुमेल है परन्तु राग के कारण से निर्जरा होती है या संवर होता है या मोक्ष के सन्मुख होता है, ऐसा नहीं है। **वास्तव में स्वतत्त्व में...** अपना स्वभाव ज्ञायक चैतन्य आनन्द नित्यानन्द प्रभु, शक्ति का सरोवर, भण्डार, उसमें विश्रान्ति। स्थिरता...

स्थिरता... स्थिरता... उस **विश्रान्ति के अनुसार क्रमशः कर्म का संन्यास करते हुए....** क्रम-क्रम से कर्म का संन्यास अर्थात् त्याग। यह तो प्ररूपणा की शैली समझानी है न? नहीं तो कर्म का त्याग क्या करे? समझ में आया? यह कर्म का त्याग हो जाता है। समझ में आया? आहाहा!

यह तो ऐसा कहा। **वास्तव में स्वतत्त्व में विश्रान्ति...** सच्चिदानन्द प्रभु में जितना तत्त्व स्वभाव में विश्रान्त होता है, उस **अनुसार क्रमशः कर्म का संन्यास करते हुए (-स्वतत्त्व में स्थिरता होती जाये, तद्नुसार शुभभावों को छोड़ते हुए),....** लो! शुभभाव का आदर देते हुए आगे बढ़ता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? बल्लभदासभाई! लोगों को ऐसा कि यह व्यवहार... आहाहा! भाई! तेरे स्वद्रव्य में पूर्ण सामर्थ्य पड़ा है। उसे राग की मन्दता का अवलम्बन लेकर आगे बढ़ा जाता है, ऐसा तीन काल में नहीं है। वह पूर्णानन्द पूर्ण मिदं। भगवान आत्मा पूर्ण मिदं। ऐसा शुद्ध कारणप्रभु, उसमें जितनी विश्रान्ति, एकाग्रता, स्थिरता, आश्रयता, ध्रुवता का जितना उग्ररूप से अवलम्बन लिया, उतना शुभभाव छूट जाता है। यहाँ कहते हैं कि शुभभाव को छोड़ते हुए। कथनपद्धति क्या करना? समझ में आया?

जिसकी शैली में व्यवहारनय की प्रधानता से कथन आता है। उसका अर्थ कि क्रमशः शुभभाव आता है, उसे मैं छोड़ूँ। ऐसा है? भगवान जितना अपने में गुम होता है, चैतन्य स्वभाव में जितनी विश्रान्ति करके लीन होता है, उतना शुभभाव छूट जाता है, उसे शुभभाव छोड़ते हुए, ऐसा कहा गया है। आहाहा! पहली समझ ही सच्ची नहीं, उसे दृष्टि कहाँ से होगी? और दृष्टि बिना ज्ञान और चारित्र कहाँ से होंगे? बड़ी गड़बड़... गड़बड़... गड़बड़ कर डाली। ओहो! ऐसा अवसर मिला, मुश्किल से चौरासी में से निकलकर कहाँ आया, कहाँ किनारे आ गया है। समझ में आया? सब अवसर आ गया है।

ऐसा पहले श्रद्धा में पक्का निर्णय करना चाहिए कि मेरे स्वद्रव्य के आश्रय से जितना मैं रहूँगा, उतनी मेरी शुद्धि प्रगट होगी, उतनी शुद्धि टिकेगी और जितना स्वद्रव्य आश्रय होगा, उतनी शुद्धि बढ़ेगी। शुभराग से शुद्धता उत्पन्न नहीं होती, शुभराग से

शुद्धता टिकती नहीं, शुभराग से शुद्धता बढ़ती नहीं। समझ में आया? होता है। यह तो कहा न, सुमेल तो कहा। गुणस्थानयोग्य ऐसा भाव आये बिना नहीं रहता। सम्यग्दृष्टि को भी भाव आता है, पंचम गुणस्थान में और मुनि को भी (आता है)। यहाँ मुनिप्रधान से कथन—बात है।

अत्यन्त निष्प्रमाद वर्तते हुए,... देखो! कर्म की तो बात भी नहीं की यहाँ कि कर्म जितने घटते जायें, उतना निष्प्रमाद होता जाये। भगवान! तुझमें इतना वीर्य सामर्थ्य है कि अनन्त गुण की शुद्धि की रचना करनेवाला वीर्य तुझमें पूर्ण पड़ा है। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... बेहद ओहो! जिसकी बल नाम की शक्ति, उसके स्वभाव सामर्थ्य की अचिन्त्यता कितनी! उस स्वभाव में वीर्य है, वह वीर्यवान का आश्रय करने से वीर्य से शुद्धि की रचना होती है। उस वीर्य से शुद्धि की रचना होती है, ऐसा वीर्य का सामर्थ्य है। ओहोहो! गजब काम! अगम्य बातें! उसे लोग बाहर से क्रियाकाण्ड और बाहर से माने। उसे यदि कहे तो कहे, नहीं... नहीं... नहीं... यह सही। यह भी सही। परन्तु यह सच्चा और यह भी सच्चा। यह चन्दुभाई माँगते हैं वह मिश्र कि इसमें से मिश्र का निकालो न कुछ। निश्चय भी सच्चा और व्यवहार भी सच्चा, इसका नाम मिश्रदृष्टि—मिथ्यादृष्टि है। और निश्चय से भी लाभ होता है और व्यवहार से भी लाभ होता है, इसका नाम निश्चय-व्यवहार का खिचड़ा। समझ में आया? और निश्चय से भी सत्य है और व्यवहार भी सत्य है। निश्चय भी उपादेय और व्यवहार भी उपादेय। दो नय का खिचड़ा। क्या करे? भगवान ने दो नय कहे हैं।

मुमुक्षु : आधा लाभ तो हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : जहर का लाभ हुआ मिथ्यात्व का। आधा लाभ कहाँ से हुआ? निश्चय भी सत्य, व्यवहार भी सत्य, कहाँ से आया? दोनों झूठे हो गये। समझ में आया?

भगवान आत्मा... इस मिश्र में यह निकाला है टोडरमलजी ने। भाई! तू व्यवहारसाधन को भी भला मानता है, निश्चय साधन को भी भला मानता है, तो दोनों नयों का विषय विरोध है। विरोध है तो उसकी तुझे सच्चे पहिचान तो नहीं और दोनों नय

हमारे मानना है। भगवान का दो नय का कथन है। दो नय की कथनी। आया न इसमें ? नहीं ? अभी आया उसमें से निकालते हैं सब। यह कितनी गाथा में नहीं ? ... दो नय। १५९। उसमें से निकाला है न लोगों ने ? यह १५९। **तीर्थ प्रवर्तना दोनों नयों के आधीन है।** १५९ गाथा, २३३ पृष्ठ हिन्दी में है। चार लाईन है टीका के साथ। देखो! **इसीलिए पारमेश्वर (जिनभगवान की) तीर्थ प्रवर्तना दोनों नयों के आधीन है।** है भाई! सनतकुमारजी! भगवान की वाणी में तीर्थ प्रवर्तना दोनों नयों के आधीन है। परन्तु दोनों नयों के आधीन का अर्थ—यह दो नय के आधीन का कथन है। व्यवहार को भी बतलाते हैं और निश्चय को भी आदरणीय कहकर बतलाते हैं। दोनों है। दोनों 'है' इस अपेक्षा से दो नय का कथन है। दो नयों में व्यवहार भी सच्चा और निश्चय भी सच्चा, तो दो नय रहे नहीं। दो नय के तो विषय का विरोध है। व्यवहार का विषय तो पर्याय, राग और निमित्त, भेद है। निश्चय का विषय अभेद है। दोनों का विरोध हुआ, दोनों की दिशा भेद है। व्यवहार में परद्रव्य का लक्ष्य है, निश्चय में स्वसन्मुख का लक्ष्य है। व्यवहार भेदरूप है, निश्चय अभेदरूप है; व्यवहार रागरूप है, निश्चय की परिणति अरागरूप है। दोनों एक कहाँ से होंगे ? उसमें से निकाला है, हों! इनकार करते हैं या नहीं, यह नहीं मानना। टोडरमल का नहीं, यह अप्रमाणिक है (ऐसा वे कहते हैं)। आहा! अरे! समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें से, इसमें से ही निकाला है। नौ तत्त्व और सब इसमें से ही निकाला है। नौ तत्त्व का स्पष्टीकरण है न इसमें। तत्त्वार्थश्रद्धान आत्मरूप है। आत्मरूप सिद्ध में जैसे परिणाम हैं, वैसे तिर्यंच समकिती को तत्त्वार्थश्रद्धान के ऐसे ही परिणाम हैं। सम्यग्दर्शन में तिर्यंच और सिद्ध में कुछ अन्तर नहीं है। तो कहे, नहीं। छठवें गुणस्थान तक व्यवहारसमकित है। सातवें से निश्चयसमकित है। आहा! अरे! दो नय का प्रवर्तन कथन किया परन्तु किस अपेक्षा से किया ? समान कहा ? उपादेय कहा ? दोनों के कथन विरोध है, उसे—दोनों को सत्य मानना, भ्रम है। यह कहा नहीं ? परन्तु वह तो एक न समझे तो दोनों नहीं समझता। तुझे दोनों में भ्रम है। भगवान ने दो

नय कहे हैं, क्या करें ? एक नय छोड़ा नहीं जाता, छोड़े तो एकान्त हो जाये और दो नय का सच्चा स्वरूप समझ में आता नहीं। वह मानता है। अनेकान्त मिथ्यादृष्टि भी अनेकान्त को मानता है, परन्तु समझकर मानता नहीं। लिखा है, बहुत लिखा है उसमें। यह अनेकान्त है हमारे तो। निश्चय यह, व्यवहार यह। दोनों लाभदायक है, दोनों सत्य है और भगवान की वाणी है। आत्मा त्रिकाली नित्य है द्रव्यार्थिकनय, यह सत्य नहीं ? और व्यवहारनय से पर्याय है अनित्य, यह सत्य नहीं ? दोनों सत्य है। परन्तु सत्य का अर्थ क्या ? समझ में आया ? यह पर्यायरूप से सत्य है, त्रिकाल द्रव्य का आश्रय करके, वह पर्याय आश्रय करनेयोग्य नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पढ़ता है परन्तु क्या करे ? ग्रन्थ बोलता है कहीं ? दृष्टि में अन्तर, दृष्टि में अन्तर। पूरा झुकाव में अन्तर। अभी कितना तो जोर देता है। यहाँ तो कहते हैं कि टोडरमल के मूल पाठ में कोई द्रव्य किसी द्रव्य का कर्ता-हर्ता है नहीं। कर्म और आत्मा एक क्षेत्र में रहो, परन्तु कर्ता हर्ता नहीं है। उसके कारण से वह परिणमता है, आत्मा के कारण से आत्मा परिणमता है। तो कहे, नहीं, ऐसा नहीं है। सब लिखा है।

यहाँ तो व्यवहार से निश्चय नहीं, तो और परिणमाना-फरिणमाना कहाँ से आया ? शुभ परिणमन जीव का है। राग का परिणमन जीव का शुभ है, तथापि वह शुभ परिणमन आत्मा के संवर, निर्जरा, मोक्ष का कारण है ही नहीं। मोक्ष का घातक है, उसे मोक्ष का कारण कहना, वह व्यवहारनय का लक्षण है। अन्यथा कहता है। परन्तु क्या करे ? लोग सामान्य, उन्हें समझ में आये नहीं। यह... यह... ऐसा नहीं होता।

कहते हैं कि अपने में **स्वतत्त्व में विश्रान्ति...** देखो !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दो नय। भले दो नय का कथन तो आया। यह तो कहा नहीं ? सुमेल है। परन्तु किस नय में विश्रान्ति लेनी है ? किसमें स्थिर होना है ? तुझे किस घर में रहना है ?

स्वतत्त्व में विश्रान्ति के अनुसार क्रमशः कर्म का संन्यास करते हुए... शुभकर्म विकार वह स्वभाव के आश्रय से शुभभाव घटता जाता है। शुभभाव के आश्रय से शुभभाव घटता है, ऐसा नहीं है। राग के आश्रय से घटे? जिसमें राग नहीं, अकेला स्वभाव है, ऐसी अन्तर्दृष्टि और आश्रय करने से स्वतत्त्व की विश्रान्ति के अनुसार राग घटता है उसे 'राग छोड़ता है' ऐसा कहा जाता है। इतना तो स्पष्ट कथन है तो भी झगड़ा और वादविवाद (करे)। 'सद्गुरु कहे सहज का धन्धा।' समयसार नाटक में बनारसीदास कहते हैं। 'वादविवाद करे सो अन्धा।' समझ में आया? 'सद्गुरु कहे सहज का धन्धा, वादविवाद करे सो अन्धा।'

एक विचार आया था वहाँ, (संवत्) १९९९ के वर्ष में भजन करने के लिये। वह कहता था वहाँ। अन्यमति आया था वहाँ। कांप में। सुरेन्द्रनगर। बहुत धमाल चलती थी न तब, सामने साधु २५-२५ तूफान करने आवे। क्या है? एक व्यक्ति तो कहे, यह लड़ाई होगी या क्या? अरे! भगवान! यह तत्त्व लुप्त हो जायेगा। यह महाराज यहाँ से निकले मुश्किल से और यहाँ आये। ऐसे फिर जायेंगे। चलो साधु की टोली। सामने पड़ो। अरे! भगवान! यह वादविवाद की चीज़ नहीं। यह कोई बाहर के पुरुषार्थ की क्रिया से प्राप्त नहीं होता। बाहर अर्थात् राग, हों! बाह्य जड़ का तो कौन कर सकता है? नहीं, यह व्यवहार को धर्म नहीं मानते, व्यवहार को उड़ा देते हैं। व्यवहार करते-करते धर्म होता है। व्यवहार ही स्वयं निजधर्म है। व्यवहार में भी शुद्धि का अंश तो पड़ा है। ऐसा कोई कहता है।

यहाँ कहते हैं कि जितनी, शुद्ध शक्ति के स्वभाव के आश्रय से विश्रान्ति होती है, उतने प्रमाण में शुभराग घटता जाता है। बस! एक सिद्धान्त। समझ में आया? और यही निश्चय-व्यवहार का अविरोध अथवा सुमेल-सुसंगति है। आत्मा के आश्रय से राग घटे, वह सुसंगति है। यहाँ से घटता है और राग के आश्रय से घटता है, यह तो विरोध हुआ। अनेकान्त नहीं हुआ। यहाँ के आश्रय से घटता है, राग के आश्रय से घटता नहीं, इसका नाम अनेकान्त है। और यह क्या कहते हैं? यहाँ भी निर्जरा है और शुभ में भी निर्जरा है। यह लिखा है जयधवल में, जयधवल में। शुद्ध और शुभ उपयोग बिना निर्जरा का कोई अवसर ही नहीं है। यह तो शुद्धभाव से निर्जरा होती है, साथ में

शुभभाव है उसे निमित्त देखकर आरोप करके प्रमाण का ज्ञान कराया है। समझ में आया? यहाँ तो साधन कहा। परन्तु साधन से निर्जरा है, ऐसा नहीं। यह बात तो यहाँ स्पष्ट करते हैं। साधन तो कहा। निमित्त को व्यवहारसाधन कहा। शुभराग भूमिका प्रमाण सम्यग्दृष्टि को भी देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान, स्वरूपाचरण में टिकता नहीं तो इतना भाव चौथे गुणस्थान में भी भक्ति आदि व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प आता है। पाँचवें में भी आता है और छठवें में भी आता है। परन्तु आता है, वह निर्जरा का कारण नहीं। साधन कहा। देखो न, बात कैसी सिद्ध करते हैं! अमरचन्दभाई! व्यवहार साधन तो कहा, तथापि उस साधन के आश्रय से शुद्धि नहीं होती।

मुमुक्षु : साध्य के अनुकूल साधन कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुकूल है, निमित्त है, यह तो कहते हैं। परन्तु स्वतत्त्व ज्ञायकमूर्ति प्रभु की दृष्टि पहले हुई है और उस दृष्टि के आश्रय में जितना उग्र आश्रय लिया, उतने प्रमाण में शुभभाव को छोड़ता है और उतने प्रमाण में कर्म की निर्जरा तो कर्म से होती है तो यहाँ बात की नहीं। समझ में आया?

अत्यन्त निष्प्रमाद वर्तते हुए, अत्यन्त निष्कम्पमूर्ति होने से... कितने शब्द प्रयोग किये हैं, देखो! निष्कम्प। यह शुभभाव था, वह भी कम्पन है, अस्थिरता है। उसे छोड़कर **अत्यन्त निष्प्रमाद वर्तते हुए,...** छठवें गुणस्थान में तो जरा प्रमाद का शुभराग, पंच महाव्रत का विकल्प आवे, वह भी प्रमाद है। क्या है? भीखाभाई! आहाहा! भाई! जैसा है, वैसा वस्तु का इसे निर्णय, उसका ज्ञान, उसके वीर्य में इस भाव का आदर करना चाहिए। यह आदर किये बिना खोटे का आदर हो जाये तो स्वभावसन्मुख होगा नहीं। आत्मा जवाब नहीं देगा। और यह बोलता है न कि ऐसा है, ऐसा है। यह अपनी श्रद्धा की प्रसिद्धि करता है कि राग से लाभ होता है, अमुक से लाभ होता है, यह श्रद्धा की प्रसिद्धि करता है कि इसकी श्रद्धा, विकार के ऊपर ही है, स्वभाव पर है नहीं। इसका भरोसा राग के ऊपर है। समझ में आया? जो पुण्य शुभभाव से धर्म मनाता है, वह (आस्रव) तत्त्व की श्रद्धा की प्रसिद्धि करता है कि हमारा भरोसा राग के ऊपर है, हमारा भरोसा शुद्ध के ऊपर है नहीं। उसका माहात्म्य हमको नहीं। हमारा माहात्म्य राग के ऊपर है। ईश्वरचन्दजी! क्यों बल्लभदासभाई! आहाहा!

आंबेल इतनी करो, इतने अपवास करो, अमुक इतना करो, करते-करते निर्जरा होगी। भगवान! वह तो विकल्प उठता है न? विकल्प उठने से निर्जरा होती है? यह तेरी श्रद्धा बाहर आती है कि तेरी श्रद्धा राग के ऊपर है, विकार के ऊपर है। निर्विकार का भरोसा, निर्विकार का माहात्म्य तुझे है नहीं। समझ में आया? अपनी श्रद्धा का ढ़िंढोरा पीटकर पुकार करता है कि हमारा भरोसा राग के ऊपर है। चन्दुभाई! राग से, विकल्प से निर्जरा होती है, ऐसा माननेवाले, भगवान आत्मा—स्वभाव के आश्रय से (निर्जरा) होती है, इसका हमें विश्वास नहीं। हमारा विश्वास राग के ऊपर है, विकार के ऊपर है, ऐसी हमारी श्रद्धा प्रसिद्ध होती है। अमरचन्दभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रसिद्ध करते हैं। अपनी क्या भूमिका है और उस भूमिका में कहाँ हमारा जोर है, यह प्रसिद्ध करता है। अमरचन्दभाई! आहाहा!

आचार्य कहते हैं कि तुझे आत्मख्याति प्रसिद्ध करनी है या नहीं? आत्मप्रसिद्धि। इस समयसार की टीका का नाम ही आत्मख्याति है। आत्मख्याति—प्रसिद्धि। प्रसिद्ध करता है कि हम जैसे हैं, उस पर जितना जोर दे, उतनी हमारी प्रसिद्धि होगी। उसमें उतनी हमारी संवर, निर्जरा की शुद्धि होगी। राग से नहीं, निमित्त से नहीं, संयोग से नहीं, संयोग के भाव से नहीं। राग संयोगीभाव है, स्वभावभाव नहीं। क्यों भीखाभाई! कैसे है यह? उड़ा देते हैं यह तो। देव-गुरु-शास्त्र....

मुमुक्षु : गुरु बिना ज्ञान नहीं होता

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गुरु बिना ज्ञान नहीं होता, तीन काल में आत्मा गुरु बिना। महान पदार्थ चैतन्य भगवान गुरु, वह अपना गुरु अपना आत्मा है। दूसरे गुरु तो निमित्तमात्र है। समझ में आया? अपना गुरु स्वयं। यह पूज्यपादस्वामी इष्टोपदेश में कहते हैं। इष्टोपदेश—इष्ट-उपदेश किसे कहना? प्रिय उपदेश किसे कहना? इष्टोपदेश है न नाम? प्रिय उपदेश, इष्ट उपदेश, भगवान के मार्ग में प्रिय उपदेश किसे कहना? कि प्रत्येक आत्मा या प्रत्येक जड़ अपनी पर्याय से परिणमता है। दूसरा निमित्तमात्र है, निमित्त से कुछ नहीं होता। ऐसे उपदेश को इष्ट उपदेश, प्रिय उपदेश, हितकारी उपदेश

कहा जाता है। अमरचन्दभाई! यह इसमें है। ३५वीं गाथा में है। सब धर्मास्तिकायवत्... सभी निमित्त धर्मास्तिकायवत् है, ऐसा उपदेश इष्ट उपदेश है। समझ में आया? और गुरु परमार्थ से तू तेरा है, यह इष्ट उपदेश है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा उपदेश का कर्ता नहीं। यह होता है, उसमें विकल्प है उसका वह ज्ञाता है, ऐसी प्रसिद्धि करता है। उपदेश करे कौन? वाणी की पर्याय करे कौन? समझ में आया? शशीभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तिर गये? यह कहते हैं कि अपना गुरु स्वयं। क्या अज्ञानी समझ सकता है? और ज्ञानी स्वयं से समझता है तो दूसरे को क्या समझावे? ऐसा कहते हैं वहाँ तो। समझ में आया? समाधिशतक में तो पूज्यपादस्वामी ऐसा कहते हैं। यह पूज्यपादस्वामी है न, समाधिशतक, लो यह। जो कोई अज्ञानी लाख बार समझाओ तो नहीं समझता क्योंकि उसकी योग्यता नहीं है और ज्ञानी स्वयं से समझता है, समझाने में मेरा कहाँ प्रयत्न है उसमें? दूसरे को मैं समझाऊँ, यह भी एक विकल्प का उन्माद है, विकल्प का उन्माद है। कौन किससे समझे? उससे समझता है। समझ में आया? आहाहा!

यह तो वीतरागमार्ग है। समझ में आया? वीतराग का पुकार भी वाणी में आता है कि हमारी ओर का लक्ष्य छोड़ तो तुझे लाभ होगा। भगवान! परन्तु ऐसा कैसे? हमको मान तो तुझे लाभ होगा, ऐसा नहीं। हमको मानना, ऐसा कहने में आता है, वह तो यथार्थ में तेरे द्रव्य-गुण कैसे हैं, उसे तू मान तो हमको माना, ऐसा कहने में आता है। तेरा आत्मा ही अरिहन्त है, सिद्ध भी आत्मा ही है, आचार्य, उपाध्याय और साधु भी आत्मा ही है। कोई बाहर में, आत्मपद से कोई पद बाहर नहीं रहता। समझ में आया? लो! कितना स्पष्टीकरण टीका में अन्त में कर दिया है! समझ में आया?

अत्यन्त निष्प्रमाद वर्तते हुए, अत्यन्त निष्कम्पमूर्ति होने से जिन्हें वनस्पति की उपमा दी जाती है तथापि... वनस्पति जैसे स्थिर होती है, वैसे स्थिर हो गये। विकल्प

का कम्पन छूटकर निर्विकार समाधि में, आनन्द में स्वद्रव्य के आश्रय से स्थिर हो गये, यही मोक्ष का उपाय है। वनस्पति की उपमा दी जाती है ऐसे मुनि को। वृक्ष स्थिर हो गया हो न वृक्ष। उसी प्रकार अन्तर में चिदानन्द भगवान समाधिस्वरूप शान्तमूर्ति ऐसे आत्मा में स्थिर हो गये। शान्त... शान्त... शान्त। हिरण आवे तो खुजलावे तो उसकी खबर उन्हें नहीं। ठूँठ जैसे लगें, ठूँठ जैसा। हिरण... हिरण होता है न? मृग। समझ में आया? ऐसी स्वरूप में स्थिरता विकल्प से रहित... आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसी।

वनस्पति की उपमा दी जाती है तथापि... कहते हैं कि वनस्पति की उपमा दी परन्तु वनस्पति को तो कर्म के फल का अनुभव है—कर्मफलचेतना (है)। वनस्पति को–एकेन्द्रिय को तो अकेला राग–द्वेष और हर्ष–शोक का ही वेदन है। उसे दूसरा वेदन नहीं। यह तो उपमा दी। तो भी अहो! निज परमात्मपद में जहाँ स्थिर हो गये, विकल्प अनुकूल था निमित्तरूप से, वह स्वभाव की विश्रान्ति अनुसार छोड़ने से अन्दर निष्कम्प हो गये तो वनस्पति की उपमा दी जाती है। ओहोहो! समझ में आया?

श्रीमद् में आता है न? श्रीमद् में। '**एकाकी विचरूँगा कब श्मशान में...**' श्रीमद् गृहस्थाश्रम में रहते हुए भावना भाते हैं। '**एकाकी विचरूँगा कब श्मशान में...**' परन्तु आप यहाँ हो न? इतनी भावना! भाई! भावना हम अन्दर स्थिरता की करते हैं।

अरु पर्वत में बाघ-सिंह संयोग जब,
अडोल आसन अरु मन में नहीं क्षोभ हो।
परम मित्र का मानो पाया योग जब।

सिंह और बाघ खाने आवे तो मित्र है। हमारे शरीर रखना नहीं, उसे शरीर चाहिए है तो वह हमारा मित्र हो गया। आहाहा! सेठ! हमारा शरीर नहीं। उसका काल होता है तो चला जायेगा और उसे लेना है, खाना है (तो वह) परम मित्र... आहाहा! समता की भावना।

'एकाकी विचरूँगा कब श्मशान में...' अकेला। यह स्त्री, पुत्र, लाखों का

धन्धा। अब सुन तो सही, उसमें से—राग से छूटना है। 'एकाकी विचरूँगा कब श्मशान में, अरु पर्वत में बाघ-सिंह...' वादी-वादी (घाटी)। चार-चार, पाँच-पाँच, आठ-आठ वादी। वह आती न अपने पूना जाते नहीं? क्या कहलाता है वह? माढ? घाट, घाट। सौ-सौ मील में एक घाट। एक बार ऐसा देखा... ओहोहो! खीणुं! उसमें बाघ और भालू। उसमें मनुष्य गया हो तो खा जाये तो मर जाये। कहीं निकलने का रास्ता नहीं। एक पर्वत बड़ा, और दूसरा पर्वत, और तीसरा पर्वत। उसमें जाकर मुनि पड़ें। मुनि उसमें जायें। आहाहा! ऊँचे आकाश, नीचे धरती, दोनों और बाघ और सिंह। समझ में आया? मैं निरावलम्बी आत्मा हूँ अन्दर में। समझ में आया?

'अरु पर्वत में बाघ-सिंह संयोग...' देखो! बाघ और सिंह और दोनों लिये। एक ओर बाघ और सिंह ऐसे बैठे हैं। आहाहा! 'अडोल आसन अरु मन में नहीं क्षोभ हो...' आसन तो भले स्थिर हो परन्तु मन में क्षोभ नहीं कि मोक्ष की उत्पत्ति अभी नहीं। 'परम मित्र का मानो पाया योग जब।' आहाहा! हमारा परममित्र प्रभु हमारा आत्मा, उसके साथ गोष्ठी करते हैं। और वह (सिंह) परम मित्र है। शरीर हमें चाहिए नहीं और वह ले जाता है, ले जाओ भाई, यह हमारे काम का नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी भावना सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में करता है। आहाहा! समझ में आया? हमारा कोई नहीं, हम किसी के नहीं। हम हमारे हैं। ऐसी साधना करके ऐसी स्थिति में जाये कि जहाँ निष्कम्प दशा हो जाये। समझ में आया?

वनस्पति की... लो! ओहोहो! **उपमा दी जाती है, तथापि जिन्होंने कर्मफलानुभूति अत्यन्त निरस्त (नष्ट) की है...** देखो! मानो वनस्पति की उपमा देते हैं मुनि को ऐसे ध्यान में, आनन्द में। कैसी है? **कर्मफलानुभूति अत्यन्त निरस्त (नष्ट) की है...** कर्म का फल तो है नहीं। आत्मा के आनन्द के अनुभव में निष्प्रमादरूप से निष्कम्प मूर्ति रहते हैं। देखो! अन्त में दर्शनविशुद्धि करते-करते चारित्र करके निष्प्रमाद होकर निष्कम्प होकर क्रमसर आगे बढ़ते हैं। समझ में आया? कर्मफल का अनुभव अर्थात् राग-द्वेष का अनुभव अत्यन्त निरस्त (हुआ है)। **कर्मानुभूति के प्रति निरुत्सुक...** और राग के कार्य का वेदन, उससे निरुत्सुक है—उत्साह नहीं। राग के वेदन का उत्साह नहीं।

शुभराग के वेदन की उत्सुकता नहीं, उल्लसित नहीं। स्वभाव सन्मुख का शुद्ध ज्ञानानन्द का कार्य, उसकी उत्सुकता। शुभ व्यवहाररत्नत्रय के भी वेदन की–अनुभव की उत्सुकता, उल्लसितता नहीं। ओहोहो! समझ में आया?

मुमुक्षु : चौथे गुणस्थान में...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चौथे में भावना करता है वह। और यह अन्तिम योगफल आता है उसका। भावना तो वहाँ जाना है या यहाँ पड़े रहना है? समझ में आया? जब से दृष्टि सम्यक् हुई, तब से प्रतीति में आया कि पूर्णानन्द की प्राप्ति, वही मेरी मुक्ति है। यह तो प्रतीति में आया और दर्शनशुद्धि उपरान्त उसमें स्थिरता करने से लाभ होगा, यह चारित्र की प्रतीति आयी है। चारित्र की स्थिरता नहीं। प्रतीति है कि उसमें स्थिर होऊँगा तब मेरा कल्याण होगा। चारित्र की प्रतीति, उसका दर्शन बाहर है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

कर्मानुभूति के प्रति निरुत्सुक वर्तते हुए,... यह वनस्पति को नहीं, ऐसा। यह तो उपमा भले दी, कहते हैं। परन्तु मुनि को हर्ष–शोक का अनुभव है ही नहीं। कर्मानुभूति। कर्म अर्थात् राग, शुभराग, हों! शुभराग की अनुभूति के प्रति निरुत्सुक वर्तते, अपने शुद्ध परिणाम का अनुभव करते हैं। **केवल (मात्र) ज्ञानानुभूति से...** तीनों आ गये। कर्मफलचेतना, कर्मचेतना दोनों को छोड़कर मात्र ज्ञानानुभूति करते हैं। **केवल (मात्र) ज्ञानानुभूति से उत्पन्न हुए...** देखो! राग के अनुभव में तो दुःख था। व्यवहाररत्नत्रय के राग के वेदन में भी दुःख था, ऐसा स्पष्टीकरण भाई करते हैं। समझ में आया? जिसे हमने साधन कहा था, परनतु उसका वेदन तो दुःख था। वह कर्मचेतना है, ज्ञानानुभूति नहीं। आहाहा! समझ में आया? पंच महाव्रत के परिणाम कर्मचेतना है। अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प कर्म–राग है। करूँ, ऐसी बुद्धि नहीं, परन्तु राग का वेदन दुःखरूप है। तो कहते हैं कि कर्मानुभूति से उत्सुकता रहित मात्र ज्ञानानुभूति से उत्पन्न हुआ। व्यवहार से उत्पन्न हुआ आनन्द है? नास्ति से बात की। यहाँ से आनन्द उत्पन्न होता है तो व्यवहार से—राग से आनन्द उत्पन्न नहीं हुआ। उसकी उत्सुकता निवारकर अपने स्वभाव में सावधानी करता है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न अनुभूति हो गयी। तीनों चेतना आ गयी। कर्मचेतना का आदर नहीं, अनुभूति कर्मफल का भाव नहीं। भगवान आत्मा शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... उसका अनुभव वह ज्ञानानुभूति। अन्तर अविकारी अकषाय स्वभाव का अनुभव, उसका नाम ज्ञानानुभूति, उसका नाम शुद्ध परिणति की अनुभूति, उसका नाम शुद्धोपयोग के वेदन की अनुभूति। समझ में आया? उसकी भूमिका में ऐसा निर्णय करे कि यह भूमिका आयेगी तब कल्याण होगा। समझ में आया? शुभराग साधन कहा था और सुमेल कहा था, ऐसा कहा था, इसलिए वहाँ रहते-रहते आगे बढ़ जायेगा, ऐसा नहीं है। स्वभाव का आश्रय जितना... समझ में आया? यह तो दृष्टि में ही विपरीतता है। ओहो! ज्ञानी की व्यायामशाला में कभी आया नहीं। समझ में आया? ज्ञानी की कसरतशाला। शोभालालजी! कसरतशाला।

मुमुक्षु : ज्ञानियों का अखाड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अखाड़ा। भगवान ज्ञाता-दृष्टा का स्वभाव अखाड़ा, उसमें कसरत करने से... समझ में आया? यह व्यायाम उसमें करना है। निमित्त में क्या व्यायाम? और राग में क्या व्यायाम? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : केवल कुश्ती करना आत्मा के साथ। कुश्ती करे कौन? किसके साथ करे कुश्ती? समझ में आया?

और यह ज्ञान की परिणति... यह लिया है न भाई परमात्मप्रकाश में? अभव्य को ज्ञान की परिणति है ही नहीं। ज्ञानपरिणति ही नहीं है उसे। ज्ञानपरिणति उसे कहते हैं कि विकल्प से रहित ज्ञानानुभूति हो, उसका नाम ज्ञानपरिणति। यह क्षयोपशम ज्ञान उसे है, वह ज्ञानपरिणति नहीं। अमरचन्दभाई! अभव्य को ज्ञानपरिणति नहीं, ऐसा कहा है। ज्ञानपरिणति नहीं। ज्ञानपरिणति किसे कहते हैं? यह क्षयोपशम है, वह ज्ञानपरिणति है? क्षयोपशमभाव है न? कि नहीं। ज्ञानपरिणति नहीं। ज्ञानपरिणति, ज्ञानानुभूति की दशा का नाम ज्ञानपरिणति है। अभव्य को कभी नहीं होती। समझ में आया? लो!

ओहोहो! ग्यारह अंग, नौ पूर्व का क्षयोपशम। सनतकुमारजी! एक ज्ञानपरिणति इनकार की। ज्ञान की परिणति नहीं। ज्ञान की परिणति तो ज्ञान शुद्ध है, उसकी निर्मल पर्याय, उसका नाम ज्ञानपरिणति है। जो ज्ञान परलक्ष्य से उत्पन्न हुआ, वह ज्ञानपरिणति ही नहीं। अपने ज्ञाता-दृष्टा के आश्रय से जो ज्ञान शुद्धि परिणति हुई, उसका नाम ज्ञानपरिणति है। समझ में आया? ओहोहो!

केवल (मात्र) ज्ञानानुभूति से उत्पन्न हुए... क्या उत्पन्न हुए? **तात्त्विक आनन्द से अत्यन्त भरपूर वर्तते हुए,...** देखो! तात्त्विक आनन्द, तात्त्विक आनन्द, तत्त्व में भरपूर अन्दर स्थित आनन्द। शुभराग में आनन्द नहीं, व्यवहाररत्नत्रय में आनन्द नहीं। आहाहा! देवीलालजी! वह **(मात्र) ज्ञानानुभूति से उत्पन्न हुए तात्त्विक आनन्द से अत्यन्त भरपूर वर्तते हुए,...** अत्यन्त भरपूर वर्तते हुए आनन्द का खजाना अन्तर में एकाकार होकर खोल दिया है। शुभराग से हटकर अपना स्वभाव निर्विकल्प समाधि में स्थिर हो गये। **तात्त्विक आनन्द से अत्यन्त भरपूर वर्तते हुए,...** देखो! उसमें तो बहुत बात करते हैं कि अपने स्वभाव के आश्रय से शुभ घटता है, शुभ के आश्रय से नहीं। शुभ स्वयं आनन्द नहीं। समझ में आया? हर्ष हो जाये शुभ में कि ओहोहो! बहुत आनन्द हुआ, बहुत आनन्द हुआ। शुभराग में आनन्द है ही नहीं, सुन न! समझ में आया? तात्त्विक आनन्द नहीं। प्रसन्न हो जाते हैं न किसी समय भक्ति में कि आहाहा! बहुत उत्साह आया। परन्तु क्या आया? वह तो शुभराग है। उसमें आनन्द नहीं है। तात्त्विक आनन्द उसमें नहीं है।

तात्त्विक आनन्द से अत्यन्त भरपूर वर्तते हुए,... देखा! भरपूर वर्तते हुए। अपने पुरुषार्थ से द्रव्य का आश्रय लेकर आनन्द के अनुभव में वर्तते हुए। यहाँ तो कर्म का नाम भी लिया नहीं। कर्म इतने घटते जायें तो ऐसा होता है और वैसा होता है। अरे! निमित्त की बात क्या करता है? यहाँ तो शुभभाव की भी बात छुड़ाते हैं। समझ में आया? **शीघ्र संसारसमुद्र को पार उतरकर,...** लो, यह अनन्त चतुर्दशी का अन्ति योगफल यह आया। समझ में आया? अनन्तनाथ भगवान, अपना आत्मा, हों! अनन्तनाथ। अनन्तनाथ—अपने अनन्त गुण शुद्ध, उनका स्वामी होकर क्रम क्रम क्रम से राग घटाते हुए, स्वरूप में स्थिर होते-होते **तात्त्विक आनन्द से अत्यन्त भरपूर वर्तते हुए, शीघ्र**

संसारसमुद्र को पार उतरकर,... लो! अर्थात् उसे अब मुक्ति का काल ही अल्प रहा। अल्प काल में मोक्ष—केवलज्ञान हो जायेगा।

शीघ्र संसार... शीघ्र शब्द में तुम्हारा क्रमबद्ध कहाँ रहा? और तुम्हारे ऐसा बोलते हैं, हों! अरे! भगवान! परन्तु तुझे कुछ नहीं? आहाहा! अरे! भगवान! केवलज्ञान... आहाहा! जिसने ज्ञान में तीन काल-तीन लोक देखे हैं, उसे अभी अनिश्चित और निश्चित्। कुछ अनिश्चित और कुछ निश्चित। प्रभु! तुझे केवलज्ञान की पर्याय-अरिहन्त की खबर नहीं, उसे आत्मा की खबर नहीं और नय की खबर (नहीं और) शास्त्र पढ़कर बके। समझ में आया? ओहो! जहाँ केवलज्ञान (में) तीन काल-तीन लोक व्यवस्थित जैसा है, वैसा स्थिर हो गया निमित्तरूप। उसमें उपादान की पर्याय अपनी ऐसी प्रगट हो गयी। ऐसा होता है। इस कारण से होता है, ऐसा यहाँ नहीं कहना है। परन्तु ऐसा-ऐसा है। ज्ञानपर्याय है ऐसा वहाँ चक्कर पूरा लोकालोक एक समय में (ज्ञात होता है)। ऐसा केवलज्ञान अनिश्चित को जाने, ऐसी बात नहीं। सब निश्चित है। जहाँ-जहाँ पर्याय प्रगट होगी, वहाँ-वहाँ निमित्त कौन इन सबका केवलज्ञान में ज्ञान हो गया है। कोई बाकी है नहीं। आहाहा! ऐसे सर्वज्ञ का निर्णय करनेवाले को अपने सर्वज्ञस्वभाव का निर्णय करता है, तब सर्वज्ञ का निर्णय हो जाता है। तब आगे बढ़कर (स्थिरता) करते... करते... करते... पर्याय में सर्वज्ञ हो गया अब। समझ में आया?

शीघ्र संसारसमुद्र को पार उतरकर,... शीघ्र का अर्थ? अब उसे केवलज्ञान प्राप्त करने का काल दीर्घ रहा नहीं। वह अपने स्वभाव सन्मुख की कसरत में पड़ा है, तात्त्विक आनन्द के अनुभव में पड़ा है। संसार समुद्र के पार। आहाहा! खारे जल जैसे संसारसागर को पार होकर **शब्दब्रह्म के शाश्वत फल के...** भगवान की वाणी का फल क्या? लो! **शाश्वत फल के (-निर्वाणसुख के) भोक्ता होते हैं।** शब्दब्रह्म में मुक्ति करना, यह उसका फल बतलाया है। शब्द में ऐसा नहीं कहा कि तुझे संसार मिले और ऐसा मिला है। संसार का अभाव होकर विकल्प... संसार शब्द से उदयभाव। संसार अर्थात् भावसंसार उदयभाव। बाकी की बाहर की बात। उसका अभाव करके **शब्दब्रह्म के शाश्वत फल के...** लो, शब्दब्रह्म में कहनेवाला शाश्वत् निर्वाणसुख। यहाँ तो

शब्दब्रह्म में यह कहा है, ऐसा कहते हैं। जैसे कहा कि शब्दब्रह्म सब शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता है। ऐसा कहा न पहले श्लोक में? वहाँ से बात चली है। सब शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता और सूत्रतात्पर्य प्रत्येक गाथा में कहा गया भाव है, तो कहते हैं कि सब शास्त्र का सार वीतरागता है। तो वह वीतरागता शब्दब्रह्म के साररूप शाश्वत् निर्वाण पूर्ण वीतराग हो गया, वह शब्दब्रह्म का फल है। निमित्त में ऐसा कहा जाता है। लो, भोक्ता। आनन्द का भोक्ता पूर्णानन्द का। वही समयसार शब्दब्रह्म वाणी का फल है। वाणी में यह कहना है। इसे समझे और स्थिर हो तो उसे मुक्ति हुए बिना नहीं रहती। पूर्णानन्द का भोक्ता वह होता है, लो। कहो, समझ में आया?

थोड़ी-थोड़ी बात की, उसके सामने अपने मिश्र की। दो नयों को सच्चा माने, 'है' अपेक्षा से सच्चा। क्या? नय है तो नय का विषय है। व्यवहारनय है तो नय विषयी है, तो उसका विषय है। पर्याय, राग वह विषय है और निश्चयनय का विषय अभेद त्रिकाल एक वस्तु है। वह 'है' अपेक्षा से ज्ञान करने के लिये समकक्षी है। आदरणीय करने में एक व्यवहार आदरणीय नहीं, हेय है और निश्चय उपादेय है। दोनों को एक (समान) सत्य माने तो दो नय का खिचड़ा है। दो कहाँ से आये? दोनों सत्य हैं और दोनों उपादेय हैं और दोनों से मुक्ति होती है तो दो कहाँ से रहे? समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो एक हो गया। दो कहाँ से हो गये?

मुमुक्षु : एक-दूसरे का पूरक....

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरक नहीं। ज्ञान करने में पूरक है। लाभ कहा इसलिए आश्रय करने में पूरक नहीं। दो बातें हैं। निश्चय का ज्ञान हो और निश्चय में स्थिर हो, साथ में व्यवहार का ज्ञान करने में पूरक है, प्रमाणज्ञान होता है। परन्तु आश्रय करने में, लाभ करने में पूरक है, ऐसा है नहीं। सब शास्त्रों का सार मुक्ति। वह क्रमसर स्वभाव के आश्रय से प्राप्त होती है, ऐसा १७२ में वीतरागता तात्पर्य कहा। उसका सार कह दिया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १७३

मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिप्पचोदिदेण मया।
भणियं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं सुत्तं।।१७३।।

प्रवचनभक्ति से प्रेरित सदा यह हेतु मार्ग प्रभावना।
दिव्यध्वनि का सारमय यह ग्रन्थ मुझसे है बना।।१७३।।

अन्वयार्थ :- [प्रवचनभक्तिप्रचोदितेन मया] प्रवचन की भक्ति से प्रेरित ऐसे मैंने, [मार्गप्रभावनार्थं] मार्ग की प्रभावना के हेतु, [प्रवचनसारं] प्रवचन के सारभूत [पञ्चास्तिकसंग्रहं सूत्रम्] 'पंचास्तिकायसंग्रह' सूत्र [भणितम्] कहा।

टीका :- यह, कर्ता की प्रतिज्ञा की पूर्णता सूचित करनेवाली समाप्ति है (अर्थात् यहाँ शास्त्रकर्ता श्रीमद्‌भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव अपनी प्रतिज्ञा की पूर्णता सूचित करते हुए शास्त्र समाप्ति करते हैं।)

मार्ग अर्थात् परम वैराग्य करने की ओर ढ़लती हुई पारमेश्वरी परम आज्ञा (अर्थात् परम वैराग्य करने की परमेश्वर की परम आज्ञा); उसकी प्रभावना अर्थात् प्रख्यापन द्वारा अथवा प्रकृष्ट परिणति द्वारा उसका समुद्योत करना; [परम वैराग्य करने की जिनभगवान की परम आज्ञा की प्रभावना अर्थात् (१) उसकी प्रख्याति—विज्ञापन—करने द्वारा अथवा (२) परमवैराग्यमय प्रकृष्ट परिणमन द्वारा, उसका सम्यक् प्रकार से उद्योत करना;] उसके हेतु ही (-मार्ग की प्रभावना के लिये ही), परमागम की ओर के अनुराग के वेग से जिसका मन अति चलित होता था, ऐसे मैंने यह 'पंचास्तिाकायसंग्रह' नाम का सूत्र कहा—जो कि भगवान सर्वज्ञ द्वारा उपज्ञ होने से (-वीतराग सर्वज्ञ जिनभगवान ने स्वयं जानकर प्रणीत किया होने से) 'सूत्र' है, और जो संक्षेप से समस्तवस्तुतत्त्व का (सर्व वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप का) प्रतिपादन करता होने से, अति विस्तृत ऐसे भी प्रवचन के सारभूत हैं (-द्वादशांगरूप से विस्तीर्ण ऐसे भी जिनप्रवचन के सारभूत है)।

इस प्रकार शास्त्रकार (श्रीमद्‌भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव) प्रारम्भ किये हुए कार्य के अन्त को पाकर, अत्यन्त कृतकृत्य होकर, परमनैष्कर्म्यरूप शुद्धस्वरूप में विश्रान्त

हुए (परम निष्कर्मपनेरूप शुद्धस्वरूप में स्थिर हुए) -ऐसे श्रद्धे जाते हैं (अर्थात् ऐसी हम श्रद्धा करते हैं)॥१७३॥

भाद्र शुक्ल १५, सोमवार, दिनांक - २१-०९-१९६४, गाथा-१७३, श्लोक-८, प्रवचन-२७

१७३ अन्तिम गाथा।

मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिप्पचोदिदेण मया।
भणियं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं सुत्तं।।१७३।।

कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने प्रतिज्ञा की थी, उसकी पूर्णाहूति करते हैं। १७३।

टीका :- यह, कर्ता की प्रतिज्ञा की पूर्णता सूचित करनेवाली समाप्ति है... कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने प्रति की थी कि मैं पंचास्तिकायसंग्रह सूत्र कहूँगा। उसकी यहाँ समाप्ति—पूर्णाहूति करते हैं। **(अर्थात् यहाँ शास्त्रकर्ता श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्द-आचार्यदेव अपनी प्रतिज्ञा की पूर्णता सूचित करते हुए शास्त्र समाप्ति करते हैं।)** कथन में तो क्या आवे? देखो! यहाँ कहे, शास्त्र (के) कर्ता। यह कर्ता की प्रतिज्ञा ऐसा शब्द पड़ा है। तो यह शास्त्रकर्ता कुन्दकुन्दाचार्य वास्तव में वाणी को करते हैं? यह स्पष्टीकरण अन्तिम गाथा में आयेगा।

मुमुक्षु : जैनधर्म में तो दोनों होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो हों किसका? एक ही होता है। वह तो यहाँ वाणी रचनाकाल में निमित्त कौन था, उसका ज्ञान कराने के लिये शास्त्रकर्ता कुन्दकुन्दाचार्य हैं, ऐसी बात का ज्ञान कराने के लिये कहा है। अब विवाद करते हैं कि कर्ता भी है। देखो! तुम तो इनकार करते हो न कि शास्त्र, वाणी का कर्ता (आत्मा) नहीं। यह कर्ता आया। है या नहीं? परन्तु उपचार से कर्ता है या नहीं? उपचार, वह झूठी बात है? ऐसा (वे) कहते हैं, लो!

मुमुक्षु : उपचार है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्ता है या नहीं? दो में से एक होता है या नहीं? या कुछ

निर्णय नहीं ? कर्ता निमित्तरूप से कहा जाता है। है नहीं। यह अभी श्लोक में कहेंगे। वाणी को कौन करे ? आहाहा! अरे! अभिमान भी कितना! अनन्त परमाणु एक अक्षर, ऐसे अनन्त स्कन्ध का एक अक्षर, उसके एक स्कन्ध में अनन्त परमाणु। एक अक्षर। पंचास्तिकाय। 'पं'-अनन्त परमाणुओं का एक स्कन्ध, ऐसे अनन्त स्कन्ध का एक अक्षर 'पं' है। कौन बनावे भाई ? क्या हो ?

मुमुक्षु : अचिन्त्य शक्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : अचिन्त्य शक्ति जड़ में जड़ की, आत्मा में आत्मा की। आत्मा क्या पर का कर्ता है ? लो!

यह, कर्ता की प्रतिज्ञा की पूर्णता सूचित करनेवाली... कर्ता की बात ली है न ? अमृतचन्द्राचार्य बोलते हैं, देखो! **'कर्तुः प्रतिज्ञानिर्व्यूढिसूचिका समापनयेम्।'** कुन्दकुन्दाचार्य कर्ता हैं। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, लो! यह अमृतचन्द्राचार्य आगे कहेंगे कि भाई! मैंने नहीं किया, हों!

मुमुक्षु : मैंने नहीं किया परन्तु कुन्दकुन्दाचार्य ने किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुन्दकुन्दाचार्य ने भी किया नहीं। मैंने किया क्या ? किसी ने किया नहीं। परन्तु अब यह वाणी... आज लेख आया है। श्लोक क्या कहलाता है ? सेवो मार्ग। व्यवहारमोक्षमार्ग है दसवें गुणस्थान तक और उससे मोहकर्म का नाश होता है और फिर निश्चयमोक्षमार्ग से सात कर्म का नाश होता है। सात रहे या नहीं ? क्षीणमोह (गुणस्थान) में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय और फिर चार अघाति। इसलिए दोनों मोक्षमार्ग है। व्यवहारमोक्षमार्ग से मोह का नाश होता है, निश्चयमोक्षमार्ग से सात का नाश होता है। ऐसा करके आठ का होता है। ताराचन्दभाई!

मुमुक्षु : बाँट दिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाँट दिये, बाँट दिये बस। अमरचन्दभाई!

मुमुक्षु : स्वपरहेतुक से सब होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कितना एकदम उसे... और सम्यग्दृष्टि को... ऐसा लिखा है

अन्दर, सम्यग्दृष्टि को जितनी पूर्व की कर्म की निर्जरा होती है, उससे अधिक नया बन्ध होता है, असंयम के कारण। कहो, इसलिए सब बात उसे संयम के ऊपर बाहर की क्रिया, पंच महाव्रत और वही संयम है और वह ही बारहवें गुणस्थान में ले जाने की ताकत है उसमें। व्यवहारसंयम, व्यवहारदर्शन, व्यवहारज्ञान, बारहवें गुणस्थान में ले जाने की उसकी ताकत है, ऐसा गणधरों ने कहा है, ऐसा लिखा है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि यहाँ कर्ता की प्रतिज्ञा का अर्थ? यह शास्त्र बनने के काल में निमित्त कौन था? इतनी बात कहने के लिये यह बात की है। अरे! भगवान! वाणी कौन करे भाई? छह काय की दया पाले। ऐसा सब बहुत लिखा है। छह काय की दया पालते हैं, छह काय की रक्षा करे, वह संयम है और उस संयम से राग-द्वेष टलता है, वह धर्मध्यान है। कहो, देवीलालजी! एक बार तो पूरब-पश्चिम अभी ऐसी है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। व्यवहार को निश्चय बनावे। व्यवहार तो विकल्पात्मक भाग है। ओहोहो! व्यवहार तो पराश्रित भाव है। व्यवहार होता है, वह अलग बात है और उससे संवर-निर्जरा हो, यह अलग बात है। संवर-निर्जरा... परन्तु क्या कहे? नहीं। उदयभाव नहीं। वह क्षयोपशम, क्षायिकभाव, उपशमभाव ऐसा लिखा है, हों! पंच महाव्रत आदि परिणाम कोई उदयभाव कहते हैं, ऐसा नहीं। उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव है। अब यहाँ तत्त्वार्थसूत्र में कहते हैं कि महाव्रत है, बारह व्रत है, वह आस्रव है। परन्तु बहुत बदल गया यह तो। चक्र तो अभी बदल गया। ओहोहो!

यहाँ कहते हैं... देखो! **मार्ग अर्थात् परम वैराग्य करने की ओर ढ़लती हुई पारमेश्वरी परम आज्ञा...** देखो! यह व्याख्या अमृतचन्द्राचार्य महाराज की। **मार्ग अर्थात् परम वैराग्य...** विकल्प निमित्त से हटने का परमवैराग्य। यहाँ नास्ति से बात की है। अस्ति से तो चैतन्यमूर्ति पूर्णानन्द अखण्ड आनन्द ध्रुव में दृष्टि, स्थिरता होने से पर से हटता है। राग विकल्प शुभ हो या अशुभ हो, उससे परम वैराग्य—अत्यन्त उदास। संयोग से उदास और पुण्य-पाप के विकल्प दोनों बन्ध का कारण है। उससे हटना अर्थात् वीतरागभाव की पर्याय प्रगट करना, वह ही एक मार्ग है। कहो, समझ में आया?

परम वैराग्य करने की ओर ढ़लती हुई पारमेश्वरी परम आज्ञा... भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ प्रभु की आज्ञा—पारमेश्वरी आज्ञा, **परम वैराग्य करने की परमेश्वर की परम आज्ञा...** है। परम वैराग्य करने की परमेश्वर की परम आज्ञा है। दोनों में परम लगाया है। परम वैराग्य करने की परमेश्वर की परम आज्ञा है। पर से हटकर वीतरागभाव प्रगट करना, इसका अर्थ हुआ कि त्रिकाल ज्ञायकभाव की ओर ढलकर राग की उत्पत्ति न होना, ऐसा परम वैराग्य, ऐसी परमेश्वर की आज्ञा है। कहो, समझ में आया?

उसकी प्रभावना अर्थात् प्रख्यापन द्वारा... कथन द्वारा। दो बात है न? एक तो यह मार्ग कहना और यह मार्ग अन्तर में प्रसिद्ध करना। अपने अन्तर में। **प्रख्यापन द्वारा अथवा...** दो शब्द पड़े हैं। '**प्रख्यापनद्वारेण प्रकृष्टपरिणतिद्वारेण वा**' संस्कृत में भाई! दो है न? दो है न? कथन भी है। वीतराग ने आज्ञा कही, भाई! प्रभु! तू परमेश्वर है। तू पूरा परमेश्वर है। आहाहा! तुझे तो, कोई एक विकल्प है, उससे भी हटकर निर्विकल्प में रहना, वही तेरा मार्ग है। उस मार्ग की परमेश्वर की परम आज्ञा है। परम आज्ञा क्यों कही? कि किसी समय जिनवर की व्यवहार आज्ञा में पंच महाव्रत आदि आते है या नहीं शास्त्र में? जिनवर कथित। आता है न समयसार में? वह व्यवहार आज्ञा है। वह व्यवहार आज्ञा अर्थात् कि बन्ध का कारण, उसे व्यवहार आज्ञा कही है। उसका फल संसार है। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए यहाँ कहा कि **परम वैराग्य करने की ओर ढ़लती हुई पारमेश्वरी परम आज्ञा...** देखो, यह परम आज्ञा। आज्ञा में भी परम आज्ञा और आज्ञा—दो भाग। आहाहा! समझ में आया? मात्र चैतन्यस्वभाव अविकारी स्वभाव में सावधानी करना। इसका अर्थ कि राग से हटकर अन्तर वीतराग परिणति प्रगट करना, वही परमेश्वर की परम आज्ञा है। कहो, समझ में आया? **उसकी प्रभावना अर्थात् प्रख्यापन...** कथन करना। यह निमित्त से कथन है और **प्रकृष्ट परिणति द्वारा उसका समुद्योत करना;...** अपने में निर्मल वीतरागी परिणति अविकारी प्रगट करना, उसे मार्ग की प्रभावना कहा जाता है। वह मार्ग की प्रभावना अपने में होती है। वाणी से, निमित्त से पर में होती है, ऐसा कहा जाता है। वाणी, कहते हैं न, वाणी से कहना। वह वाणी निमित्त है तो ऐसा प्रख्यापन

कहते हैं (अर्थात्) कथन करना कि मार्ग ऐसा है, भाई! परमेश्वर त्रिलोकनाथ जैन वीतराग की राग की आज्ञा नहीं है। कहो, समझ में आया? पंच महाव्रत आदि हैं, वह व्यवहारसंयम वह विकल्प है। वास्तव में परम आज्ञा वह है ही नहीं। कहो, भीखाभाई!

अरे! कहते हैं कि **प्रभावना अर्थात् प्रख्यापन द्वारा अथवा प्रकृष्ट परिणति द्वारा उसका...** अर्थात् मार्ग का। **(परम वैराग्य करने की जिनभगवान की परम आज्ञा की प्रभावना अर्थात् (१) उसकी प्रख्याति—विज्ञापन—करने द्वारा...)** एक बात। विज्ञापन करना। यही आज्ञा। भाई ऐसा कहते हैं। वीतरागपने का ही कथन करना, ऐसा कहते हैं, लो, दूसरी भाषा से कहें तो। आहाहा! समझ में आया? वीतरागता का कथन करना। ओहो! राग का एक कण, भाई! वह तेरी चीज़ नहीं, हों! वीतरागमार्ग तो वीतराग का ही कथन करता है। ओहो! समझ में आया?

यह आत्मानुशासन में कहा है न? आत्मानुशासन क्या? आत्मावलोकन। वीतराग मूहू... मूहू... मुनि तो बारम्बार वीतराग... वीतराग... वीतराग... (की भावना भाते हैं)। वह वीतराग अर्थात? सर्वज्ञ वीतराग, ऐसा नहीं। तेरी पर्याय में रागरहित दशा प्रगट करना, वही भगवान की-परमेश्वर की परम आज्ञा है। आहाहा! राग बाकी हो व्यवहार... वह सब बात आ गयी न? निश्चय-व्यवहार को अविरोध न... अब अन्तिम मूल आज्ञा क्या है, उसकी बात यहाँ की है। आहाहा! हो, व्यवहार उसकी भूमिका के योग्य, ऐसा निमित्त हो, उसका ज्ञान कराया है। समझ में आया? व्यवहार आज्ञा भी उसे कहा जाता है। परन्तु वह परम आज्ञा नहीं। कहो, सेठी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पूर्ण रागरहित, विकल्प का भेद पड़ता है, उससे रहित, इस भेद से रहित अभेद चिदानन्द में लीन होना, वही परम आज्ञा भगवान की है। आहाहा! बहुत कठिन पड़े जगत को। यह लोगों को... एक विचार ऐसा आया था कि अरे! बेचारे, यह साधारण मनुष्य बेचारे उलझते हैं कितने ही।

मुमुक्षु : कोई उलझता नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : वाह! परन्तु वे दो, तीन, चार ऐसे लगे, वह ऐसा लगे।

मुमुक्षु : लगे परन्तु....

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक कहते हैं। यह अभी सही कहा, हों! एक ऐसा कहे, एक ऐसा कहे। लोग बेचारों को ऐसा होता है कि क्या होगा यह वह मार्ग? यह तो बारम्बार यहाँ परिचय में आते हैं, इसलिए यह बोलते हैं। क्यों शोभालालभाई? आहाहा!

कहते हैं कि प्रभु की परम आज्ञा। उन्होंने तो वीतरागता सर्वज्ञ वीतरागविज्ञानघन दशा प्रगट की है न? तो आज्ञा में वह वीतरागता ही मार्ग में आयी है। समझ में आया? जैन है न जैन? जिन को माने, वह जैन। तो जिन यह कहते हैं—वीतराग। जिसमें राग शुभ-अशुभ न हो, ऐसी परिणति का मार्ग, वीतराग परिणति मार्ग, वह परमेश्वर की परम आज्ञा है। समझ में आया?

परम वैराग्य... विज्ञापन करने के द्वारा। एक तो सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा हुआ वीतरागमार्ग, उसका कथन करना, वह व्यवहार हुआ। **अथवा (२) परमवैराग्यमय प्रकृष्ट परिणमन द्वारा,....** परमवैराग्यमय प्रकृष्ट परिणमन द्वारा। तो परम वैराग्य कब होता है? राग से हटना, यह तो व्यवहार से कथन है। समझ में आया? भगवान आत्मा अपना पूर्ण स्वभाव, समृद्धि, सम्पत्ति रखता है, उस ओर के अस्तित्व में घुसकर राग की उत्पत्ति न होना, व्यवहार के राग की भी, ऐसी वीतराग परिणति की परमेश्वर की परम आज्ञा है। अमरचन्दभाई! आहाहा! त्रिलोकनाथ वीतराग जैन परमेश्वर अनन्त हुए और वर्तमान भगवान महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। सबकी, परमेश्वर की आज्ञा, अपने में परम ईश्वरता में स्थिर होना, यही आज्ञा है। आहाहा! समझ में आया?

अथवा परमवैराग्यमय प्रकृष्ट.... प्रकृष्ट अर्थात् ऊँचे प्रकार की विशेष परिणमन द्वारा देखो! पर्याय में वीतराग परिणति द्वारा। **उसका सम्यक् प्रकार से उद्योत करना;...** कथन द्वारा—यह निमित्त से आया और अन्तर में परमवैराग्य द्वारा **उसका सम्यक् प्रकार से उद्योत करना;...** अपने स्वभाव में उद्योत करना। इसके निर्णय में यह बात जमे तो सही! यह जमे बिना उस ओर—आत्मा की ओर झुकेगा कब? एक निर्णय में ऐसा आना चाहिए कि यह वस्तु अखण्डानन्द, पर से उपेक्षा और स्व की अपेक्षा में रहना, यही परमेश्वर त्रिकाल ज्ञानी की आज्ञा है। समझ में आया?

कहते हैं कि **उसके हेतु ही (-मार्ग की प्रभावना के हेतु ही), परमागम की ओर के अनुराग के वेग से....** '**पवयणभत्ति**' है न शब्द? '**पवयणभत्ति**' पहला '**मग्गप्पभावणट्ठं**' इसका अर्थ किया। एक पद का अर्थ किया। '**मग्गप्पभावणट्ठं**' इसका अर्थ किया। अब '**पवयणभत्ति**' प्रेरित होकर। 'प्रेरित होकर' का अर्थ क्या? कि **परमागम की ओर के अनुराग के वेग से...** बारम्बार ऐसा वेग आता था। परमागम के प्रति अनुराग। ओहो! यह पंचास्तिकाय बने, पंचास्तिकाय संग्रह शास्त्र बने, ऐसा बारम्बार अनुराग, घोलन में विकल्प बारम्बार आता था। समझ में आया? स्वभाव में स्थिर होते-होते भी यह विकल्प बारम्बार आता था। **परमागम की ओर के अनुराग के वेग से जिसका मन अति चलित होता था,...** भाषा देखो भाषा!

मुमुक्षु : यह व्यवहार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार। प्रज्ञापन कहा न पहले? व्यवहार कहा। यह कथन किया। परन्तु कथन में बारम्बार ऐसा कहूँ... ऐसा कहूँ... ऐसा स्पष्टीकरण करूँ... पंचास्तिकाय की टीका-पाठ कहूँ, अमृतचन्द्राचार्य को यह आया। इसकी टीका हो तो ठीक, विस्तार-स्पष्टीकरण हो तो ठीक। ऐसा परमागम के प्रेम का वेग बारम्बार आता था। समझ में आया?

नियमसार में है। (पद्मप्रभमलधारिदेव कृत कलश)। यह सब यहाँ की टीका ही की है। समझे? यह अमृतचन्द्राचार्य की टीका का अनुकरण बहुत किया है उसमें। (श्लोक ६) **अभी हमारा मन परमागम के सार की पुष्ट रुचि से पुनः पुनः अत्यन्त प्रेरित होता है।** पद्मप्रभमलधारिदेव। अभी हमारा मन यह टीका करने का क्यों होता है? अभी हमारा मन परमागम के सार, परमागम का सार, नियमसार है न यह? उसकी पुष्ट रुचि से। यह विकल्प है। पुनः पुनः अत्यन्त प्रेरित होता था। **उस रुचि से प्रेरित होने के कारण 'तात्पर्यवृत्ति' नाम की यह टीका रची जा रही है।** विकल्प ऐसा बारम्बार आता था कि इस परमागम की पुष्टि हो। सार... सार... नियमसार की स्पष्टीकरण टीका हो, ऐसा हमारा मन बारम्बार उस ओर ढलता था तो टीका हो गयी। तो उसकी टीका बनायी, ऐसा व्यवहार से कहने में आया। ओहोहो! यह तो उन फूलचन्दजी ने लिखा है

कि हम लोगों को समझाने के लिये कहते हैं। देखो! कर्ता आया या नहीं? सोनगढ़वाले कर्ता नहीं माने परन्तु वह तो कर्ता मानते हैं। भाई! भगवान! तेरी भी बलिहारी है न! आहाहा! अरे! कहाँ किस प्रकार तर्क किया? किस प्रकार कुछ अता-पता नहीं होता कहीं।

मुमुक्षु : उन्हें तो अता-पता हाथ में आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आ गया उन्हें। देखो! उन्होंने लिखा उसका अर्थ हुआ कि कर्ता है और लिखा है, इसका अर्थ हुआ, उससे यह समझेगा। और सोनगढ़वाले कहते हैं कि कर्ता नहीं तो उसकी श्रद्धा उसे नहीं। और उनसे वह समझेगा, इससे इनकार करते हैं और यह कहते हैं कि समझेगा। आहाहा! राजमलजी! तुम्हारी वकालत में ऐसा तर्क नहीं आता होगा। आहाहा!

कहते हैं कि हमारा मन परमागम की भक्ति... देखो! भक्ति का अर्थ अनुराग। **'मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्ति'** प्रवचन भगवान की वाणी पंचास्तिकाय उसे मैं बनाऊँ, ऐसा विकल्प बारम्बार आता था। समझ में आया? हमारे ज्ञान में तो है ही नहीं। विकल्प लाना, ऐसा नहीं और शास्त्र बनाना यह भी नहीं। हमारे स्वरूप में तो है ही नहीं। परन्तु बारम्बार यह विकल्प आता था तो शास्त्र बन गया अथवा बनता है या बनाता हूँ, बनाता हूँ—ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! गजब अभिमान भाई जीव को। मौनरूप से पड़ा है अन्दर प्रभु तो। अन्दर चिदानन्दघन मौनरूप से अनादि अनन्त मौन। उसमें वाणी नहीं, विकल्प नहीं। चिदानन्दघन वीतरागी अपना स्वरूप ज्ञायकभाव से अनादि अनन्त पड़ा है। उसमें नहीं वाणी, उसमें नहीं विकल्प, ऐसी चीज़ को आत्मा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? विकल्प तो आस्रव है, वाणी तो अजीव है। ज्ञायकभाव तो जीव है। तीन तत्त्व तो हो गये भिन्न। सामग्री कुछ मिली हो अनुकूल शरीर आदि, कुछ क्षयोपशम ऐसा हो, कहाँ लगावे बात को! आहाहा!

कहते हैं कि हमारे अनुराग के कारण अतिचलित होता था। भाषा देखी! **मन अति चलित होता था,...** बारम्बार विकल्प आता था, बारम्बार उस ओर का। इसका अर्थ कि यह बनने की चीज़ थी तो ऐसा विकल्प आता था। वह विकल्प था, इसलिए

हुआ, ऐसा भी नहीं। तो यह हुआ कर्ता और विकल्प हुआ कर्म, ऐसा भी नहीं। शास्त्र बनने का था, इसलिए हमको विकल्प आता था, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया? क्योंकि शास्त्र की पर्याय जड़ की होती है (और) उसके कारण से विकल्प आता हो तो वह हुआ कर्ता और राग कार्य हुआ। ऐसा है नहीं। ब्रह्मचारीजी! यह तो बात ऐसी है। क्या करे? और राग आया, इसलिए यह वाणी की वस्तु बन गयी, ऐसा भी नहीं है। तो राग हुआ कर्ता और वाणी की पर्याय हुई कर्म—कार्य हुआ, ऐसा भी वस्तु में तो नहीं है। कर्ता-कर्म भिन्न तो हो नहीं सकते। निमित्त कथन कैसे करे? यह वाणी की पद्धति है।

कहते हैं कि **अति चलित होता था, ऐसे मैंने....** देखो! 'मैंने' कहा न पाठ में? अब आया। '**भत्तिप्पचोदिदेण मया**' यह शब्द पड़ा है। वहाँ शब्द रखा है। देखो, समयसार में शब्द नहीं आया, प्रवचनसार में नहीं आया। समझ में आया? '**मया**' मुझे ऐसा विकल्प आया। '**मया' मैंने यह 'पंचास्तिाकायसंग्रह' नाम का सूत्र कहा...** पंचास्तिकायसंग्रह। एक काल (द्रव्य) गौण। **नाम का सूत्र कहा...** मैंने कहा। भाषा क्या कहे? अरे! सनतकुमारजी! अरे! भगवान! अरे! विरोध टालने का काल है, उसमें विरोध उठाना। आहाहा! यह लिखा। परन्तु लिखा, बापू! भाई! यह तो कहते हैं कि हमको विकल्प आया, सूत्र रचा, ऐसा निमित्त से कहने में आया है। कर्ता-फर्ता हम तीन काल में है ही नहीं। **सूत्र कहा—जो कि भगवान सर्वज्ञ द्वारा उपज्ञ होने से...** देखो! क्या कहते हैं? भगवान सर्वज्ञ द्वारा उपज्ञ होने से। **(-वीतराग सर्वज्ञ जिनभगवान ने स्वयं जानकर...** देखो! यह पंचास्तिकाय भगवान ने जाना है। और वे कहे, भगवान ने जाना तो व्यवहार हो गया। अरे! विवाद वह भी क्षण-क्षण में विवाद।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए व्यवहार खोटा। अरे! भाई! समझ में आया? सुनते हैं तो बहुत समय से, पहले से सुनते हैं, परन्तु क्या कहते हैं, इसकी खबर नहीं। जय नारायण। पैसा दो तो कहे, लाओ। रख दे। शोभालालभाई! वस्तु क्या चीज़ है, वह समझ में न आवे, तब तक सत्यता कहाँ से आवे? ऐसा का ऐसा सुने और ऐसा कहे। ठीक, यह क्या कहते हैं? अच्छा कहते हैं। परन्तु क्या कहते हैं? और कहने में सार उसका भाव क्या है?

यहाँ तो भगवान अमृतचन्द्राचार्य महाराज महासन्त मुनि नौ सौ वर्ष पहले, ओहोहो! भरतक्षेत्र में जब चलते होंगे और रहते होंगे। ओहोहो! सिद्धस्वरूप! मानो डोलते सिद्ध चलते (सिद्ध)। वे अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, हमारा मन उसकी टीका करने में बारम्बार प्रेरित होता है, हों! तो कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि सूत्र मैंने बनाया। अमृतचन्द्राचार्य कहे, मैंने टीका बनायी, ऐसा निमित्त से कथन किया गया है। अरे! भगवान! आहाहा! मैंने किया... मैंने किया... बापू! भाई! उसमें कहीं वाणी अक्षर पड़े हैं आत्मा में? वह तो ज्ञानघन है। उसमें ज्ञान हो और ज्ञान की दशा प्रगट हो, केवलज्ञान की दशा प्रगट हो, ऐसा सत्त्व है। परमाणु प्रगट हो, ऐसा सत्त्व उसमें भरा है? एक अक्षर प्रगट हो, ऐसी कोई अन्दर शक्ति है द्रव्य में, गुण में, पर्याय में? अरे! राग में? तीनों तो निर्मल है, परन्तु राग में सामर्थ्य है कि अक्षर अन्दर में से छूटे? अक्षर तो अनन्त परमाणु का दल है।

जिनभगवान ने स्वयं जानकर... देखो! **प्रणीत किया होने से...** दो शब्द लिये। समझ में आया? **भगवान सर्वज्ञ द्वारा उपज्ञ होने से...** सूत्र है, ऐसा कहना है न? सर्वज्ञ परमात्मा... एक समय में वीतराग सर्वज्ञ ने जाना स्व सहित पंचास्तिकाय सब। सब पंचास्तिकाय उनके केवलज्ञान में उपज्ञ—जानने में आये। जानकर कहा है। भगवान ने जानकर कहा, छह द्रव्य है, लोकालोक है, ऐसा है। जाना है। व्यवहार से जाना अर्थात् (सर्वथा) नहीं जाना, ऐसा नहीं। तन्मय होकर नहीं जानते, इसका नाम व्यवहार से पर को जानते हैं। निश्चय से तो अपनी पर्याय में तन्मय होकर (स्व को) जानते हैं, (साथ में) लोकालोक जैसा है, वैसा सब जाना अपनी पर्याय में। आत्मा की पर्याय अपनी पर्याय एक समय की। आहाहा! वे तो पर्याय को देखते हैं। वास्तव में तो द्रव्य-गुण-पर्याय को देखने में पर्याय का इतना सामर्थ्य है, उसे जानते हैं। एक समय की ताकत इतनी है, ऐसा जानने से सर्व ज्ञात हो गया। लोकालोक आ गया। बाहर नजर किये बिना अन्तर की परिणति में आत्मदर्शन, आत्मदर्शी, सर्वदर्शी, सर्वज्ञशक्ति का परिणमन हो गया। समझ में आया?

सूत्र क्यों कहा? समझ में आया? कि सूत्र अन्तिम शब्द है न? १७३ में।

'पंचत्थियसंगहं सुत्तं।' तो **'पंचास्तिकायसंग्रह' नाम का सूत्र कहा—जो कि भगवान सर्वज्ञ द्वारा उपज्ञ होने से 'सूत्र' है,...** सूत्र है यह। भगवान ने कहा, वह सूत्र है। समझ में आया? **और जो संक्षेप से समस्तवस्तुतत्त्व का प्रतिपादन करता होने से,....** यह शास्त्र क्या है? सम्पूर्ण जाना है और संक्षेप से समस्त वस्तुतत्त्व का **(सर्व वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप का)...** सर्व वस्तु के यथार्थ स्वरूप का **प्रतिपादन करता होने से,....** वाणी प्रतिपादन करती है। भगवान की वाणी प्रतिपादन करती है तो 'भगवान की वाणी' व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! गजब वाणी, हों भाई! विवाद करना हो तो इसे क्षण-क्षण में विवाद। देखो! सब कहा है, इन्होंने इसमें बहुत (विरोध का) लिखा है। बस! केवल व्यवहारमोक्षमार्ग से मोह का नाश होता है। ऐई! देवानुप्रिया! और निश्चयमोक्षमार्ग से सात कर्म के नाश (होता है)। आठों कर्मों के नाश की विधि। दोनों मोक्षमार्ग है व्यवहार और निश्चय। इसलिए व्यवहारमोक्षमार्ग वह मोहकर्म के नाश का कारण—उपाय है। उदयभाव नहीं महाव्रतादि। उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक (भाव है)। व्यवहार... वाह रे प्रभु वाह! खोज भी नयी निकाली न!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मोह का जोरदार काम यह व्यवहार नाश करे और निश्चयमोक्षमार्ग सात कर्म का नाश करे। क्योंकि निश्चयमोक्षमार्ग होता है बारहवें में। इसलिए बारहवें में जहाँ निश्चयमोक्षमार्ग हुआ तो ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय कर्म का नाश करके केवलज्ञान (होता है)। फिर चार का नाश करके मोक्ष (होता है)। निश्चयमोक्षमार्ग में यह सामर्थ्य (और) व्यवहार में महा मोह, मूल जो दुश्मन मोह, उसके लिये तो व्यवहार क्रियाकाण्ड के परिणाम ही नाश करने का उपाय है। आहाहा! देवीलालजी! अरे! भगवान! फिर अन्त में लिखा है, विद्वान मण्डल विचार करे यह, हों! ऐसी बात है। अरे! प्रभु! विद्वान मण्डल।

मुमुक्षु : .... मेरे मत के हो जाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो जाओ। यह पढ़ो और इस प्रमाण देखो, मैंने यह अन्दर से निकाला। निकाला है। भगवान! सही समय पर अवरोधक होगा तुझे, हों!

मुमुक्षु : अरे! अभी ही अवरोधक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी तो ऐसे लहर करता है। दिखता है न! अभी कहाँ... उसे तो कुछ (खबर नहीं)। हम बराबर स्थापित करते हैं, बराबर कहते हैं। आचार्य अनुसार हम माननेवाले हैं। पण्डित अनुसार नहीं। यह मरने के समय होगा पैर... हाय... हाय... हाय... जहाँ हो वहाँ कर्ताबुद्धि साबित की है। मैंने किया, मैंने किया। भगवान! ज्ञान में कर्ता है नहीं, भाई! पर का करना व्यवहार से कहा, इसका अर्थ यह कि कर्ता है नहीं। कौन करे? आहाहा! यह राग के कर्ता की कर्तृत्वबुद्धि भी मिथ्यादृष्टि है, वहाँ देह की क्रिया करना, वह भी सच्ची बात नहीं। भाई! यह नहीं। बापू! यह नहीं। परन्तु व्यवहार सच्चा स्थापित करना है न भाई इसे? निश्चय भी सच्चा और व्यवहार भी सच्चा। दोनों सच्चे।

मुमुक्षु : ....ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहते हैं। दोनों सच्चे हैं। वे टोडरमल कहते हैं कि व्यवहार उपचार है और निश्चय सच्चा है। तो कहे, नहीं। खोटा है। आहाहा! ऐसी तो बात अभी छह महीने, बारह महीने में आने लगी, हों!

मुमुक्षु : अभी आठवें तक लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह आठवें में लिखा। अजितकुमार ने आठवें तक लिखा है। यह भी लिखा है। अजितकुमार का लेख है। शिवमार्ग आया है न!

मुमुक्षु : उसमें वापस आठवें तक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भाई का आठवें तक। उसका बारहवें तक।

मुमुक्षु : उसका सातवें में।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका सातवें में। उसमें सातवें में दो भाग लिये हैं। धर्मध्यान के दो भाग आते हैं न? धवल में ऐसा कि धर्मध्यान दसवें तक लिया है। इस अपेक्षा से वहाँ अबुद्धिपूर्वक भी राग रहा, तब तक व्यवहार कहा और आचार्य ने छठवें गुणस्थान तक व्यवहार कहा, वहाँ बुद्धिपूर्वक है, वहाँ तक व्यवहार कहा। कषाय के ऊपर जोर।

बुद्धिपूर्वक है वहाँ तक व्यवहार और अबुद्धिपूर्वक है तो एक आचार्य ने वहाँ व्यवहार कहा। इसलिए दोनों की कथनी इस अपेक्षा से है। धर्मध्यान सातवें तक कहा, उसमें बुद्धिपूर्वक राग है इसलिए (कहा)। अबुद्धिपूर्वक राग है, एक आचार्य ने वहाँ तक... है तो कषायभाव, वही व्यवहारमोक्षमार्ग। और उस कषायभाव का अर्थ वापस यह। कषाय, ऐसा नहीं, क्षयोपशमभाव। आहाहा!

कहते हैं कि भाई! भगवान ने प्रणीत किया हुआ है यह सूत्र, हों! **और जो संक्षेप से समस्तवस्तुतत्त्व का प्रतिपादन करता होने से,....** होने से। भाषा क्या करे? प्रतिपादन करनेवाला। अक्षर अक्षर में बाधा आवे। भगवान प्रतिपादन करते थे। कहो, यह किस नय का कथन है? आगे आयेगा, देखो! आचार्य स्वयं कहेंगे। **अति विस्तृत ऐसे भी प्रवचन के सारभूत है...** क्या कहते हैं? भले संक्षेप में कहा। ऐसा शब्द आया न पहले? **संक्षेप से समस्तवस्तुतत्त्व का प्रतिपादन करता होने से, अति विस्तृत ऐसे भी प्रवचन के सारभूत हैं...** भले संक्षेप में कहा। समझ में आया? परन्तु है **अति विस्तृत ऐसे भी प्रवचन के सारभूत हैं...** पंचास्तिकाय में एक-एक शब्द यह तो सैद्धान्तिक है, यह कोई कथा-वार्ता नहीं है। एक-एक शब्द में बहुत मर्म भरा हुआ है।

संक्षेप से समस्तवस्तुतत्त्व का प्रतिपादन करता होने से, अति विस्तृत ऐसे भी प्रवचन के सारभूत हैं (-द्वादशांगरूप से विस्तीर्ण ऐसे भी जिनप्रवचन के सारभूत है)। विस्तार ऐसे बारह अंग, उसमें भी यह पंचास्तिकायसंग्रह संक्षेप में पूरे द्वादशांग का सार है। संक्षेप में भी पूरे द्वादशांग का सार है। कहो, समझ में आया? **इस प्रकार शास्त्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव) प्रारम्भ किये हुए कार्य के अन्त को पाकर,...** देखो भाषा! **प्रारम्भ किये हुए कार्य के अन्त को पाकर, अत्यन्त कृतकृत्य होकर,...** अत्यन्त कृतकृत्य हो गया। अर्थात् अब कुछ करने का विकल्प है नहीं, ऐसा कहना है। **कार्य के अन्त को पाकर, अत्यन्त कृतकृत्य होकर,...** बस, ओहो! अपना कार्य अपने में। कृतकृत्य (हो गये)।

परमनैष्कर्म्यरूप... देखो! वह विकल्प था न? यहाँ जहाँ पूर्ण हुआ, वहाँ विकल्प छूट गया। करने का जो विकल्प था, वह छूट गया। पंचास्तिकायसंग्रह पूरा हुआ वहाँ।

वहाँ तक विकल्प आया करता था। हो गया (तो) विकल्प छूट गया। समझ में आया? **परमनैष्कर्म्यरूप....** परमनैष्कर्म्य। देखो! यह विकल्प था इतना रागभाव का कार्य था। विकल्प का घोलन। नैष्कर्म्यरूप अवस्था हुई। लो, यह अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य वर्तमान संयमी हैं, उनकी परम चैतन्य **नैष्कर्म्यरूप शुद्धस्वरूप में विश्रान्त हुए....** कहो, समझ में आया? स्थिर हो गये। वीतरागभाव सातवें गुणस्थान में। कहो, समझ में आया?

परमनैष्कर्म्यरूप.... राग का जरा विकल्प था, वह छूटकर शुद्धस्वरूप में विश्रान्त (हो गये)। आहाहा! इसका अर्थ कि राग था, वह थकान थी; राग था, वह खेद था। वेग था, शास्त्र बनाने का विकल्प वह वेग—दु:ख था, अविश्रान्तभाव था। वह विकल्प छूट गया तो विश्रान्ति हुई। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतरागता ही है। यहाँ तो भगवान ने वीतरागता कही और हम वीतरागमार्ग ही कहते हैं। बस। समझ में आया? विकल्प भले आया, छूट गया।

परमनैष्कर्म्यरूप शुद्धस्वरूप में विश्रान्त हुए (परम निष्कर्मपनेरूप शुद्धस्वरूप में स्थिर हुए) -ऐसे श्रद्धे जाते हैं.... आचार्य कहते हैं कि हमको ऐसी श्रद्धा है, अनुभव में स्थिर हुए ऐसी हमारी श्रद्धा हुई है, ऐसी हम श्रद्धा करते हैं। देखो! अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, यह पूर्ण हुआ उस समय कुन्दकुन्दाचार्य निष्कर्म्य हुए, ऐसी हम श्रद्धा करते हैं। समझ में आया? कहो, खबर पड़ी अब... पहले कुन्दकुन्दाचार्य थे। (११०० वर्ष) पश्चात् अमृतचन्द्राचार्य हुए। हम श्रद्धा करते हैं कि निष्कर्म्य अवस्था में स्थिर हो गये। समझ में आया? **ऐसे श्रद्धे जाते हैं....** ऐसी हम श्रद्धा करते हैं।

इस प्रकार (श्रीमद्‌भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री पंचास्तिकायसंग्रहशास्त्र की श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्य देवविरचित) समयव्याख्या नाम की टीका में नवपदार्थपूर्वक मोक्षमार्गप्रपंचवर्णन नाम का द्वितीय श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।

[अब, 'यह टीका शब्दों ने की है, अमृतचन्द्रसूरि ने नहीं' ऐसे अर्थ का एक अन्तिम श्लोक कहकर श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव टीका की पूर्णाहुति करते हैं।]

स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वै-
र्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः।
स्वरूपगुप्तस्य न किञ्चिदस्ति
कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः।।८।।

[श्लोकार्थ :— अपनी शक्ति से जिन्होंने वस्तु का तत्त्व (-यथार्थस्वरूप) भलीभाँति कहा है, ऐसे शब्दों ने यह समय की व्याख्या (अर्थसमय का व्याख्यान अथवा पंचास्तिकायसंग्रह शास्त्र की टीका) की है; स्वरूपगुप्त (-अमूर्तिक ज्ञानमात्र स्वरूप में गुप्त) अमृतचन्द्रसूरि का (उसमें) किंचित् भी कर्तव्य नहीं है ॥८ ॥

इस प्रकार (श्रीमद्‌भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत) श्री पंचास्तिकायसंग्रह नामक समय की अर्थात् शास्त्र की (श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेवविरचित समयव्याख्या नाम की) टीका के (श्री हिम्मतलाल जेठालाल शाह) कृत गुजराती अनुवाद का हिन्दी रूपान्तर समाप्त हुआ।

श्लोक-८ पर प्रवचन

इस प्रकार (श्रीमद्‌भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री पंचास्तिकायसंग्रहशास्त्र की श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्य देवविरचित) समयव्याख्या... लो, (समयव्याख्या) टीका का नाम। **समयव्याख्या नाम की टीका में नवपदार्थपूर्वक मोक्षमार्गप्रपंचवर्णन...** प्रपंच का अर्थ विस्तार। समझे? 'प्रपंच' शब्द पड़ा है। प्रपंच का अर्थ विस्तार। **नवपदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग -प्रपंचवर्णन नाम का द्वितीय श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।**

अब अमृतचन्द्राचार्य महाराज (कहते हैं), **(अब, 'यह टीका शब्दों ने की है,...** देखो! यह योगफल। यह तो जहाँ हो वहाँ मैंने किया... मैंने किया। भगवान! तुझमें

सामर्थ्य है वह पर में कहाँ से घुस गयी? हमने शब्द बनाये, हमने पुस्तक बनायी, हमने उपदेश किया, मैंने किया। अरे! भगवान! तू कौन कि तू करे? **टीका शब्दों ने की है,...**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पृथक् ही है। है क्या? जड़ के परमाणु की पर्याय का काल है तो काल स्वकाल में परमाणु की पर्याय होती है। पुस्तक भी उसके स्वकाल में होती है, वाणी भी उसके स्वकाल में होती है। आत्मा करे क्या? ओहोहो!

अमृतचन्द्रसूरि ने नहीं.... देखो! यह टीका मैंने नहीं की। आहाहा! निश्चय का अर्थ सत्यार्थ है। व्यवहार से कहना, यह टीका की, वह निमित्त का ज्ञान कराने के लिये है। की-फी नहीं है। अभी तो यह कहे, दूसरे को जीवन दे सकता है, खा सकता है। देखो! शास्त्र में नहीं आया? दुःख का वर्णन करके क्या कहे? छोटी मछली को बड़ी मछली खा जाती है। मच्छ गळागळ आता है या नहीं? खा जाये ऐसा कहा, उसमें खा सकता है, वह क्रिया कर सकता है, ऐसा कहाँ सिद्ध किया है। वह तो दुःख का वर्णन करना है। आहाहा! इसने उसे मार डाला। रामचन्द्रजी ने लक्ष्मणजी ने मार... क्या कहलाता है वह? रावण ने मारी न एक विद्या लक्ष्मणजी को। शक्ति मारी, मूर्च्छित हो गये। कथन क्या करे? देखो! इस शक्ति से मूर्च्छा हुई या नीं? अरे... भगवान! यह तो वहाँ मूर्च्छा होने की योग्यता थी तो शक्ति निमित्तरूप हुई। और जहाँ वह विशल्य आयी... विशल्या न? विशल्या बाई। पूर्व का बहुत ऐसा था... उसका स्नान (का पानी) जहाँ डाले वहाँ (मूर्च्छा में से) उठ जाये। ऐसी ब्रह्मचारिणी बाई पूर्व में (पूर्व भव में)। लक्ष्मण की स्त्री (रानी) होनेवाली है। किसी ने कहा था कि तेरा पति ऐसा वासुदेव होगा। उलझन में आये सब रामचन्दजी इत्यादि। क्या करना? अरे... मेरा लक्ष्मण, मेरा वीर मूर्च्छित हो गया। कोई छूना नहीं भाई, हों! वह विद्या ऐसी है कि यदि छुओगे तो वहाँ समाप्त हो जाओगे। परन्तु वह तो एक कथन कैसे करे? ऐसे कथन हैं लो! रामचन्द्रजी ज्ञानी समकिती, हों! कहते हैं कि भाई! यह लोग कहते हैं कि यह ऐसी विद्या शक्ति है कि कोई छुयेगा तो मेरा वीर चला जायेगा। नहीं छूना, हों! कोई नहीं छूना। अरे! विभीषण कुछ उपाय... उपाय... कहो। यह वीर—बड़ा योद्धा पड़ा है। अरे! सुग्रीव! कुछ इसमें बताओ बापू! कुछ बताओ, ऐसा रामचन्द्रजी (कहते हैं)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वे मोक्षगामी हैं और वर्तमान ज्ञानी समकिती हैं। ऐसा विकल्प आता है, अरे..! यह वीर पड़ा नीचे, वह रावण जीत जायेगा। ऐसे तो ख्याल में है कि यह वासुदेव है। वह इसे नहीं जीत सकता। परन्तु हलबल हो गये राग में। तब एक ने कहा कि एक विशल्या नाम की कन्या है। उसके पास उसका स्नान आदि का पानी हो तो यह शक्ति चली जायेगी। बुलाओ, कोई उसे बुलाओ। रामचन्द्रजी कहते हैं, हों! पुकार करते हैं कि अरे! कोई बुलाओ विशल्य को। सवेरा होने से पहले आ जाना चाहिए। यह भी उतावल? यह क्रमबद्ध...? भाई! ऐसा विकल्प अपनी पर्याय में निर्बलता से आता है। जानते हैं। सवेरा होने से पहले... मेरा वीर पड़ा है, सवेरा होने से पहले नहीं आवे तो देह नहीं रहेगी। एकदम जहाँ विशल्य आयी, वहाँ अभी तो अन्दर प्रवेश करती है, हों! वहाँ वह शक्ति शिथिल पड़ने लगी। एकदम जरा ऐसे... लो! शक्ति ने किया या नहीं? ताराचन्दभाई!

मुमुक्षु : .... दोनों शक्ति ने...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहो, एक शक्ति से उतर गया। एक शक्ति से... अरे! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का करे, यह तो बात है ही नहीं है। भाई! यह कथा में निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कैसा हुआ, इसका कथन चलता है। समझ में आया? इतना पानी उसे छिड़का (तो कुछ नहीं हुआ और) अभी आती थी, प्रविष्ट हुई उसमें... क्या कहलाता है? तम्बू। तम्बू में प्रवेश होने से पहले तो वह शक्ति शिथिल पड़ने लगी। अरे! वीर जगा। रामचन्द्रजी भी प्रसन्न होते हैं, लो! आहाहा! लाओ पानी यहाँ। अब यह पानी... घायल बहुत हुए थे न! घायल बहुत हुए थे लोग। यह पानी दूसरे घायलों को छिड़का। सब निरोगी। न हो निरोगी? देखो! पानी से निरोगी हुए। ऐई! अमरचन्दभाई! अरे! भगवान! बापू!

मुमुक्षु : ऐसा कैसे हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उस समय में उस पर्याय का परमाणु के उत्पाद में दूसरा परमाणु उत्पाद करा दे, ऐसा तीन काल में नहीं होता, भाई! समझ में आया? यह

पुद्गल के परमाणु में उत्पाद-व्यय की धारा चलती है। यह उत्पाद-व्यय की धारा दूसरा पलट डाले और उत्पाद बनावे तो उससे (पहले) परमाणु का उत्पाद कहाँ गया? अरे! भगवान! यह तो कथानुयोग में ऐसा विस्तार से कथन हो, ऐसी पद्धति है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बहुत हुआ न! यह मानतुंग का आया न सवेरे। मानतुंग ने जेल को तोड़ दिया। ४८ ताले। तोड़ सकते हैं? ऐसा है ही नहीं। ऐसी बात है। यह तो ऐसी होने की पर्याय थी तो ऐसा विकल्प से बन गया। बात यह। अरे! भगवान! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का करे, तब तो उत्पाद, उसका उत्पाद कहो या कार्य कहो, वह परमाणु का उत्पाद कहो, कार्य कहो, किससे होता है? बहुत अभिमान।

आचार्य कहते हैं कि **ऐसे अर्थ का एक अन्तिम श्लोक कहकर श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव टीका की पूर्णाहुति करते हैं।**

स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वै-
र्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः।
स्वरूपगुप्तस्य न किञ्चिदस्ति
कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः।।८।।

श्लोकार्थ :— अपनी शक्ति से जिन्होंने वस्तु का तत्त्व (-यथार्थस्वरूप) भलीभाँति कहा है.... वाणी में स्व-पर वार्ता कहने की ताकत है तो उसने कहा है। मैंने टीका बनायी नहीं। आहाहा! और कितने ही ऐसा कहते हैं कि यह तो उत्तम पुरुष हैं, इसलिए अभिमान टालने के लिये कहते हैं। उन्होंने की तो है।

मुमुक्षु : किया तो फिर अभिमान...

पूज्य गुरुदेवश्री : करने के पश्चात् उसका प्रश्न... कर सकते ही नहीं। यहाँ तो यह कहते हैं।

अपनी शक्ति से जिन्होंने वस्तु का तत्त्व... तत्त्व अर्थात् भाव, स्वरूप **भलीभाँति कहा है....** उसने कहा, शब्दों ने कहा, टीका शब्दों से बनी है, मुझसे नहीं। आहाहा! समझ में आया? **भलीभाँति कहा है....** ऐसा है न? **'संसूचित' 'संसूचित'** ऐसा।

'**संसूचित**' सम्यक् प्रकार से भलीभाँति कहा है। देखो! '**संसूचित**' शक्ति है। शब्दों की शक्ति में सम्यक् प्रकार से कहने की ताकत से हुई है। **ऐसे शब्दों ने...** कैसे शब्द? **जिन्होंने वस्तु का तत्त्व भलीभाँति कहा है ऐसे शब्दों ने....** मैंने शब्द किये नहीं, मैंने टीका बनायी नहीं। मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ। मुझमें वाणी नहीं, विकल्प नहीं। मैं किसे करूँ? किसे बनाऊँ? आहाहा! समझ में आया? **यह समय की व्याख्या (अर्थसमय का व्याख्यान अथवा पंचास्तिकायसंग्रह शास्त्र की टीका) की है;...** देखो! की है। ऐसी अस्ति की पहले। अब नास्ति करते हैं। अस्ति-नास्ति करना है न? दोनों में से अनेकान्त सिद्ध करते हैं। यह अपनी शक्ति से वस्तु का स्वरूप। अरे! जड़ को क्या खबर पड़े? ऐसा कहते हैं। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव कहकर स्वभाव का अवलोकन करके फिर उपदेश देना। समझ में आया? आता है या नहीं? परन्तु कौन दे? भाई! भगवान! यह तो निमित्त का कथन है। ज्ञान में-ख्याल में आवे, परन्तु वाणी ऐसे प्रकार की निकलना, यह अपना कर्तव्य तीन काल—तीन लोक में नहीं है। समझ में आया?

वे पण्डित आये थे इन्दौर में। (संवत्) २०१३ के वर्ष। सात वर्ष हो गये। तो कहे, यह देखो! द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की सभा देखकर आचार्य ने उपदेश दिया है, ऐसा उनका है या नहीं? भाई! यह बात व्यवहार से कथन है, भाई! यह उपदेश करते हैं ऐसा कहना, ऐसी वाणी कहूँ —ऐसा वस्तु में है कहाँ? शोभालालभाई! ऐसा आता है न शास्त्र में? कौवे का माँस छुड़ाया भील को। समझ में आया? किसी को ऐसा कहा, ऐसा कहना। कौन कहे, भगवान! वह तो ऐसा विकल्प आया और वाणी के काल में वाणी निकल गयी है। आहाहा! आता है या नहीं? अमरचन्दभाई! ऐसा बताया, ऐसा बताया, द्रव्य-क्षेत्र... भाई! वह तो व्यवहार से कथन है। उसके ज्ञान में आता है कि ऐसे प्राणी हो... बस इतना। परन्तु ऐसा उपदेश इस पद्धति का देना, वह आत्मा में नहीं... नहीं... नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह सभा लाख की हो या पाँच हजार की हो या पचास हजार की हो, उसे देखकर कहना। अरे! भगवान! यह तो व्यवहार का कथन है, भाई!

यहाँ कहते हैं कि शक्ति तो उसकी है न? स्वरूपगुप्त अर्थात् मैं तो राग में आया नहीं तो वाणी में कहाँ से आऊँ? वाणी तो पृथक् द्रव्य है। राग तो अभी अपनी पर्याय में उत्पन्न होता है। वह तो पृथक् द्रव्य है तो अन्य द्रव्य का उत्पाद करनेवाला मैं कौन?

तीन लोक के नाथ भी वाणी नहीं कर सकते, वाणी जड़ की पर्याय है। अजीवद्रव्य है। ऐसा बोले (कि) अजीव को जीव माने तो मिथ्यात्व। वापस माने कि अजीव की पर्याय आत्मा कर सकता है। मूढ़! यह कहाँ से आया? बोले सही शाम-सवेरे उस प्रतिक्रमण में। अजीव को जीव माने (तो मिथ्यात्व)। क्या करे? अजीव को जीव माने तो मिथ्यात्व, उसका अर्थ क्या? अजीव को जीव माने तो? यह वाणी जब होती है, वह जड़ से होती है। जड़ की पर्याय का उत्पाद है। उसे तूने किया? मैंने बनाया? मूढ़ है। अजीव को जीव माना। मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। उसे जैन की खबर नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि मैं तो स्वरूपगुप्त हूँ न! मैं विकल्प में नहीं आता तो वाणी में कहाँ से आऊँ? ऐसा कहते हैं। **(-अमूर्तिक ज्ञानमात्र स्वरूप में गुप्त)....** देखो! गुप्त हूँ। ज्ञानस्वरूप हूँ। मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ, वह वाणी में कहाँ से आवे? वाणी को मैं स्पर्शा भी नहीं, स्वभाव से तो वास्तव में राग को भी स्पर्श किया नहीं। विकल्प आया, उसे स्पर्श किया नहीं, तो वाणी तो बहुत दूर रही। समझ में आया? **स्वरूपगुप्त अमृतचन्द्रसूरि का (उसमें) किंचित् भी कर्तव्य नहीं है।** और थोड़ा शब्द रखे (कि) बस कुछ भी, कुछ भी, व्यवहार से तो है या नहीं? **किंचित् भी कर्तव्य नहीं है।** क्या शुक्लचन्दजी! थोड़ा कर सकता है या नहीं? ऐसा लठ्ठ जैसा शरीर है, चक्की नहीं चला सकता? आटा बनाना हो तो चक्की चला सकता है या नहीं? तब क्या करे निर्दोष आटा न मिले तो? अरे..! भगवान! चक्की तो अनन्त परमाणुओं का स्कन्ध है। उसकी पर्याय क्या आत्मा कर सकता है? हिला सकता है ऐसे? कहते हैं कि मेरा **किंचित् भी कर्तव्य नहीं है।** आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा ज्ञाता-दृष्टारूप से मैं तो हूँ। मेरी चीज़ में राग भी नहीं हुआ, तो वाणी में कहाँ से आया? यह यथार्थ है, हों! मान घटाने के लिये नहीं, यह कर सकते नहीं, ऐसा कहा है। ताराचन्दभाई!

मुमुक्षु : ....किया है पुद्‌गल ने इसमें...

पूज्य गुरुदेवश्री : पुद्‌गल की पर्याय ने किया है, इसमें क्या किया? यह अधिकार पूरा हुआ। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रकाशक

श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

मुम्बई